# विषय-तालिका



काशी मुद्रणालय, विश्वेश्वर गंज, बनारस।

# रसायन-समीक्षा

## ( द्वितीय भाग )

## १—हरिऔध

**परिचय:**—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' अगस्त्य गोत्री, शुक्ल यजुर्वेदी सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म वैशाख कृष्ण तृतीया सम्वत् १९२२ को आज़मगढ़ जिले के अन्तर्गत क़स्बा निज़ामाबाद में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० भोलासिंह उपाध्याय था। इन्होंने पांच वर्ष की अवस्था से विद्याध्ययन आरंभ किया और सम्वत् १९३६ में वर्नाक्यूलर मिडिल तथा संवत् १९४४ में नार्मल परीक्षा उत्तीर्ण की। घर पर इन्हें संस्कृत और उर्दू तथा फारसी की भी शिक्षा मिली थी। अंग्रेज़ी का अध्ययन इन्होंने काशी में किया था। पहले ये अपने ही क़स्बे के तहसीली स्कूल में अध्यापक हुए। पीछे इन्होंने कानूनगोई उत्तीर्ण की और कानूनगो बनाये गए। सदर कानूनगो के पद पर बहुत दिनों तक रहने के अनन्तर इन्होंने पहली नवम्बर सन् १९२३ ई० को अवकाश ग्रहण किया और इसके पश्चात् काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अवैतनिक अध्यापक हो गये तथा सन् १९४१ ई० तक इस संस्था की अवैतनिक सेवा करते रहे। यहां से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् इन्होंने स्थायी रूप से आज़मगढ़ को अपना निवासस्थान बनाया और साहित्य की सेवा करते हुए ६ मार्च सन् १९४६ को अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

**धर्म तथा स्वभाव:**—हरिऔध जी का सिक्ख-धर्म में पूर्ण विश्वास था। उनका स्वभाव गम्भीर था पर स्वाभाविक रूप से उनमें कोमलता और उदारता

व्याप्त थी। उनकी वाक्शक्ति प्रौढ़ तथा समीक्षात्मक विचारधारा गहन थी। ये हिन्दी और हिन्दू जाति तथा धर्म के अनन्य प्रेमी थे।

**सम्मानः**—'हरिऔध' जी को उनकी रचना 'प्रियप्रवास' पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ था और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने उन्हें 'विद्या-वाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया था।

**रचनायें:**—'हरिऔध' जी ने पद्य गद्य दोनों लिखा है। इनकी रचनाएं, दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं १—मौलिक २—अनूदित। अनूदित ग्रन्थों में भी गद्य और पद्य दोनों हैं। इनकी रचनाएं निम्नलिखित हैं:—

*मौलिकः*—१— प्रिय प्रवास, २—वैदेही-वनवास ३—चोखे चौपदे ४—चुभते चौपदे ५—बोलचाल ६—रस-कलश ७—पद्य-प्रसून ८—कल्पलता। ९—काव्योपवन १०—ऋतु मुकर ११—पारिजात १२—प्रेमप्रपंच १३—प्रेमाम्बु-प्रवाह १४—प्रेमाम्बु-वारिधि। १५—प्रेम-पुष्पोहार १६—प्रेमाम्बु-प्रश्रवण। १७—ठेठ हिन्दी का ठाट। १८—अधखिला फूल। १९—हिन्दी-भाषा और साहित्य का विकास। २०—कबीर वचनावली की आलोचना।

*अनूदितः*—१—वेनिस का बांका ( गद्य ) २—उपदेश-कुसुम ( पद्य )

**भाषा:**—'हरिऔध' जी की भाषा को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। १—ब्रजभाषा २—उर्दू जनित हिन्दी। ३—सरल साहित्यिक हिन्दी ४—तत्सम मय हिन्दी।

'हरिऔध' जी भाषा के पंडित थे। इनकी भाषा पर भारतेन्दु काल, द्विवेदी-काल और आधुनिक काल इन तीनों का प्रभाव पड़ा है। अतएव इन कालों से प्रभावित इनकी भाषा बिल्कुल स्वच्छ और निखरी हुई है। भाषा-क्षेत्र में इन्होंने अपने मौलिक मार्ग का अनुसरण किया है इसीसे इनकी भाषा में संगीत, लालित्य सौन्दर्य और स्वाभाविक प्रवाह पाया जाता है। इनकी खड़ी बोली की रचनाओं में दो रूप दृष्टिगोचर होते हैं। एक तो संस्कृत गर्भित क्लिष्ट तथा दूसरा सरल सुबोध और मुहावरेदार। इनकी भाषा भावानुगामिनी है और उसमें प्रसाद तथा माधुर्य गुणों की प्रचुरता है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता है ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों पर समानाधिकार।

इनकी प्रसिद्ध रचना 'प्रियप्रवास' में संस्कृत शब्दों से कहीं कहीं भाषा

वोझिल हो गई है तथा इनसे व्याकरण सम्बन्धी कुछ भूलें भी हुई हैं और इनके शब्दों में कहीं कहीं शैथिल्य भी आ गया है फिर भी इनके भाषा-पांडित्य पर सन्देह नहीं किया जा सकता। वास्तव में यह भाषा के पूर्ण पंडित थे।

**शैली:**—'हरिऔध' जी की रचनाओं में इनकी शैली के चार रूप दिखाई पड़ते हैं—

(१) उर्दू की मुहावरेदार शैली (२) संस्कृत काव्य की शैली (३) हिन्दी की रीति कालीन शैली (४) आधुनिक परिमार्जित शैली। 'हरिऔध' जी अपनी शैली के स्वयं निर्माता हैं। इनकी शैली पर किसी अन्य का प्रभाव नहीं है। इनके प्रत्येक ग्रन्थ इनकी अलग अलग शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनकी शैली में संगीत का उत्तम प्रयोग मिलता है तथा प्रवाह और चमत्कार भी है। इनका समस्त साहित्य ही मुहावरों का कोश है। इन्होंने अपनी शैली को अनुप्रासों, उपमाओं और रूपकों से प्रभावोत्पादक तथा आकर्षक बना दिया है साथ ही अपनी शैली की स्वाभाविकता और प्रवाह की पूर्ण रक्षा भी की है। उसमें कृत्रिमता और अस्वाभाविकता का दोष रंच मात्र भी नहीं आने पाया है। इनकी शैली में कहीं कहीं चटकीलापन और पंडिताऊपन भी मिलता है। इनकी शैली का उत्तम रूप 'प्रियप्रवास' में दिखाई पड़ता है।

**छन्द:**—'हरिऔध' जी ने अपने काव्य में छन्द-योजना बड़े ही आकर्षक और विशाल रूप से की है। ग्रामीण छन्द, उर्दू शैली के छन्द, रीतिवादी छन्द स्पष्ट रूप से इनके काव्य में दृष्टिगोचर होते हैं। इन्होंने अपने काव्य में द्रुतविलंबित मालिनी, वंशस्थ, मन्दा क्रान्ता, शिखरणी, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा आदि छन्दों का प्रयोग विशेष रूप से किया है। इनके काव्य में संस्कृत वर्णवृत्तों का प्राधान्य है। ३० मात्राओं के विधान वाले छन्दों के प्रचलन के कारण प्रारंभ में इन्होंने 'बोलचाल' और 'चौपदों' में मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है। ये छन्द-योजना में पूर्ण कुशल थे। इनके काव्य में नवीन तथा प्राचीन सभी प्रकार के छन्दों का प्रयोग मिलता है।

**रस:**—'हरिऔध' जी ने अपनी रचनाओं में सभी रसों को स्थान दिया है पर इनमें प्रमुख रूप से तीन रसों—शृंगार, करुण और वात्सल्य रस की प्रधानता है। इनके काव्य में बड़े ही मार्मिक और सुन्दर ढंग से रसों का संयोग हुआ है।

यही कारण है कि इनके काव्य-चित्रों में रसोद्रेक के कारण मानव-हृदय मुखरित हुआ सा प्रतीत होता है।

**अलंकार:**—'हरिऔध' जी ने अपनी रचनाओं में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों को स्थान दिया है। शब्दालंकार द्वारा भाषा के सौन्दर्य और अर्थालंकार द्वारा भावों को पुष्ट और परिपक्व बनाने में इन्हें पूर्ण सफलता मिली है। इनकी रचनाओं में उपमा, अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा तथा रूपक आदि अलंकारों का सफल प्रयोग मिलता है।

**काव्य-सृष्टि:**—"हरिऔध" जी ने निजामाबाद के सिक्ख बाबा सुमेरसिंह के संसर्ग से कविता करना आरम्भ किया। प्रारम्भ में ये समस्या पूर्ति करते थे और ब्रजभाषा के प्रचलित तथा परिमार्जित छन्द, कवित्त, सवैया लिखते थे। इसीसे इनका उपनाम "हरिऔध" रक्खा गया था। समय की गति ने इनके चित्त में एक नया परिवर्तन उपस्थित कर दिया और कालान्तर में आचार्य महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के प्रभाव से इन्होंने खड़ी बोली को अपनाया। संवत् १९७१ में इनका खड़ी बोली का प्रसिद्ध महाकाव्य 'प्रियप्रवास' प्रकाशित हुआ। इनकी ब्रजभाषा की कविताएं 'रस-कलश' में सङ्कलित हैं। विविध विषयों पर लिखी कविताएं 'चोखे चौपदे' 'चुभते चौपदे' 'बोल चाल' 'फूल पत्ते' आदि में संग्रहीत हैं। 'पद्य-प्रसून' में बोलचाल की और साहित्यिक दोनों प्रकार की भाषाओं में लिखी कविताएं संकलित हैं। 'वैदेही बनवास' और 'पारिजात' भी दो काव्य ग्रन्थ हैं। 'वैदेही बनवास' में लोकोपवाद के कारण वैदेही के परित्याग की पुरानी कहानी नवीनता और भारतीय नारी के आदर्श चित्रण के साथ कही गई है और 'पारिजात' में 'हरिऔध' जी के आध्यात्मिक विचार संग्रहीत हैं। 'हरिऔध' जी ने गद्य में भी रचना की है। ठेठ भाषा में इन्होंने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' अथवा 'देव बाला' बहुत सुन्दर कहानी लिखी है। 'अधखिला फूल', 'वेनिस का बांका', नीतिनिबन्ध', 'विनोद वाटिका', 'उपदेश कुसुम' और 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' इनकी अन्य गद्य-कृतियां हैं।

**समीक्षा:**—काव्य-क्षेत्र में 'हरिऔध' जी का विशिष्ट स्थान है। 'प्रियप्रवास' इनकी अमर कृति है। यह खड़ी बोली का प्रथम अतुकान्त महाकाव्य है। इसमें संस्कृत के विविध भिन्न-तुकान्त वृत्तों में श्री कृष्ण के गोकुल से मथुरा

चले जाने पर उनके प्रति ब्रजवासियों के प्रेम और उनके बाल्य-काल का सुन्दर वर्णन किया गया है। इसमें श्रीकृष्ण ब्रज के रक्षक के रूप में अङ्कित हुए हैं। राधा प्रिय-प्रवास के कथानक की नायिका हैं। कवि ने उन्हें कृष्ण के शरीर की आत्मा के रूप में चित्रित करके सारे कथानक का क्रिया-केन्द्र बना दिया है। प्रिय-प्रवास की राधा कृष्ण की प्रेम-पात्री नहीं बल्कि सच्ची प्रेमिका हैं और कृष्ण के विरह में वे त्यागी और लोक सेवी बन गई हैं। इसी प्रकार प्रिय-प्रवास की यशोदा माता ही नहीं बल्कि जगद्‌माता, बन गई हैं। प्रिय-प्रवास में भाषा और भाव का सुन्दर सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। इसमें समाज-सेवा, स्वार्थ-त्याग, विश्व-प्रेम, परोपकार, देश-सेवा आदि उदात्त वृत्तियों का सन्देश निहित है। प्रिय-प्रवास का प्रकृति-चित्रण हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। इसकी शैली अनूठी है। अब यहां हम 'प्रिय-प्रवास' का कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते हुए उसकी काव्य-गत विशेषताओं का दिग्दर्शन करायेंगे:—

'हरिऔध' जी ने प्रिय-प्रवास महाकाव्य के आरंभ में ही प्रकृति के एक सुन्दर दृश्य का चित्र खींचते हुए लिखा है—

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥

वसंत का सजीव चित्रण उपस्थित करते हुए कवि कहता है:—

नवांकुरों में कलिका कलाप में,
नितांत न्यारे फल पत्र पुञ्ज में।
निसर्ग द्वारा सुप्रसूत पुष्प में,
प्रभूत पुञ्जी कृत थी प्रफुल्लता॥
विमुग्धता की वर रंग भूमि-सी,
प्रलुब्धता केलि वसुन्धरोपमा।
मनोहरा थीं तरु वृन्द डालियां,
नई कली मंजुल मंजरी मयी॥

कृष्ण के सौन्दर्य का अनुपम उन्मादकारी चित्रण कवि की इन पंक्तियों में

निखर उठा है:—

ककुभ-शोभित गोरज बीच से,
निकलते ब्रज वल्लभ यों लसे।
कदन ज्यों कर वर्द्धित कालिमा,
विलसता नभ में नलिनीश हैं॥

कृष्ण के गोचारण के प्रसंग में वृन्दावन के एक भूमि-खंड के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है:—

विशाल वृन्दावन भव्य अङ्क में,
रही धरा एक अतीव उर्वरा।
नितान्त-रम्या तृण–राजि-संकुला,
प्रसादिनी प्राणि-समूह-दृष्टि की॥
कहीं कहीं थे विकसे प्रसून भी,
उसे बनाते रमणीय जो रहे।
हरीतिमा में तृण-राजि मंजु की,
बड़ी छटा थी सित-रक्त पुष्प की॥

कृष्ण के गोचारण के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए उनके लोक-रंजन-कारी रूप को कवि ने इस प्रकार प्रकट किया है:—

मुकुन्द थे पुत्र ब्रजेश नन्द के,
गऊ चराना उनका न कार्य था।
रहे जहां सेवक सैकड़ों वहां,
उन्हें भला कानन कौन भेजता?
परन्तु आते वन वे समोद थे,
अनन्त ज्ञानार्जन के लिए स्वयं।
तथा उन्हें वांछित थी नितान्त ही,
वनान्त में हिंसक-जन्तु हीनता॥

प्रिय-प्रवास के कृष्ण और राधा रीतिकालीन कवियों के विलासी कृष्ण और राधा न होकर लोक–कल्याणकारी तथा समाज-सेवी हैं इसका अनुपम उदाहरण कवि की ये पंक्तियां हैं:—

थे राज-पुत्र उनमें मद था न तो भी,
वे दीन के सदन थे अधिकांश जाते।
बातें मनोरम सुना दुःख जानते थे,
और थे विमोचन उसे करते कृपा से॥

और—

अपूर्व आदर्श दिखा नरत्व का,
प्रदान की है पशु को मनुष्यता।
सिखा उन्होंने चित्त की समुच्चता,
बना दिया सभ्य समग्र गोप को॥

और राधा—

संलग्ना हो विविध कितने सान्त्वना कार्य में भी,
वे सेवा थीं सतत करतीं वृद्ध रोगी जनों की।
दीनों हीनों निबल विधवा आदि को मानती थीं,
पूजी जातीं ब्रज अवनि में देवियों सी अतः थीं॥

कवि ने स्वयं कृष्ण द्वारा उनके मुख से मानव-कर्तव्य का विवेचन बड़े ही सुन्दर ढंग से कराया है और उनकी उदारता तथा कार्यशीलता का स्पष्ट चित्रण इन पंक्तियों में कर दिया है:—

विपत्ति से रक्षण सर्व भूत का,
सहाय होना असहाय जीव का।
उबारना सङ्कट से स्वजाति का,
मनुष्य का सर्व प्रधान कृत्य है॥

प्रिय प्रवास में छन्द, रस और अलंकार व्यंजना के भी उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं। कृष्ण मथुरा चले गये हैं। उद्धव यशोदा को समझाने आये हैं। माता का हृदय पुत्र की स्मृति में छलछला उठता है और मंगलकामना के साथ उसके वात्सल्य-प्रेम की धारा कवि की इन पंक्तियों में फूट पड़ती है—

मैं रोती हूं हृदय अपना कूटती हूं सदा ही,
हा ऐसी ही व्यथित अब क्यों देवकी को करूंगी।
प्यारे जीवें पुलकित रहें औ बने भी उन्हीं के,

धाईं नातें वदन दिखला एकदा और जावें ॥

विप्रलंभ शृंगार का उत्कृष्ट उदाहरण कवि की इन पंक्तियों में दर्शनीय है। राधा कोकिल से कहती हैं—

कभी न होगी मथुरा प्रवासिनी,
गर्राविनी गोकुल ग्राम गोपिका।
भला करे लेकर राजभोग क्या,
यथोचिता श्यामरता विमोहिता ॥

× ×

न कामुका हैं हम राजवेष की,
न नाम प्यारा यदुनाथ है हमें।
अनन्यता से हम हैं व्रजेश की,
विरागिनी पागलिनी वियोगिनी ॥

रूपक अलंकार का एक सुन्दर नमूना देखिये—

ऊधो मेरा हृदयतल था एक उद्यान न्यारा,
शोभा देती अमित उसमें कल्पना क्यारियां थीं।
न्यारे प्यारे कुसुम कितने भाव के थे अनेकों,
उत्साहों के विपुल विटपी थे महा मुग्धकारी ॥

भाषा की माधुरी इन पंक्तियों में निखर उठी है—

प्रसादिनी पुष्प सुगंध—वर्द्धिनी,
विकासिनी वेलि लता विनोदिनी।
अलौकिकी थी मलयानिली क्रिया,
विमोहिनी पादप पंक्ति मोदनी ॥

'हरिऔध' जी ने 'प्रियप्रवास' में संस्कृत गर्भित क्लिष्ट तथा सरल सुबोध और मुहावरेदार भाषा के इन दोनों रूपों को अपनाया है जिसका नमूना यहां दिया जा रहा है—

रूपोद्यान प्रफुल्ल-प्राय-कलिका राकेंदु बिम्बानना,
तन्वंगी कल हासिनी सुरसिका क्रीड़ा कला-पुत्तली।

शोभा वारिधि की अमूल्य मणि-सी लावण्य लीलामयी,
श्रीराधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थी ॥

(संस्कृत गर्भित क्लिष्ट भाषा)

मन हरण हमारे प्रात जाने न पावें,
सुखी जुगुत हमें तो सूझती है न ऐसी।
पर यदि यह काली यामिनी ही न बीते,
तब फिर ब्रज कैसे प्राण प्यारे तजेंगे ॥

(सरल सुबोध भाषा)

हरिऔध जी की भाषा का एक नवीन रूप उनके 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' में दिखाई पड़ता है। वास्तव में इन चौपदों की रचनाएं वड़ी ही मार्मिक हैं और इनमें राज-समाज, व्यष्टि-समष्टि, लोक-परलोक, नीति-धर्म, संस्कृति-सभ्यता, आचार-विचार सभी पर व्यंग्य-बौछार की गई है। ये कृतियां बोल-चाल की भाषा में लिखी गई हैं अतएव इनमें अनोखी सूझ-बूझ के साथ ही मुहावरों का मणिकांचनमय योग है। कुछ उदाहरण देखिए—

किरकिरी वह आंख की जाये न वन,
जो हमारी आंख का तारा रहा।
कर न दे टुकड़े कलेजे के वही
है जिसे टुकड़ा कलेजे का कहा ॥

मन्दिरों, मसजिदों कि गिरजों में,
खोजने हम कहां कहां जायें।
वह तो फैले हुए जहां में हैं,
हम कहां तक निगाह फैलायें ॥

जब कि प्यारे गड़े तुम्हीं जी में,
तब भला दूसरा गड़े कैसे।
जब तुम्हीं आंख में अड़े आकर
तब बिचारी पलक पड़े कैसे ॥

जान जब तक सका नहीं तब तक,
था बना जीव बैल तेली का।

जब सका जान तब जगत सारा
हो गया आंवला हथेली का ॥

'वैदेही वनवास' भी हरिऔध जी की उत्कृष्ट रचना है। इसमें लोकोपवाद के कारण वैदेही के परित्याग की पुरानी कहानी को आधुनिकता का पुट देकर कवि ने बड़े ही अनूठे ढंग से चित्रित किया है। इतना ही नहीं इसमें भारतीय नारी के आदर्श चरित्र की एक उज्ज्वल झांकी भी देखने को मिलती है। 'वैदेही वनवास' के राम मानवता के सच्चे पुजारी हैं और वे कहते हैं—

पटन कर लोकाराधन मंत्र,
करूंगा मैं इसका प्रतिकार।
साधकर जगहित साधनसूत्र,
करूंगा घर घर शांति प्रसार ॥

और 'वैदेही वनवास' की सीता भी अपने पति के आदर्श मार्ग का अनुसरण करती हुई विश्व-प्रेम को महानता देती हैं—

सर्वोत्तम साधन है उर में,
भवहित पूत भाव को भरना।
स्वाभाविक सुख लिप्साओं का,
विश्व प्रेम में परिणित करना ॥

संक्षेप में—'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' की रचना सामयिकता पर दृष्टि रख कर ही की गई है और इसमें यथार्थ तथा आदर्श का अद्भुत सम्मिश्रण है। 'प्रियप्रवास' के 'कृष्ण' और 'वैदेही वनवास' के राम अवतार के रूप में न दिखाये जाकर आदर्श मानव के रूप में चित्रित किए गये हैं जिससे इन रचनाओं में आदर्श मानव-सन्देश निहित हो गया है।

'रस-कलश' में 'हरिऔध' जी की ब्रजभाषा की कवितायें हैं। यह रीति-ग्रन्थ के आधार पर लिखित एक सुन्दर और सरस ग्रन्थ है। इसमें कवि ने मौलिक भावनाओं के साथ परम्परागत भावनाओं का भी उल्लेख किया है। इसके अन्दर कलापक्ष और भावपक्ष दोनों का सुन्दर सामञ्जस्य देखने को मिलता है। इसमें सब रसों का उदाहरण देते हुए कवि ने विभिन्न नायिका भेदों का सफल चित्रण किया है और स्वतन्त्र निरीक्षण द्वारा ऋतु वर्णन का समावेश करके इसके सौन्दर्य को बढ़ा दिया है।

## देवदेव

**प्रसंग:**—प्रस्तुत कविता महाकवि 'हरिऔध' जी के 'बोलचाल' नामक ग्रन्थ से उद्धृत है। इसमें कवि ने परमार्थवाद का पूर्णरूप से समर्थन किया है साथ ही अपने विशिष्ट भावों द्वारा मानवीय जगत से प्रत्यक्ष संबंध रखने वाली आन्तरिक भावनाओं के प्रत्यक्षीकरण का सफल प्रयास किया है। भव-सागर का अपार भय, संसार की घोर निराशा और ईश्वर का अक्षुण्य आभास ही इस कविता का प्रमुख विषय है।

### (पृष्ठ—१)

**संदर्भ:**—प्रेमानुभूति विषयक कवि की उक्ति।

**शब्दार्थ:**—जो=ईश्वर से तात्पर्य है। प्रेम—बन्धन=प्रेमपाश। कसे=बांधे गये=जकड़े गये। तीन लोकों में=आकाश, पाताल और मृत्यु लोक में। प्यारवाली=प्रेम से पूर्ण।

**व्याख्या:**—जो किसी के·········वे ही बसे।

कवि प्रेम की महत्ता प्रकट करते हुए कहता है कि:—जो ईश्वर अनन्त, अनादि और बन्धन—मुक्त है वह भी प्रेम के वशीभूत होकर बन्धन—युक्त हो जाता है, वह भी प्रेम—पाश में जकड़ उठता है। आकाश, पाताल, मृत्यु लोक इन तीनो लोकों में जो सर्वत्र रमता रहता है, कहीं किसी एक स्थान पर जिसके स्थिर रहने का निवास नहीं है वही ईश्वर प्रेमयुक्त नेत्रों में स्थिर होकर निवास करने लगता है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में "तीन लोकों में नहीं जो बस सके, प्यार वाली आंख में वे ही बसे।" द्वारा कवि भगवान के निवास की ओर स्पष्ट संकेत कर देता है। साथ ही 'वेही बसे' द्वारा प्रेम की महत्ता और अनुभूति की ओर भी स्वतः संकेत हो उठता है।

**संदर्भ:**—ईश्वर की सर्व व्यापकता की ओर कवि द्वारा स्पष्ट संकेत।

**शब्दार्थ:**—झलक जाते = दिखलाई पड़ते = दृष्टिगोचर होते = अपनी

सत्ता का आभास प्रकट करते। दरस = दर्शन। सपना=स्वप्न=स्वप्नतुल्य=असंभव अथवा कठिन। सामना = प्रत्यक्षीकरण = देखादेखी। सामने=सम्मुख।

**व्याख्याः**—हो कहां पर नहीं.........मुंह अपना।

हे भगवन्! भला कौन सा ऐसा स्थान है जहां आपकी झलक न मिलती हो, आपकी सत्ता न दिखाई पड़ती हो अर्थात् आपकी सत्ता की झलक से रहित कोई भी स्थान नहीं है। आप सर्वव्यापी हैं पर हम मानव मात्र को आपका दर्शन स्वप्न तुल्य है, हम आपके दर्शन से वंचित रहते हैं। भला हमारा और आपका सामना कहां नहीं हुआ अर्थात् आपकी सत्ता का आभास हमें हर समय होता रहता है पर हम माया मोह के बन्धन और अपने पापों में इस प्रकार लिप्त रहते हैं कि आपकी ओर अपनी दृष्टि करने का हमें साहस ही नहीं होता अर्थात् हम आपकी आराधना से स्वयं ही विरत हो गए हैं इसमें आपका रंचमात्र भी दोष नहीं है, जो कुछ दोष है वह हमारा ही है।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में 'हो कहां पर नहीं झलक जाते' कहकर कवि ने ईश्वर की सर्वव्यापकता की पुष्टि की है। 'कर सके सामने न मुंह अपना' द्वारा कवि ने सांसारिक प्राणियों के कलुषित कर्मों की ओर स्पष्ट संकेत किया है।

**संदर्भः**—आकाश और नक्षत्र आदि के प्रकाश को परमात्मा के प्रकाश पुन्ज अथवा ज्योतिर्स्तम्भ के रूप में कवि द्वारा वर्णन।

**शब्दार्थः**—अजब=अनोखी=विचित्र=निराली=अद्भुत। आसमान=आकाश=अन्तरिक्ष। रंगत=रंगढंग=रंग=दशा। सितारे=नक्षत्र=तारे। रंगलाते हैं=प्रकाश छिटकाते हैं। अनगिनत=अगणित=असंख्य। हाथ-पांव=हाथपैर। नख जगा जोत जगमगाते हैं=नख से चोटी तक प्रकाश फैलाते हैं।

**व्याख्याः**—कर अजब आसमान की.....................जोत जगमगाते हैं।

आकाश में तारे अपने प्रकाश और जगमगाहट से जो एक अनुपम छवि प्रदर्षित करते हैं वह अन्य और कुछ भी नहीं है बल्कि उस असंख्य हाथपैर वाले परमात्मा के नख से चोटी तक के प्रकाश-पुञ्ज अथवा ज्योतिर्स्तम्भ हैं अर्थात् परमात्मा की ऐसी अपार सत्ता है कि उसने ही आकाश और नक्षत्र आदि का

निर्माण किया है जिसकी महत्ता का आभास सांसारिक जीवों को मिलता रहता है और जिनकी चमक दमक और आभा से सब को आश्चर्य चकित हो जाना पड़ता है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने विराट रूप धारी परमात्मा के विराट स्वरूप की ओर अप्रकट रूप से संकेत किया है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि चांद, सूर्य, नक्षत्र आदि उसके प्रकाश-पुञ्ज अथवा ज्योतिर्स्तम्भ हैं।

**संदर्भ:**—दार्शनिकों और नास्तिकों द्वारा परमात्मा की सत्ता की उपेक्षा किए जाने पर कवि द्वारा उन पर करारा व्यंग्य।

**शब्दार्थ:**—तेरी=ईश्वर से तात्पर्य है। हैं मुहों में लगे हुए ताले=मुंह बन्द हैं=बोल नहीं सकते=बोलने में या कुछ कह सकने में असमर्थ हैं। बावले=पागल=आश्चर्यचकित। बाल की खाल काढ़ने वाले=पांडित्य प्रदर्शन करने वाले दार्शनिक आदि=टीका टिप्पणी करने वाले नास्तिक आदि।

**व्याख्या:**—बात कैसे बता सकें..............खाल काढ़ने वाले।

हे ईश्वर! आपकी व्यापक सत्ता से आपका आभास तो हम सांसारिक जीवों को मिलता रहता है पर हम अपने अहंकार और दोषों, पापों से स्वयं ही अपना मुख बन्द किए रहते हैं। इस प्रकार जब हमारे कलुषित कर्मों के ताले हमारे मुखों पर लगे हुए हैं और हमारा मुख बन्द हो गया है तो फिर भला हम आपकी सत्ता की व्यापकता का और आपका गुण गान किस प्रकार करें। भाव यह है कि हम नास्तिकता के कारण ईश्वर का गुण गान नहीं कर पाते। जो अपने को अधिक बुद्धि वाले समझ बैठे हैं और अपनी बुद्धिमत्ता के अहंकार में आपकी सत्ता के विषय में विशेष टीका टिप्पणी करते हुए बाल की खाल काढ़ने का प्रयत्न करते हैं वे अपनी विशेष प्रकार की विचार धारा और दार्शनिकता के कारण पागल हो गए हैं, उनका मस्तिष्क ही ठीक नहीं है, वे आपकी सत्ता की अनुभूति को ठीक ठीक समझ ही नहीं पाते पर जो आपकी व्यापक सत्ता इस संसार में व्याप्त है उसके अद्‌भुत चमत्कार से उन्हें आश्चर्यचकित होकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाना पड़ता है और उनमें कुछ भी कह सकने की सामर्थ्य नहीं रह जाती है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'बात कैसे बता सकें तेरी, हैं मुंहों में लगे हुए ताले' द्वारा कवि ने ईश्वर की आस्तिकता को अमर सत्य के रूप में चित्रित

करते हुए उसको पहचान न सकने में मानव की हतप्रभ असमर्थता की ओर संकेत किया है। 'बाक्लेःचन गये न बोल सके, बाल की खाल काढ़ने वाले' द्वारा कवि ने दार्शनिकों और ईश्वर की टीका-टिप्पणी करने वाले नास्तिकों पर करारा व्यंग्य कसते हुए उनकी अच्छी खबर ली है। 'बाल की खाल काढ़ने वाले' का मुहावरे के रूप में सटीक प्रयोग हुआ है जो कवि की अनुपम देन है।

**संदर्भः**—परमात्मा के प्रति सच्ची लगन तथा अटूट प्रेम का कवि द्वारा समर्थन और छल प्रपंच तथा ढोंग से विरत रहने का सांसारिक व्यक्तियों को उसका उपदेश।

**शब्दार्थः**—ठीक=उपयुक्त=उचित=सच्ची। लौ=लगन=प्रीति=प्रेम। हरि-ओर=ईश्वर की ओर। जगत-जंजाल=संसार के बखेड़े=माया मोह आदि के झंझट। कपट की काट=कपट के दांव पेंच=छल प्रपंच आदि। क्या रखे और क्या कटाये बाल=जटाधारी साधु और मूँड़ मुड़ाकर सन्यासी होने से कुछ भी नहीं होता=ढोंग व्यर्थ है।

**व्याख्याः**—ठीक लौ जो लगी रहे..............क्या कटाये बाल।

यदि हम अपनी सच्ची लगन परमात्मा की ओर ठीक ठीक लगाये रहें अर्थात् उसकी आराधना में सच्चे मन से लगे रहें तो संसार का माया मोह का जाल हमारा कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता। यदि हम छल और कपट के दाव पेंच-अथवा प्रपंच से अपने को मुक्त न कर सके तो बाल रखने और कटाने से कुछ भी लाभ नहीं है अर्थात् यदि हमारा मन दुर्गुणों से दूर नहीं है तो जटाधारी साधु अथवा मूँड़ मुंड़ा कर सन्यासी होना व्यर्थ है। भाव यह है कि—आत्मा की शुद्धि ही परमात्मा की प्राप्ति का सुगम साधन है।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में 'ठीक लौ जो लगी रहे हरि ओर, तो करेगा न कुछ जगत जंजाल।' से ईश्वर के प्रति अभिन्न आस्था का बोध स्पष्ट लक्षित है। 'जो न होती रहे कपट की काट' द्वारा कवि ने संसार के छल प्रपंच से ईश-भक्तों को विरत रहने का उपदेश दिया है साथ ही 'क्या रखे और क्या कटाये बाल' द्वारा सांसारिक ढोंगी साधु सन्तों और सन्यासियों के ढोंग और प्रपंच पर करारा व्यंग और कटाक्ष करते हुए उनकी अच्छी भर्त्सना की है।

( पृष्ठ—२ )

**संदर्भः**—ईश्वर-आराधना में असफल होने वाले व्यक्तियों को लक्ष्य कर उनकी असफलता के कारण पर प्रकाश डालते हुए कवि द्वारा घट-घटवासी परमात्मा की सर्व व्यापकता तथा भक्त के प्रेम पूर्ण नेत्रों की महत्ता पर प्रकाश।

**शब्दार्थः**—देखने वाली=पहचान सकने वाली=अनुभूति प्राप्त करने वाली। अगर=यदि। आंखें=नेत्र। कहां पर=किस स्थान पर। नाथ=स्वामी=ईश्वर। बीच ही में=मध्य मार्ग ही में। घूम है माथा गया=माथा घूम गया है=हत्‌बुद्धि हो गये हैं। माथे तक=अन्त तक=लक्ष्य तक।

**व्याख्याः**—देखने वाली अगर आंखें..................पहुंच पायें नहीं।

यदि मनुष्य अपने नेत्रों में भगवान के रूप के दर्शन की सच्ची अभिलाषा रखे तो भला वह सर्वव्यापी ईश्वर कहां दिखलाई न पड़े अर्थात् वह सब जगह मिलेगा। पर परमात्मा की खोज करने वालों का अर्द्ध मार्ग में ही मस्तक घूम जाता है अर्थात् वे उस मार्ग से विरत हो जाते हैं फल स्वरूप उन्हें भगवान के दर्शन में सफलता नहीं मिलती है।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में 'देखने वाली अगर आंखें रहें, तो कहां पर नाथ दिखलायें नहीं' द्वारा कवि ने 'जिन ढूँढ़ा तिन पाइयां' की उक्ति चरितार्थ करते हुए भक्त की सच्ची आराधना और उसके महत्व की ओर स्पष्ट संकेत कर दिया है। 'बीच ही में घूम है माथा गया लोग माथे तक पहुंच पाये नहीं' में कवि ने भगवान को निर्दोष बताते हुए भगवत् प्राप्ति की असफलता के लिए भक्त को ही उत्तरदायी तथा दोषी ठहराया है।

**संदर्भः**—परमात्मा द्वारा सांसारिक जीवों को अवलंब तथा अनुपम प्रकाश प्रदान करने के प्रति कवि द्वारा आभार प्रदर्शन।

**शब्दार्थः**—पांवड़े=मार्ग=पदचिह्न। पलकों के=नेत्र की पुतलियों के। जोत=ज्योति=प्रकाश। सारे=संपूर्ण=सब। सहारे=अवलम्ब। तुम्हीं=ईश्वर से तात्पर्य है। घूमते=रमते=वास करते। आंख के तारे=आंख की पुतलियां=अत्यन्त प्रिय।

**व्याख्या:**—पांवड़े कैसे न……………हमारे हो तुम्हीं।

हे परमात्मा! आपके लिए आपके मार्ग पर हम अपने पलकों को भला क्यों न बिछा दें अर्थात् आपके दर्शन के लिए अपने नेत्रों को आकर्षित क्यों न करें क्योंकि आप ही हमें प्रकाश प्रदान करने वाले हैं, आप ही हमारे पथ-प्रदर्शक हैं, आपही हमारे नेत्रों में हर समय नाचा करते हैं अर्थात् आपके दर्शन की लालसा हमारे नेत्रों को हर समय लगी रहती है। एक मात्र आप ही हमारे नेत्रों के तारे अर्थात् सबसे अधिक प्रिय हैं।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'जोत के सारे सहारे हो तुम्हीं' कह कर कवि ने ईश्वर की अपार प्रभुता तथा अद्भुत चमत्कार का गुण गान किया है। 'आंख के तारे हमारे हो तुम्हीं' के द्वारा कवि ने ईश्वर को ही सब कुछ मानकर उसके सम्मुख अपने को आत्म समर्पण कर दिया है।

**संदर्भ:**—ईश्वर भक्तों की आराधना में सच्चे प्रेम के अभाव की ओर संकेत करते हुए उसे क्षमा कर उन्हें अपना लेने तथा अपनी भक्तवत्सलता का परिचय देने के लिए कवि द्वारा ईश्वर से निवेदन।

**शब्दार्थ:**—मगर=परन्तु=लेकिन। चस्का=चाव=आदत=शौक़। परदा=आड़=ओट=भेद भाव।

**व्याख्या:**—देखने वाली न आंखें……………आंख पर परदा पड़ा।

मनुष्य को परमात्मा के दर्शन की उत्कट अभिलाषा रहती है पर उसके (मनुष्य के) नेत्र उसके (ईश्वर के) रूप-दर्शन के योग्य नहीं रहते। भाव यह है कि केवल अभिलाषा मात्र से ही परमात्मा का दर्शन संभव नहीं है उसके लिए अनुपम प्रेम से पूर्ण नेत्रों की आवश्यकता है। पुनः कवि परमात्माको उद्बोधन करके क़हता है कि हे प्रभु! आप तो भक्तवत्सल, कृपासिन्धु और दीनदयाल हैं फिर आप ही अपनी कृपा कोर क्यों नहीं करते? हम सांसारिक मनुष्यों की आंख पर माया, मोह, अहंकार आदि का पर्दा भले ही पड़ा रहे पर आपको दर्शन देने में परदे या ओट का आश्रय नहीं लेना चाहिये।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'देखने वाली……उन्हें चस्का बड़ा' द्वारा कवि ने भक्त की कच्ची साधना और उसके ज्ञान की अपरिपक्वता पर अच्छा

छींटा कसा है साथ ही 'आप परदा'......आंख पर परदा पड़ा' कह कर बिल्कुल स्पष्ट और निखरे हुए ईश्वर के अस्तित्व का प्रतिपादन भी कर दिया है।

**संदर्भः**—सांसारिक कष्ट निवारण कर भक्त को आराधना की आत्म-शक्ति प्रदान करने और उसकी ओर कृपा-दृष्टि करने के लिए ईश्वर से कवि की प्रार्थना।

**शब्दार्थः**—झंझटें=परेशानियां=विपत्तियां। जी=दिल=मन=हृदय। डांवा-डोल=इधर उधर=चंचल। विपत=विपत्ति। खुलखेलती=मनमाना कर रही है। पलक=नेत्र=नेत्र की पुतलियां। पलक तो खोल दे=कृपा दृष्टि तो कर दे।

**व्याख्याः**—डाल दे सिर पर............पलक तो खोल दे। हे ईश्वर! आप हमारे ऊपर चिन्ता, झंझट और परेशानी का बोझ न डालें और हमारे मन को अपने मार्ग से विचलित न करें अर्थात् हमारे ऊपर जो सांसारिक कष्ट बाधा आदि झंझटें हैं उन्हींके कारण हम आपकी आराधना के मार्ग से विरत हो उठे हैं अतएव इन झंझटों से मुक्त करके हमारे मन को अपनी ओर उन्मुख कर दो। इस समय विपत्ति हमें कष्ट देने में खुल कर खेल रही है अर्थात् संकटों की बन आई है, वे हमें कष्ट देने में संलग्न हैं और इस प्रकार इन कष्टों से बोझिल हमारा मन आपकी आराधना से विमुख हो उठा है अतएव आप अपने नेत्रों को खोलकर हमारी कारुणिक कष्टप्रद दशा को देखें और इन कष्टों से हमारी मुक्ति करके हमारे नेत्रों के सामने से अज्ञान का पर्दा हटा दें जिससे हम अपना जीवन आपके चरणों में लगा सकें।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में "इन दिनों तो है विपत खुलखेलती" द्वारा कवि ने वर्तमान समाज की कारुणिक स्थिति का सफल चित्रण किया है और 'तू भला अब भी पलक तो खोल दे' द्वारा संसार के सारे कष्टों का निवारण कर सुख-शान्ति प्रदान करने के लिए कवि परम पिता परमात्मा से अनुनय विनय करता सा प्रतीत होता है।

**संदर्भः**—आजन्म मोह माया में लिप्त रहकर ईश्वर-भक्ति से विमुख होने के कारण कवि द्वारा विगत जीवन पर खेद-प्रकाश।

**शब्दार्थः**—बनाये न बनी=बन न सका=करते धरते न बन पड़ा=कर न सके=जीवन सुधारा न जा सका=पुण्य कमाया न जा सका=ईश्वर-भजन न हो

सका। जान पर आ बनी=प्राण संकट में आ पड़ा=मौत का समय निकट आ गया। तपाक=शीघ्रता=ताव। राह=मार्ग=प्रतीक्षा में। ताक ताक=ताकते ताकते=देखते देखते।

**व्याख्या:**—कुछ बनाये नहीं बनी............ताक ताक थके।

हे ईश्वर! अब तक ( जीवन के अन्तिम समय तक ) मुझसे कुछ भी पुण्य नहीं करते बन पड़ा और संसार से जाने का मेरा अन्तिम समय आ पहुंचा। मेरे जान पर आ बनी अर्थात् मेरा प्राण संकट में आ पड़ा और मैं इसकी रक्षा भी न कर सका। भाव यह है कि—बालकपन, युवा और वृद्धावस्था क्रम से समाप्त हो चले, मृत्यु ने प्राणों को आ घेरा पर भगवान के चरणों में मन लगाने का अवसर ही न मिला। हम सांसारिक प्राणी शीघ्रतापूर्वक ताव की बातें क्या कहें, हम तो आपके मार्ग, आपके आगमन की प्रतीक्षा में देखते ही देखते थक गये, अर्थात् आपके दर्शन से वंचित रह गये।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद की संपूर्ण पंक्तियां कवि के शब्दों में भक्त की विगत जीवन की भूलों के लिए आत्मग्लानि, खेद-प्रकाश और पश्चात्ताप से परिपूर्ण हैं।

**संदर्भ:**—कवि द्वारा सच्चे नेत्र-प्रेम और ईश्वर-भक्ति का चित्रण।

**शब्दार्थ:**—प्यारे=प्रिय=ईश्वर से तात्पर्य है। गड़े=धंस गये=बस गये। जी=हृदय। दूसरा=अन्य। अड़े=रुक गये। बिचारी=बेचारी। पलक=पुतली। पलक पड़े=आंख मुंदे।

**व्याख्या:**—जब कि प्यारे गड़े तुम्हीं...........पलक पड़े कैसे।

हे ईश्वर! जब कि आप मेरे हृदय में बसे हुए हैं तो भला दूसरे किसी के लिए इसमें आश्रय कहाँ से मिल सकता है अर्थात् इस हृदय में केवल आप निवास कर सकते हैं किसी अन्य के लिए इस हृदय-प्रकोष्ठ में स्थान नहीं है। जब आप हर समय मेरे नेत्रों में छाये रहते हैं तो भला बेचारी पलकें बन्द होकर आप को प्रणाम किस प्रकार करें।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने "जब कि प्यारे गड़े तुम्हीं जी में,

तब भला दूसरा गड़े कैसे" कह कर ईश्वर के प्रेम की अनन्यता की ओर स्पष्ट संकेत कर दिया है साथ ही 'जब तुम्हीं आँख में अड़े आकर, तब बिचारी पलक पड़े कैसे' के द्वारा प्रेमपूर्ण नेत्रों की विशेषता भी प्रगट कर दी है।

**संदर्भ:**—भक्त की सच्ची लगन, अटूट विश्वास और अपने प्रणपूर्ति के लिए हठ-प्रदर्शन तथा ईश्वर द्वारा भक्त की उपेक्षा करना आदि का कवि द्वारा चमत्कारिक वर्णन।

**शब्दार्थ:**—फिरते=घूमते=भटकते। आज तक=अबतक=इस समय तक। फेरी=घुमाया। आँख तुमने न फेरी=कृपादृष्टि न की=नेत्रों से न देखा। चाहते रहेंगे ही=प्रेम करते ही रहेंगे। चाह=इच्छा=प्रेम। चाहे=भले ही।

**व्याख्या:**—हम तुम्हारे लिए रहें फिरते··········'तुम्हें न हो मेरी।

हे ईश्वर! हम आपके दर्शन की खोज में भटकते रहते हैं पर आपने अभी तक अपनी दृष्टि हमारी ओर नहीं की है अर्थात् हमें अब तक दर्शन नहीं दिया है। हम तो आप से बराबर प्रेम करते रहेंगे आप भलेही हमें चाहें या न चाहें।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में—'हम तुम्हारे लिए रहें फिरते, आँख तुमने न आज तक फेरी' कह कर कवि ने ईश्वर द्वारा भक्त की उपेक्षा की ओर संकेत किया है और 'हम तुम्हें चाहते रहेंगे ही, चाह चाहे तुम्हें न हो मेरी' द्वारा भक्त की ईश-आराधना में दृढ़ प्रवृत्ति का चित्र खड़ा किया गया है।

**संदर्भ:**—ईश्वर की सर्व व्यापक दृष्टि और भक्त की अज्ञानता पर कवि द्वारा अनुपम प्रकाश डालना।

**शब्दार्थ:**—जानकार=जानने वाला=ज्ञानी। अजान=अनजान=अज्ञानी=मूर्ख। बाना=वेश। जानते=पहचानते। जनाते हो=परिचय देते हो=आभास प्रगट करते हो। नाथ=स्वामी=ईश्वर। नहीं जाना=पहचान न सके।

**व्याख्या:**—कौन है जानकार················तुम्हें नहीं जाना।

हे ईश्वर! आप सर्व व्यापक और घट-घटवासी हैं। आपके जैसा जानकार कोई नहीं है और हमने तो अज्ञानता का बाना धारण कर लिया है। हे प्रभु!

आप हमें जानते हैं और आपही अपना आभास हमें देते हैं पर हम आपको पहचान नहीं पाते।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'कौन है जाननहार तुम जैसा, है हमारा अजान का बाना' कहकर कवि ब्रह्म के व्यापक ज्ञान और जीव की ओर अज्ञानता का परिचय मधुरता के साथ देता है और 'तुम हमें जानते जनाते हो नाथ हमने तुम्हें नहीं जाना' के द्वारा ब्रह्म की ज्ञानानुभूति के लिए एकमात्र जीव को ही दोषी ठहराया गया है।

## यशोदा-विलाप

**प्रसंग:**—यह अवतरण 'प्रियप्रवास' नामक महाकाव्य के सप्तम सर्ग से उद्धृत है। इसमें कवि ने अक्रूर द्वारा कृष्ण बलराम को मथुरा ले जाये जाने और कंस के वध के बाद भी वापस न लौटने के कारण माता यशोदा के हृदय पर बीती घटना का कारुणिक शब्दों में चित्रण किया है। अक्रूर के संग कृष्ण बलराम ही मथुरा नहीं गये थे बल्कि नन्द भी गये थे। अतएव जब अकेले नन्द ही मथुरा से वापस लौटे कृष्ण नहीं तो यशोदा माता का हृदय अपने प्रिय-पुत्र के वियोग में विह्वल हो उठा और उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा फूट पड़ी। वे दुखी होकर विलाप करने लगीं और नन्द से कहने लगीं कि मेरी वृद्धावस्था का सहारा, आँखों का तारा कृष्ण कहाँ है? अब मैं कृष्ण के वियोग में अपनी वृद्धावस्था के शेष जीवन को किस प्रकार व्यतीत करूँगी? संसार की दृष्टि में कृष्ण भले ही पर-पुत्र हों पर यशोदा की दृष्टि में तो वे सगे पुत्र से भी बढ़कर हैं अतएव उनके वियोग में उन्हें अपना जीवन सँभालना भी कठिन हो गया। उनके हृदय के उद्गार इस बात के प्रबल प्रमाण हैं कि कोई भी मातृ-हृदय अपने पाले-पोसे बालक या पुत्र के वियोग को सहन कर सकने में असमर्थ होता है।

**(१) शब्दार्थ:**—प्रियपति = प्यारे पति = नन्दजी से तात्पर्य है। प्राणप्यारा = जीवनाधार। दुःख-जलधि-निमग्ना = दुखरूपी समुद्र में डूबी हुई अर्थात् यशोदाजी।

सहारा = अवलम्ब = आधार। देख के = देखकर = लखकर। जी सकी हूं=जीवन धारण कर सकी हूं। हृदय = प्राण = प्राण के समान प्रिय। नेत्र-तारा = नयन तारा = आँख की पुतली = अत्यन्त प्रिय।

**व्याख्या:**—प्रिय पति······ ······कहाँ है।

कृष्ण के मथुरा से वापस न आने पर उनके वियोग में दुखी होकर यशोदा जी नन्दजी को लक्ष्य करके उनसे कहती हैं कि—हे प्यारे पति ( प्राणनाथ ) ! प्राणों से भी अधिक प्रिय वह मेरा पुत्र कृष्ण कहाँ है ? दुखरूपी समुद्र में डूबी हुई मुझ अबला को अवलम्बन (सहारा) देनेवाला कृष्ण कहां है ? जिसके मुख को देखकर मैं अब तक प्राण धारण कर सकने में समर्थ रही हूं वह मेरा हृदय (प्राण) और नेत्रों का प्रकाश अथवा पुतली कृष्ण कहां है ? अर्थात् प्राणों और नेत्रों से भी अधिक प्रिय मेरे पुत्र कृष्ण को आप कहां छोड़ आये ?

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में रूपक अलंकार है।

(२) **शब्दार्थ:**—पल पल = क्षण क्षण। पंथ = मार्ग। निशिदिन=रातदिन = सदैव। उर पर = वक्षस्थल पर—गले में। मंजु = सुन्दर। माला = हार। नव-नलिनी = नयी कमलिनी = नवीन कमल का पुष्प।

**व्याख्या:**—पल पल···········नेत्रवाला कहाँ है।

यशोदाजी नन्दजी से कहती हैं कि—प्रतीक्षा में जिसके मार्ग को मैं क्षण क्षण में देखा करती थी तथा रातदिन जिसके ध्यान में मैं मग्न रहा करती थी, जिसके गले में अथवा हृदय पर सुन्दर ( मोतियों की ) माला शोभायमान लगती थी, नवीन कमलिनी के समान आंखों वाला ( नूतन अरविन्द लोचन ) कृष्ण कहाँ है ?

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में छेकानुप्रास तथा उपमालंकार हैं।

(३) **शब्दार्थ:**—विजित=जीती हुई—अशक्त=क्षीण। जरा=बुढ़ापा=वृद्धावस्था। आधार=अवलम्ब=सहारा। अनूठा=अनुपम=निराला। निधनी=गरीबनी=अबला = यशोदा जी से तात्पर्य है। लोचनों=नेत्रों। उजाला=प्रकाश। लोचनो का उजाला= प्रिय पुत्र कृष्ण से तात्पर्य है। सजल=जल से युक्त। जलद=बादल। कान्ति वाला=ओज वाला=छटा या शोभा वाला।

**व्याख्या:**—मुझ विजित जरा का·········कान्तिवाला कहाँ है।

यशोदा जी नन्दजी से कहती हैं कि—अत्यन्त क्षीण शरीर वाली, वृद्धावस्था से परास्त मुझ दुखिनी का जो एकमात्र अवलम्ब है और जो मेरा अनुपम-रत्न तथा मेरे जीवन का सर्वस्व है, जो मुझ गरीबनी का अमूल्य धन (निधि) तथा मेरी आंखों का प्रकाश है अर्थात् अत्यन्त प्रिय है वह जल-युक्त वादलों की सी शोभा वाला प्रिय पुत्र कृष्ण कहाँ है ?

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में पूर्णोपमा अलंकार है।

**(४)शब्दार्थ:**—प्रतिदिन=हर रोज। अंक=गोद। नाथ=स्वामी=नन्द जी। विधि-लिखित=ब्रह्मा का लिखा हुआ=भाग्य का लेख। कुअंकोंकी=बुरे आंकड़ों की=दुर्भाग्य की। क्रिया=कार्य। कीलती थी=नष्ट करती थी=मिटाती थी। अति प्रिय=अत्यन्त प्रिय। वस्त्र पीला=पीला वस्त्र=पीताम्बर=केसरिया वस्त्र। किसलय= पल्लव=कोंपलें=नये पत्ते। के से=के समान। अंग वाला=शरीर वाला।

**व्याख्या:**—प्रतिदिन जिसको मैं··········अंग वाला कहाँ है।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि—हे नाथ ! मैं जिसको प्रतिदिन (हर रोज) अपनी गोद में लेकर ब्रह्मा के शाश्वत लेख को नष्ट कर देती थी अर्थात् अपने समस्त दुर्भाग्य के प्रभाव को मिटा देती थी, जिसे पीला वस्त्र (पीताम्बर) अधिक प्रिय है वह कोपलों के सदृश कोमल शरीर वाला मेरा प्यारा कन्हैया (कृष्ण) कहाँ है ?

**विशेष टिप्पणी:**—'विधि-लिखित कुअंकों की क्रिया कीलती थी' का प्रयोग करके महाकवि 'हरिऔध' ने यशोदा जी के निपूती ( बांझ ) होने की ओर अप्रकट रूप से संकेत कर दिया है।

**(५)शब्दार्थ:**—वर=श्रेष्ठ=सुन्दर=उत्तम। वदन=गात=शरीर=मुख। विलोके=देखकर। फुल्ल=प्रफुल्लित=खिला हुआ। अंभोज=कमल। करतलगत=हाथ में आना। व्योम=आकाश। मृदुरव=मधुर शब्द। रक्त=खून। मधुमयकारी=शहद के समान मीठा बनाने वाला=आनन्द भर देने वाला=प्रसन्न करने वाला। मानसों का= हृदयों का=चित्तों का=मनों का।

**व्याख्या:**—वर वदन विलोके··················मानसों का कहाँ है।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि:—विकसित सरोज के समान जिसके मुख को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो गगनचारी (आकाश में भ्रमण करने वाला) शशि (चन्द्र) हाथमें आ गया है, जिसका मधुर आलाप शरीर की सूखी (रक्त हीन) नसों का रक्त है अर्थात् जिसके मधुर भाषण से सूखे हुए रक्तहीन तन में जीवन का संचार होता था वह चित्त को प्रसन्न करने वाला कृष्ण कहाँ है?

**अथवा**

जिसका कमल के पुष्प के समान सुन्दर मुख देखकर मुझे आकाश के चन्द्रमा के हस्तगत हो जाने (मुट्ठी में आ जाने) के समान प्रसन्नता होती थी और जिसकी मीठी बोली सुनकर मेरी सूखी नसों में खून दौड़ने लगता था वह सबके मन को शहद के समान मीठा बनाने वाला (सुख देने वाला) मेरा प्यारा पुत्र कृष्ण कहाँ है?

**अथवा**

जिसका (श्री कृष्ण का) श्रेष्ठ अथवा सुन्दर शरीर खिले हुये कमल के फूल की भाँति दिखाई देता था और जिसको गोद में ले लेने से ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश में स्थित चन्द्रमा ही हमारी गोद में सुशोभित हो रहा है; जिसका मधुर शब्द सूखी नसों में भी रक्त का संचार कर देने वाला है वह सबके मन को मुग्ध कर देने वाला कृष्ण कहाँ है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद की व्याख्या यहाँ तीन प्रकार से की गई है। प्रथम दो व्याख्याएँ 'बदन' शब्द का अर्थ मुख मानकर की गई हैं और तीसरी व्याख्या बदन का अर्थ शरीर मानकर की गई है। पर उक्त पद में बदन शब्द का अर्थ मुख से ही अधिक उपयुक्त और सटीक तथा न्यायसंगत बैठता है।

**(६) शब्दार्थ:**—रसमय = रस युक्त=मधुर=सुरीला। बचनों से = शब्दों से= बोली से। गेह = गृह = घर। मध्य = बीच में। प्रतिदिवस = प्रतिदिन = हर रोज। स्वर्ग-मंदाकिनी = स्वर्ग की गंगा। मम = मेरी। सुकृति = पुण्य=यश। धरा = पृथ्वी। सुकृति-धरा = पुण्य कर्मों से कृत कृत्य भूमि। स्रोत = सोता = झरना। सुधा = अमृत। नव घन = नवीन बादल। श्यामता = साँवलापन।

**व्याख्या:**—रसमय वचनों से·············श्यामता का कहाँ है।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि:—हे स्वामी! जो मधुर शब्दों से हमारे घर में प्रति दिन स्वर्ग की गंगा बहाया करता था अर्थात् जिसके मधुर शब्द से हमारे घर में आनन्द की धारा बहा करती थी और चारों ओर प्रसन्नता व्याप्त हो उठती थी, मेरी पुण्यरूपी पृथ्वी का जो अमृतमय झरना था अर्थात् जिसकी उपस्थिति और मधुर बोली से मैं पुण्यवान होकर कृतकृत्य हो उठती थी वह नये बादलों के निराले श्याम रंग सदृश शरीर वाला साँवलिया कृष्ण कहाँ है ?

**विशेष टिप्पणी:**—'नव घन न्यारी श्यामता का' प्रयोग करके कवि ने कृष्ण के श्याम रंग और नवीन बादल के श्याम रंग इन दोनों के सामंजस्य में कृष्ण की श्यामता की विशेषता स्वतः ही प्रकट कर दी है। 'सुकृति-धरा का स्रोत' में मातृ-हृदय के वात्सल्य प्रेम की अनन्यता की ओर स्पष्ट संकेत है।

## ( पृष्ठ—४ )

(७) **शब्दार्थ:**—स्वकुल = अपना कुल या कुटुम्ब। जलज = कमल। स्वकुल-जलज का = अपने वंश रूपी कमल का। समुत्फुल्लकारी = विकसित करने वाला = प्रफुल्लित करने वाला। परम-निराशा-यामिनी = घोर निराशा रूपी रात्रि। विनाशी = विनाश करने वाला = नष्ट करने वाला। व्रज-जन = व्रज के लोग = व्रज वासी। विहगों के = पक्षियों के। व्रज-जन विहगों के = व्रज वासी रूपी पक्षियों के। वृन्द = समूह। मोददाता = आनन्द देने वाला। दिनकर-शोभी = सूर्य के समान शोभायमान लगने वाला। राम—भ्राता = बलराम का भाई = कृष्ण।

**व्याख्या:**—स्वकुल जलज का..........राम भ्राता कहां है।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि:—जो अपने वंशरूपी कमल को प्रफुल्लित ( विकसित ) करने वाला है और मेरी घोर निराशा रूपी रात्रि के अन्धकार को दूर करने वाला है तथा व्रजवासी रूपी पक्षियों के समूह को आनन्द प्रदान करने वाला है, वह सूर्य के समान शोभायमान लगने वाला बलराम का भाई कृष्ण कहाँ है ?

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में रूपक अलंकार है।

(८) **शब्दार्थ:**—सौम्यता=सरलता=शीलता=भद्रता=शान्ति । खेलती सी=विराजमान=विराजती सी । अनुपम=निराला । सौजन्य=सज्जनता=सभ्यता । सौजन्य-पाली=सज्जनता का पालन करने वाला । पर-दु:ख=दूसरे का कष्ट । लखके=देखकर । समुद्विग्न=व्याकुल=दुखी । ऋति-सरसी=सीधेपन का ।

**व्याख्या:**—मुख पर जिसके…… …'स्वच्छ सोता कहाँ है ।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि:—जिसके मुख पर सदैव सौम्यता (शान्ति) विराजती रहती है और जिसका अनुपम शील सज्जनता का पालन करने वाला है अर्थात् जो अनुपम शील वाला और सज्जन है तथा दूसरों के कष्ट को देखकर जो दुखी हो उठता है वह सीधेपन का स्वच्छ झरना अर्थात् प्यारा कृष्ण कहाँ है ?

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

(९) **शब्दार्थ:**—निविड़ तम=घोर अन्धकार । विधु=चन्द्रमा । कान्ति=ओज=शोभा । सुखकर=सुखदाई । कामिनी=नारी=सौभाग्य शालिनी । रुचिकर=प्रिय । चितेरा–चित्रित करनेवाला=निर्माण करनेवाला ।

**व्याख्या:**—निविड़ तम…………चितेरा कहाँ है ।

यशोदा जी नंद जी से विलख कर कहती हैं कि:—मेरे घर में निराशा का घोर अंधकार फैला हुआ था वह निराशा का घोर अंधकार जिस चंद्र के समान कृष्ण के मुख की शोभा को देखकर नष्ट हो गया और जिस कृष्ण के कारण मेरा नारी जीवन सुखदायी और सार्थक अथवा धन्य है वह रुचिकारक (प्रिय) चित्रों का निर्माण कर्ता कृष्ण कहाँ है ?

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'सुखकर जिससे है कामिनी जन्म मेरा वह रुचिकर चित्रों का चितेरा कहाँ है' कहकर कवि ने नारी जीवन की वास्तविक सार्थकता पर अच्छा प्रकाश डाला है ।

(१०) **शब्दार्थ:**—संकटों=क्लेशों=विघ्नों । वहु=बहुत । यजन=यज्ञ=पूजा अर्चा । पूज के=पूजन करके । निर्जरों को=देवताओं को=पीपल आदि देव वृक्षों को । यक–एक । सुअन=सुमन=पुत्र । यत्न=उपाय ।

व्याख्याः—सहकर कितने ही.............कृष्ण प्यारा कहाँ है।

यशोदा जी नंद जी से कहती हैं कि:—अनेकों आपत्तियों और क्लेशों को झेलकर और बहुत से ( अगणित ) यज्ञ कराके तथा देवताओं का पूजन करके प्रयत्न द्वारा जो मुझे एक पुत्र प्राप्त हुआ है हे प्राण नाथ ! बतलाइये वह मेरा प्यारा कृष्ण कहां है ?

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में 'सहकर कितने ही कष्ट औ संकटों को, बहु यजन कराके पूज के निर्जरों को' के द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिए देवी देवताओं की आराधना की परम्परा की ओर स्पष्ट संकेत है।

(११)**शब्दार्थः**—मुखरित=ध्वनित=गुञ्जरित=शब्दायमान। सद्म=गृह=घर। शुकों सा=तोतों के समान=सुग्गों की तरह। कलरव=मधुर ध्वनि=मीठा शब्द। खगों सा=पक्षियों के समान। वनों में=जंगलों में। सुध्वनित=गुञ्जरित=मधुर ध्वनि से युक्त। पिक=कोयल। वाटिका=बगीचा। बहु विधि=अनेक प्रकार के। कंठों=गलों=स्वरों। विधाता=ब्रह्मा=निर्माता।

व्याख्याः—मुखरित करता जो.................विधाता कहाँ है।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि:—जो तोतों के समान घर को शब्दायमान (गुञ्जरित) करता रहता था अर्थात् तोतों के समान मधुर शब्द बोला करता था और जो पक्षियों के समान वनों में चहचहाया करता था तथा जो वाटिका में कोयल के समान चिहकता रहता था अर्थात् जिसके मधुर स्वर और आलाप से वाटिका गूंज उठती थी वह अनेक प्रकार के स्वरों या कंठों का निर्माण करने वाला कृष्ण कहाँ है ?

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में कृष्ण की मधुरता, मनोहरता और सर्वप्रियता पर उत्तम प्रकाश पड़ा है।

(१२) **शब्दार्थः**—मत्त=उन्मत्त=मुग्ध=पागल। मृगादि=हिरण आदि पशु पक्षी। तरुगण=वृक्ष-समूह। हरियाली=हरीतिमा=हरापन। महादिव्य=अत्यन्त सुन्दर। पुलकित=पुलकाय मान=प्रसन्न। लसी=सुशोभित। पुष्प क्यारी=फूलों की क्यारियाँ=पुष्प वाटिका। कल=मधुर=सुन्दर। नाद=ध्वनि। नाद कारी=ध्वनि करने वाला=बजाने वाला।

**व्याख्या:**—सुन स्वर जिसका थे.................नादकारी कहाँ है।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि :–जिसके (वंशी के) मधुर स्वर को सुनकर मृग आदि पशु पक्षी तक उन्मत्त (मुग्ध) हो जाते थे तथा वृक्ष समूह आदि वनस्पति वर्ग की हरीतिमा (हरियाली) भी अत्यंत सुन्दर हो जाती थी, फूलों से सुशोभित पुष्पों की क्यारियां भी पुलकित हो उठती थीं अर्थात् उनमें भी प्रसन्नता व्याप्त हो जाती थी उस सुन्दर मुरली को बजाने वाला कृष्ण कहां है ?

**विशेष टिप्पणी:**—कृष्ण की मुरली की मधुरतान के व्यापक प्रभाव और महत्ता का प्रबल प्रमाण उक्त पद से प्राप्त हो जाता है।

(१३)**शब्दार्थ:**—प्रियवर=प्रियश्रेष्ठ=श्री कृष्ण। खोकर=गँवाकर। सूना=सुनसान=उजाड़। सदन सदन में=घर घर में। हा !=हाय !=आह युक्त शब्द। छागई है=फैल गई है=व्याप्त हो गई है। उदासी=उदासीनता=खिन्नता। तमवलित=अन्धकार पूर्ण। मही=पृथ्वी। उजाला=प्रकाश। निपट=नितांत=बिल्कुल। निराली=अनुपम=अनोखी। कांतिवाला=शोभावाला=शोभाशाली।

**व्याख्या:**—जिस प्रियवर को..............कांतिवाला कहाँ है।

यशोदा जी नंद जी से कहती हैं कि:—जिस प्रिय–श्रेष्ठ कृष्ण को खोकर गाँव ही सूना हो गया है अर्थात् कृष्ण के बिना सारा नंदग्राम सुनसान हो गया है और हाय ! घर घर में उदासी (खिन्नता) व्याप्त हो गई है, जिसके बिना इस अंधकार पूर्ण पृथ्वी (ब्रजमेदिनी) में प्रकाश ही नहीं होता है वह नितांत अपूर्व आभावाला कृष्ण कहाँ है ?

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में अनुप्रास अलंकार है।

( पृष्ठ–५ )

(१४) **शब्दार्थ:**–बनवन=एक जंगल से दूसरे जंगल में। खिन्न=उदास=दुखी। अनेकों=बहुत सी। शुक=तोता। भर-भर आँखें=सजल नेत्र=रो रोकर=एकटक। सुधि कर=ध्यान करके=याद करके। सारिका=मैना। नित्य=रोज=सदैव। शुचि रुचि=पवित्र रुचि अथवा इच्छा वाला। स्वाती=स्वाती नक्षत्र। मंजु=सुंदर।

**व्याख्या**—वन-वन ........................ मंजु मोती कहाँ है।

यशोदाजी नंदजी से कहती हैं कि:—कृष्ण के वियोग में उदास और दुखी होकर अनेकों गायें जंगल-जंगल में मारी-मारी भटकती फिरती हैं और तोता आँखो में जल भर-भर कर कृष्ण के दर्शन की अभिलाषा से घर को देखता रहता है। जिस श्री कृष्ण का ध्यान करके मैना सदैव रोती रहती है वह मेरी पवित्र रुचि रूपी स्वाती नक्षत्र का सुंदर मोती कहाँ है?

**विशेष टिप्पणी:**—(१) उक्त पद में वीप्सा अलंकार है। (२) दृष्टांत है कि जब स्वाती नक्षत्र का जल सीपों में पड़ता है तो उनमें सुंदर मोतियों का निर्माण हो जाता है (३) 'वह शुचि रुचि ......... मोती कहाँ है?' इस पंक्ति में यशोदाजी को सीपी और कृष्ण को स्वाती नक्षत्र से उत्पन्न मोती कहा गया है।

(१५)**शब्दार्थ:**—गृह-गृह=घर-घर। अकुलाती=घबड़ाती=व्याकुल होती। गोप=ग्वाल=अहीर। पत्नियाँ=स्त्रियाँ। पथ-पथ=मार्ग-मार्ग। उन्मना=खिन्न=व्याकुल=अन्य मनस्क। कुँवर=पुत्र। अधीरा=धैर्यहीन=व्याकुल। छवि=सुंदरता। खनि=खानि=खदान। शोभी=शोभा बढ़ाने वाला। स्वच्छ=सफेद। हीरा=बहुमूल्य पत्थर=कृष्ण से तात्पर्य है

**व्याख्या:**—गृह-गृह अकुलाती ............ स्वच्छ हीरा कहाँ है।

यशोदाजी नंदजी से कहती हैं कि:—जिस श्री कृष्ण के वियोग में घर-घर ग्वालिनें व्याकुल हो रही हैं और व्रज के सब ग्वाल खिन्न होकर राह-राह में भटकते फिरते हैं तथा जिस पुत्र के बिना मेरा धैर्य छूटा जा रहा है वह सुंदरता की खानि की शोभा को बढ़ाने वाला सुंदर हीरा (श्रीकृष्ण) कहाँ है?

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कृष्ण के वियोग में व्यथित गोपियों तथा ग्वाल बालों की उन्मत्तता ही का केवल वर्णन नहीं हुआ है बल्कि 'वह छवि-खनि-शोभी स्वच्छ हीरा कहाँ है' के द्वारा कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य पर भी प्रकाश डाला गया है।

(१६)**शब्दार्थ:**—मम=मेरा। उर=हृदय। कँपता था=कंपित होता था=डरता था=भयभीत होता था। कंस-आतंक=कंस का डर। पल-पल=क्षण-क्षण।

परम पिता=ईश्वर। निज-कृत-पापों से=अपने किए हुए पापों से। पिसा=पिस गया=नष्ट हो गया=चकनाचूर हो गया। आपही=स्वयमेव=स्वयं ही।

**व्याख्या:**—मम उर कँपता था ············आपही जो।

यशोदाजी नंदजी से कहती हैं कि—कंस के भय से मेरा हृदय काँप रहा था और क्षण-क्षण मुझे यही आशंका हो रही थी कि न जाने वह क्या करडाले पर परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा से वह स्वयं ही अपने आप अपने ही किए हुये पापों से पिसकर नष्ट हो गया अर्थात् अपने पाप के ही कारण उसने अपना विनाश कर डाला।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद पुत्र की भावी विपत्तियों से आशंकित तथा व्यथित सच्चे मातृ-हृदय की एक ज्वलंत झाँकी है।

(१७)**शब्दार्थ:**— अतुलित=अपार=अतुलनीय। बलवाले=शक्तिशाली। कूटादि=कूट आदि राक्षस। गज=हाथी। गिरि=पहाड़। लोक=आतंककारी=संसार में भय उत्पन्न करने वाले। अनुदिन=बीते दिन=आये दिन=पिछले दिन। उपजाते=उत्पन्न करते थे। भीति=भय=आतंक। थोड़ी=कम। पर=परंतु=लेकिन। यमपुर-वासी=मृत्यु को प्राप्त=विनष्ट।

**व्याख्या:**—अतुलित बलवाले············आज वे हो चुके हैं।

यशोदाजी नंदजी से कहती हैं कि—अपार शक्ति वाले मल्ल कूट आदि राक्षस जो हाथी और पहाड़ के सदृश संसार को भयभीत करने वाले आतंककारी थे और वे आये दिन कम भय उत्पन्न नहीं करते थे अर्थात् उनके अत्याचार और आतंक से लोग बहुत भयभीत रहते थे पर आज वे अत्याचारी और आतंककारी राक्षस इस संसार से विदा होकर यमलोक चले गये हैं अर्थात् उनका विनाश कृष्ण के द्वारा हो चुका है।

**विशेष टिप्पणी:**—पुत्र के शत्रुओं के विनाश से माता का हृदय आनंदित हो उठना स्वाभाविक ही है अतएव कवि भी इसका वर्णन करने से अछूता न रह सका इसका स्पष्ट उदाहरण उक्त पद है।

(१८)**शब्दार्थ:**—भयप्रद=भय प्रदान कर देने वाली=कष्टकारक=आतंकमय।

आपदाएँ=विपत्तियाँ। यक यक करके=एक एक करके=क्रमशः। योंही=इसी प्रकार =स्वयमेव। प्रियतम=प्राण नाथ ! = नंदजी से तात्पर्य है। अन सोची=बिना सोची हुई=जिसके विषय में कभी सोचा भी नहीं गया था। अभिनव=आकस्मिक=नवीन।

**व्याख्याः**—भयप्रद जितनी थीं..............आपदा आ पड़ी है।

यशोदाजी नन्दजी से कहती हैं किः—भय उत्पन्न करने वाली अनेक प्रकार की जितनी भी विपत्तियाँ थीं वे सब एक एक करके अपने आप दूर हो गईं ( नष्ट हो गईं )। पर हे प्राणनाथ ! जिसके विषय में कभी सोचा भी नहीं गया था और जो कभी ध्यान में भी नहीं आई थी वह आकस्मिक कैसी विपत्ति आ पड़ी है अर्थात् नाटकीय ढंग से सहसा कृष्ण का वियोग हमें देखना पड़ा है।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में कृष्ण के वियोग रूपी अभिनव आपदा का अभिनव ढंग से वर्णन करने में कवि पूर्ण रूपेण सफल है।

(१६) **शब्दार्थः**—मृदु=कोमल। किसलय=कोंपल=नवीन पत्ता। पंकजों=कमलों। दलों=पत्तों। सा=समान=तरह। नवल=सुन्दर=नवीन। सलोने=सौंदर्य पूर्ण= सुघड़। गात=शरीर। तात=पुत्र। पवि=पत्थर=वज्र। दानवों=राक्षसों। कल्पान्त= युग=दीर्घ काल।

**व्याख्याः**—मृदु किसलय...........कल्पान्त में भी।

यशोदा जी श्री कृष्ण के शरीर की कोमलता का वर्णन करती हुई नन्द जी से कहती हैं किः—मेरा पुत्र कृष्ण कोमल कोंपलों और कमलों के पत्रोंके समान सुन्दर और कोमल शरीर वाला है और वह वज्र के समान शरीर वाले इन सब (कूट आदि ) राक्षसों का भला युग भर में विनाश कैसे कर सकता था-अर्थात् वज्र सदृश शरीर वाले राक्षसों का कोमल शरीर वाले कृष्ण के द्वारा विनाश कोई सरल कार्य नहीं था।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में पुत्र की कोमलता और उसके शत्रुओं की कठोरता का माता के द्वारा वर्णन कराने में कवि को पूरी सफलता मिली है।

(२०) **शब्दार्थः**—शुभ फल=सुखद परिणाम=अच्छा फल। अनूठा=अनुपम।

पाप नाशी=पाप का विनाश करने वाला। कुसमय में=बुरे समय में=आपत्ति में।

**व्याख्या:**—पर हृदय हमारा..........क्यों नहीं काम आता।

यशोदा जी नंद जी से अपने पूर्व संचित पुण्य के प्रभाव की चर्चा करती हुई कहती हैं कि:—हमारा हृदय कहता है कि किसी पूर्व संचित पुण्य के प्रभाव से ही हमें सब सुखप्रद और शुभप्रद फल प्राप्त होते जा रहे हैं पर हमें आश्चर्य हो रहा है कि पाप को नाश करने वाला हमारा अनुपम पुण्य भला इस समय दुर्दिन में हमारे काम क्यों नहीं आ रहा है अर्थात् हमारा सहायक बनकर कृष्ण के वियोग को क्यों दूर नहीं कर दे रहा है? भाव यह है कि घोर दुर्दिन और दुर्भाग्य के समय पुण्य भी काम नहीं देता।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कृष्ण के लिए अपने पूर्व संचित पुण्यों का त्याग करने की यशोदा जी की भावना के अन्तर्गत कवि ने मातृ-हृदय की वत्सलता और अनुपम त्याग की उज्ज्वल झाँकी प्रस्तुत की है।

## ( पृष्ठ—६ )

(२१) **शब्दार्थ:**—सुअन=पुत्र=पुष्प। नगर-छटायें=नगर की शोभा=नगर-सौंदर्य। लुभाया=लुभा गया=मुग्ध हो गया। कुटिल जनों=दुष्ट लोगों=बुरे व्यक्तियों। जाल=बंधन=माया=बहकावा। भोग=सुख। भाया=अच्छा लगा।

**व्याख्या:**—प्रिय सुअन हमारा..........राज्य का भोग भाया।

यशोदा जी नंद जी से कहती हैं कि:—हे प्रियतम! हमारा पुत्र कृष्ण मथुरा से लौटकर घर क्यों नहीं आया? क्या वह कंस की नगरी (मथुरा) के सौंदर्य को देख कर उस पर मुग्ध तो नहीं हो गया! अथवा वह दुष्ट व्यक्तियों के जाल में तो जाकर नहीं फँस गया! या उसको राज्य का सुखोपभोग तो नहीं भा गया (अच्छा लगा)।

**विशेष टिप्पणी:**—पुत्र के वियोग में 'माता के हृदय में' शंकायें उत्पन्न होना स्वाभाविक है। बालकों का स्वभाव है कि वे कहीं जाने पर नगर

आदि के सौंदर्य पर मुग्ध होकर वहाँ से हटना नहीं चाहते; उस स्थान को त्याग कर अन्यत्र जाना उन्हें रुचिकर नहीं लगता। इसके अतिरिक्त संसार के अनुभव के अभाव में भोले ग्रामीण बालक का नगर के दुष्ट व्यक्तियों के जाल में फँस जाना या राज्य भोग में लिप्त हो जाना सब कुछ संभव है बस इन्हीं का चित्रण उक्त पद में कवि ने सफलता पूर्वक किया है।

(२२) **शब्दार्थ:**—मधुर वचन=मधुर शब्द=मीठी वाणी। औ=और। भक्ति भावादिकों से=भक्ति भाव आदि द्वारा=प्रेम पूर्ण आव भगत से। अनुनय विनयों से=नम्रता पूर्ण प्रार्थनाओं से। युक्तियों से=उपायों से। मधुपुर वासी=मथुरा निवासी। बुद्धिशाली=बुद्धिमान। जनों=लोगों=व्यक्तियों। अतिशय=अत्यन्त। अपनाया=अपना लिया=ग्रहण कर लिया। ब्रजाभूषणों को=ब्रज के भूषण अथवा रत्न श्री कृष्ण, बलराम आदि को।

**व्याख्या:**—मधुर वचन से…………क्या ब्रजाभूषणों को।

यशोदा जी नंद जी से कहती हैं कि:—मधुर शब्दों से और प्रेमपूर्ण आवभगत तथा भक्ति भाव आदि से और नम्रतापूर्वक प्रार्थना तथा प्रेम पूर्ण उपायों से क्या सब मथुरानिवासी बुद्धिमान व्यक्तियों ने ब्रज-रत्न, श्री कृष्ण बलराम आदि को अधिक अपना लिया है ( उन्हें वश में कर लिया है )?

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में मातृ-हृदय की शंकाओं के साथ साथ मथुरा निवासियों के मधुर भाषण, भक्ति भाव, विनय तथा प्रेम पूर्ण युक्तियों आदि पर अनुपम प्रकाश डाला गया है जो किसी के हृदय को मुग्ध करके वश में कर लेने के लिए वशीकरण मंत्र-सदृश है।

(२३) **शब्दार्थ:**—बहु=बहुत=अनेक प्रकार के। विभव=वैभव=ऐश्वर्य। भूला=भूल गया। बिलम गया=रुक गया=मिल गया=रमगया। वृन्द=समूह। लाल=पुत्र। सुफलक-सुत=अक्रूर।

**व्याख्या:**—बहु विभव…………बिछाया।

यशोदा जी नंद जी से कहती हैं कि:—मथुरा नगरी के विशेष ऐश्वर्य को देखकर उसी में लुब्ध हो कर कृष्ण मुझको भूल गया अथवा वह वहाँ के

बालकों के समूह में हिलमिलकर वहीं रुक गया है। क्या अक्रूर ने कोई ऐसा जाल बिछा दिया है (पाखंड रच दिया है) जिसमें हाय! मेरा पुत्र कृष्ण फँस गया है और उससे छूट नहीं पाया है।

**विशेष टिप्पणी:**—नगर के ऐश्वर्य को देखकर ग्रामीण बालक का अपने गाँव को भूल जाना या खिलवाड़ी बालकों के समूह में अपने को बिलमा देना स्वाभाविक है बस इसी बाल-स्वभाव का चित्रण कवि ने उक्त पद में किया है। माता को अपने पुत्र के दोषों पर सहसा विश्वास नहीं होता वह उसके शत्रुओं के ही दोषों को प्रधानता देती है इसका स्वाभाविक चित्रण उक्त पद की "फँसकर जिसमें..........कोई बिछाया" में मिलता है।

**(२४) शब्दार्थ:**—परम=अत्यन्त=अधिक। शिथिल=कमजोर=निर्बल=सुस्त। पंथ=राह=मार्ग। क्लान्तियों से=थकावटों से=परिश्रमों से। वाटिका=उपवन=बगीचा। जुदाहो=अलग होकर=बिछुड़ कर। मार्ग=राह=रास्ता।

**व्याख्या:**—परम शिथिल हो...........मार्ग ही में।

यशोदा जी नंद जी से कहती हैं कि:—मार्ग की थकान या परिश्रम से अत्यन्त थककर निर्बल अशक्त होकर मथुरा से ब्रज के मार्ग में क्या किसी बगीचे में विश्राम करने के लिए कृष्ण रुक गया है अथवा हे प्राण नाथ! तुमसे या अन्य लोगों से (अन्य साथियों से) बिछुड़कर वह (कृष्ण) कहीं मार्ग में ही ब्रज की राह का ठीक पता न पा सकने के कारण इधर उधर भटक रहा है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में माता यशोदा द्वारा अपने पुत्र श्री कृष्ण की कोमलता, सुकुमारिता और मार्ग की थकान आदि पर चिन्ता प्रकट की गई है जो मातृ-हृदय की वत्सलता का अच्छा प्रमाण है।

**(२५) शब्दार्थ:**—विपुल=बहुत सी=अनेक। कलित=प्रिय=सुंदर। कुञ्जें=लता-गृहें=लता मंडपें=मनोरम झाड़ियाँ। भानुजा=सूर्य की पुत्री=यमुना। कूलवाली=तट वाली=किनारे की। अतुलित=अतुलनीय=अपार=बहुत। प्रियों की=कृष्ण और बलराम की। पुलकित=पुलकायमान=प्रसन्न। कतिपय=बहुत=अनेक=कई। दिवसों=दिनों। श्रान्ति=थकावट। उन्मोचने=मिटाने=दूर करने=छुड़ाने।

**व्याख्याः**—विपुल कलित··················उन्मोचने को।

यशोदा जी नंदजी से कहती हैं कि:—यमुना तट की अनेक सुंदर कुञ्जें ( लता मंडपें ) जिनमें मेरे प्रिय पुत्र श्री कृष्ण और बलराम का विशेष अनुराग था क्या वे कई दिनों की थकावट दूर करने के अभिप्राय से प्रसन्नचित्त होकर उन्हीं कुञ्जों में तो नहीं चले गये हैं।

**विशेष टिप्पणीः**— (१) उक्त पद में छेकानुप्रास अलंकार हैं। (२) कृष्ण को यमुना की कुञ्जों से कितना अधिक प्रेम था, वे उनके हृदय को कितनी शान्ति प्रदान करती थीं इसका ज्वलन्त प्रमाण उक्त पद की पंक्तियाँ हैं।

(२६) **शब्दार्थः**—विविध=भाँति-भाँति की=अनेक प्रकार की। सुरभि वाली=गाय वाली। मण्डली=समूह। मम=मेरे। युगल=दोनों। सुतों=पुत्रों=श्री कृष्ण और बलराम। निज=अपने। सुहृद=मित्र=परिचित=प्रेमी। जनों=लोगों=व्यक्तियों। वत्स=बच्चे=बछड़े। धेनुओं=गायों। बहु=बहुत=अधिक। विलम गये=रम गये=हिल मिल गये=रुक गये।

**व्याख्याः**—विविध सुरभिवाली··············इसी से न आये।

यशोदाजी नन्दजी से कहती हैं कि:—क्या मेरे दोनों पुत्रों ( कृष्ण और बलराम ) ने अनेक प्रकार की गायों वाली बालकों की मंडली देख ली है और क्या वे दोनों अपने मित्रों में, गायों के बछड़ों में और गायों के समूह में बहुत हिल मिल कर रुक गये हैं और इसी कारण वे अब तक नहीं आए।

**विशेष टिप्पणीः**—गायों, बछड़ों, ग्वाल बालों और अपने सुहृद जनों, मित्रों आदि का कृष्ण कितना ध्यान रखते थे इसीका चित्रण कवि ने उक्त पद में किया है।

(२७) **शब्दार्थः**—निकट=पास। अति=अत्यंत। अनूठे=अनुपम। नीप=कदम्ब के वृक्ष। कलकल=सुन्दर ध्वनि=हरहर शब्द=बहते हुये जल का शब्द। धार=धारा=प्रवाह। भानुजा=यमुना। न्यारा=निराला। समुद=प्रसन्नता पूर्वक।

**व्याख्याः**—निकट अति अनूठे············देखने क्या गया है।

यशोदा जी नन्दजी से कहती हैं कि:—फूले फले अनुपम कदम्ब के वृक्ष के

अत्यन्त निकट कलकल ध्वनि करती हुई यमुना की जो धारा वह रही है वहाँ का निराला दृश्य मेरे पुत्र कृष्ण को अत्यन्त प्रिय लगता है क्या वह प्रसन्नतापूर्वक उस दृश्य को देखने तो नहीं चला गया है।

**विशेष टिप्पणी:—**कृष्ण को कदंब वृक्ष की छाया, कल-कल ध्वनि करके बहती हुई यमुना की धारा तथा तट के मनोरम दृश्यों से कितना अधिक प्रेम था इसका चित्रण उक्त पद में करके कवि ने अपने काव्य-कौशल का अच्छा परिचय दिया है।

( पृष्ठ-७ )

(२८)**शब्दार्थ:**—सित=श्वेत=सफेद। सरसिज=कमल। गात=शरीर। श्याम-भ्राता=कृष्ण के भाई बलराम। यदुकुल-जन=यदु वंशी व्यक्ति। वंश के हैं उजाले=वंश के रत्न हैं=कुल-दीपक हैं। सदन=गृह=घर।

**व्याख्या:—**सित सरसिज..........क्यों न आया।

यशोदा जी नन्दजी से कहती हैं कि:—श्वेत कमल के समान शरीर वाले कृष्ण के भाई बलराम यदुवंश में उत्पन्न हुए हैं और उस वंश के दीपक हैं यदि वे अपने कुल वालों के स्नेह में फँसकर कुटुम्बी बन गये अर्थात् यदि उनमें आत्मीय जनों के स्नेह का भाव उमड़ आया और वे न लौट सके तो मेरा प्रिय पुत्र कृष्ण स्वयं अकेले ही मथुरा से क्यों नहीं लौट आया?

**विशेष टिप्पणी:**—माता का स्वभाव होता है कि वह अपने पुत्रों में से जिसको अधिक प्रेम करती है वह नहीं चाहती कि वह पुत्र अन्य पुत्र के दोषों का अनुकरण करे या उसके मत में आकर माता के इच्छा के विरुद्ध कार्य करे। इसी से माता यशोदा खीझकर कृष्ण के विषय में कह उठती हैं—'यदि वह कुल वालों के........चला क्यों न आया।' वास्तव में उक्त पद में मातृ-हृदय की सच्ची अनुभूति व्यक्त करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है।

(२९) **शब्दार्थ:**—स्नेही=प्रेमी। शील-सौजन्य-शाली=शीलता से युक्त और सौजन्यता ( सज्जनता ) का पालन करने वाला=शीलवान तथा सज्जन। तज कर=

छोड़ कर। निज=अपने। भ्राता=भाई। गेह=घर। व्रज-अवनि=व्रज-भूमि। वदन=मुख।

**व्याख्याः**—यदि वह अति स्नेही··········मैं क्यों बचूँगी।

यशोदा जी नंदजी से कहती हैं कि:—यदि वह अत्यन्त प्रेमी, शीलवान और सज्जन कृष्ण अपने भाई बलराम को त्यागकर अपने घर नहीं लौटा तो हे स्वामी! भला बताओ यह व्रजभूमि कैसे बसी रह सकेगी और यदि कृष्ण का मुख मैं न देख पाऊँगी तो भला कैसे जीवित रह सकूँगी। भाव यह है कि कृष्ण के वियोग में व्रजभूमि उजाड़ हो जाएगी और यशोदाजी के भी प्राण पखेरू उड़ जायँगे।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में पुत्र के वियोग में अत्यन्त विह्वल मातृ-हृदय की सुन्दर व्यंजना प्रस्तुत करने में कवि पूर्ण सफल हुआ है।

**(३०)शब्दार्थः**—कंठ में प्राण आया=प्राण गले में अटक गया=मरणासन्न अवस्था हो गई। प्राण-प्यारा=प्राण से भी अधिक प्रिय=कृष्ण से तात्पर्य है। जीवनाधार=जीवन का अवलंब=प्राण का सहारा।

**व्याख्याः**—प्रियतम! अब··········मैं क्यों रखूँगी।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि:—हे प्रियतम! अब मेरे प्राण गले में आ गये हैं अर्थात् अब मैं मरना ही चाहती हूं। आप सच सच बतला दें कि प्राण से भी अधिक प्रिय मेरा कृष्ण कहाँ है? यदि मेरे जीवन का सहारा मेरा कृष्ण न मिलेगा तो फिर मैं अपने पापी प्राण को रख कर क्या करूँगी? अर्थात् कृष्ण के वियोग में जीने की अपेक्षा मर जाना ही उत्तम है।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में पुत्र के वियोग में माता के हृदय का करुण क्रन्दन स्पष्ट मुखरित हो उठा है। घोर निराशा से व्याप्त हृदय की अन्तर्दशा की झाँकी देखते ही बनती है। मातृ-हृदय की सच्ची अनुभूति जैसी उक्त पद में मिलती है वैसी हिन्दी-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। ऐसी स्वाभाविक कल्पना के लिए कवि बधाई का पात्र है।

**(३१) शब्दार्थः**—विपुल=अपार। धन=संपत्ति। अनेकों=अनेक प्रकार के=बहुत से। रत्न=मणियाँ। लाल=पुत्र=एक प्रकार का रत्न। अगणित=असंख्य। अनचाहे=बिना इच्छा की=बिना चाह की। अनूठा=अनुपम।

**व्याख्याः—**विपुल धन............नाथ ला दो ।

यशोदा जी नन्दजी से कहती हैं किः—हे स्वामी! आप मथुरा से अपने साथ अपार संपत्ति और अनेक प्रकार के रत्न लाए हैं पर यह बतलाइये कि मेरा लाल ( पुत्र कृष्ण ) कहाँ है? मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध असंख्य रत्न लेकर क्या करूँगी। मेरा अनुपम निराला लाल कृष्ण है बस उसीको लाकर मुझे दे दीजिये।

**विशेष टिप्पणीः—**उक्त पद में श्लेष अलंकार है।

(३२) **शब्दार्थः—**वर=श्रेष्ठ। उपचित=उत्पन्न होना=फूलना फलना=विकसित होना। वंश=कुल। बेलि=लता। सकल=सब=सम्पूर्ण। जगत=संसार। बीज=जन्म देने वाला। भव-विभव=संसार का ऐश्वर्य। खो=खोकर=नष्ट करके। वृथा=व्यर्थ। ज्ञान=जानकारी=प्रतीत=अनुभव।

**व्याख्याः—**उस वर धन को............वृथा ज्ञान होता।

यशोदा जी नन्दजी से कहती हैं किः—हे स्वामी! मैं आपसे उस श्रेष्ठ धन को माँगना चाहती हूं जिससे कुल की लता फलती फूलती है अर्थात् जिससे वंश का यश और प्रकाश बढ़ता है और जो ( वह धन श्री कृष्ण ) संपूर्ण संसार के प्राणीमात्र को जन्म देने वाला ( जीवनाधार ) है और जिसको खोकर संसार का सारा ऐश्वर्य और सुख व्यर्थ प्रतीत होता है।

**विशेष टिप्पणीः—**उक्त पद में पुत्र-रत्न की विशेषता और उसके द्वारा कुल की शोभा-वृद्धि तथा संसार में उसका अनुपम स्थान आदि पर कवि ने परोक्ष रूप से प्रकाश डाला है जो पद की पंक्तियों से स्पष्ट है।

(३३)**शब्दार्थः—**अरुण=लाल। प्रभा=ज्योति=प्रकाश=चमक। पाहनों=पत्थरों। न्यूनता=कमी। प्रतिपल=क्षण-क्षण। उर=हृदय। लालसा=अभिलाषा। वर्द्धमाना=बढ़ती हुई=बढ़ाव पर। लाल=पुत्र कृष्ण। लाभ=प्राप्ति।

**व्याख्याः—**इन अरुण प्रभा के............लाभ ही की।

यशोदा जी नन्दजी से कहती हैं किः—हे स्वामी! इन लाल प्रकाश के रंग के पत्थरों ( रत्नों ) की मेरे घर में कौन सी कमी है अर्थात् ये तो घर

में भरे पड़े हैं पर मेरे हृदय में तो हर क्षण उस अनुपम और अनूठे लाल ( कृष्ण ) की प्राप्ति की ही अभिलाषा बढ़ती जा रही है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में सांसारिक पाषाण-रत्नों की पुत्र-रत्न से तुलना करते हुए माता के लिए पुत्र-रत्न की ही महत्ता प्रदर्शित की गई है।

(३४) **शब्दार्थ:**—युग दृग=दोनों नेत्र। स्वर्ग सी=स्वर्ग के समान=स्वर्गीय=अलौकिक। ज्योति=प्रकाश। उरतिमिर=हृदय का अन्धकार। प्रभा-पुंज=प्रकाश-समूह। कल=सुन्दर। द्युति=चमक=प्रकाश=कान्ति। चित्त-उत्ताप=हृदय की बेचैनी=हृदय का कष्ट। अनुपम=अनोखा=निराला।

**व्याख्या:**—युग दृग जिससे हैं············मैं चाहती हूं।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि:—जिसके द्वारा इन दोनों नेत्रों को स्वर्गीय प्रकाश प्राप्त होता है और जो अपने प्रकाश-समूह से हृदय के अन्धकार को दूर भगा देता है ( नष्ट कर देता है ) तथा जिसकी सुन्दर ज्योति ( कान्ति ) हृदय के कष्ट को दूर कर देती है हे स्वामी! मैं उसी अनमोल हीरे ( कृष्ण ) को चाहती हूं।

**विशेष टिप्पणी:**—पुत्र के दर्शन से माता के नेत्रों को कितना अनुपम स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है इसकी अनुभूति उक्त पद को एक बार पढ़ जाने से सहज ही हो जाती है जो कि कवि की अनुपम देन है।

( पृष्ठ—८ )

(३५) **शब्दार्थ:**—कटि=कमर। पट=वस्त्र। कटि-पट=पीताम्बर से तात्पर्य है। पीले रत्न=स्वर्ण आदि। तन=शरीर। नीले रत्न=नीलम आदि मणि। वार दूँगी=निछावर कर दूँगी। सुत-मुख-छवि=पुत्र के मुख की शोभा। न्यारी=अलग=निराली। बहु=बहुत। अपर=दूसरे=अपार=अपरिमेय=असंख्य। अनूठे=अनुपम।

**व्याख्या:**—कटि-पट लख············वाँट दूँगी।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि:—यदि कृष्ण के कमर में पहनने

का पीला वस्त्र ( पीताम्बर ) मुझे देखने को मिले तो मैं पीले रत्नों ( स्वर्ण आदि ) को लुटा दूँगी ( बाँट दूँगी ) और यदि नीले रंग का कृष्ण का शरीर दिखाई पड़े तो मैं सब नीले रत्नों ( नीलम आदि ) को उस पर निछावर कर दूँगी। इतना ही नहीं यदि आज मुझे अपने पुत्र के मुख की निराली शोभा देखने को मिले तो बहुत से दूसरे अनुपम रत्न भी मैं बाँट दूँगी।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'कटि-पट लख..........वार दूँगी' तथा 'सुत-मुख छवि..........बाँट दूँगी, में महाकवि 'हरिऔध' ने क्रम से कृष्ण के पीताम्बर, नीले शरीर और मुख-सौंदर्य की महत्ता और प्रभाव को चित्रित करते हुये यशोदा के अनुपम त्याग की ज्वलन्त झाँकी उपस्थित कर दी है। इसमें कवि की अनूठी कल्पना के सजीव चित्रण के साथ साथ माता के हृदय का सच्चा उद्गार मुँह-मुँह बोल उठा है।

**(३६) शब्दार्थ:**—विभव=ऐश्वर्य। सहस्रों=हजारों। सन्तान=पुत्र अथवा पुत्री। रज कण सम=धूल के कण के समान। तुच्छ=छोटे। तृणों से=तिनकों के समान। पति=स्वामी। मणिगण=मणियों का समूह=रत्न-समूह। तज=छोड़कर।

**व्याख्या:**—धन विभव सहस्रों..........काँच कोई।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि:—सन्तान ( पुत्र ) को देख लेने से संपत्ति, ऐश्वर्य और हजारों रत्न मिट्टी के कण के समान हो जाते हैं और उनका मूल्य तिनकों से भी कम हो जाता है पर हे स्वामी! आप अपने पुत्र कृष्ण का त्याग करके इन सब रत्नों को क्यों ले आये? यह तो आपने वही किया जैसे कोई मणि-समूह को त्याग करके उसके बदले में काँच को घर उठा लाये।

**विशेष टिप्पणी:**—(१) उक्त पद में पुत्र के वियोग में माता के अनुपम त्याग की उज्ज्वल झाँकी दिखाई गई है। (२) कवि ने हिन्दी मुहावरों का उक्त पद ( काव्य ) में सफल प्रयोग कर दिखाया है।

**(३७) शब्दार्थ:**—परम=अत्यन्त। सुयश वाले=कीर्ति वाले। कोशलाधीश=राजा दशरथ। प्रिय सुत=राम लक्ष्मण। नहीं जी सके=जीवित नहीं रह

सके=प्राण त्याग दिये। वज्र=पाषाण=पत्थर। तुरत=इसी क्षण=अभी। सैकड़ों खंड–टुकड़े टुकड़े।

**व्याख्या:**—परम सुयश वाले.........सैकड़ों खंड होता।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि:—अयोध्या के राजा दशरथ जी बड़े कीर्ति वाले थे जो कि अपने प्रिय पुत्र राम लक्ष्मण के वन जाते ही उनके वियोग में प्राण त्याग दिये। यह हमारा हृदय तो पाषाण का बना है जो कृष्ण के वियोग में अभी, इसी समय सैकड़ों टुकड़े नहीं हो जाता।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में यशोदा जी की आत्मग्लानि अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है।

**(३८) शब्दार्थ:**—सदृश=समान। ममसदृश=मेरे समान। मही में=पृथ्वी में=संसार में। पापीयसी=पाप करने वाली=पापिनी। हृदय-मणि=हृदय का रत्न=हृदय की मणि=श्री कृष्ण जी से तात्पर्य है। गँवा के=खोकर। जीविता हूं=प्राण धारण करती हूं=जी रही हूं।

**व्याख्या:**—निज प्रिय मणि को...............नाथ जो जीविता हूं।

यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं कि:—अपनी प्यारी मणि को सर्प यदि कभी खो देता है तो उसके वियोग में तड़प तड़प कर अपना प्राण त्याग देता है पर मेरे समान भला दूसरा कौन ऐसा पापी इस भू-मंडल में है अर्थात् कोई भी नहीं है जो कि हे स्वामी! मुझ पापिनी के समान अपनी हृदय मणि को खोकर जीवित रहे। मैं तो अपने हृदय-रत्न कृष्ण को खोकर अभी तक जी रही हूं। अर्थात् मुझे भी मणि वाले सर्प के समान कृष्ण के वियोग में तड़प तड़प कर प्राण-त्याग कर देना चाहिये था।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में वक्रोक्ति तथा दृष्टान्त अलंकार हैं।

**(३९) शब्दार्थ:**—लघुतर=निम्नातिनिम्न=अत्यन्त छोटी। सफरी=मछली। भाग्यवाली=भाग्यवान। सलिल=जल। अहह=हाय!। अवनि=पृथ्वी। भाग्य-हीना=अभागिनी=हत् भागिनी।

**व्याख्या:**—लघुतर सफरी भी............लाल के जी सकी हूं।

यशोदाजी नन्द जी से कहती हैं कि:—अत्यन्त छोटी सी मछली भी बड़ी भाग्यशालिनी है क्योंकि वह जल से अलग होते ही उसके वियोग में अपने जीवन का अन्त कर देती है पर हाय! इस पृथ्वी पर मैं बड़ी अभागिनी हूं जो कि अपने प्रिय पुत्र कृष्ण से बिछुड़ कर उसके वियोग में अब भी जी रही हूं।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में जल और मीन का प्रसंग छेड़कर तथा जल के प्रति मीन के अनुपम प्रेम को दिखाकर कवि ने पुत्र के वियोग से व्यथित मातृ-हृदय की आत्मग्लानि को विशद रूप में चित्रित करने का अनुपम प्रयास किया है।

(४०) **शब्दार्थ:**—परम पतित=महा अधम=महा नीच। पातकी=पापी। गात=शरीर। दु:खमय=कष्टमय। निर्ममों-से=निर्दयी के समान=निर्मोही के समान।

**व्याख्या:**—परम पतित मेरे............निर्ममों-से रुके हैं।

यशोदा जी नन्दजी से कहती हैं कि:—यदि मेरे प्राण कृष्ण के वियोग में शरीर का शीघ्र त्याग नहीं कर देते तो ये वास्तव में बड़े ही अधम और पापी हैं। हाय! न जाने और कौन सा दुर्दिन देखने के लिये ये प्राण निर्मोही के समान इस कष्टमय शरीर में रुके पड़े हैं।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में यशोदा के मातृ-हृदय का अन्तर्लाप दु:खजन्य संस्कारों का अभिश्रोत सा बन गया है और उनका जननी रूप चिर अमर हो गया है।

(४१) **शब्दार्थ:**—विधिवश=भाग्य की विडम्बना से=दैव योग से। तन=शरीर। तजसकने की=छोड़ सकने की। क्षीण=दुर्बल। अवसर=मौका=समय। मृत्यु के अंक में=मौत की गोद में।

**व्याख्या:**—विधिवश इनमें............अंक में जो।

यशोदा जी नंदजी से कहती हैं कि:—विधि की विडम्बना (दैव योग) से

ये प्राण इतने दुर्बल हो गये हैं कि इनमें शरीर का त्याग कर सकने की शक्ति शेष नहीं रह गई है अर्थात् निर्बलता के कारण मेरे प्राण शरीर का त्याग नहीं कर पाये हैं। वह स्त्री इस भूमंडल ( संसार ) में अवश्य ही बड़ी भाग्यवती है जो ऐसे समय ( पुत्र के वियोग ) में मृत्यु की गोद में सो जाये अर्थात् अपने प्राणों का त्याग कर सके।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में पुत्र-वियोग से व्यथित मातृ-हृदय के प्राण त्याग सकने की असमर्थता को व्यक्त करते हुए प्राण-त्याग की सार्थकता को धन्य सिद्ध करने का कवि ने सफल प्रयास किया है।

( पृष्ठ–६ )

( ४२ ) **शब्दार्थ:**—बहु=बहुत। कलप चुकी=बिलख चुकी=रो चुकी। दग्ध=जलना=संतप्त। रक्त=खून। लेश=अंश=नाम मात्र भी। तन-बल=शरीर की शक्ति=शारीरिक शक्ति।

**व्याख्या:**—बहु कलप चुकी हूं·········मैं सभी खो चुकी हूं।

यशोदा जी नन्दजी से कहती हैं कि:—मैं अत्यन्त बिलख चुकी हूं और कष्ट से जल भी चुकी हूं ( संतप्त हूं ), कितनी ही रात जागरण करके रुदन कर चुकी हूं, अब मेरे हृदय में खून का अंश मात्र भी शेष नहीं है, शरीर की शक्ति और सुख की आशा मैं सब कुछ गँवा चुकी हूं अर्थात् कृष्ण के वियोग में बिलखते-बिलखते, कष्ट सहते-सहते, रात-रात जाग कर रोते-रोते शरीर का रक्त सूख गया है और शारीरिक बल तथा सुख की आशा सब कुछ नष्ट हो गया है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में लाटानुप्रास अलंकार है।

(४३) **शब्दार्थ:**—विधुमुख=चन्द्रमा का मुख=श्री कृष्ण के मुख से तात्पर्य है। अवलोके=देखकर। मुग्ध=प्रसन्न=मोहित। सुखित=सुखी। कान्ति=आभा=शोभा। अवगत होता=प्रतीत होता है=मालूम पड़ता है। शान्ति-पीयूष-धारा=शान्तिमय अमृत की धारा=शान्ति रूपी अमृत का प्रवाह।

**व्याख्या:**—विधु मुख अवलोके········ ··शान्ति-पीयूष-धारा।

यशोदा जी नन्दजी से कहती हैं कि:—अब चन्द्रमा के समान मुख (श्री कृष्ण

के मुख ) को देखकर किसी को प्रसन्नता न होगी अर्थात् कृष्ण के दर्शन का सौभाग्य किसी को न प्राप्त होगा और न तो कृष्ण की शोभा को देखकर ब्रज के लोग ही सुखी हो सकेंगे। मुझे तो सुनी सुनाई बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि अब शान्तिमय अमृत की धारा नहीं बह सकेगी। अर्थात् कृष्ण के वियोग में ब्रज से सुख और शान्ति विलीन हो जायेगी।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में पुत्र के वियोग में दुःखी मातृ-हृदय की घोर निराशा के साथ-साथ कवि ने सार्वभौम सौहार्द्र का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करने में अनुपम सफलता प्राप्त की है।

(४४) **शब्दार्थ:**—सूना=सुनसान=शून्य। सारा=सब=संपूर्ण। निशिदिवस= रात दिन=हर समय। खिन्नता=उदासी=कष्ट=शोक। समधिक=अधिकांश=पूरे। सदा ही=सदैव ही। खलेगी=बाधक बनेगी=कष्ट देगी।

**व्याख्या:**—सब दिन अति..............सदा ही खलेगी।

यशोदा जी नन्दजी से कहती हैं कि:—कृष्ण के वियोग में संपूर्ण ग्राम हर समय अत्यन्त सुनसान दिखाई पड़ेगा और दिन-रात बड़े ही कष्ट से व्यतीत होंगे। ब्रज में अधिकांश रूप से जो खिन्नता व्याप्त हो गई है वह दूर न होगी और सदैव कष्ट देती रहेगी।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कृष्ण के वियोग में कथित संपूर्ण ब्रज की दशा की कल्पना मात्र से यशोदा का मातृ-हृदय हाहाकार कर उठा है और कवि की अद्भुत व्यञ्जना साकार हो उठी है।

(४५) **शब्दार्थ:**—पवि-सदृश=वज्र के समान=पत्थर के समान। कलेजा= हृदय। कृशित=क्षीण=निर्बल। बन-विवश=बाध्य होकर=लाचार होकर। नित्य= रोज=प्रतिदिन=सदैव।

**व्याख्या:**—बहुत सह चुकी हूं..............नित्य रो रो मरूँगी।

यशोदाजी नन्दजी से कहती हैं कि:—मैंने बहुत कष्ट सहन किया है अब इस और अधिक कैसे सह सकूँगी अर्थात् अब इससे अधिक कष्ट सहन कर सकने में असमर्थ हूं। इन घोर कष्टों को सहन करने के लिए वज्र के समान हृदय मैं

कहाँ पाऊँगी अतएव हे प्राण ! तुम हमारे इस क्षीण (निर्बल) शरीर का अभी त्याग कर दो अन्यथा विवश होकर रो-रोकर मुझे अपना प्राण त्याग कर देना पड़ेगा।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में मर्माहत यशोदा का विलाप अत्यन्त करुण, अलौकिक और आदर्शमय तथा अनुकरणीय है। उनके जीवन की निराशा अपनी चरम सीमा पार कर उठी है।

(४६) **शब्दार्थ:**—हा !=हाय !=शोक सूचक शब्द। वृद्धा=बुढ़िया। अतुल=अपार=अतुलनीय=अद्वितीय। धन=संपत्ति। वृद्धता=बुढ़ापा=वृद्धावस्था=वार्द्धक्य। सहारे=अवलंब=आधार। परम-प्रिय=अत्यन्त प्रिय। दुलारे=प्यारे। शोभा के सदन सम=सुन्दरता के घर के समान। रूप-लावण्य वाले=रूप और सौन्दर्य से युक्त=शोभा और सुन्दरता से युक्त। हृदय-धन=हृदय की संपत्ति। नेत्र-तारे=आँख का तारा=आँख की पुतली=अत्यन्त प्रिय।

**व्याख्या:**—हा ! वृद्धा के अतुल धन············नेत्र तारे हमारे।

यशोदा जी कृष्ण के वियोग में शोकसूचक उद्‌गार प्रकट करती हुई कहती हैं कि:—हाय ! मुझ बुढ़िया के अपार निधि, हाय ! मेरी बुढ़ापा के अवलम्ब, हाय ! मेरे प्राणों से भी मुझे अधिक प्रिय, हाय ! मेरे दुलारे, हाय ! सौंदर्य के घर के समान, हाय ! रूप और सौन्दर्य वाले, हाय बेटा ! हाय ! मेरे हृदय-धन, हाय ! मेरी आँखों के तारे ( श्री कृष्ण ) !

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने पुत्र के वियोग में व्यथित मातृ-हृदय की घोर निराशा की अभिव्यक्ति के साथ साथ शोकसूचक शब्दों की अनुपम झड़ी लगा दी है जो देखते और पढ़ते ही बनती है। उदाहरण के के लिए 'हा ! वृद्धा के अतुल धन हा ! वृद्धता के सहारे' से लेकर 'हा ! बेटा हा ! हृदय धन हा ! नेत्र तारे हमारे' तक को प्रस्तुत किया जा सकता है।

(४७) **शब्दार्थ:**—वेदना=अन्तर्दाह=कष्ट। वदन=मुख। मरती वार=अन्तिम वार।

**व्याख्या:**—कैसे होके अलग············मैंने न देखा।

यशोदा जी कहती हैं कि:—हे कृष्ण ! तुमसे अलग होकर ( तुम्हारे वियोग

को सहकर ) भी मैं अब तक कैसे जी रही हूं इसे मैं स्वयं समझ नहीं पा रही हूं तो फिर भला तुम्हें कैसे बताऊँ। हाँ, इतना अवश्य है कि अब मेरा जीना कठिन है अर्थात् अब मैं अवश्य मरूँगी पर मुझे रह रहकर एक आत्मकष्ट हो रहा है कि मरते समय ( अन्तिमबार ) मैं तुम्हारा प्यारा मुख न देख सकी।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद की अन्तिम पंक्तियाँ घोर निराशा, शोक और आश्चर्य से घिरी यशोदा माता के उच्छ्वास सरिता में संपूर्ण मातृ-हृदय को बरबस बहा ले जाने की अद्भुत शक्ति रखती हैं जो कवि की अनूठी सूझ और अनुपम देन है।

## उमंग-भरे युवक

( पृष्ठ—९ )

**संदर्भ:**—'उमङ्ग भरे युवक' शीर्षक कविता में महाकवि 'हरिऔध' जी देश के नवयुवकों को जागरण का सन्देश देते हुए अपनी जन्म-भूमि की सेवा में रत होने के लिए आवाहन करते हैं साथ ही युवकों के कर्तव्य और ध्येय की ओर संकेत करते हुए उन्हें कर्तव्योन्मुख होने के लिए उद्बोधन करते हैं।

**संक्षिप्त सार:**—प्रारंभ में कवि युवकों के इस पृथ्वी पर अवतरित होने के कारण पर प्रकाश डालता है इसके बाद एक-एक करके उनके उच्च आदर्शों और कर्तव्यों का उद्घाटन करता है। युवकों के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के विकासों पर कवि की दृष्टि गई है साथ ही युवकों की प्रवृत्तियों, जनता की अभिलाषाओं और शासकों के कर्तव्यों को भी कवि की कल्पना और अनुभूति ने अपने अन्दर समेट लिया है। इस प्रकार शीर्षक के अनुरूप सभी प्रमुख वि: इस कविता के अन्दर निहित हो उठे हैं जो महाकवि 'हरिऔध' की अप अनुपम देन है।

(१) **शब्दार्थ:**—भूतल=पृथ्वी। परिचालक=संचालक=संचालन करने वाले व्यवस्थापक=व्यवस्था करने वाले। प्रति पालक=प्रतिपालन करने वाले=रक्षक तोयधि—समुद्र। तुंग—ऊँची। तरंग—लहर। उमंग-भरे=उमंगित=उत्साहित।

व्याख्या:—हैं भूतल…………उमंग भरे।

कवि देश के उत्साहित युवकों का परिचय देते हुए कहता है कि समुद्र की ऊँची लहरों के समान उत्साह के प्रवाह में बहने वाले युवक ही इस पृथ्वी के व्यवस्थापक और रक्षक हैं अर्थात् इस पृथ्वी पर शासन करने की शक्ति एक मात्र उत्साही युवकों में ही है।

( पृष्ठ–१० )

(२) शब्दार्थ:—भव-जन=संसार के-पुरुष=मानव मात्र। भय भंजन=भय को दूर करने वाले=आतंक को नष्ट करने वाले। मनरंजन=दिल बहलाने वाले। बन्धन=परतन्त्रता। मोचन=नष्ट करना। हेतु=लिए=कारण। अवनी=पृथ्वी। अवतरे=अवतीर्ण हुए=उत्पन्न हुए।

व्याख्या:—हैं भव-जन…………अवतरे।

मानव मात्र के भय को दूर करके उनका मनोरंजन कर सकने की सामर्थ्य केवल एक मात्र उत्साही युवकों में ही रहती है। उनका ( उत्साही युवकों का ) प्रादुर्भाव इस पृथ्वी पर मानव मात्र को परतंत्रता के बन्धन से मुक्त करने के लिए ही होता है अर्थात् उत्साही युवक परतंत्रता की बेड़ियाँ तोड़कर पृथ्वी माता को स्वातंत्र्य-सुख प्रदान करने के लिए ही संसार में उत्पन्न होते हैं।

(३)शब्दार्थ:—अनुपम=अनोखा=अद्भुत। यश=ख्याति। अंकित=लिखित। अकलंकित=निर्दोष=साधु। ए=उत्साही युवक। लोक=संसार। अलौकिक=अनुपम= अद्वितीय=असंसारिक। लाल=पुत्र। मराल=हंस। बिरद=समूह=ऐश्वर्य। बरे=श्रेष्ठ।

व्याख्या:—हैं अनुपम-यश-अंकित…………लाल मराल-बिरद-बरे।

ये उत्साही युवक अनुपम यश लिखित ललाट वाले तथा दोष रहित होते हैं अर्थात् उत्साही युवकों के ललाट पर अद्भुत यश की प्राप्ति लिखी रहती है तथा उनमें कोई भी दोष या दुर्गुण अथवा अभाव नहीं रहता है। ये उत्साही युवक श्रेष्ठ हंसों के समूह के समान देदीप्यमान इस संसार के अलौकिक (अनुपम) लाल (पुत्र) हैं। भाव यह है कि जिस प्रकार हंस में नीर-क्षीर-विवेचन की अद्भुत शक्ति होती है उसी प्रकार उत्साही युवक गुण-दोष-विवेचन का

अनुभव रखते हैं और हंस समूह की धवल पंक्ति के समान उत्साही युवकों की कीर्ति भी निष्कलंक रहती है।

(४) **शब्दार्थ:**—दानव=राक्षस=राक्षस वृत्ति धारी पुरुष। दल=समूह। दण्डन=दंड देने वाले। खल=दुष्ट=नीच प्रवृत्ति वाले पुरुष। खण्डन=मर्दन करने वाले=नष्ट करने वाले। अरि=शत्रु। कुल=कुटुम्ब। कंठ=गला। कुठार=कुल्हाड़ा=तलवार। अकुंठित=तीक्ष्ण=पक्का=पूर्ण। व्रत=प्रतिज्ञा=नियम।

**व्याख्या:**—हैं दानव..............व्रत धरे।

उत्साही युवक दानवी प्रवृत्ति अथवा राक्षसी वृत्ति वाले मनुष्यों के समूह को दंड देने वाले तथा दुष्टों का विनाश करने वाले और शत्रुओं के कुल ( वंश ) की गर्दन के लिए तलवार के समान पूर्ण व्रत धारी ( दृढ़ प्रतिज्ञ ) होते हैं। अथवा-शत्रुओं के कुल के कंठ का विनाश करने के लिये तीक्ष्णव्रत रूपी कुठार को धारण किये रहते हैं।

(५) **शब्दार्थ:**—नर-पुंगव=मानव-श्रेष्ठ=मनुष्यों में श्रेष्ठ अथवा उत्तम। नागर=नीतिज्ञ=नागरिक। सुख-सागर=सुख के समुद्र। मनुज=मनुष्य। वंश=कुल। अवतंस=उत्पन्न। सरस=सार्थक=सुगम। रुचि=इच्छा=अभिलाषा=प्रेरणा। सिरधरे=सिर पर धारण किये हुये।

**व्याख्या:**—हैं नर-पुंगव...........सिर धरे।

उत्साही युवक मनुष्यों में श्रेष्ठ, नीतिज्ञ और सुख के समुद्र हैं अर्थात् नीति के जानने वाले और मानव मात्र को सुख प्रदान करने वाले हैं। ए सार्थक और सरस प्रेरणा ( अभिलाषा ) को शिरोधार्य करके ही मनुष्य वंश में उत्पन्न होते हैं अर्थात् मनुष्य मात्र के कल्याण की भावना को लेकर ही ये संसार में जन्म लेते हैं।

(६) **शब्दार्थ:**—संनत=विनम्र। संजीवन=जीवन प्रदान करने वाले=संयमी जग-जीवन=संसार के प्राण। पीड़ित=दुखी। जन=लोग=मनुष्य। परिताप=कष्ट पीड़ा। तप्त=तपे हुए=झुलसे या जले हुए। पथ=मार्ग। पौसरे=प्याऊ।

**व्याख्या:**—हैं संनत.............पथ पौसरे।

उत्साही युवक विनम्र संयमी, जीवन ( उत्साह ) प्रदान करने तथा संसार

प्राण सदृश हैं अर्थात् संसार के प्राणिमात्र की रक्षा करने वाले तथा जीवन संचार करने वाले हैं। दुखी व्यक्तियों के कष्ट से तपे मार्ग के ये प्याऊ हैं अर्थात् जिस प्रकार ग्रीष्म काल की भीषण गर्मी और जलन से झुलसे हुए व्यक्तियों की तृषा शान्ति के लिए लोग प्याऊ बैठाते हैं और उन प्याऊओं अथवा पौसरों से लोगों की तृषा शान्त होकर उन्हें अनुपम सुख मिलता है उसी प्रकार इन उत्साही युवकों द्वारा दुखी व्यक्तियों के कष्ट का शमन होकर उन्हें सुख और शान्ति मिलती है।

(७) **शब्दार्थ:**—समाज-सुख=समाज का कल्याण। साधक=साधने वाले= सिद्ध करने वाले=सफल बनाने वाले। दुख-बाधक=कष्ट निवारक=कष्ट का निवारण करने वाले=कष्ट दूर करने वाले। देश-प्रेम=देश-भक्ति। प्रासाद=महल। प्रभावित= आकर्षित। फरहरे=पताका।

**व्याख्या:**—हैं समाज-सुख..............फरहरे।

उत्साही युवक समाज को सुख प्रदान करने वाले और दुख का निवारण करने वाले हैं। देश-प्रेम रूपी महल के आकर्षित पताका के सदृश हैं अर्थात् जिस प्रकार किसी महल की पताका से लोग आकर्षित होकर उसका दर्शन करते हैं उसी प्रकार देश-भक्ति से प्रभावित होकर उत्साही युवक देश की सेवा में अपना जीवन अर्पण करते हैं अथवा किसी प्रासाद की सुन्दर पताका के सदृश उत्साही युवकों की देश भक्ति-दूसरों के लिए आकर्षण की वस्तु बन जाती है।

(८) **शब्दार्थ:**—अधिनायक=नेता। प्रिय पावक=प्रिय पात्र। वसुधा=पृथ्वी। विजयी=विजय करने वाले। विजय-प्रद=विजय-प्रदान करने वाले। पैंतरे=दाँव।

**व्याख्या:**—हैं नवयुग-अधिनायक.............पैंतरे।

उत्साही युवक नवयुग के नेता, जनप्रिय, पृथ्वी को विजय करने वाले ( विश्व-विजयी ), वीर, विजय प्रदान करने के पैंतरे, ( दाँव या साधन ) हैं अर्थात् उत्साही युवकों के द्वारा ही नवयुग का निर्माण होता है और इनके द्वारा ही विजय श्री प्राप्त होती है।

(९) **शब्दार्थ:**—सुविचार=अच्छे विचार। प्रचारक=प्रचार करने वाले। परिचारक=रक्षक=सेवक। आधार=स्तम्भ=सहारा। धरा=पृथ्वी। पादप=वृक्ष।

**व्याख्या:**—हैं सुविचार प्रचारक..................धरा-पादप हरे।

उत्साही युवक सद्‌विचारों का प्रचार करने वाले, जनता की सेवा और रक्षा करने वाले, सब सुधारों के आधार अथवा स्तम्भ तथा इस पृथ्वी पर हरे वृक्ष के समान हैं अर्थात् जिस प्रकार पृथ्वी पर हरे वृक्षों के कारण प्रकृति की शोभा बढ़ती है उसी प्रकार उत्साही युवकों द्वारा ही इस पृथ्वी की शोभा है।

(१०) **शब्दार्थ:**—पविता=वज्र अथवा पत्थर के समान दृढ़ता। परिचायक=परिचय देने वाले। शित=शान्ति। शायक=वाण। सब पदार्थ=सर्वस्व=सब कुछ। स्वार्थ-परता=लोभ। परे=दूर।

**व्याख्या:**—हैं पविता-परिचायक...............स्वार्थ-परता परे।

उत्साही युवक वज्र के समान दृढ़ता का परिचय देने वाले शान्ति के वाण हैं। सभी वस्तुओं के सब कुछ अर्थात् संसार के संपूर्ण तत्वों के मूल और स्वार्थ परता अथवा लोभ से दूर रहते हैं।

(११) **शब्दार्थ:**—समयानुगामिनी=समय का अनुकरण अथवा पालन करने वाली। प्रसादिनी=फल देने वाली=विकास करने वाली। मानवता वलम्बिनी=मानवता अथवा मनुष्यता का अवलम्बन वनने वाली। गरीयसी=गंभीर=महान। गौरविता=ऐश्वर्य पूर्ण। महीयसी=महत्वाकांक्षिणी। यवीयसी=दीर्घायु। प्रवृत्तियाँ=स्वभाव—आदतें।

**व्याख्या:**—सदैव होवें..................युवक प्रवृत्तियाँ।

उत्साही युवकों का परिचय देकर उनके ध्येय की ओर संकेत करने के बाद महाकवि 'हरिऔध' युवकों की प्रवृत्ति को लक्ष्य करके उपदेशात्मक ढंग से अपनी शुभाशंसा प्रकट करते हैं और कहते हैं कि:—युवकों की प्रवृत्तियाँ सदैव समय के अनुसार चलने वाली हों और मानवता का अवलंबन बनकर शुभ फल देने वाली हों। उनकी प्रवृत्तियाँ गंभीर, ऐश्वर्यपूर्ण, महत्वाकांक्षिणी और दीर्घायु हों। भा· यह है कि उत्साही युवक 'जैसी बहे बयार पीठ तब तैसी दीजै' के पक्के अनुया· होते हैं। वे समय के प्रवाह में काल की गति का अनुसरण निरन्तर बहते रहते हैं। उनके जीवन का एकमात्र ध्येय मानवता की सेवा रक्षा रहता है। उनकी आकांक्षा महान गंभीर ऐश्वर्य पूर्ण और टिकाऊ

हैं। वे क्षणिक आवेश में आकर सहसा कोई कार्य नहीं करते बल्कि गंभीरता-पूर्वक उसका मनन करके ठोस रूप से कार्यरत होते हैं और अन्तिम लक्ष्य की ओर बढ़ते चलते हैं। विश्व की कोई भी शक्ति उन्हें उनके लक्ष्य से विमुख नहीं कर सकती।

**विशेष टिप्पणी:**—'सदैव होवें······मानवतावलंबिनी' तथा 'गरीयसी हों······युवक प्रवृत्तियाँ।' इनमें कवि की उपदेशात्मक शैली और चिन्तनशील साधना का अनुपम आभास मिलता है।

**(१२) शब्दार्थ:**—प्रफुल्ल=फूले हुए=प्रसन्न। पीवर=मोटे=हृष्ट पुष्ट। प्रवीर=योद्धा=बलशाली। प्रवीण=निपुण=चतुर। पावन=पवित्र। प्रबुद्ध=बुद्धिमान=निपुण। विनीत=नम्र। वत्सलता=वात्सल्य पूर्ण=स्नेह युक्त। विभूति=ऐश्वर्य=प्रतिभा=मूर्ति। वसुन्धरा-वैभव=पृथ्वी का ऐश्वर्य। बाल-वृन्द=बालक समूह।

**व्याख्या:**—प्रफुल्ल हों········बाल-वृन्द हों।

महाकवि 'हरि औध' अपने देश के बालकों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए कहते हैं कि:—हमारे देश के बालक प्रसन्न, हृष्ट-पुष्ट, बलवान, निपुण, पवित्र, बुद्धिमान, नम्र, स्नेह की मूर्ति और पृथ्वी के ऐश्वर्य हों।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में प्रफुल्ल, पीवर, प्रवीर, प्रवीण, पावन, प्रबुद्ध तथा विनीत, वत्सलता, विभूति, वसुन्धरा, वैभव आदि शब्दों का प्रयोग करके कवि ने एक अद्भुत चमत्कार उपस्थित कर दिया है।

**(१३) शब्दार्थ:**—भूलोक=पृथ्वीमंडल=संसार। भूति=विभूति=प्रतिमूर्ति। भव=भवसागर=संसार। सिद्धिमयी=सफलता प्रदान करने वाली=कामना पूर्ति करने वाली। मनोज्ञा=मन का भाव जानने वाली। सारी=संपूर्ण। धरा=पृथ्वी। विजयिनी=विजय करने वाली=एकछत्र राज्य करने वाली। कल=सुन्दर। कीर्ति=यश। कान्ता=प्रतिभा=शोभा=मूर्ति=किरण। संपत्तिदा=संपत्ति प्रदान करने वाली=धन देने वाली। जन-विपत्ति=जन कष्ट। विनाश-मूर्ति=नष्ट करने वाली मूर्ति। पुनीत=पवित्र। प्रतिपत्ति=कामना। युवाजनों की=युवक लोगों की=युवकों की।

**व्याख्या:**—भूलोक-भूति·············युवा जनों की।

आज-कल के युवकों की आकांक्षा अथवा अभिलाषा किस प्रकार की होनी

चाहिये और उसमें किन-किन गुणों अथवा विशेषताओं का होना उत्तम है इस पर प्रकाश डालते हुएमहाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—युवकों की अभिलाषा, संसार की विभूति, सांसारिक कामनाओं की पूर्ति करने वाली, सब के मन के भाव को जानने वाली, संपूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त करके एकछत्र राज्य करने वाली, सुन्दर ऐश्वर्य की मूर्ति, संपत्ति प्रदान करने वाली, जन कष्ट निवारण करने वाली और पवित्र हो। भाव यह है कि युवकों को स्वार्थपरता से दूर रह कर मानव मात्र की सेवा और जन कल्याण में निरत रहना चाहिये। उनकी भावना पवित्र और विचार उच्च रहने चाहिये। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त को अपना कर उन्हें अपने कर्तव्य-पालन में प्रतिक्षण दत्तचित्त रहना चाहिये।

(१४) **शब्दार्थ:**—धीरा=धैर्यवान=धैर्ययुक्त। प्रशान्त=शान्ति युक्ति। अतिकान्त=अत्यन्त सुन्दर। दिव्या=सुन्दरी=पुनीता। हिंसा-विहीन=हिंसा रहित=अहिंसक। सरसा=रस युक्त=मनोहारिणी। भव=संसार। वांछनीया=श्रेष्ठा=उत्तमा। अवनी=पृथ्वी। नवनी=नवनीत=मक्खन। समाना=सदृशा। पूत=पवित्र। पूत-भाव-जननी=पवित्र भावों की जननी=पवित्र भावों को उत्पन्न करने वाली। जनता-भिलाषा=जनता की अभिलाषा या कामना=जन-रुचि।

**व्याख्या:**—धीरा प्रशान्त··········जनताभिलाषा।

जनता की रुचि अथवा अभिलाषा कैसी हो इस पर अपना मत व्यक्त करते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—जनता की रुचि अथवा अभिलाषा धैर्य और शान्ति से युक्त अत्यन्त सुन्दर और पवित्र होनी चाहिये। उसमें हिंसा की भावना नहीं रहनी चाहिये, वह सरसता तथा संसार की उत्तमता से युक्त होनी चाहिये। संसार की शान्ति-भूमि, मक्खन के समान शान्तिदायक तथा पवित्र भावों को उत्पन्न करने वाली होनी चाहिये। भाव य है कि जनता की अभिलाषा का मानवता और शान्ति के सन्देश से ओत-प्रो होना आवश्यक है। उसमें परोपकार की भावना और अहिंसावाद का अवश्य हो।

(१५) **शब्दार्थ:**—उक्ति=उदाहरण=प्रमाण=कथन। मंजु=सुन्दर=उत्तम= ो। अनुरक्ति=प्रेम=आकर्षण। प्रवृत्ति=इच्छा=लगाव=अभिलाषा। पूत=प

पावन=शुभ=पुत्र। आसक्ति=प्रेम=झुकाव=आकर्षण=लगाव। भव-भक्ति=सांसारिक-प्रेम=विश्व-प्रेम। विरक्ति-हीन=वैराग्य हीन=उदासीनता से रहित। बाधा-मयी=विघ्न युक्त। विषमता=असमानता। क्षमता-विनाशी=शक्ति को नष्ट करने वाली। सिद्ध-भूत=सफलता प्रदान करने वाली। समता=समानता। ममता=मोह=स्नेह=प्रेम। युवा की=युवकों की।

व्याख्या:—हो उक्ति मंजु·············युवा की।

महाकवि 'हरिऔध' देश के युवकों की विशेषता प्रकट करते हुए कहते हैं कि:—युवकों के कथन में सुन्दरता और प्रेम का पुट होना चाहिये उनकी अभिलाषा अथवा इच्छा में पवित्रता की भावना अवश्य हो। महान आदर्श और उच्च विश्व प्रेम में ही उनकी आसक्ति होनी चाहिये, उनमें वैराग्य अथवा उदासीनता की भावना का लवलेश भी न होना चाहिये। असमानता तथा विघ्न उपस्थित करने वाली शक्तियों का विनाश करके मानव मात्र में समता और प्रेम की भावना उत्पन्न करने वाली ममता का ही युवकों को उपासक होना चाहिये। भाव यह है कि देश के युवक उच्च आदर्श विश्व-प्रेम और मानवतावाद के उपासक तथा कर्तव्यपरायण अवश्य हों।

(१६) शब्दार्थ:—लोक-हित-मंत्र=संसार की भलाई का मंत्र=लोक का कल्याणकारी सन्देश। मदान्ध=मद के कारण अन्धा=धन तथा पद आदि के अहंकार में चूर्ण। होके=होकर। पीके=पान करके। प्रमाद-मदिरा=पागलपन की शराब=अहंकार की नशा। प्रमादी=पागल। मानवता=मनुष्यता। न खोवें=नष्ट न करे। मत्त=उन्मत्त=पागल। बहु=बहुत। मान=सम्मान। मनस्वी=बुद्धिमान।

व्याख्या:—भूले न लोक हित-मंत्र··············मिले मनस्वी।

देश के नवयुवकों को चेतावनी देते हुए महा कवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—देश के नवयुवकों को पद, मर्यादा आदि के अहंकार में अन्धा होकर लोक कल्याणकारी कार्यों को न भूलना चाहिये और गर्व अथवा प्रमाद की नशा का पान करके पागल नहीं बन जाना चाहिये। यदि महान से महान भी पद प्राप्त हो जाये तो भी मानवता के आदर्श का त्याग नहीं करना चाहिये। यदि

मनस्वी व्यक्तियों को बहुत सम्मान प्राप्त हो जाये तब भी उन्हें उन्मत्त होना न चाहिये। भाव यह है कि देश के नवयुवकों का यह कर्तव्य है कि वे पद मर्यादा आदि के अहंकार से विरत होकर अपने लोक कल्याणकारी कार्यों में सदैव लगे रहें और विश्व-प्रेम तथा मानवतावाद के आदर्श का सदैव पालन करें।

(१७) **शब्दार्थः**—विभा=प्रभा=प्रकाश=किरण। विहित=जिसका विधान किया गया हो=वैधानिक=उचित=ठीक। विभावरी=रात्रि। नीति-विभावरी=नीति रूपी रात्रि। पाले=पालन करे। कुमोदक=लाल कमल=बालक। प्रजा जनों को=प्रजा गण को=जनता को। सींचे=सिंचन करे। सुधा=अमृत। बरस के=वर्षा करके। अरसा=शुष्क। रसा=पृथ्वी। सुधाधर=अमृत को धारण करने वाला=चन्द्रमा। वसुधाधिकारी=पृथ्वी का अधिकारी=शासक=राजा।

**व्याख्याः**—दे दे विभा विहित..........वसुधाधिकारी।

देश के शासक कैसे हों और उनका कर्तव्य क्या होना चाहिये इस पर अपना दृष्टिकोण उपस्थित करते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—देश के शासकों का कर्तव्य है कि वे नीतिरूपी रात्रि के अंधकार को प्रकाश प्रदान करके कुमोदक के समान प्रजा की रक्षा (पालन) करें और अमृत की वर्षा करके इस शुष्क पृथ्वी का सिंचन करें। इस प्रकार शासक को चन्द्रमा के [illegible] सुख और शान्ति का प्रदाता बनना चाहिये। भाव यह है कि सच्चे शासक का कर्तव्य है कि वह भेद भाव की नीति से दूर रह कर समभाव से पुत्रवत् [illegible] से प्रजा की रक्षा करके उसे सुख-शान्ति प्रदान करे और इस पृथ्वी पर अपने सुकर्म और यश रूपी अमृत की वर्षा करके अपना जीवन सफल बनावे।

## चौपदे

**संदर्भः**—प्रस्तुत 'चौपदे' महाकवि 'हरिऔध' की सूक्तोक्ति प्रधान हैं। छन्द की दृष्टि से ये संस्कृत के शार्दूल-विक्रीड़ित छन्द के हिन्दी रूप हैं। कवि ने इन चौपदों में फ़ारसी तथा उर्दू से युक्त

तथा लोकोक्तियों का अभिव्यञ्जनापूर्ण समन्वय किया है। विषय की दृष्टि से प्रकृति-सौन्दर्य के चित्रण से लेकर समाज के कटु व्यंग्य-प्रहार, लोक-कल्याण कारी उपदेश आदि सबका समावेश इसके अन्तर्गत हो गया है। वास्तव में इन चौपदों के अन्दर कवि की सरस तथा सरल भावाभिव्यक्ति तथा उसका अनुपम काव्य-सौष्ठव दोनों ही निखर उठे हैं जो पाठकों के हृदय में एक प्रकार की मधुर गुदगुदी उत्पन्न कर देते हैं और इन्हें पढ़कर उनका हृदय आनन्द-विभोर होकर बरबस कवि के स्वर में स्वर मिलाकर गुनगुना उठता है।

(१) **शब्दार्थ:**—बौरे=बौर गये=मंजरी आ गई=फूल गये। वही=चली=प्रसारित हुई। बयार=वायु=हवा=पवन। बसी=रुकी=स्थिर हो गई। सज=सजकर। लतायें=बवरें। हरी भरी=हरियाली से युक्त। डोलीं=हिलीं। बोलबाला=एकाधिपत्य। वसन्त=वसन्त ऋतु। खिल उठीं=विकसित हो गईं=प्रफुल्लित हुईं। बेलि=लता। कोयलें=कोयल पक्षी।

**व्याख्या:**—आम बौरे............कोयलें बोलीं।

वसन्त ऋतु के आगमन पर प्रकृति की अवस्था का वर्णन करते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—आमों में बौर लग गये, बहती हुई हवा (सुगन्धि से बोझिल होकर) स्थिर हो गई, हरियाली से युक्त लतायें (पुष्प आदि से) सजकर हिलने लगीं। इस प्रकार वसन्त ऋतु का एकाधिपत्य स्थापित होते ही लतायें प्रफुल्लित हो उठीं और वन प्रान्त में कोयलें कूकने लगीं।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में वसन्त ऋतु के आगमन की सूचना कवि ने बड़े ही अभिनव ढंग से दी है।

(२) **शब्दार्थ:**—भाँवरें=चक्कर। बार-बार=पुनः पुनः। भाँवरें भर=चक्कर काटकर=मँडरा कर। भौंरे=भ्रमर। फबन=सुन्दरता=प्रफुल्लता। कोपलें=नवीन पत्ते=किसलयें। कूकीं=बोलीं। दिल कमल=कमल के समान हृदय। खिल गया=प्रसन्न हो उठा।

**व्याख्या:**—भाँवरें बार बार............कमल फूले।

वसन्त ऋतु के आगमन पर प्रकृति की प्रसन्नता के साथ-साथ प्राणिमात्र

का भी प्रसन्न हो उठना स्वाभाविक है इस पर प्रकाश डालते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—वसन्त ऋतु के आगमन पर खिले हुए फूलों के चारों ओर बार बार चक्कर काटकर (मँडरा कर) भौंरे पुष्पों की सुन्दरता देखकर स्वयं अपने आप को भूल बैठे (सुध बुध खो गये)। वृक्षों में निकलते हुए नये नये कोमल पत्तों को देख कर कोयलें बोलने लगीं और खिले हुए कमल पुष्पों को देखकर कमल के समान मानव हृदय भी खिल गया (प्रसन्न हो उठा)।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'भाँवरें बार बार भर' तथा 'दिल-कमल खिल गया' का प्रयोग अपने स्थान पर बिल्कुल उपयुक्त ढंग से किया गया है।

(पृष्ठ-१२)

**(३) शब्दार्थ:**—लुभाती=मोह लेती=ललचाती=वश में कर लेती। लह लहाती=हरी भरी। महक=गमक=वास=सुगन्धि। गूँज=गुंजार=भनभनाहट। अदा=चाल=अभिनय=नज़ाकत। कूज=कूक=बोली। चहक=चहचहाहट।

**व्याख्या:**—है लुभाती दिल भला..........चिड़ियों की चहक।

वसन्त ऋतु के आगमन पर प्रकृति की अवस्था और उसके प्रभाव का वर्णन करते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—हरी भरी लताओं में, पुष्पों की गमक, भौंरों की भनभनाहट, तितलियों की नजाकत, कोयलों की कूक और पक्षियों के कलरव भला किसके दिल को नहीं लुभा लेते? अर्थात् सबके दिल को लुभा लेते हैं। भाव यह है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा जो वसन्त ऋतु के आगमन पर उपरोक्त वातावरण से प्रभावित हुए बिना रह जाये अर्थात् शुष्क और पाषाण हृदय वाला व्यक्ति भी वसन्त ऋतु के सौंदर्य से प्रभावित होकर द्रवित हो ही जाता है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'लुभाती', 'लहलहाती', 'गूँज', 'अदा', 'कूज', 'चहक' आदि शब्दों का उपयुक्त प्रयोग करके कवि ने अपनी शब्द-चयन-प्रतिभा और विभिन्न भाषा-ज्ञान का अच्छा परिचय दिया है।

**(४) शब्दार्थ:**—हैंफबे=शोभायमान लग रहे हैं=अच्छे लग रहे हैं।

आज=वसन्त ऋतु में। बेल बूटे=फूल पत्ते। झाड़ियों=छोटे छोटे वृक्षों के समूह। लसी=शोभित। लुनाई=लावण्य=सौंदर्य=सुन्दरता। अजब=अनुपम=अनूठी। छटा=शोभा=सुन्दरता। छाई=फैली। ला=लाकर। रंग लाई है=सुहावनी लग रही है।

**व्याख्या:**—हैं फबे आज............घास रंग लाई है।

वसन्त ऋतु में प्रकृति के सौंदर्य का चित्र खींचते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—वसन्त ऋतु में फूल पत्ते शोभायमान लग रहे हैं, झाड़ियों अथवा छोटे छोटे वृक्षों के झुरमुटों पर भी सौंदर्य शोभित हो उठा है, दूर्वादल पर अनुपम शोभा बिखर पड़ी है और कुसुमित होकर ( फूलकर ) घास भी अत्यन्त सुहावनी लग रही है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'बेल बूटे', 'झाड़ियों', 'दूब', और 'घास', पर प्रकृति के सौंदर्य का प्रभाव दिखलाकर कवि ने अपनी सौंदर्यानुभूति का अच्छा परिचय दिया है।

(५) **शब्दार्थ:**—लस रही है=शोभायमान लग रही है। पलास=एक प्रकार का वृक्ष है जिसके पत्तों से पत्तल आदि बनाये जाते हैं तथा जिसकी लकड़ी हवन आदि कार्यों में विशेष रूप से प्रयुक्त होती है। लाली=लालिमा। लालरी=लाल पुष्प और श्वेत काँटों से तात्पर्य है जो बबूल वृक्ष की देन है। लुभाते=वश में कर लेते। सेमल=एक प्रकार का वृक्ष है जिसके पुष्प लाल रंग के होते हैं।

**व्याख्या:**—लस रही है............लाल लाल फूलों से।

पलास, बबूल और सेमल के वृक्षों पर वसन्त ऋतु के प्रभाव को प्रकट करते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—पलास के वृक्षों पर उसके लाल पुष्पों से एक प्रकार की अद्भुत लालिमा विराज रही है ( शोभायमान लग रही है ) अथवा बबूल के वृक्षों के श्वेत काँटों तथा लाल पुष्पों के कारण एक प्रकार की लालरी छा गई है। इतना ही नहीं अपने लाल लाल फूलों से लाल होकर सेमल के वृक्ष भला किसका मनमुग्ध नहीं कर लेते हैं। अर्थात् सब का मन लुभा

लेते हैं। भाव यह है कि बसन्त ऋतु में पलास, बबूल और सेमल आदि के वृक्ष भी अपने पुष्पों की रंगत से एक अनुपम छटा बिखेर देते हैं।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में श्लेष अलंकार है।

(६) **शब्दार्थ:**—बहार=अत्यधिक आनन्द। ला=समान। मौसिम=ऋतु=वातावरण। लहलही=लहलहाती। चहचहे=चहचहाते=कलरव करते। खग=पक्षी। डह डहे=हरेभरे।

**व्याख्या:**—पा गये पर............डह डही डालें।

बसन्त ऋतु की विशेषता प्रकट करते हुए प्रकृति के सौंदर्य पर कटाक्ष करके महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—अत्यधिक आनन्द के अनुकूल ऋतु पाकर भला लहलहाती बेलियाँ, चहचहाती चिड़ियाँ, डहडहे वृक्ष और डहडही डालियाँ भी अपनी बहार क्यों न दिखला लें अर्थात् बसन्त ऋतु की अपनी प्रमुख विशेषता ही ऐसी है कि उससे प्रभावित हुए बिना पशु, पक्षी, मानव, वृक्ष लता आदि कोई भी नहीं रह सकता अतएव लताओं की हरियाली, चिड़ियों की चहक और वृक्षों तथा डालियों की डहडहाहट का सारा श्रेय एक मात्र बसन्त ऋतु को ही है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'लहलही', 'चहचहे', 'डहडहे', और 'डहडही', शब्दों का प्रयोग बसन्त की शोभा के उपयुक्त हैं जो कवि की शब्द-चयन-प्रतिभा के प्रबल प्रमाण हैं।

(७) **शब्दार्थ:**—काँटे बखेर कर=काँटे फैलाकर। जी=हृदय। कटीला=काँटेदार। चिटकती=फूटती=खिलती। चोट खा=चोट खाकर=घायल होकर चित=चित्त=दिल। चुटीला=ज़ख्मी=चोटइल=घायल।

**व्याख्या:**—आज काँटे बखेर कर............हुआ चुटीला है।

पुष्प के साथ साथ काँटों की भी चर्चा करते हुए महाकवि हरि... कहते हैं कि:—बसन्त ऋतु के अनुपम सौन्दर्य के मध्य हृदय में काँटे ... पुष्प भी कटीला बन गया है और फूटती हुई गुलाब की कली को देखकर चोट खाकर चुटीला बन गया है अर्थात् जिस परमात्मा ने गुलाब में पु...

और महक दी है उसीने उसमें काँटे भी दिये इस प्रकार उसने गुण, दोष और दुःख-सुख का सामंजस्य स्थापित कर दिया।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में वसन्त के हाहाकारमय दृश्य की ओर कवि की पूर्ण दृष्टि गई है। उसने संसार के सुखमय पक्ष के साथ साथ उसके दुःखमय पक्ष को भी कुशलता के साथ उपस्थित किया है। पद्य की पूर्वार्द्ध दो पंक्तियाँ 'आज काँटे बखेरकर जी में, फूल भी हो गया कटीला है' कवि बिहारी की 'दीने दई गुलाब थे, इन डारन वे फूल' की उक्ति को बरबस याद दिला देती हैं और पद्य की उत्तरार्द्ध अंतिम पंक्तियाँ 'चिटकती देखकर गुलाब-कली, चोट खा चित हुआ चुटीला है।' से कबीर की—'फूले फूले चुन लिये काल्हि हमारी बार' की उक्ति की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है जो जीवन की नश्वरता और मानव शरीर की क्षणभंगुरता तथा संसार के घोर दुःख, दैन्य और नैराश्य का सहज ही आभास करा देती हैं।

(८) **शब्दार्थ:**—चूम रही=स्पर्श कर रही। खिला खिला देती=विकसित कर देती हुई। महक=गमक=सुगन्धि। महकती सी=गमकती सी। मलय-पौन=मलय पवन=मलयाचल की वायु। मोह दिल लेती=हृदय को मुग्ध कर लेती।

**व्याख्या:**—फूल है चूम चूम..........मोह दिल लेती।

वसन्त ऋतु के आगमन पर वायु के क्रिया-कलाप और प्रभाव का वर्णन करते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—वायु घूम घूमकर पुष्प का स्पर्श और आलिंगन कर रही है और कलियों को विकसित कर दे रही है पुष्पों की सुगंधि से दिशायें महक उठी हैं, इस पकार मलयाचल की वायु सबके दिल को मुग्ध कर ले रही है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने मलय पवन के प्रभाव को वर्णन करने के लिए अपने विशेष ढंग का प्रयोग किया है।

( पृष्ठ-१२ )

(९) **शब्दार्थ:**—गूँजकर=गुंजार करके=गुन गुना करके। झुककर=नम्र होकर। झिझक कर=हिचकिचाकर। झूमकर=मस्त होकर। भौंर=भौंरे=भ्रमर।

भौंर=क्रीड़ा करके। खिलना=विकसित होना। विहँसना=मुस्कराना=खिल उठना। विलसना=आनन्दित होना=शोभायुक्त होना। दिल लुभाना=दिल को मोह लेना। दिल दे रहे=आत्मसमर्पण कर रहें हैं।

**व्याख्या:**— गूँजकर झुककर............दिल दे रहे।

वसन्तऋतु में पुष्पों के ऊपर मँडराते हुए भ्रमरों को लक्ष्य करके महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—भौंरे, गुंजार करते हुए (गुनगुनाते हुए) नम्रता पूर्वक (निकट आकर) झिझककर ( संकोच भाव से ) झूमकर (मस्ती के साथ) क्रीड़ा करते हुए पुष्पों का रस चयन कर रहे हैं। इस प्रकार वे पुष्पों का खिलना, मुस्कराना और आनन्दित होना आदि हृदय को मुग्ध करने वाला भाव देखकर स्वयं अपने दिल को भी उनके सम्मुख आत्मसमर्पण कर दे रहे हैं।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में भ्रमरों की प्रेमोन्मत्तता, पुष्पों का मनमुग्धकारी सौन्दर्य दोनों का सामंजस्य स्थापित करते हुए कवि ने प्रेमी के आत्म-त्याग को बड़े ही आकर्षक ढंग से चित्रित किया है।

(१०) **शब्दार्थ:**—उमँग = उत्साह = उमंग = आवेश। चौंक चौंककर= हिचकिचा कर = उछल उछल कर। अड़ते = रुकजाते। चाव = प्रेम = शौक। चूम चूम = स्पर्श करके। मनचले = उन्मत्त= प्रेमी। मचल पड़ते = मस्ती में झूमने लगते = रूठजाते = हठ पकड़ लेते।

**व्याख्या:**—गूँजते गूँजते ........... मचल पड़ते।

वसन्त ऋतु में पुष्पों के ऊपर मँडराते हुए भ्रमरों के हाव भाव का वर्णन करते हुए महाकवि 'हरि औध' कहते हैं कि:—भौंरे पुष्पों के ऊपर गुंजार करते करते आवेश में आकर वहुत चौंककर सहसा अड़ ( रुक ) जाते हैं और प्रेमपूर्वक कलियों का चुम्बन ( स्पर्श ) करके ये मनचले ( उन्मत्त ) भौंरे मस्ती में झूमने लगते हैं और अपने प्रेम के वदले में पुष्पों के प्रेम के लिए मचल उठते हैं।

**विशेष टिप्पणी:**— उक्त पद में कवि ने भ्रमरों और कलियों के प्रसंग के द्वारा प्रेमियों के उमंग, मनचलेपन और मचलाहट का अच्छा रूप खड़ा किया है।

(११) शब्दार्थः—टूटना = भंग होना = नष्ट होना । जाल = घेरा = माया मोह आदि का बन्धन । जकड़ गया = बँध गया = बन्धन कठोर हो गया। सुखों की भूख = संसार के आनन्द की चाह । बाल खिचड़ी हुए=बाल पकने लगे=वृद्धावस्था आगई ।

व्याख्याः—टूटना जब कि ............ हुए हमारे बाल ।

वृद्धावस्था में मायामोह आदि के प्रति मानव की विशेष आसक्ति को लक्ष्य करके महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि :—वृद्धावस्था आने पर जब कि मनुष्य को मायामोह आदि के बन्धन से अलग होकर भगवान की भक्ति में लीन होना चाहिये तब मानव माया मोह लोभ आदि के प्रति और भी आकर्षित होकर उसके बन्धन में और भी बँधकर जकड़ उठता है । इतना ही नहीं जब मनुष्य के बाल श्वेत होने लगते हैं तब उसके मन में संसार के सुख, वैभव, आनन्द आदि की और भी चाह उत्पन्न हो उठती है ।

विशेष टिप्पणीः— उक्त पद में कवि ने संसार के माया-मोह, लोभ आदि के प्रसंग द्वारा समाज तथा सांसारिक व्यक्तियों पर कटु-व्यंग्य का मधुर प्रहार किया है ।

(१२) शब्दार्थः—रंगरलियाँ = मौज मस्ती = भोग विलास में तत्परता= आनन्द क्रीड़ा । मना = मनाकर । जनम = मानव जन्म = मानव जीवन की सार्थकता । खोया = नष्ट कर दिया । रंग लाती रही = भाव प्रगट करती रही । समझ = बुद्धि । मोटी = अज्ञानता पूर्ण । तब खुली आँख= तब ज्ञान हुआ । सुध आई = ईश्वर का ध्यान आया= मौत के आगमन की सूचना मिली । ली काल ने पकड़ चोटी= मौत ने चुटिया पकड़ ली= मानव काल का ग्रास बन गया ।

व्याख्याः—रंगरलियाँ मना ............ काल ने पकड़ चोटी ।

संसार के भोगविलास की ओर मानव-आसक्ति को लक्ष्य करके महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—मनुष्य आजीवन ईश्वर-भक्ति से विमुख रहकर संसार के भोगविलास, आनन्द क्रीड़ा आदि में लीन होकर अपने जीवन की सार्थकता को नष्ट कर देता है और इस प्रकार अपनी बुद्धिहीनता का ही परिचय देता है । एक

एक करके जब संपूर्ण अमूल्य जीवन नष्ट हो जाता है और काल आकर चोटी पकड़ लेता है (मौत सम्मुख आजाती है) तब उसकी आँखें खुलती हैं और उसे अपनी भूल प्रतीत होती है। भाव यह है कि मनुष्य को चाहिये कि वह बालकपन, युवावस्था और वृद्धावस्था सभी का सद्कर्मों और ईश्वर भक्ति में उपयोग करे। इसी में उसके जीवन की सार्थकता है। जब मृत्यु सम्मुख आकर खड़ी हो जायेगी तब तो केवल पश्चात्ताप ही पश्चात्ताप हाथ लगेगा। कहा भी गया है कि:—
"तब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।"

**विशेषटिप्पणी:**— उक्त पद में कवि ने परमार्थवाद का समर्थन बड़े ही सरल और अनूठे ढंग से किया है।

**(१३)शब्दार्थ:**— सूत = धागा = डोरा। गाँथे = गूथे= पिरोये। आपकी= ईश्वर से तात्पर्य है। सूझ = बुद्धि। हम = सांसारिक व्यक्तियों से तात्पर्य है= मानवमात्र। रीझ-बूझ = प्रेम और चतुराई = प्रसन्न होने की बान। सिर माथे= शिरोधार्य = स्वीकार।

**व्याख्या:**— फूल गेंदे गुलाब ············सिरमाथे।

प्राणिमात्र के प्रति ईश्वर के समान भाव को लक्ष्य करके महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—गेंदे, गुलाब और बेले आदि के पुष्प एक ही धागे में पिरोये जाते हैं, हे ईश्वर! आप की इस अनूठी सूझ को भला हम सांसारिक प्राणी क्या कह या समझ सकते हैं! आपकी अनूठी प्रेम-चातुर्य पूर्ण-प्रणाली सिर माथे पर (शिरोधार्य) है। भाव यह है कि ईश्वर की दृष्टि में राजा रंक सब समान हैं, वह छोटे बड़े का भेद भाव नहीं रखता। जो संसार में जन्म लेता है उसे एक न एक दिन मृत्यु का ग्रास बनना ही पड़ता है (मृत्यु की डोर में बँधना ही पड़ता है)।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने ईश्वर और मृत्यु दोनों की विशेषता को समान भाव से स्वीकार कर लिया है। ईश्वर की अनूठी सूझ और रीझ-बूझ दोनों की कवि द्वारा स्वीकारोक्ति देखते ही बनती है।

**(१४) शब्दार्थ:**—चिमटकर=चिपटकर=चिपककर=सटकर। काढ़ लेती निकाल लेती हैं=अलग कर देती हैं। मिलजुल गईं=एकाकार हो

एक में हो गईं। छिटी=फैली=गिरी। किसी से=किसी के द्वारा। लीक=लकीर=रेखा। माथे की=मस्तक की=भाग्य की। मिटी=दूर हुई=नष्ट हुई।

**व्याख्या:**—हैं चिमट कर··········लीक माथे की मिटी।

भाग्य की रेखा और चींटियों के प्रयत्न को लक्ष्य बनाकर महाकवि 'हरिऔध' उद्योग ( प्रयत्न ) की महत्ता प्रकट करते हुए कहते हैं कि:—चीनी गिरकर धूल में मिल जाती है पर लघु जीव चींटियाँ उसमें चिपककर उसे निकाल लेती हैं तो फिर भला वह मानव किस काम का है जो यह कहता फिरे कि—किसी के भी द्वारा कभी भी भाग्य-रेखा मिटाई नहीं गई ( बदली नहीं गई )। भाव यह है कि संसार में कुछ भी असंभव नहीं है। मनुष्यअपने साहस, प्रयत्न और उद्योग से सब कुछ कर सकता है, वह असंभव को भी संभव करके दिखा सकता है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने अपरोक्ष रूप से रूढ़िवाद का जोरदार खंडन किया है।

( पृष्ठ–१४ )

**(१५) शब्दार्थ:**—जी=हृदय=दिल। जगह नहीं दे सकते=स्थान नहीं दे सकते=बसा नहीं सकते। कहीं=अन्यत्र=दूसरे स्थान में। जी लगाना=दिल लगाना=हृदय में बसाना=प्रेम करना। सोच लो=विचार कर लो=विचार करके देख लो। आँखें चुराकर=नेत्र वश में करके=वशीभूत करके। और की=दूसरे की। आँखें चुराना=हीला हवाली करना=टाल मटोल करना=छिपाना या छिपना।

**व्याख्या:**—जब कि दे सकते नहीं··········आँखें चुराना चाहिये।

ईश्वर को लक्ष्य करके प्रेम के प्रसंग में महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—हे ईश्वर! यदि आप किसी भक्त को अपने हृदय में स्थान नहीं दे सकते तो फिर आपको भी क्या कहीं अपना दिल लगाना उचित है अर्थात् नहीं। जरा आप यह भी सोचने का कष्ट करें कि क्या दूसरों की आँखें चुराकर आपको अपनी आँखें चुराना उचित है अर्थात् क्या दूसरों को अपने वश में करके स्वयं उससे दूर रहकर उसको अपने प्रेम से वंचित रखना क्या न्याय-

संगत है अर्थात् नहीं। भाव यह है कि यदि ईश्वर अपने प्रेमी अथवा भक्त के प्रेम या भक्ति का ध्यान नहीं रखता तो उसे भी किसीको अपने वशीभूत करने या रखने का कोई अधिकार नहीं है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में ईश्वर के प्रति भक्त के उपालम्भ का वर्णन करने में कवि ने अपूर्व दृढ़ता और अनुपम काव्य-कौशल का परिचय दिया है।

(१६) **शब्दार्थ:**—काँपती रही = भयभीत होती रही = डरती थी। जिनसे = जिन व्यक्तियों से = जिन लोगों से। काल = मृत्यु = नाशक। मारतों के = मारने वालों के। डींग मारते क्या हैं ?=बढ़ बढ़कर व्यर्थ की बातें क्यों बनाते हैं = अहंकार क्यों करते हैं। पलक मारते = क्षण मात्र में। मरे = काल कवलित हो गये=मृत्यु के मुख में चले गये।

**व्याख्या:**—काँपती मौत भी............मरे वे भी।

मानव के अहंकार, शरीर की नश्वरता और मृत्यु की अनिवार्यता को लक्ष्य करके महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—संसार में जो व्यक्ति इतने शक्तिशाली और बलवान थे कि उनसे मौत भी भय खाती थी और जो कि मारने वालों ( नाश करने वालों ) के भी काल ( नाशक ) थे पर वे भी क्षण-मात्र में काल कवलित हो गये ( मृत्यु का ग्रास ) बन गये तो फिर भला लोग ( संसार के साधारण व्यक्ति ) डींग क्यों मारा करते हैं ( अपनी शक्ति का अहंकार क्यों करते हैं। ) भाव यह है कि मृत्यु से कोई भी नहीं बच सकता, एक न एक दिन इस शरीर की नश्वरता अनिवार्य है अतएव धन या शक्ति किसी का भी गर्व करना व्यर्थ है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद की कवि की उक्ति की समता और पुष्टि कबीर के कतिपय दोहों से भली-भाँति की जा सकती है और कवि पर कबीर के प्रभाव को सहज ही आँका जा सकता है।

(१७) **शब्दार्थ:**—पकते केस से = बाल श्वेत होने से=वृद्धावस्था के आगमन [की सूचना से। सीख=शिक्षा = ज्ञान। वैराग = वैराग्य = संसार से

विरक्ति। पके फल को = वृद्ध को। टपकता=गिरते=मरते=काल कवलित होते। टपका सके=गिरा सके = बहा सके।

**व्याख्याः**—तो कहें कैसे..............नहीं टपका सके।

मानव द्वारा संसार की अनुभूति के अनुभव तथा प्रभाव की उपेक्षा तथा अज्ञानता को लक्ष्य करके महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं किः—पके फल के समान वृद्धों को मौत के मुख में जाते हुए देखकर भी यदि जीवन की नश्वरता का अनुभव करके हम ( सांसारिक व्यक्ति ) नेत्रों से खेद प्रकाश स्वरूप दो बूँद न गिरा सके तो भला यह कैसे कहा या समझ लिया जाय कि सर के बालों को श्वेत होते देख कर ( वृद्धावस्था के आगमन की सूचना से ) हमें संसार से विरक्ति की कुछ शिक्षा मिल गई। भाव यह है कि संसार के व्यक्ति प्रतिदिन वृद्धों को मरते हुए देखते हैं पर जीवनें की नश्वरता तथा मृत्यु की अनिवार्यता का ज्ञान उन्हें नहीं होता तो फिर भला वृद्धावस्था के आगमन के चिन्ह बाल श्वेत होना आदि मात्र से ही उन्हें ज्ञान प्राप्त होकर वैराग्य अथवा संसार से विरक्ति हो जायेगी इस पर सहसा विश्वास कैसे किया जा सकता है।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में कवि पर कबीर के रहस्यवाद के प्रभाव की झलक स्पष्ट रूप से झलकती है। कवि ने दार्शनिक भावों तथा जीवन के व्यव धानों को कौशल पूर्वक गंभीरता के साथ व्यक्त करनेमें कुछ भी कोर कसर नहीं की है जिससे पाठक का हृदय सहज ही प्रभावित हो जाता है।

**( १८ ) शब्दार्थः**—सांस=श्वास= वायु। फले=शुभदायक हो। दाँई= दाहिनी।

**व्याख्याः**—साँस उसकी .........बाँई ही चले।

साँस की क्रिया को शुभ और अशुभ का प्रतीक मानने वाले अन्ध विश्वासी व्यक्तियों पर कटाक्ष करते हुए महा कवि 'हरिऔध' कहते हैं किः—साँस की क्रिया किसी के लिए शुभदायक हो या अशुभदायक पर इसके लिए कोई भला अपनी साँस को क्यों फुलाये। नाक तो एक मात्र साँस लेने का साधन या स्थान है इसका काम केवल साँस लेना है फिर चाहे दाहिनी साँस चले या बाँई साँस चले। इससे साँस लेने की

क्रिया या इसके प्रभाव या परिणाम पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। भाव यह है कि साँस के दाहिने या बायें के भेद द्वारा इसे शुभ और अशुभ का प्रतीक ठहराना निरी अज्ञानता है।

**विशेष टिप्पणी:**—ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दाहिनी (दाँई) साँस को सूर्य नाड़ी और बाईं साँस को चन्द्र नाड़ी माना गया है। इसी के आधार पर शुभ और अशुभ का फल निकाला जाता है। उक्त पद में इसी की ओर कवि का संकेत और कटाक्ष है।

(१६) **शब्दार्थ:**—बेतरह =बुरी तरह। मुँहकी खाते नहीं=पराजित नहीं होते =असफल नहीं होते। अगर=यदि। चबाते क्यों न लोहे के चने=असंभव को भी संभव क्यों नहीं कर दिखाते। सामने आकर=प्रत्यक्ष रूपसे। मुँह सामने करें=स्पष्ट चरितार्थ करें=करके दिखायें। मुँह दिखायें=साहस करें= चातुर्य प्रदर्शन करें। जो बने=यदि हो सके।

**व्याख्या:**—बेतरह मुँह की..................दिखाते जो बने।

बढ़ बढ़ कर बातें बनाने वाले और व्यर्थ की डींग हाँकने वाले व्यक्तियों को फटकार बताते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—यदि बुरी तरह परास्त नहीं होते तो लोग लोहे के चने क्यों नहीं चबा लेते अर्थात् या तो लोग अपनी हार स्वीकार कर लिया करें या असंभव को भी संभव करके दिखा दिया करें। बस वीर पुरुष के लिए यही गौरवास्पद है। मंचपर से केवल कोरे व्याख्यान झाड़ना वीरता नहीं है। यदि साहस और सामर्थ्य हो तो प्रत्यक्ष रूप से जनता के सामने आकर अपनी कही बातों को कार्य रूप में परिणित कर दिखाना चाहिये। यदि उन में मुँह दिखाने का साहस है तो वीरता पूर्ण कार्य करके ही क्यों नहीं अपनी कर्मवीरता का प्रदर्शन करते। भाव यह है कि वीर और सच्चे पुरुष का प्रमुख कर्तव्य है अपनी कथनी और करनी में साम्य स्थापित करना।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने भावना और कथन से कर्तव्य को बहुत उच्च दिखाने का सफल प्रयास किया है। कोरे बकवादी और व्यर्थ की डींग हाँकने वालों की 'मुँह की खाना' और 'लोहे के चने चबाना' आदि मुहाविरों के द्वारा अच्छी खबर ली है।

( २० ) शब्दार्थ:—बराबरी=समता=सामना=मुकाबिला । रंगतें=भौतिक देन । फीकी=शुष्क=नीरस । कसर=कमी=अभाव । जी से=हृदय से । जी की=हृदय की ।

व्याख्या:—कर सकें हम············निकालते जी की ।

साधन सम्पन्न और अभाव वाले व्यक्तियों की असमानता पर अपना दृष्टि कोण उपस्थित करते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—अभाव पूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति साधन सम्पन्न व्यक्तियों की समता भला किस प्रकार कर सकते हैं क्योंकि उन्हें प्रकृति ने नीरस और शुष्क तथा अभाव पूर्ण साधन दिये हैं और इसके विपरीत साधन सम्पन्न व्यक्तियों के पास सब कुछ उपलब्ध है । इतना ही नहीं इस असमानता का दूसरा कारण भी है । निर्बल और साधन रहित व्यक्ति अपने हृदय से अभाव को दूर करने का प्रयत्न करते हैं और इसके विपरीत साधन सम्पन्न व्यक्ति अपने हृदय की कसर निकालते हैं अर्थात् बदला लेने की भावना रखते हैं । भाव यह है कि निर्बल और असहाय व्यक्ति साधन के अभाव और अपने भोलेपन तथा सरलता के कारण ही समाज में कष्ट पाता है । उसकी सरलता का अनुचित लाभ उठाकर समाज के हट्टे कट्टे, बलशाली तथा धनवान व्यक्ति उसे ठगते तथा उसे कष्ट पहुँचाते हैं ।

विशेष टिप्पणी:—उक्त पद में कवि ने मानव की दुर्बलता तथा सबलता का पक्ष बड़े ही चमत्कारिक ढंग से उपस्थित करके अपने दृष्टि कोण का प्रतिपादन किया है ।

( पृष्ठ-१५ )

( २१ ) शब्दार्थ:—बे कलेजे के=बिना कलेजे या हृदय का=हृदय अर्पण कर हृदयहीन हो जाने से तात्पर्य है=बलिदान हो जाना । बाल बिखरे=फैले हुए केश । जी टँगे= मन ललच उठे=हृदय आकर्षित हो उठे । लट=केश=बाल । लटकती= झूलती । साँप छाती पर लोटने लगे=हृदय मसोसने लगा=हालत-बेहाल हो उठी= प्रेम का नशा चढ़ने लगा=मन लालायित हो उठा ।

**व्याख्या:**—वे कलेजे के बनें........साँप छाती पर लगे। आधुनिक नारी के शृंगार और हाव भाव को कटु आलोचना का विषय बनाकर तथा उस पर करारा व्यंग कसते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—यदि किसी नारी के सुन्दर बिखरे हुए बालों को देखकर किसी का मन लुभा जाता है तो उसके लिए अपना हृदय अर्पण कर देना असंभव नहीं है अथवा यदि किसी सुन्दरी की नागिन सी लटकती लट या बाल को देख कर किसी के हृदय पर साँप लोटने लगे अर्थात् वह लालायित होकर प्रेमोन्मत्त हो उठे तो उसे अपने को पतन से बचा सकना असंभव है। भाव यह है कि—यदि नारी अपने शील संकोच लज्जा और सादगी आदि गुणों का त्याग करके आकर्षक तथा चमक दमक वाले, भड़कीले शृंगार के साधनों को अपनाती हैं तो उसका नवयुवकों के पतन का कारण बन कर, स्वयं गर्त में गिरना असंभव नहीं है।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने आधुनिक पाश्चात्य फैशन का विरोध करते हुए भारतीय आदर्शवाद का पूर्ण समर्थन किया है और आधुनिक नारी के चुलबुले पन पर कटु व्यंग करते हुए उसके उचित मार्ग का निर्देश भी कौशल पूर्ण ढंग से कर दिया है।

**( २२ ) शब्दार्थ:**—भरे पर भी=पूर्ण होनें पर भी। हर त रह=सब प्रकार से। पाटने पर=भरनेपर। निपट नहीं पाते=छुटकारा नहीं मिलता।

**व्याख्या:**—भर सके हो.........निपट नहीं पाते।

पेट की विकरालता का चित्र खींचते हुये महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—हे पेट! तुम्हें सब प्रकार से भरने ( पूर्ण करने ) का प्रयत्न किया जाता है पर पूर्ण होने पर भी तुम अपूर्ण ही रहते हो और तुम्हारी आवश्यकता ज्यों की त्यों बनी रहती है। भली भाँति पाट देने ( भर देने ) पर भी तुम पट नहीं ( भर नहीं ) पाते हो। इस प्रकार तुमसे कभी भी छुटकारा नहीं मिल पाता है। भाव यह है कि—परमात्मा ने पेट रूपी एक ऐसा गड्ढा बना दिया है जिसे हर रोज भरना पड़ता है पर यह खाली का खाली ही रहता है।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि पर रहीम के पेट संबंधी निम्न दोहे का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है यथा:—

रहिमन या पै पेट सों बहुत कह्यो समुझाय,
जो तू अन खाये रहै, तो काहे अन खाय।

( २३ ) शब्दार्थः—फूल से हम जिसे न मार सके=जिसको कभी फूल से भी नहीं मारा=जिसे अत्यन्त प्यार किया। है वही आज भोंकता भाला=आज वही पेट पर छुरी चला रहा है=मेरा अनर्थ कर रहा है। आज है खा रहा कलेजा वह= आज वह कलेजा खा रहा है=मेरे विनाश पर तुला बैठा है=आज वह मुझे महान कष्ट दे रहा है। है कलेजा खिला जिसे पाला=जिसके पालन पोषण में अपना सर्वस्व निछावर कर दिया है=जिसके लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया है।

व्याख्याः—फूल से हम............खिला जिसे पाला।

कृतघ्नी व्यक्तियों की चर्चा करते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:— जिसका लालन पालन मैंने बड़े प्यार से किया है तथा जिसे कभी भी रंच मात्र भी कष्ट नहीं दिया है वही आज मेरे पेट पर छुरी चला रहा है अर्थात् अत्यन्त कष्ट दे रहा है। इतना ही नहीं जिसके पालन पोषण के लिये अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया आज वही मेरे सर्वनाश पर तुला हुआ है। भाव यह है कि आज उपकार का बदला अपकार से चुकाने की मानव-प्रवृत्ति हो गई है।

विशेषटिप्पणीः—उक्त पद में कवि ने समाज की वर्तमान स्थिति का चित्र खड़ा करने का सफल प्रयास किया है और कृतघ्नी व्यक्तियों की भर्त्सना द्वारा आधुनिक पिता-पुत्र, संबंध की ओर भी स्पष्ट रूप से संकेत कर दिया है।

(२४)शब्दार्थः—बात मुँह देखी=मुँह देखी बात=झूठी प्रशंसा अथवा चाटुकारिता। चापलूसी=चाटुकारिता=झूठी प्रशंसा करना। दिल कुढ़ रहा है=बुरा लग रहा है। तो कुढ़े=तो बुरा लगे। दिल की कहें=हृदय के भाव को स्पष्ट रूप से प्रकाशित करदें=सच्ची बातें कह दें।

व्याख्याः—बात मुँह देखी कही........दिल की कहें।

झूठी प्रशंसा अथवा चाटुकारिता के प्रति घोर घृणा का भाव प्रदर्शित करते हुये महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—किसी की झूठी प्रशंसा करते नहीं बनता तो फिर भला हम किसी की चापलूसी करके किस प्रकार मौन रह सकते हैं। यदि

किसी को अपने हृदय में बुरा लगता है तो लगा करे पर हमारे हृदय से तो यही ध्वनि निकलती है कि सत्य को ज्यों का त्यों सामने रख दें। भाव यह है कि किसी की चापलूसी करना सिद्धान्त विरुद्ध है और सत्य प्रकट कर देना ही अपना ध्येय है।

**विशेषटिप्पणी:**—आज समाज में झूठी प्रशंसा अथवा चाटुकारिता का बोल वाला है। दूसरों के बुरा लगने के भय से लोग सत्य कहने से हिचकते हैं। इस प्रकार सत्य असत्य के आवरण में छिपा रह जाता है। समाज के इस अभाव की ओर कवि की दृष्टि पूर्ण रूप से आकर्षित हुई है और उसकी अनुभूति ने वास्तविकता का अनुभव प्राप्त कर लिया है। बस यही कारण है कि उक्त पद में कवि की आत्मा समाज की वर्तमान चाटुकारिता और असत्य प्रदर्शन के विरुद्ध घोर घृणा, प्रकट कर विद्रोह करती प्रतीत होती है।

**( २५ ) शब्दार्थ:**—ऐसा=इसप्रकार। जैसा=समान। खिले=विकसित हो। छुटाई=छोटापन=नम्रता। भलाई=कल्याण। दिल करे छोटा न छोटा दिल मिले =विना नम्र बने छोटे व्यक्तियों का हृदय जीता नहीं जा सकता है।

**व्याख्या:**—चाँद ऐसा.....................छोटा दिल मिले।

चन्द्र के प्रकाश को लक्ष्य करके महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—यदि चन्द्र अपने पूर्ण प्रकाश द्वारा जगत को आलोकित न कर सके तो कम से कम पुष्प के समान विकसित होकर वह लघु जीव समान तारों को तो जगमगा ही सकता है क्योंकि छोटेपन अथवा नम्रता में भी कल्याण निहित है। विना नम्र हुए छोटे व्यक्तियों का हृदय नहीं जीता जा सकता है।

## अथवा

लघुता अथवा साधन विहीनता के कारण जीवन से निराश होने वाले व्यक्तियों को लक्ष्य करके उन्हें प्रेरणा प्रदान करते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—यदि मनुष्य के पास चाँद के समान विशेष प्रकाश अथवा चमत्कार प्रदर्शन करने की शक्ति नहीं है तो कम से कम वह पुष्प के समान अपने जीवन को विकसित करके उसकी सुगन्धि के समान अपनी ख्याति का प्रकाश तो कर ही सकता है। नम्रता में भी कल्याण का वीज निहित रहता

है। छोटे व्यक्तियों का हृदय जीतने के लिये स्वयं नम्र बनना अति आवश्यक है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने चन्द्र के प्रसंग द्वारा नम्रता अथवा लघुता के महत्व को जिस कौशल के साथ व्यक्त किया है वह प्रशंसनीय है और वर बस ही कबीर के निम्न दोहे की याद दिला देता है यथा:—

लघुता से प्रभुता मिलै प्रभुता से प्रभु दूरि।
चींटी लै शकर चली हाथी के [सिर धूरि॥

**( २६ ) शब्दार्थ:**—जो बहुत बनते हैं=जो अपने को बहुत लगाते हैं=कृत्रिमता प्रदर्शन अथवा अभिमान करते हैं। पास से=निकट से। चाह=इच्छा। कैसे=किस प्रकार। टलें=दूर हो जायें। जी खोल कर=सच्चे हृदय से=प्रेम पूर्वक। सिर के बल चलें=सब कुछ त्याग कर मिलें=सर्वस्व अर्पण करके उनका प्रेम प्राप्त करें।

**व्याख्या:**—जो बहुत बनते हैं·············सिर के बल चलें।

कृत्रिम प्रेम-प्रदर्शन करने वाले व्यक्तियों पर व्यंग प्रहार करते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—जो लोग अपने को बहुत लगाते हैं अथवा अभिमान का भाव दिखाते हैं उनके प्रति यही इच्छा होती है कि उनके निकट से कब और किस प्रकार दूर हो जायें अर्थात् उनके पास टिकने की रंच मात्र भी इच्छा नहीं होती। जितना ही शीघ्र उनसे दूर हो जाया जाय उतना ही अच्छा है। इसके विपरीत जो लोग दिल खोलकर सच्चे मन से मिलते हैं उनके यहाँ अपना सर्वस्व त्याग कर भी जाने की इच्छा होती है। भाव यह है कि अभिमान अथवा कृत्रिम प्रेम-प्रदर्शन करने वालों से दूर रहना चाहिये और सच्चे प्रेमियों से दिल खोलकर मिलना चाहिये।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद की रचना में कवि को गोस्वामी तुलसीदास की निम्न पक्तियों से अवश्य प्रेरणा मिली है यथा:—

आवत ही हरषे नहीं नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइए कंचन बरसे मेह॥

( पृष्ठ—१६ )

( २७ ) **शब्दार्थः**—सूखती=शुष्क होती हुई=मुरझाती हुई। चाह-वेलि=आशा-लता। हरि आई= हरी भरी हो गई। दूध की मक्खियाँ=तिरस्कृत=परित्यक्त। माखें=शहद की मक्खियाँ=आदर अथवा सम्मान का पात्र। रस बहा=परिप्लावित। चाँदनी=प्रकाश। कौल=अरमान=कामना=अभिलाषा। हँस पड़ीं आखें=नेत्रों में आनन्द छा गया=मुख पर प्रसन्नता की रेखा दौड़ पड़ी।

**व्याख्याः**—सूखती चाह-वेलि.........हँस पड़ी आँखें।

ईश्वर की असीम सत्ता और अनुपम चमत्कार की चर्चा करते हुए महाकवि 'हरि औध' कहते हैं कि:—ईश्वर की कृपा दृष्टि होते ही मनुष्य की शुष्क होती हुई आशा रूपी लता हरी भरी हो जाती है अर्थात् जीवन की निराशा आशा के रूप में परिणित हो जाती है और दूध की मक्खियों के सदृश समाज से तिरस्कृत तथा परित्यक्त व्यक्ति भी शहद की मक्खियों के समान सबका आदर का पात्र बन जाता है। मानव जीवन चन्द्र प्रकाश के समान अमृत रस से पूर्ण होकर चमत्कृत हो उठता है, मन की कामना पूर्ण हो जाती है और मुख पर प्रसन्नता की आभा झलकने लगती है। भाव यह है कि—ईश्वर की कृपा होते ही सारे कष्ट दूर होकर सुख शान्ति प्राप्त हो जाती है।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में कवि ने कबीर, सूर, तुलसी आदि से बिल्कुल भिन्न अपने निराले ढंग से ईश्वर की प्रभुता और चमत्कार को स्वीकार किया है। यद्यपि कवि पर उक्त कवियों की छाप स्पष्ट है पर भाव व्यक्त करने का ढंग तथा शैली अपनी निराली है जिससे उक्त पद की पंक्तियाँ चमत्कृत हो उठी हैं और पाठकों के हृदय को सहज ही आकर्षित कर लेती हैं।

( २८ ) **शब्दार्थः**—लुभावनी=अच्छी=मुग्ध कर लेने वाली। कह सुन=कहने सुनने में। निहाल=कृत कृत्य=सफल। आँख से गिरे मोती=मोती सदृशआँसुओं का झरना। दिल खिले=आत्मविभोर हो उठे। फूलझड़ पड़े मुख से=मुख से फूल झड़ पड़े=मुख से मधुर तथा प्रिय शब्द निकलें=मुख से हृदय को मुग्ध कर लेने वाले शब्द निकलें।

व्याख्या:—बात लगती लुभावनी ·········फूल झड़ पड़े मुख से।

सच्चे हृदय से आपस में मिलने वाले व्यक्तियों की बातचीत पर प्रकाश डालते हुए, महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—जब दो व्यक्ति निष्कपट भाव से आपस में मिलते हैं और हृदय खोलकर आपस में रामरसरा ( बात चीत ) छेड़ देते हैं तो एक प्रकार के अपूर्व आनन्द की वर्षा होने लगती है। उनकी बातों का कथन तथा श्रवण दोनो ही मनोमुग्धकारी होता है। वे आपस में दुख सुख की चर्चा करके एक दूसरे की सहानुभूति में अपने को कृत कृत्य कर लेते हैं। यदि एक व्यक्ति का हृदय दुख के प्रसंग से कातर हो उठता है तो दूसरे व्यक्ति के नेत्रों से सहानुभूति में आँसुओं की बूँदें टपकने लगती हैं। इसी प्रकार सुख की चर्चा करते हुए एक व्यक्ति का हृदय ज्योंहीं प्रसन्नता से खिल उठता है त्योंहीं दूसरे व्यक्ति के मुख पर प्रसन्नता की रेखा दौड़ पड़ती है और उसके मुख से मधुर शब्दों की वर्षा होने लगती है।

विशेषटिप्पणी:—उक्त पद में कवि ने दो हृदयों के मिलन की अपूर्व प्रणाली के साथ साथ प्रेम और सहानुभूति की सच्ची अनुभूति को अनुपम ढंग से व्यक्त कर दिखाया है जो अभिनन्दनीय है।

( २६ ) शब्दार्थ:—लालसा=इच्छा=अभिलाषा। रस बरसती ही रहे= आनन्द की वर्षा होती रहे। रिस=क्रोध। चमेली है खिलाना आग में=आग में चमेली खिलाना है=असंभव को संभव करके दिखानाहै=अत्यन्त दुष्कर कार्य है। हथेली पर जमाना बाल है=हाथ पर बाल जमाना है=असंभव को संभव करके दिखाना है=अत्यन्त कठिन कार्य है।

व्याख्या:—लालसा है रस बरसती············पर जमाना बाल है।

दो हृदयों के मिलन में विचारों तथा भावों की साम्यता का अनुभव करते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—जब दो व्यक्तियों का आपस में मिलन अथवा प्रेम-प्रदर्शन होता है तो उनमें सच्चे प्रेम और भावों की साम्यता अनिवार्य है। अन्यथा, सारा आनन्द किरकिरी हो जायगा। यदि एक पक्ष की अभिलाषा हो कि दूसरे पक्ष से आनन्द की वर्षा होती रहे और इसके विपरीत दूसरे पक्ष में क्रोध अथवा घृणा की भावना भरी हो तो यह निश्चय है कि इस मिलन अथवा प्रेम-प्रदर्शन में आनन्द अथवा प्रसन्नता का लवलेश भी नहीं रह जायगा।

विपरीत अवस्था में प्रसन्नता या आनन्द की प्राप्ति आग में चमेली खिलाने अथवा हथेली पर बाल जमाने के ही सदृश असंभव कार्य है। भाव यह है कि—जब तक मिलन अथवा प्रेम-प्रदर्शन में सच्चाई और साम्यता को स्थान नहीं दिया जायगा तब तक उसके द्वारा आनन्दानुभूति नहीं प्राप्त की जा सकती।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने संतुलित भाव अथवा साम्यता को विशेष महत्व प्रदान करते हुए प्रेम-प्रदर्शन तथा आनन्दानुभूति पर अच्छा प्रकाश डाला है। 'आग में चमेली खिलाना' और 'हथेली पर बाल जमाना' इन मुहावरों को उक्त पद में स्थान देकर कवि ने निस्सदेह चार चाँद लगा दिये हैं।

(३०) **शब्दार्थ:**—थिर नहीं होतीं=स्थिर नहीं होतीं=रुकतीं नहीं=चंचल बनी रहती हैं। थिरकती हैं=नाचती रहती हैं=हाव भाव प्रदर्शन करती रहती हैं=मटकती रहती हैं। थिरकने में=नृत्य करने में=हाव भाव, प्रदर्शन करने में=मटकने में। गतों=हरकतों=चालों। जाँचती=परीक्षा करतीं। काठ का पुतला=निर्जीव मूर्ति=मूर्ख। ललकतों को=लालायित व्यक्तियों को=पिपासुओं को=मुग्ध होने वालों को।

**व्याख्या:**—थिर नहीं होतीं..........पुतलियाँ हैं नाचतीं।

नेत्र के हाव भाव और विशेष आकर्षण को लक्ष्य करके महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—हे नेत्र! तेरी पुतलियों के नृत्य का अद्भुत प्रभाव है। ये कभी भी स्थिर नहीं रहतीं और इधर उधर नाचती रहती हैं। इनके नृत्य में इतना बड़ा आकर्षण है कि ये अपने थिरकने की क्रिया (हाव भाव प्रदर्शन) द्वारा मनुष्यों की गतिविधि का पता सहज ही लगा लेती हैं। इतना ही नहीं दर्शन के लोभी तथा प्रेम-पिपासु व्यक्तियों को ये अपने नृत्य प्रदर्शन द्वारा मुग्ध करके काठ के पुतले के समान निर्जीव बना देती हैं जिससे वे एक टक इन्हीं की ओर देखते रहते हैं और पुतलियाँ अपना नृत्य प्रदर्शन करती रहती हैं। भाव यह है कि:—नेत्र के आकर्षण से बच सकना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। एक बार भी जो नेत्र-दर्शन का लोभी बना वह अपना सब कुछ खो बैठा।

**विशेषटिप्पणी:**—नेत्र पर हिन्दी के अन्य कवियों तथा उर्दू के शायरों ने भी रचना की है पर महाकवि 'हरि औध' ने उक्त पद में नेत्र पर अपने विचार विशेष ढंग से प्रस्तुत किए हैं। उनकी अनुभूति उनके काव्य शैली के बिल्कुल

अनुरूप है। नेत्र की पुतलियों के नृत्य को पुत्तलिका-नृत्य के सदृश आकर्षक और मनोमुग्धकारी बना कर नेत्र दर्शकों को काठ के पुतले के समान निर्जीव बना देने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है।

( ३१ ) **शब्दार्थः**—जान जब तक सका नहीं=जब तक अनजान (अपरिचित ) रहा=जब तक ज्ञान नहीं हुआ=जब तक माया मोह में लिप्त रहा। प्राणी=मनुष्य। बैल तेली का=तेली का बैल=अन्धा=अज्ञानी=जिस प्रकार आँख पर पट्टी बँधी रहने से तेली का बैल कुछ भी नही देख पाता उसी प्रकार जीव का माया मोह के आवरण से ढँका रहना तथा ईश्वरीय ज्ञान से अपरचित होना। जब सका जान=जब जान सका=जब पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। जगत सारा=सारा जगत=संपूर्ण ब्रह्माण्ड=अखिल विश्व। आँवला हथेली का=हथेली का आँवला=जो उलट पलट कर भली भाँति देखा जा सकता है=संस्कृत मुहावरा हस्त मलक=साधारण वस्तु के समान अधिकार में कर लेना।

**व्याख्याः**—जान जब तक सका नहीं···········आँवला हथेली का।

माया मोह में लिप्त प्राणियों ( मनुष्यों ) को लक्ष्य करके ईश्वरीय ज्ञान अथवा अनुभूति की महत्ता बताते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—जब तक मनुष्य को माया मोह और ईश्वर-भक्ति का पूर्ण भेद प्रकट नहीं हुआ तब तक वह तेली के बैल के सदृश माया मोह की पट्टी आँख पर बाँध कर चौरासी लाख योनि में भ्रमण करता रहा पर उसे ज्योंही ईश्वरीय अनुभूति प्राप्त हुई, उसके सामने से माया मोह का आवरण हटा, त्योंहीं हाथ के आँवले के सदृश संपूर्ण विश्व उसकी मुट्ठी में आ गया। भाव यह है—कि माया मोह को दूर किये बिना मनुष्य के लिए ईश्वरीय अनुभूति तो दूर रही सांसारिक परिज्ञान भी असंभव है।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में 'था बना जीव बैल तेली का' कह कर कवि ने जीव के चौरासी लाख योनि में भ्रमण की ओर स्पष्ट संकेत कर दिया है और 'आँवला हथेली का' तो संस्कृत के 'हस्त मलक' से भी अधिक फबता हुआ सटीक तथा कौशल पूर्ण ढंग से प्रयुक्त हुआ है।

( ३२ ) **शब्दार्थः**—अनूठी रंगतें=अनुपम दृश्य =अनोखा रूप। इन्द्र धनु=इन्द्र धनुष। निराली=अनूठी=अनुपम। धारियाँ=रेखायें=चारखाने। नगीना=नग-

जड़ित=अत्यन्त सुन्दर। मन की=मन को मुग्ध कर लेने वाली। मीनाकारियाँ= पच्ची कारियाँ=कारीगरी=कौशल—प्रदर्शन।

**व्याख्या:**—बादलों में है.................... न मीनाकारियाँ।

प्रकृति के अनुपम दृश्य का चित्रण करते हुए महा कवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—आकाश में भ्रमण करने वाले बादलों में अनुपम दृश्य देखने को मिलते हैं और इन्द्र धनुष में अनूठी रेखायें दिखलाई पड़ती हैं। आकाश का एक एक तारा नगीना सा चमकता रहता है। भला प्रकृति में मन को मुग्ध कर लेने वाली पच्ची कारी (कारीगरी) कहाँ नहीं मिलती? अर्थात् सर्वत्र मिलती है। भाव यह है कि–परमात्मा ने प्राकृतिक दृश्यों में जो अनुपम सौन्दर्य बिखेर दिया है उसकी समता मानव कदापि नहीं कर सकता है। उदाहरणार्थ:—बादलों की अनुपम रंगतें इन्द्र धनुष की अनूठी रेखायें; नगीने सदृश चमकते हुए नक्षत्र आदि देखे जा सकते हैं।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने प्रकृति–चित्रण के साथ साथ इसके निर्माता ईश्वर के प्रति अपना आभार प्रदर्शन भी मौन रूप से कर दिया है जिसका आभास पद की पंक्तियों से स्पष्ट ही प्राप्त हो जाता है।

(पृष्ठ-१७)

(३२) **शब्दार्थ:**—पुरनेह=स्नेह से परिपूर्ण=प्रेम से भरी हुई। नेह=स्नेह= प्रेम। तिल=आँख का तिल। खोलता=अलग करता था=स्पष्ट करता था। गाँठ= बन्धन=मनमुटाव। दिल की=हृदय की। पड़ गई गाँठ=गाँठ पड़ गई=मन मुटाव हो गया=प्रेम घट गया=प्रेम का भाव जाता रहा=मनोमालिन्य हो गया।

**व्याख्या:**—आँख पुर नेह से.................उसी दिल में।

सांसारिक व्यवहार के द्विविध रूप का चित्र खड़ा करते हुए महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं कि:—आपस के व्यवहार में पहले जिसके नेत्र प्रेम से परिपूर्ण थे अब उन्हीं नेत्रों के तिल प्रेम से रहित हो गये हैं अर्थात् जो व्यक्ति पहले प्रेम भाव से मिलता था अब वही देख कर आँखे फेर लेता है। जो व्यक्ति पहले अपने प्रेम-प्रदर्शन तथा मधुर भाषण द्वारा हृदय

बावले बन गए, न बोल सके,
बाल की खाल काढ़ने वाले ।

'बाल की खाल काढ़ने वाले' मुहावरे का कितना सटीक प्रयोग कवि ने यहाँ किया है इसे कोई भी सहृदय पाठक सहज ही आँक सकता है ।

छल प्रपंच कपट आदि के भाव से दूर हुए बिना ईश्वर प्राप्ति असंभव है इसको स्पष्ट करते हुए कवि कहता है—

जो न होती रहे कपट की काट,
क्या रखे और क्या कटाये बाल।

उपरोक्त पंक्तियों में ढोंगी साधु-सन्यासियों पर कवि ने अच्छी व्यंग बौछार की है ।

अधूरी साधना तथा प्रेम की अपरिपक्वता का सुन्दर उदाहरण कवि की इन पंक्तियों में मिलता है—

बीच ही में घूम है माथा गया,
लोग माथे तक पहुँच पाये नहीं ।

ईश्वर तथा मानव के भाव अभाव, प्रेम की पूर्णता और अपूर्णता के वाद विवाद में कवि विशेष रूप से नहीं पड़ना चाहता । उसकी दृष्टि में तो तथ्य पूर्ण और वास्तविक बात केवल एकही है और वह यह है कि मनुष्य में चाहे जो कुछ भी दोष या अभाव क्यों न हो पर ईश्वर को तो केवल अपने भक्त वत्सल और दीन दयाल भाव से मानव को अपना लेने, अपनी शरण में रख लेने का ही बीड़ा उठाना है । इसीलिए कवि अपनी इन पंक्तियों में बोल उठता है—

आप परदा किस लिए हैं कर रहे,
हो भले ही आँख पर परदा पड़ा ।

इसके बाद कवि पुनः अपनी दृढ़ भावना को व्यक्त करते हुए कहता है कि:—

हम तुम्हें चाहते रहेंगे ही,
चाह चाहे तुम्हें न हो मेरी ।

ठीक ही है मनुष्य को चाहे जिस प्रकार भी हो ईश-भक्ति में लव लीन रहना ही श्रेयष्कर है।

ज्ञानता, अज्ञानता का स्पष्टीकरण करते हुए कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है—

कौन है जानकार तुम जैसा
है हमारा अजान का बाना।
तुम हमें जानते जनाते हो
नाथ हमने तुम्हें नहीं जाना।

वास्तविक रूप में बात है भी यही। समय-समय पर भगवान भक्तों की भक्ति पर रीझ कर उन्हें दर्शन देते रहते हैं इस प्रकार नारायण को नर का ध्यान बराबर बना रहता है पर नर स्वयं अपने निर्माता नारायण को ही भूल बैठा है।

संक्षेप में 'देव देव' शीर्षक कविता कवि की सूक्तोक्ति-प्रधान सफल रचना है जिसमें स्थायी साहित्य के लिये ठोस उपादान संग्रहीत हैं। इसमें कवि ने लौकिक तथा पारलौकिक दोनों पक्षों का प्रतिपादन बड़े ही अनुपम ढंग से किया है। कटु व्यंग्य प्रहार के द्वारा कवि ने समाज को जो चेतावनी तथा सीख दी है वह ठोस, हृदय ग्राही तथा विशेष प्रभावकारी है। कवि ने इस कविता में जो अनुपम रस की धारा बहाई है उसमें एक बार गोता लगाकर कोई भी नीरस व्यक्ति सरस बने बिना नहीं रह सकता।

हिन्दी मुहावरों का जैसा प्रयोग 'हरिऔध' जी ने अपनी रचना में किया है वैसा सफल प्रयोग हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। कवि की इस देन से 'देव-देव' शीर्षक कविता भी अछूती नहीं रह पाई है। मुहावरों के योग के साथ-साथ इस में सरलता और ओज का भी सुन्दर पुट मिलता है। इतनाही नहीं कवि ने 'दरस', 'रगत', 'अनगिनत', 'जोत', 'बिपत', आदि जैसे शब्दों का भी इस ढंग से प्रयोग किया है कि न तो भाव भंग होने पाया है और न तो काव्य सौष्ठव ही नष्ट हुआ है। निष्कर्ष यह है कि भाषा, भाव, काव्य-कौशल आदि सभी दृष्टियों से यह कवि की एक सफल रचना है।

**प्रश्नः—( २ )** 'देव देव' शीर्षक कविता के छन्द, रस, अलंकार आदि पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

पर-दुख लखके है जो समुद्विग्न होता,
वह कृति-सरसी का स्वच्छ सोता कहाँ है।

× × ×

सुखकर जिससे है कामिनी जन्म मेरा
वह रुचिकर चित्रों का चितेरा कहाँ है॥

वास्तव में पुत्र से ही तो नारी का कामिनी जन्म सार्थक होता है। फिर कृष्ण जैसा पुत्र जिसके वियोग में नर-नारी तो क्या पशु-पक्षी तक विह्वल और दुखी हो उठते हैं। यशोदा जी कहती हैं—

बन बन फिरती हैं खिन्न गायें अनेकों,
शुक भर-भर आँखें गेह को देखता है।
सुधि कर जिसकी है सारिका नित्य रोती,
वह शुचि-रुचि स्वाती मंजु मोती कहाँ है॥

और भी—

गृह गृह अकुलाती गोप की पत्नियाँ हैं,
पथ पथ फिरते हैं ग्वाल भी उन्मना हो।
जिस कुँवर बिना मैं हो रही हूं अधीरा,
वह छबि-खनि-शोभी स्वच्छ हीरा कहाँ है॥

कंस के आतंक से यशोदा माता का हृदय आशंकित रहा करता था। भावी विपत्तियों से वे डरा करती थीं। पर वे सारे कष्ट एक-एक करके दूर हो चले थे और कृष्ण के प्रवल शत्रु अत्यन्त बलशाली मल्ल, कूट आदि राक्षस भी काल के गाल में समा गये पर कृष्ण के वियोग का कष्ट उन्हें सहसा सहना पड़ा। इसके विषय में तो उन्होंने कभी स्वप्न में भी कल्पना न की थी। इसका आभास इन पंक्तियों से मिल जाता है। यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं—

भयप्रद जितनी थीं आपदायें अनेकों,
यक यक करके वे हो गईं दूर यों हीं।
प्रियतम! अनसोची ध्यान में भी न आई
यह अभिनव कैसी आपदा आ पड़ी है॥

पुत्र के वियोग में मातृ-हृदय का चंचल हो उठना तथा मन का बावन कोठों में दौड़ना स्वाभाविक है। यशोदा का मातृ-हृदय इसका प्रतीक है। उनके मन में कृष्ण के मथुरा से न लौटने के विषय में भिन्न भिन्न कल्पनायें उठने लगती हैं और वे नन्द जी से कहती हैं—

प्रिय सुअन हमारा क्यों नहीं गेह आया,
वह नगर-छटायें देख के क्या लुभाया।
वह कुटिल जनों के जाल में जा पड़ा है,
प्रियतम! उसको या राज्य का भोग भाया॥

अथवा—

× × ×

सब मधुपुर-वासी बुद्धिशाली जनों ने,
अतिशय अपनाया क्या ब्रजाभूषणों को॥

× × ×

फँसकर जिसमें हा! लाल छूटा न मेरा,
सुफलक-सुत ने क्या जाल कोई बिछाया॥

× × ×

विविध सुरभि वाली मण्डली बालकों की,
मम युगल सुतों ने क्या कहीं देख पाई।
निज सुहृद जनों में वत्स में, धेनुओं में,
बहु बिलम गये वे क्या इसीसे न आये॥

भिन्न भिन्न भावनाओं में मन को दौड़ाने के बाद यशोदा माता के हृदय में कृष्ण के प्रति कुछ रोष उत्पन्न हो आता है और वे सोचने लगती हैं कि यदि बलराम मथुरा से नहीं लौटा तो उसका कोई विशेष दोष नहीं है। वह अपने कुटुम्ब की मोह-माया में लिप्त होकर वहाँ रुक गया तो रुक जाये पर कृष्ण को तो अपनी माता का ध्यान रखना ही चाहिये था और ऐसी दशा में वह अकेले

ही क्यों नहीं चला आया। यशोदा माता के उद्‌गार स्वरूप कवि की निम्न पंक्तियाँ इस पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं—

सित सरसिज ऐसे गात के श्याम-भ्राता,
यदुकुल-जन हैं औ वंश के हैं उजाले।
यदि वह कुलवालों के कुटुम्बी बने तो,
सुत सदन अकेले ही चला क्यों न आया ॥

कृष्ण के वियोग में रोते-रोते यशोदा का धैर्य टूटने लगता है, उनकी बात लबों पर आ जाती है और वे बिलखकर नन्द जी से कहती हैं कि—

प्रियतम ! अब मेरा कंठ में प्राण आया,
सच सच बतला दो प्राण-प्यारा कहाँ है।
यदि मिल न सकेगा जीवनाधार मेरा
तब फिर निज पापी प्राण मैं क्यों रखूँगी ॥

ठीक ही है जब जीवन का सहारा ही टूट जाये तो भला जीवन का निर्वाह कैसे हो सकता है। पुत्र के वियोग में माता का शरीर में प्राण धारण करना व्यर्थ है। यशोदा का मातृ-हृदय भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है। इतना ही नहीं यशोदा जी अपने पुत्र कृष्ण के दर्शन के हेतु अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए प्रस्तुत हैं। माता के अपूर्व त्याग की झाँकी यशोदा के उद्‌गार स्वरूप कवि की निम्न पंक्तियाँ हैं—

कटि-पट लख पीले रत्न दूँगी लुटा मैं,
तन पर सब नीले रत्न को वार दूँगी।
सुत-मुख-छवि न्यारी आज जो देख पाऊँ,
वह अपर अनूठे रत्न भी बाँट दूँगी ॥

और भी—

धन विभव सहस्रों रत्न सन्तान देखे,
रज कण सम हैं औ तुच्छ हैं वे तृणों से।
पति इन सबको क्या पुत्र को त्याग लाये,
मणि-गण तज लावे गेह ज्यों काँच कोई ॥

इतना ही नहीं यशोदा जी पुत्र कृष्ण के वियोग में अपने प्राण का त्याग उसी प्रकार कर देना उचित समझती हैं जिस प्रकार राजा दशरथ ने राम के वियोग में अपना प्राण त्याग दिया था तथा सर्प मणि से अलग होने पर तड़प-तड़पकर अपने प्राण का त्याग कर देता है और मछली जल से विलग होते ही अपने प्राण का त्याग कर देती है। कवि की सजीव और अनूठी कल्पना का सुन्दर रूप कवि की निम्न पंक्तियों में निखर उठा है। यशोदा जी नन्द जी से कहती हैं—

परम सुयश वाले कोशलाधीश ही हैं,
प्रिय सुत बन जाते ही नहीं जी सके जो।
यह हृदय हमारा वज्र से ही बना है,
वह तुरत नहीं जो सैकड़ों खंड होता॥

और—

निज प्रिय मणि को जो सर्प खोता कभी है,
तड़प तड़प के तो प्राण है त्याग देता।
मम सदृश मही में कौन पापीयसी है,
हृदय-मणि गँवा के नाथ जो जीविता हूं॥

तथा—

लघुतर सफरी भी भाग्यशाली बड़ी है,
अलग सलिल से हो प्राण जो त्यागती है।
अहह अवनि में हूं मैं महाभाग्यहीना,
अब तक बिछुड़े जो लाल के जीसकी हूं॥

उस नारी का जीवन धन्य है जो अपने पुत्र के वियोग में मृत्यु का सहर्ष आलिंगन कर ले। यशोदा जी के निम्न उद्‌गार मातृ-हृदय के इसी पक्ष का समर्थन करते हैं—

× × +

वह इस अवनी में भाग्यशाली बड़ी है,
अवसर पर सोये मृत्यु के अंक में जो॥

माता यशोदा अपने प्रिय पुत्र कृष्ण के वियोग में दिन-रात रोते रोते बहुत ही निर्बल हो चुकी हैं, उनका शरीर प्राण रख सकने में असमर्थ हो गया है, शरीर में रक्त का अंश मात्र भी अवशेष नहीं रह गया है, शारीरिक शक्ति और सुख की आशा सब कुछ नष्ट हो गयी है। लाख चाहने पर भी यशोदा जी के प्राण उनके शरीर से विलग नहीं होते। इस पर खेद प्रकट करते हुए यशोदा जी करुण क्रन्दन करती हुई कहती हैं—

हा ! वृद्धा के अतुल धन हा ! वृद्धता के सहारे,
हा ! प्राणों के परम-प्रिय हा ! एक मेरे दुलारे ॥
हा ! शोभा के सदन सम हा ! रूप-लावण्य वाले।
हा ! बेटा हा ! हृदय-धन हा ! नेत्र-तारे हमारे ॥

माता यशोदा जी को अपने प्राण-त्याग का रंचमात्र भी खेद या कष्ट नहीं है। उन्हें बस रह रह कर केवल एक यही पछतावा हो रहा है कि अन्तिम बार मरते समय उन्हें अपने पुत्र कृष्ण का मुख देखने का अवसर नहीं मिला। वे पश्चात्ताप करती हुई कहती हैं—

कैसे होके अलग तुमसे आज भी मैं बची हूं।
जो मैं ही हूं समझ न सकी तो तुझे क्यों बताऊँ।
हाँ जीऊँगी न अब पर है वेदना एक होती।
तेरा प्यारा वदन मरती बार मैंने न देखा ॥

संक्षेप में 'यशोदा-विलाप' कवि की एक उत्कृष्ट रचना है और इसमें मातृ-हृदय की झांकी उपस्थित करने में कवि पूर्ण सफल हुआ है। इसमें मातृ-हृदय के अन्तर्द्वन्द्वों का चमत्कारिक ढंग से वर्णन किया गया है। माता के अनुपम त्याग की अपूर्व झाँकी उपस्थित की गई है। भाषा और भाव दोनों ही कवि की कल्पना के अनुरूप हैं।

**प्रश्न** ( ४ ) 'यशोदा-विलाप' शीर्षक कविता के छन्द, रस, अलंकार आदि पर संक्षिप्त प्रकाश डालिये।

**उत्तरः—** ( छन्द ) छन्द की दृष्टि से 'यशोदा-विलाप' शीर्षक कविता संस्कृत-वर्ण-वृत्तों के अतुकान्त रूप के अन्तर्गत आती है।

इसमें 'मालिनी' छन्दों का प्राधान्य है तथा अन्तिम पद 'मन्दाक्रान्ता' छन्द है।

**रसः**—'यशोदा-विलाप' शीर्षक कविता में 'करुणरस' प्रधान है।

**स्थायी भाव**—यशोदा जी का शोक प्रदर्शन है।

**संचारी भाव**—कृष्ण के प्रति यशोदा जी का स्नेह अथवा वात्सल्य-प्रेम-प्रदर्शन है।

**आलम्बनः**—कृष्ण का वियोग।

**उद्दीपनः**—कृष्ण की मधुर वाणी, सुन्दर रूप, मनोहर बाल- क्रीड़ा आदि विशेषतायें।

**अनुभावः**—यशोदा का विलाप करना, निःश्वास लेना।

**अलंकारः**—'यशोदा-विलाप' शीर्षक कविता में यमक, वीप्सा, श्लेष तथा लाटानुप्रास आदि अलंकारों की विशेषता है।

**प्रश्न(५):**—'उमंग–भरेयुवक' शीर्षक कविता की रचना कवि ने किस उद्देश्य से की है? इससे देश को क्या उद्बोधन मिलता है? क्या इसे जागरण का काव्य कहा जा सकता है?

**उत्तरः**—( उद्देश्य ):—'उमंग-भरे युवक' शीर्षक कविता की रचना स्वर्गीय अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने उस समय की थी जब देश में क्रान्ति का बिगुल बज रहा था। 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की गुंजार से देश का कोना-कोना गूँज उठा था। देशभक्त नवयुवक तथा नवयुवतियाँ स्वतंत्रता संग्राम में पूर्ण भाग ले रही थीं। इस प्रकार जब संपूर्ण भारत भूमि-स्वतंत्रता की पुकार से गूँज उठी थी तो फिर भला कवि की कल्पना इससे अप्रभावित तथा अछूती कैसे रह सकती थी। कवि ने भी अपने कर्तव्य का पालन करना उचित समझा। उसकी कल्पना 'उमंग भरे युवक' शीर्षक कविता में प्रस्फुटित हो उठी इस रचना में कवि का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है:—

(१) देश के युवकों को उनके पूर्व गौरव का आभास कराना।

(२) देश की वर्तमान परिस्थिति से युवकों को परिचित करना।

(३) जन-क्रांति तथा स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए युवकों को प्रेरित करना।

(४) शत्रु के अत्याचार तथा स्वातंत्र्य-संग्राम की कठिनाइयों से युवकों में निराशा की भावना न आने देना तथा उनमें उत्साह का संचार करते रहना।

(५) स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद विजय के मद में आकर युवकों को कर्तव्य से च्युत न होने देना तथा लोक-हित कार्यों में संलग्न रहने की प्रेरणा प्रदान करना।

**उद्‌बोधनः**—'उमंग-भरे युवक' शीर्षक कविता से देश को पूर्ण 'उद्‌बोधन प्राप्त होता है। प्रारंभ में ही कवि देश के नवयुवकों का परिचय देते हुए कहता है कि—

हैं भूतल परिचालक प्रतिपालक ए ।
तोयधि-तुंग तरंग युवक उमंग-भरे ॥
हैं भव-जन भय-भंजन मन-रंजन ए ।
बन्धन-मोचन-हेतु अवनि में अवतरे ॥

और भी—

हैं समाज-सुख साधक दुख-बाधक ए ।
देश-प्रेम प्रासाद प्रभावित फरहरे ॥
हैं नव युग-अधिनायक प्रियपायक ए ।
वसुधा-विजयी वीर विजय-प्रद पैंतरे ॥

संक्षेप में-देश के युवकों को कर्तव्य का पाठ पढ़ाकर कवि उन्हें देश की पुकार की ओर ध्यान देने के लिए उद्‌बोधित करता है। उनकी प्रवृत्तियों के प्रति कवि के विचार बड़े ही महत्वपूर्ण हैं यथा—

सदैव होवें समयानुगामिनी,
प्रसादिनी मानवतावलम्बिनी।
गरीयसी गौरविता महीयसी,
यवीयसी हों युवक-प्रवृत्तियाँ ।
प्रफुल्ल हों पीवर हों प्रवीर हों,
प्रवीण हों पावन हों प्रबुद्ध हों।

विनीत हों वत्सलता-विभूति हों
वसुन्धरा-वैभव वाल-वृन्द हों ॥

इतना ही नहीं—

× × ×

संपत्तिदा जन-विपत्ति-विनाश मूर्ति,
होवे पुनीत प्रतिपत्ति युवा जनों की ॥

× × ×

पाके महान पद मानवता न खोवे,
होवे न मत्त वहु मान मिले मनस्वी ॥

इससे अधिक अव और क्या उद्‌बोधन हो सकता है ।

**जागरण-काव्य**—'उमंग-भरेयुवक' शीर्षक कविता को निस्संदेह जागरण का काव्य कहा जा सकता है क्योंकि इसकी प्रत्येक पंक्ति जागरण के सन्देश से निहित हैं। इनमें नवचेतना का संचार करने की प्रवल शक्ति है। प्रारंभ में ही कवि युवकों को जगाने के हेतु उन्हें 'भूतल परिचालक और प्रति पालक' कहता है और उन्हें 'भव-जन भय-भंजन मन-रंजन' वताकर इस पृथ्वी पर अवतार लेने का मुख्य उद्देश्य प्रकट करते हुए कहता है कि—"वन्धन-मोचन-हेतु अवनि में अवतरे।" इतना ही नहीं उन्हें 'समाज-सुख साधक' तथा 'दुख-बाधक' वता कर 'वसुधा-विजयी' की उपाधि भी प्रदान कर देता है। इस प्रकार युवकों की प्रशंसा करके उन्हें कर्तव्य का ज्ञानकराकर देश-हित कार्यों में संलग्न होने के लिए जगाने के लिए कवि की पंक्तियों में पर्याप्त वल है।

कवि ने जागरण के इस काव्य में देश तथा समाज की संपूर्ण परिस्थिति पर ध्यान दिया है और युवकों की प्रवृत्तियों के अतिरिक्त जनता की अभिलाषा पर भी प्रकाश डाला है। पद के मद में शासक वर्ग अपने कर्तव्य से विरत न हों इस ओर भी कवि की दृष्टि गई है। कवि की निम्न चेतावनी वड़ी ही आकर्षक तथा प्रभावकारी है —

भूले न लोक-हित-मंत्र मदान्ध होके,
पीके प्रमाद-मदिरा न वने प्रमादी।

पाके महान पद मानवता न खोवे
होवे न मत्त बहु मान मिले मनस्वी ॥
दे दे विभा विहित नीति-विभावरी को
पाले कुमोदक-समान प्रजा जनों को ।
सींचे सुधा बरस के अरसा रसा को,
सच्चा सुधाधर बने वसुधाधिकारी ॥

इससे अधिक जागरण का उपादान अब और क्या हो सकता है ।

**प्रश्न(६)**'उमंग-भरे-युवक' शीर्षक कविता के छन्द, रस, अलंकार पर प्रकाश डालिये ।

**उत्तर—छन्द**—'उमंग-भरे-युवक, शीर्षक कविता अतुकांत कोमल पदावली संस्कृत-छन्द का हिन्दी में रूपान्तरित रूप है ।

**रस**—'उमंग-भरे-युवक' शीर्षक कविता में वीररस प्रधान है ।

**स्थायी भाव**—युवकों की उमंग ( उत्साह ) ।

**संचारी भाव**—युवकों का आवेग अथवा उनकी क्षमता ।

**आलम्बन:**—समाज की दुर्बलता अथवा देश की पद दलित अवस्था तथा युवकों का कार्य-क्षेत्र ।

**उद्दीपन:**—युवकों के प्रति व्यक्त की गई नवीन आशाएँ तथा आशीर्वाद

**अनुभाव**—युवकों के प्रति व्यक्त किएगये विचार तथा भाव की चेष्टाएँ ।

**अलंकार:**—'उमंग-भरे-युवक' शीर्षक कविता में शब्दालंकार का प्राधान्य है तथा छेकानुप्रास अलंकार का अधिक उपयोग हुआ है ।

**प्रश्न ( ७ )** 'हरिऔध' जी को चौपदों की रचना में भाषा की मुहावरे-दानी के साथ-साथ भावों की अभिव्यक्ति में कैसी सफलता मिली है ?

( बी० ए० परीक्षा १९४५ का० वि० वि० )

**उत्तर:**—स्वर्गीय अयोध्या सिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध' रचित 'चौपदे' हिन्दी साहित्य की विशेष निधि हैं । इनमें समाज, राज, व्यष्टि और समष्टि, लोक-परलोक, नीति और धर्म, संस्कृति और सभ्यता, आचार और विचार प्राय: सभी पक्षों की सूक्तियाँ अंकित हैं । सूक्तोक्ति प्रधान होते हुए भी ये चौपदे कवि

की विशिष्ट कला की प्रतिमूर्ति हैं। इनमें 'हरिऔध' जी की भाषा का एक नूतन रूप देखने को मिलता है। बोल-चाल की भाषा में मुहावरों का मणिकांचन योग दर्शनीय है। भाषा भावों की पूर्ण अनुगामिनी है। अब यहाँ हम 'चौपदों' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर कवि की भाषा की मुहावरेदानी के साथ भावों की अभिव्यक्ति पर समीक्षात्मक दृष्टि से विचार करेंगे। जीवन के वार्द्धक्य और मानव की मोह माया में विशेष अनुरक्ति को लक्ष्य करके महाकवि 'हरिऔध कहते हैं —

टूटना जब कि चाहिये था जाल,
तब गया और भी जकड़ जंजाल।
बढ़ गई और भी सुखों की भूख,
जब कि खिचड़ी हुये हमारे बाल॥

कवि ने 'जाल टूटना' 'जंजाल जकड़ना' 'बाल का खिचड़ी होना' आदि की मुहावरेदानी के साथ-साथ वृद्धावस्था के आगमन, बाल के श्वेत होने और जीवन के अन्तिम दिनों में भी ईश्वर-भक्ति से विमुख होकर माया-मोह में और भी आसक्त होने के मानव के स्वभाव का कितना भावपूर्ण और स्वाभाविक तथा तथ्य पूर्ण चित्रण किया है इसे कोई भी सहृदय सहज ही आँक सकता है। अब भाषा की मुहावरेदानी के साथ भावों की अभिव्यक्ति का दूसरा नमूना देखिये—

हैं चिमटकर काढ़ लेती चीटियाँ,
धूल में मिल जुल गई चीनी छिटी।
है भला किस काम का वह जो कहे,
कब किसी से लीक माथे की मिटी॥

'माथे की लीक मिटाना' मुहावरे का कितना सुन्दर प्रयोग कियागया है, साथ ही भाग्यवादियों और कायरों पर कैसा भावपूर्ण व्यंग्य कसा गया है जो देखते ही बनता है। भाषा की मुहावरेदानी और भाव की अभिव्यक्ति का मणिकांचन योग इन पंक्तियों में देखिये—

बेतरह मुँह की अगर खाते नहीं,
तो चबाते क्यों न लोहे के चने।

सामने आकर करें मुँह सामने,
मुँह दिखायें मुँह दिखाते जो बने ॥

'वेतरह मुँह की खाना' 'लोहे के चने चबाना' 'सामने आकर मुँह सामने करना' तथा 'मुँह दिखाना' आदि मुहावरों का प्रयोग तो यथास्थल उपयुक्त और सटीक है ही साथ ही भावों की अभिव्यक्ति भी अच्छी बन पड़ी है। आज कल की आधुनिक फैशन परस्त नारी तथा उस पर फिदा होने वाले नौनिहालों पर कटाक्ष करते हुये महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं—

वे कलेजे के बनें तब क्यों न हम,
बाल बिखरे देखकर जो जी टँगे।
या किसी की लट लटकती देखकर,
लोटने जो साँप छाती पर लगे ॥

वे 'कलेजे का बनना' 'जी टँगना' तथा 'छाती पर साँप लोटना' आदि मुहावरों का कितना फबता हुआ भावपूर्ण प्रयोग हुआ है। आधुनिक कृतघ्नता का एक सुन्दर नमूना देखिये—

फूल से हम जिसे न मार सके,
है वही आज भोंकता भाला।
आज है खा रहा कलेजा वह,
है कलेजा खिला जिसे पाला ॥

'फूल से न मारना' 'भाला भोंकना' 'कलेजा खाना' और 'कलेजा खिलाकर पालना' आदि मुहावरों के प्रयोग के अनुकूल ही उसके भाव भी उत्तम रूप से व्यक्त किये गये हैं। कृत्रिमता का भाव प्रदर्शन करने वाले व्यक्तियों पर व्यंग्य का प्रहार करते हुये महाकवि 'हरिऔध' कहते हैं—

जो बहुत बनते हैं उनके पास से,
चाह होती है कि कब कैसे टलें।
जो मिलें जी खोलकर उनके यहाँ,
चाहता है जी कि सिर के बल चलें ॥

'बहुत बनना' 'जी खोल कर मिलना' तथा 'सिर के बल चलना' आदि मुहावरों का सफल प्रयोग तो हुआ ही है साथ ही भाव भी भंग नहीं होने पाया है जो कि कवि की अनुपम देन है। अब यहाँ हम दो उदाहरण और प्रस्तुत करेंगे और यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि भाषा की मुहावरेदानी और भावों की अभिव्यक्ति में तारतम्य स्थापित करने में कवि की कल्पना उत्कृष्टता की चरम सीमा पर पहुँच गई है। नमूना देखिये—

लालसा है रस बरसती ही रहे,
पर तुम्हारी आँख रिस से लाल हैं।
यह चमेली है खिलाना आग में,
यह हथेली पर जमाना बाल है॥

'रस बरसते रहना' 'आँख रिस से लाल होना' 'आग में चमेली खिलाना' तथा 'हथेली पर बाल जमाना' आदि मुहावरों का प्रयोग बरबस पाठकों के मन को मुग्ध कर लेता है और वह सहज ही कवि के भावों की अभिव्यक्ति में गोते लगाने लगता है। अब जरा दूसरा नमूना देखिये—

जान जब तक सका नहीं तब तक,
था बना जीव बैल तेली का।
जब सका जान तब जगत सारा,
हो गया आँवला हथेली का॥

'तेली के बैल' और 'हथेली के आँवले' की मुहावरेदानी के विषय में विशेष क्या कहा जाय वह तो स्वतः स्पष्ट है। रह गई भावों की अभिव्यक्ति की बात सो तो विज्ञ पाठक स्वयं ही अनुमान लगा सकते हैं। जरा सा भी ध्यान देने से भावों का हस्त मलक हो जाना असंभव नहीं है।

यहाँ चौपदों की मुहावरेदानी और भावों की अभिव्यक्ति की केवल लघु झाँकी प्रस्तुत की गई है पर इतने से ही हाँडी के चावल के एक कण के समान संपूर्ण तन्दुलों की परिपक्वता का अनुमान लगाकर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि—'हरिऔध' जी को चौपदों की रचना में भाषा की मुहावरेदानी के साथ-साथ भावों की अभिव्यक्ति में पूर्ण सफलता मिली है।

**प्रश्न (८):**—खड़ी बोली के आरंभिक काव्य की अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी की किन-किन क्षेत्रों में क्या देन है, विवरण सहित उल्लेख कीजिये।
( बी० ए० परीक्षा १९४७ का० वि० वि० )

**उत्तर:**—स्वर्गीय अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध' भारतेन्दु-काल, द्विवेदी-काल और आधुनिक-काल इन तीनों से प्रभावित थे अतएव इन कालों की स्पष्ट छाप इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होती है। इनकी रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने किसी काल अथवा परिपाटी का अन्धानुसरण नहीं किया है बल्कि अपने स्वतंत्र मौलिक मार्ग का अनुसरण करके अपनी भाषा तथा रचना में संगीत, लालित्य और सौन्दर्य की धारा बहाई है यों तो इन्होंने ब्रज-भाषा और खड़ी बोली दोनों में रचनायें की हैं पर खड़ी बोली के आरंभिक काव्य की इनकी विशेष देन है जिस पर यहाँ संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है—

(१) स्वर्गीय अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध' की अमर कृति 'प्रिय-प्रवास' हिन्दी की खड़ी बोली के आरंभिक काव्य की एक विशेष देन है जो हिन्दी खड़ी बोली का प्रथम अतुकान्त सुन्दर महाकाव्य है। वास्तव में इसे हिन्दी की ऐसी सर्वप्रथम रचना कहा जा सकता है जिसमें भाषा, पद्य-विधान और विषय विवेचन तीनों में नवीनता एक साथ पाई जाती है। इतना ही नहीं इसमें छन्द, रस और अलंकार व्यंजना के भी उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं। इसमें संस्कृत के विविध भिन्न-तुकान्त वृत्तों में श्री कृष्ण के गोकुल से मथुरा चले जाने पर उनके प्रति ब्रजवासियों के प्रेम और उनके बाल्य-काल का सुन्दर वर्णन किया गया है। इसमें श्री कृष्ण ब्रज के रक्षक के रूप में अंकित हुए हैं। 'प्रिय-प्रवास' की राधा कृष्ण की प्रेम-पात्री नहीं बल्कि सच्ची प्रेमिका हैं और कृष्ण के विरह में वे त्यागी और लोक-सेवी बन गई हैं इसी प्रकार प्रिय-प्रवास की यशोदा माता ही नहीं बल्कि जगद्माता बन गई हैं। 'प्रिय-प्रवास' में भाषा और भाव का सुन्दर सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। इसमें समाज-सेवा, स्वार्थ-त्याग, विश्व-प्रेम, परोपकार, देश-सेवा आदि उदात्त वृत्तियों का सन्देश निहित है। 'प्रिय-प्रवास' का प्रकृति-चित्रण हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है तथा इसकी शैली अनूठी है। 'हरिऔध' जी ने 'प्रिय-प्रवास में, संस्कृत गर्भित क्लिष्ट तथा सरल

सुबोध और मुहावरेदार भाषा इन दोनों रूपों को अपनाया है नमूनार्थ निम्न पंक्तियाँ पर्याप्त हैं—

रूपोद्यान प्रफुल्ल-प्राय-कलिका राकेन्दु बिम्बानना,
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका कीणा कला-पुत्तली।
शोभा वारिधि की अमूल्य मणि-सी लावण्य लीलामयी,
श्री राधा मृदु भाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थी॥
( संस्कृत गर्भित क्लिष्ट भाषा )

मन हरण हमारे प्रात जाने न पावें,
सुखी जुगुत हमें तो सूझती है न ऐसी।
पर यदि यह काली यामिनी ही न बीते,
तब फिर ब्रज कैसे प्राण प्यारे तजेंगे॥
( सरल सुबोध भाषा )

इस प्रकार यह स्वतःसिद्ध है कि संस्कृत के छन्दों को खड़ी बोली में प्रयुक्त करने का श्रेय 'हरिऔध' जी को ही प्राप्त है तथा हिन्दी में अतुकान्त छन्दों में काव्य रचने की प्रणाली भी इन्होंने ही चलाई।

(२) 'हरिऔध' जी की खड़ी बोली के आरंभिक काव्य की द्वितीय विशेष देन 'वैदेही-वनवास' है। यह भी इनकी एक उत्कृष्ट रचना है जिसमें इन्होंने लोकोपवाद के कारण वैदेही के परित्याग की पुरानी कहानी को आधुनिकता का पुट देकर बड़े ही अनूठे ढंग से चित्रित किया है। 'वैदेही-वनवास' के राम मानवता के सच्चे पुजारी हैं और सीता अपने पति के आदर्श मार्ग का अनुसरण करती हुई विश्व-प्रेम को महानता देती हैं। यदि 'प्रिय-प्रवास 'हरिऔध' जी की भाषा की क्लिष्टता का द्योतक है तो 'वैदेही-वनवास' उनकी भाषा की सरलता का प्रतीक है। इसमें प्रसाद गुण का प्राधान्य है।

(३) 'हरिऔध' जी की खड़ी बोली के आरंभिक काव्य की तृतीय देन 'बोल-चाल' 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' हैं। इनमें 'हरिऔध' जी की भाषा का एक नवीन रूप दिखाई पड़ता है। इनमें राज-समाज, व्यष्टि-समष्टि, लोक-परलोक, नीति-धर्म संस्कृति-सभ्यता, आचार-विचार सभी पर बड़े ही

मार्मिक ढंग से व्यंग्य बौछार की गई है। ये कृतियाँ बोल-चाल की भाषा में लिखी गई हैं अतएव इनमें अनोखी सूझ बूझ के साथ ही मुहावरों का मणिकांचन मय योग है। उदाहरणार्थ निम्न पद प्रस्तुत किया जा रहा है—

जान जब तक सका नहीं तब तक,
था बना जीव बैल तेली का।
जब सका जान तब जगत सारा,
हो गया आँवला हथेली का॥

( ४ ) 'पद्य-प्रसून' 'पारिजात' आदि 'हरिऔध' जी की अन्य रचनायें भी हिन्दी के खड़ी बोली के आरंभिक काव्य की विशेष देन के ही रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं। 'पद्य-प्रसून' में बोल-चाल की और साहित्यिक दोनों प्रकार की भाषाओं में लिखी कविताएँ संग्रहीत हैं तथा 'पारिजात' में 'हरिऔध' जी के आध्यात्मिक विचार संग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त इनकी अन्य रचनायें भी अपनी विशिष्ट विशेषता से युक्त हैं जो खड़ी बोली के प्रारम्भिक काव्य की एक देन हैं।

संक्षेप में—क्या भाषा, क्या भाव, वर्णन, क्या छन्द विधान, क्या अलंकार व्यंजना, सभी दृष्टियों से 'हरिऔध' जी ने हिन्दी खड़ी बोली के आरंभिक काव्य को एक नवीन मार्ग प्रदान किया है और इस मार्ग के द्वारा इन्होंने अपने बाद के कवियों के लिए एक अनुपम प्रकाश प्रदान किया है। इस प्रकार पद्य रचना की नवीन प्रणाली, नवीन छन्दों के प्रयोग, खड़ी बोली के परिमार्जित और परिष्कृत रूप को हिन्दी साहित्य को प्रदान करके इन्होंने अपना नाम अमर कर लिया है।

**प्रश्न (६)** अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की काव्यगत विशेषताएँ बतलाइये।

**उत्तर:—काव्यगत विशेषताएँ:**—( १ ) 'हरिऔध' जी का ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों ही पर समान रूप से अधिकार था। दोनों ही में इनकी रचनायें पूर्ण सफल हुई हैं।

(२) इन्होंने गद्य तथा पद्य दोनो ही में रचना की है।

(३) ये कठिन से कठिन शब्दों का प्रयोग करने में जितने प्रवीण थे उतने ही कुशल सरल से सरल शब्दों के प्रयोग करने में भी थे।

(४) हिन्दी में अतुकान्त छन्दों की रचना करने की प्रणाली इन्होंने ही चलाई।

(५) संस्कृत के छन्दों को खड़ी बोली में प्रयुक्त करने का एकमात्र श्रेय इन्हीं को है।

(६) यों तो इन्होंने अपने काव्य में नवों रसों का समावेश किया है परन्तु शृंगार, करुण और वात्सल्य रस का वर्णन बहुत ही प्रभावोत्पादक हुआ है।

(७) प्रेम की वियोगावस्था तथा माता की वात्सल्य–भावना की सुन्दर अभिव्यंजना करने में इन्हें अद्वितीय सफलता मिली है।

(८) इनकी रचनाओं में अलंकारों की योजना बड़ी ही सुन्दर बन पड़ी है।

(९) इनकी रचनाओं में माधुर्य तथा प्रसाद दोनों गुणों का समावेश अनुपम ढंग से किया गया है।

(१०) इनका प्रकृति-चित्रण बड़ा ही मनोरम तथा अनुपम है।

(११) इनका भाव-पक्ष उतना ही प्रबल है जितना कि कला-पक्ष।

(१२) इनकी भाषा इनके भावों का अनुगमन करती हुई चली है।

(१३) इनकी रचनाओं में भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिककाल की छाप स्पष्ट प्रतीत होती है।

(१४) इनकी रचनाओं में लोक-संग्रह का भाव प्रबल है।

(१५) इनकी रचनाओं में यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का सम्मिश्रण है।

**प्रश्न (१०)** नीचे लिखे अवतरणों की व्याख्या कीजिये:—

सूखती चाह-बेलि हरिआई,
दूध की मक्खियाँ बनीं माखें।
रस बहा चाँदनी निकल आई,
खिल गये कौल हँस पड़ीं आँखें॥

थिर नहीं होतीं थिरकती हैं बहुत,
हैं थिरकने में गतों को जाँचती।
काठ का पुतला ललकतों को बना,
आँख तेरी पुतलियाँ हैं नाचती॥
लालसा है रस बरसती ही रहें,
पर तुम्हारी आँख रिस से लाल है।
यह चमेली है खिलाना आग में,
यह हथेली पर जमाना बाल है॥

( बी० ए० परीक्षा १९५० का० वि० वि० )

उत्तर—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ ७१, ७२, ७३।

———

# १—मैथिलीशरण

**परिचयः**—राष्ट्रकवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त का जन्म श्रावण शुक्ल द्वितीय चन्द्रवार, सम्वत् १६४३ में चिरगाँव जिला झाँसी में हुआ। इनके पिता का नाम सेठ राम चरण था। ये पाँच भाई हैं। दो भाई इनसे बड़े और दो इनसे छोटे हैं। इनके छोटे भाई श्री सियाराम शरण गुप्त भी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि हैं। गुप्त जी के पूज्य पिता सेठ राम चरण जी राम के अनन्य भक्त थे और उन्हें हिन्दी काव्य से बड़ा प्रेम था अतएव उनके आदर्श की छाप उनके पुत्र पर भी पड़ी। पिता के प्रभाव से गुप्त जी की अभिरुचि शैशव-काल से ही हिन्दी काव्य की ओर हो गई थी अतएव घर पर ही शिक्षा प्राप्त कर स्वाध्याय द्वारा इन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा को चमत्कृत कर दिखाया। प्रारंभ में इनकी रचनायें कलकत्ते से निकलने वाले जातीय पत्र में प्रकाशित होती थीं पर आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आने पर इनकी रचनायें प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। आचार्य द्विवेदी जी की प्रेरणा एवं साहस से प्रभावित होकर गुप्त जी ने एक नवीन साहित्य की सृष्टि की और खड़ी बोली का आधार लेकर अपनी सारी रचनाओं को काव्य-प्रतिभा से चमत्कृत कर दिखाया। देश की स्वतंत्रता के संग्राम में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से इन्होंने भाग नहीं लिया पर इनके राष्ट्रीय विचारों और इनकी राष्ट्रीय रचनाओं से सशंकित होकर सन् १६४२ की क्रान्ति में अंग्रेजी सरकार ने इन्हें भी कारागृह में डाल दिया था।

**धर्म तथा स्वभावः**—गुप्त जी राम के उपासक हैं। हिन्दू धर्म के प्रति इनकी अटूट श्रद्धा है। हिन्दू समाज के नियन्त्रण तथा सुधार के ये समर्थक हैं। इन पर राष्ट्रीयता का विशेष प्रभाव पड़ा है। ये सामाजिक उत्थान को राष्ट्रीय चेतना की आधार-शिला मानते हैं। ये हिन्दू और हिन्दुस्तान के गायक हैं। समाजवाद, विश्व प्रेम, अछूतोद्धार, ग्राम्य-सुधार, नारी-उत्थान आदि सभी विषयों में इनकी रुचि रही है। गाँधीवाद से भी ये अधिक प्रभावित हुए हैं।

ये बड़े हँसमुख, मिलनसार और सहृदय तथा गंभीर प्रकृति के सभा-समाज प्रिय व्यक्ति हैं। इनकी पोशाक धोती, कुर्ता, टोपी, या साफा मात्र है। रहन सहन तथा पोशाक ही नहीं बल्कि सभी बातों में ये सादगी तथा सरलता की मूर्ति हैं।

**सम्मानः**—'साकेत' महाकाव्य पर गुप्त जी को मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ है और सन् १६४६ में आगरा विश्वविद्यालय ने इन्हें डी० लिट० की उपाधि प्रदान की है।

**रचनाएँ :**—'गुप्त' जी की रचनाएँ दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं १—मौलिक २—अनूदित। अनूदित ग्रन्थों में बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य की कृतियाँ हैं। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं।

**(मौलिक)** १—पद्य-प्रबन्ध, २—भारत-भारती, ३—पत्रावली, ४—पंचवटी ५—रंग में भंग ६—जयद्रथ-वध ७—शकुन्तला ८—वैतालिक ९—किसान १०—अनघ ११—स्वदेश-संगीत १२—हिन्दू १३—शक्ति १४—पत्रावली १५—साकेत ( महाकाव्य ) १६—सैरन्ध्री १७—वक-संहार १८—वन-वैभव १६—गुरुतेगबहादुर २०—झंकार ( रहस्यवाद-प्रधान ) २१—सिद्धराज २२—यशोधरा २३—द्वापर २४—नहुष २५—मौर्यविजय २६—विकट-भट २७—मंगलघट २८—त्रिपथगा।

**( अनूदित )** वीरांगना, विरहणी व्रजांगना, प्लासी का युद्ध, मेघनाथ-वध ( बंगला से ) स्वप्न वासवदत्ता ( संस्कृत से ) कवि फिट्सजेरल्ड की रुबाइयों का अनुवाद ( अंग्रेजी से )।

**भाषाः**—गुप्त जी के काव्य की भाषा खड़ी बोली है। इनमें विचारों की प्रौढ़ता तथा भावों की स्थिरता है। इनकी भाषा निरंतर परिमार्जित तथा प्रांजल होती गई है तथा खड़ी बोली के संस्कार और विकास में इनका बड़ा हाथ रहा है। शुद्ध, संस्कृत-प्रधान, विदेशी शब्दों से मुक्त अपने तत्सम् रूप में, किन्तु सरल, सरस प्रसाद युक्त, व्याकरण संयत्, मँजी हुई मुहावरेदार टकसाली भाषा का जैसा इन्होंने अपने काव्य में प्रयोग किया है वैसा अन्य कवियों में कम मिलता है। संस्कृत-प्रधान होते हुए भी इनकी भाषा सुबोध और स्पष्ट है तथा संस्कृत से बोझिल नहीं होने पाई है।

**शैली:**—श्री मैथिलीशरण जी गुप्त हिन्दी-काव्य क्षेत्र में प्रबन्धकार, गीतिकार तथा नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके काव्य में निम्नलिखित शैलियों का आभास मिलता है।

**१—उपदेशात्मक शैली:**—इस शैली के अन्तर्गत् हिन्दू, गुरुकुल, भारत-भारती, रंग में भंग, बक-संहार तथा जयद्रथ-वध आदि रचनायें आती हैं। इनमें प्राचीन आख्यानों के आधार पर वर्तमान वातावरण के अनुकूल पात्रों के मुख से निकले हुए उपदेश बड़े ही मार्मिक, गम्भीर और अनुकरणीय हैं।

**२—गीति-काव्य-शैली:**—इस शैली का परिचय इनकी गीत-प्रधान पुस्तिका 'झंकार' से मिलता है। गुप्त जी ने रहस्यवाद तथा छायावाद के ढंग पर भी गीत की रचना की है। इनके गीत दो वर्ग में विभाजित किये जा सकते हैं:—( १ ) अलंकृत ( २ ) साधारण प्रवाह ।

**३—गीति नाट्यात्मक शैली:**—इस शैली के अन्तर्गत् अनघ, तिलोत्तमा, चंद्रहास तथा यशोधरा, आदि गुप्त जी की रचनायें आती हैं। इनमें कथनोपकथन पद्य में हैं शेष गद्य में हैं ।

**(४) प्रबन्ध शैली:**—इस शैली के दो भेद किये जा सकते हैं (१) खंड-प्रबन्ध (२) महा-प्रबन्ध। 'साकेत' महाकाव्य अथवा महा-प्रबन्ध शैली में हैं और शेष रचनायें खंड-काव्य अथवा खंड-प्रबन्ध शैली में हैं। पंचवटी गुप्त जी का सबसे अधिक सफल खण्ड काव्य है।

**छन्द:**—गुप्त जी के काव्य में छन्दों का प्रयोग विस्तृत रूप से हुआ है । इनकी रचनाओं में तीन प्रकार के छन्दों की प्रधानता है ( १ ) तुकान्त ( २ ) अतुकान्त और ( ३ ) गीति। साकेत का प्रारंभ पीयूष वर्णन छन्द से किया गया है। आर्या, गीतिका, हरिगीतिका, शार्दूल-विक्रीड़ित, द्रुतविलम्बित, त्रैलोक्य आदि छन्दों को इनकी रचना में विशेष स्थान प्राप्त है, साथ ही दोहा, सवैया, घनाक्षरी आदि भी रचना में स्थान पाने से वंचित नहीं रह सके हैं।

**रस:**—'गुप्त' जी ने अपनी रचनाओं में शृंगार, करुण, वीर, रौद्र, वीभत्स, हास्य, शान्त और वात्सल्य रस का अच्छा निर्वाह किया है । शृंगार के संयोग और वियोग दोनों रूपों का चित्रण करने में इन्हें विशेष सफलता मिली है।

वियोग का उत्कृष्ट प्रयोग साकेत और यशोधरा में मिलता है। साकेत में राम-वन-गमन, दशरथ-मरण, लक्ष्मण–मूर्छा आदि स्थलों पर करुण रस की सुन्दर झाँकी देखने को मिलती है। 'यशोधरा' में वियोग के साथ साथ वात्सल्य रस की धारा उमड़ पड़ी है। पंचवटी और द्वापर में शृंगार-रस की झाँकी दर्शनीय है। गुप्त जी के नवीन काव्य में समय की माँग के अनुकूल शान्त रस विद्यमान है।

**अलंकार:**—'गुप्त' जी ने अपने काव्य में शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों को स्थान दिया है। इनमें अनुप्रास, छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, श्लेष, पुनरुक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, विभावना, रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्राधान्य है।

**काव्यगत विशेषताएँ:**—( १ ) गुप्त जी के काव्य में मानवतावाद का समर्थन तथा मानव-सन्देश निहित है।

( २ ) इनके काव्य से साहित्यिक तथा सामाजिक चेतना की प्रेरणा मिलती है।

( ३ ) इनकी रचनाओं में स्वदेश के प्रति अभिमान और अनुराग का अच्छा रूप देखा जाता है।

( ४ ) इन्होंने वीर और करुण रस लिखने में विशेष सफलता प्राप्त की है। साथ ही शृंगार और वात्सल्य आदि रसों का अपने काव्य में उत्तम ढंग से समावेश किया है।

( ५ ) अपने युग की सामाजिक और राजनैतिक भावनाओं का इन्होंने अपने काव्य में बड़े ही सुन्दर ढंग से समावेश किया है।

( ६ ) इन्होंने खड़ी बोली की कविता की प्रणालियों के क्रमिक विकास को अपनी रचनाओं में ग्रहण करके अपनी भाषा का बराबर परिमार्जन किया है तथा इनकी भाषा उत्तरोत्तर निखरती गई है।

( ७ ) इनकी रचनायें स्वाभाविक, मनोरम और हृदयस्पर्शी हैं।

( ८ ) विवेक और बौद्धिक विभूति इनके काव्य का आधार है, कोरी भावुकता इन्हें पसन्द नहीं है।

( ९ ) प्राचीन चरित्रों के द्वारा इन्होंने आधुनिक समस्याओं का संकेत और समाधान किया है।

( १० ) चरित्र-चित्रण, रोचक-संवाद, नूतन प्रसंगों की कल्पना में इन्हें विशेष सफलता मिली है।

( ११ ) ये सामंजस्यवादी कवि हैं, इनके हृदय में महत्व के प्रति श्रद्धा है, प्राचीन के प्रति विश्वास और नवीन के प्रति उत्साह है।

( १२ ) शब्द योजना, वाक्य विन्यास, संस्कृत पद्धति की समास पूर्ण शैली ओज, प्रसाद और माधुर्य इनकी भाषा की विशेषता है।

( १३ ) खड़ी बोली को गौरव के आसन पर बिठाने का सर्वाधिक श्रेय इन्हें तथा इनकी रचनाओं को है।

( १४ ) आधुनिक हिन्दी काव्य का पूर्ण विकास इनकी रचनाओं में है।

( १५ )इनकी प्रतिभा आधुनिक साहित्य में सर्वोपरि है तथा इनका काव्य गौरव हिन्दी की इस शताब्दी के कवियों में सर्वश्रेष्ठ है।

**नवीन हिन्दी काव्य में गुप्त जी का स्थानः**—गुप्त जी द्विवेदी युग के कवियों में अग्रगण्य हैं। नवीन हिन्दी काव्य में इनका प्रमुख स्थान है। नवीन हिन्दी काव्य का पूर्ण विकास इनकी रचनाओं में है। ये सही माने में राष्ट्रीय कवि हैं और इनकी रचनायें राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत हैं। इनकी 'भारत-भारती' पूरे एक युग तक हिन्दी जगत् में गूँजती रही और राष्ट्रीय भावना को बल देती रही। उसमें देश का अतीत, वर्तमान और भविष्य चित्रित कर इन्होंने जागरण का सन्देश दिया। 'जयद्रथ-वध' और 'रंग में भंग' इनके वीर रस प्रधान किन्तु करुण भावनाओं से अभिव्यंजित काव्य हैं। 'साकेत' 'द्वापर' और 'यशोधरा' में इनके आध्यात्मिक तत्व विकसित हुए हैं। इनकी कविता बराबर विकासोन्मुख रही है। इनकी रचनाओं में स्वदेश के प्रति अभिमान और अनुराग का उत्तम रूप देखने को मिलता है। इनके काव्य में वीर पुरुषों और सन्नारियों का सुन्दर चरित्र गठन है जिससे कर्तव्य-च्युत समाज को एक विशेष प्रेरणा प्राप्त होती है। इनके काव्य में मानव जीवन-सामाजिक समस्या और राष्ट्रीय जीवन इन तीनों का सुन्दर सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है। इनकी काव्यानुभूति में सांप्रदायिकता का नाम भी नहीं है। इनकी साहित्य-सेवा बहु मुखी है तथा इनकी काव्यानुभूति महान है। इनकी रचनाओं में व्यक्तिवाद से लेकर समाजवाद और राष्ट्रवाद तक का क्रम पूर्वक समाधान मिलता है। इनकी भाषा, शैली और कथा-वस्तु हृदय-स्पर्शिणी

है। संक्षेप में इनकी प्रतिभा आधुनिक साहित्य में सर्वोपरि है। इनका काव्य-गौरव नवीन हिन्दी-काव्य में सर्वश्रेष्ठ है।

**समीक्षा:**—श्री मैथिलीशरण जी गुप्त का प्रारंभिक काव्य 'भारत-भारती' है। इसमें हिन्दू जाति के उद्बोधन का संदेश निहित है। हिन्दू समाज की पतनावस्था का चित्र खींचते हुए गुप्त जी कहते हैं कि—

हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिल कर ये समस्यायें सभी॥

ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि वर्ग को संबोधित करके गुप्त जी कहते हैं कि—

हे ब्राह्मणों फिर पूर्वजों के तुल्य तुम ज्ञानी बनो।
भूलो न अनुपम आत्म गौरव धर्म के ध्यानी बनो॥
क्षत्रिय सुनो अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो।
निज देश को जीवन सहित तन-मन तथा धन भेंट दो॥

गुप्त जी ने अपने काव्य में समाज-सेवा के महत्व को विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। उदाहरणार्थ उनकी प्रसिद्ध रचना 'साकेत' से कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। भरत जी शत्रुघ्न से अपनी साधुता को निन्दनीय ठहराते हुए कहते हैं कि—

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में।
सिंधु पार वह विलख रही है व्याकुल मन से॥
बैठा हूं मैं भण्ड साधुता धारण करके।
अपने मिथ्या भरत नाम को धारण करके॥

× × ×

मेटूँ अपने जड़ी भूत जीवन की लज्जा।
उठो इसी क्षण शीघ्र करो सेना की सज्जा॥

गुरु वशिष्ठ जी श्रीरामचन्द्र जी को समाज सेवा का आदेश देते हुए कहते हैं कि—

मुनि-रक्षक सम करो विपिन में वास तुम ।
मेटो तप के विघ्न और सब त्रास तुम ॥

स्वयं श्री रामचन्द्र जी समाज-सेवा के अपने ध्येय को अपनी वाणी द्वारा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि:—

चल दंडक वन में शीघ्र निवास करूँगा ।
निज तपोधनों के विघ्न विशेष हरूँगा ॥
उच्चारित होती चले वेद की वाणी ।
गूँजे गिरि कानन सिंधु पार कल्याणी ॥

इतना ही नहीं और भी—

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया ।
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया ॥
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ॥

'यशोधरा' में भी गौतम के शब्दों में कवि की वाणी समाज-सेवा के आदर्श को घोषित कर उठी है:—

हे कोक न कर तू रोक-टोक,
पथ देख रहा है आर्तलोक, ।
मेटूँ मैं उसका दुःख शोक ॥
बस लक्ष्य यही मेरा ललाम ।
ओ क्षण भंगुर भव राम राम ।

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त की समस्त रचनाएँ राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत हैं। उन पर महात्मा गांधी के सार्वभौम सिद्धान्तों का भी अधिक प्रभाव पड़ा है। अपनी रचना 'वक-संहार' में प्रजातंत्र का सुन्दर चित्र खींचते हुए वे कहते हैं कि:—

राजा प्रजा का पात्र है—वह एक प्रतिनिधि मात्र है ।
यदि वह प्रजापालक नहीं तो त्याज्य है ।

हम दूसरा राजा चुनें, जो सब तरह सबकी सुने ।
कारण प्रजा का ही असल में राज्य है ।

गुप्त जी भारत-भूमि और भारतीय संस्कृति के पक्के उपासक हैं । उसकी प्रशंसा करते हुए वे कभी नहीं अघाते । भारत वर्ष की महिमा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि—

जय भारत भूमि भवानी ।
अमरों ने भी तेरी महिमा वारंबार बखानी ॥

गुप्त जी से भारत की दुर्दशा देखी नहीं जाती और वे इसके उद्धार के लिये भगवान से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि:—

हा राम ! हा हा कृष्ण ! हा हा नाथ ! हा रक्षा करो ।
मनुजत्व दो हमको दयामय ! दुःख दुर्बलता हरो ॥

गुप्त जी की दृष्टि में कवि का कार्य केवल मनोरंजन-मात्र के लिये कविता करना नहीं है बल्कि उसकी रचना में राष्ट्र-जागरण का सन्देश निहित होना चाहिये । अपने दृष्टिकोण को उन्होंने केवल एक पंक्ति में ही व्यक्त कर दिया है यथा:—

'केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिये ।'

देश के लिए, हिन्दुत्व के लिए, तथा हिन्दू जाति के लिए मर मिटने का सन्देश देते हुए गुप्त जी कहते हैं कि:—

रखो हिन्दूपन का गर्व, ऐक्य साधन का सर्व ।
हिन्दू, निज संस्कृति का त्राण, करो भले ही दे दो प्राण ॥

गुप्त जी प्रकृति वर्णन में भी किसी से पीछे नहीं हैं इन्होंने प्रकृति का वर्णन बड़े ही उल्लासपूर्ण ढंग से किया है तथा चित्रात्मक शैली के आधार पर प्रकृति का बाह्य रूप बड़ी सूक्ष्मता के साथ पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दिखाया है । प्रमाण के लिए इनके खंड-काव्य 'पंचवटी' की निम्न पंक्तियाँ ही पर्याप्त हैं:—

चारु चंद्र की चञ्चल किरणें खेल रही हैं जल-थल में ।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अवनि और अम्बरस्तल में ॥

संवेदनशील भावना से युक्त प्रकृति-चित्रण के अनुपम नमूने 'साकेत' में यत्र-तत्र भरे पड़े हैं। कहीं कहीं अलंकारात्मक प्रकृति-चित्रण करने के लोभ का गुप्त जी संवरण नहीं कर पाये हैं यथाः—

रत्नाभरण भरे अंगों में, ऐसे सुन्दर लगते थे।
ज्यों प्रफुल्ल वल्ली पर सौ सौ जुगनू जगमग करते थे॥

यों तो गुप्त जी के काव्य में ओज, प्रसाद और माधुर्य तीनों गुण पाये जाते हैं पर प्रसाद गुण की मात्रा का आधिक्य है यथाः—

सखि निरख नदी की धारा।
ढलमल ढलमल चंचल चंचल झलमल झलमल तारा॥
निर्मल जल अंतस्तल भरके, उछल उछल कर छलछल करके।
थल थल तरके कल कल धरके बिखराती है पारा॥

गुप्त जी की भाषा में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है इतना ही नहीं मुहावरों का प्रयोग करने में भी ये नहीं चूके हैं यथाः—

ठोक कर अपना क्रूर कपाल,
जताकर यही कि फूटा भाल।
और जमाना चाहा उसने,
उनके अधिकारों में पाँव।

संक्षेप में गुप्त जी आधुनिक काल के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने छन्द, रस, अलंकार योजना अपने काव्य में व्यवस्थित ढंग से की है। इन्होंने अपनी भिन्न-भिन्न रचनाओं में भिन्न-भिन्न शैलियों का अनुसरण किया है। इन्होंने नारी पात्रों का चित्रण बड़ी सहृदयता तथा उदारता के साथ किया है। इनके काव्य में देश की विभिन्न समस्याओं, हिन्दू मुस्लिम एकता, हरिजन-आन्दोलन, स्वदेशी वस्तुओं के प्रति अनुराग आदि पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। गुप्त जी पर छायावाद तथा रहस्यवाद का भी प्रभाव पड़ा है। इन्होंने साम्यवाद, मर्यादावाद, मानवतावाद, उपयोगिता वाद आदि को भी अपनाया है। ये हिन्दू और हिन्दुस्तान के सच्चे गायक और आदर्श राष्ट्र-कवि हैं।

**तुलनात्मक समीक्षाः**—तुलनात्मक समीक्षा की दृष्टि से गुप्त जी की समता 'हरिऔध' जी से की जा सकती है। आधुनिक काल के कवियों में 'हरिऔध' जी तथा गुप्त जी को वही स्थान प्राप्त है जो प्राचीन काल के कवियों में सूरदास तथा तुलसीदास को प्राप्त है। अब यहाँ हम 'हरिऔध' जी तथा गुप्त जी के काव्यों की तुलनात्मक विशेषता प्रकट करेंगे।

| मैथिली शरण गुप्त | श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' |
| --- | --- |
| ( १ ) गुप्त जी का काव्य-क्षेत्र केवल खड़ी बोली तक ही सीमित है। | ( १ ) 'हरिऔध' जी ने ब्रज भाषा तथा खड़ी बोली दोनों में सफल काव्य रचना की है। |
| ( २ ) गुप्त जी की काव्य-प्रतिभा केवल पद्यरचना तक ही सीमित है। | ( २ ) 'हरिऔध' जी ने पद्य तथा गद्य दोनों में रचना करके अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। |
| ( ३ ) गुप्त जी में राष्ट्रीय भावना प्रधान तथा भक्ति भावना गौण है। | ( ३ ) 'हरिऔध' जी में भक्ति भावना प्रधान और राष्ट्रीय भावना गौण है। |
| (४)गुप्त जी ने अपने काव्य के विषय के लिए प्राचीन काल को चुना है और ईश्वरीय-आस्था विषयक उनके विचार भक्त कालीन जैसे हैं। | ( ४ ) 'हरिऔध' जी ने भी अपने काव्य का विषय प्राचीन काल का रक्खा है पर उनकी ईश्वर विषयक धारणा गुप्त जी की अपेक्षा अधिक विस्तृत तथा उदार है। |
| ( ५ ) गुप्त जी साकार राम के अनन्य भक्त हैं। | ( ५ ) 'हरि औध' जी ने ईश्वर को साकार रूप में स्वीकार नहीं किया है। |
| ( ६ ) गुप्त जी राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने वाले हैं। | ( ६ ) 'हरिऔध' जी सुधारक तथा उपदेशक हैं। |
| ( ७ ) गुप्त जी ने हिन्दी भाषा का केवल दो युग द्विवेदी-युग तथा वर्तमान-युग देखा है। | ( ७ ) 'हरि औध' जी ने हिन्दी भाषा का भारतेन्दुकाल, द्विवेदीकाल तथा वर्तमान काल देखा था। |

(८) गुप्त जी केवल द्विवेदी-काल से ही अधिक प्रभावित रहे।

(९) गुप्त जी की भक्ति भावना भक्तकालीन कवियों की भाँति है।

(१०) गुप्त जी जीवन में अधिक स्वतन्त्र रहे।

(११) गुप्त जी ने अपनी भाषा में संस्कृत कोमलकान्तपदावली को अपनाया है।

(१२) गुप्त जी ने अपनी रचना में समास योजना का प्रयास नहीं किया है

(१३) गुप्त जी ने अपने पौराणिक प्रबन्धों में भावों की अभिव्यंजना करने के लिये पौराणिक तथ्यों को अपनाया है।

(१४) गुप्त जी का प्रकृति चित्रण मनोहारी और हृदयस्पर्शी है तथा उन्होंने भावों की ओर विशेष ध्यान दिया है।

(१५) चरित्र-चित्रण की दृष्टि से गुप्त जी को एक कुशल चित्रकार कहा जा सकता है।

(१६) गुप्त जी की रचनाओं में राष्ट्रीय भावनाओं का आधिक्य है और उनके पौराणिक काव्यों में भी गांधीवाद की स्पष्ट झलक मिलती है।

(१७) गुप्त जी राष्ट्रीय कवि हैं। समाज संस्कार उनकी राष्ट्रीयता का एक अंग मात्र है।

(८) 'हरिऔध जी पर रीतिकालीन परम्पराओं का अत्यधिक प्रभाव था।

(९) 'हरिऔध' जी की विचार-धारा पर सन्त कवियों का प्रभाव पड़ा है।

(१०) 'हरिऔध' जी सरकारी नौकर रह चुके हैं।

(११) 'हरिऔध' जी ने क्लिष्ट से क्लिष्ट और सरल से सरल दोनों प्रकार की भाषाओं का प्रयोग किया है।

(१२) 'हरिऔध' जी ने कहीं कहीं अपनी रचना में समासों का ताँता लगा दिया है।

(१३) 'हरिऔध' जी ने अपने पौराणिक प्रबन्धों में युगीन तथ्यों द्वारा मौलिकता उत्पन्न कर दी है।

(१४) 'हरिऔध' जी का प्रकृति-चित्रण बाह्य तथा मन को उबा देने वाला है।

(१५) 'हरिऔध' जी का चरित्र-चित्रण अधिक सशक्त और विस्तृत है।

(१६) 'हरिऔध' जी की रचनाओं पर किसी वाद विशेष की छाया नहीं है और न तो उनमें राष्ट्रीय जागरण की स्पष्ट झलक ही मिलती है।

(१७) 'हरिऔध' जी एक स्वतंत्र चेता कवि हैं। सामाजिक संस्कार उनका प्रधान लक्ष्य है।

( १८ ) गुप्त जी ने साम्यवाद, मर्यादावाद, मानवतावाद, उपयोगितावाद, रहस्यवाद तथा छायावाद सभी को अपनाया है।

( १८ ) 'हरिऔध' जी को केवल प्रयोगवादी सफल कलाकार कहा जा सकता है।

( १६ ) काव्य-रचना के परिमाण की दृष्टि से गुप्त जी की रचनाओं की संख्या अधिक है तथा उनकी काव्य-प्रतिभा अधिक विस्तृत है।

( १६ ) 'हरिऔध' जी ने परिमाण में उतनी रचना नहीं की है पर काव्य कला का अच्छा परिचय दिया है।

( २० ) गुप्त जी ने मुहावरों का न्यूनतम प्रयोग किया है।

( २० ) 'हरि औध' जी का मुहावरों पर एकाधिपत्य है। उन्होंने मुहावरों की लड़ियाँ जोड़ दी हैं।

## राम की वन-यात्रा

**संदर्भः**—'राम की वन-यात्रा' शीर्षक काव्य राष्ट्र-कवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त के 'साकेत' महाकाव्य से उद्धृत है। इस अवतरण में कवि ने राम के वन गमन का चित्र खड़ा किया है। कैकेयी ने राजा दशरथ से वचन लेकर राम के वनवास का आदेश दिलाया और मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी ने पिता की आज्ञा को सहर्ष शिरोधार्य किया। इधर राम वन जाने की तैयारी करते हैं, उधर प्रजा इस समाचार से शोकाकुल होकर विह्वल हो उठती है, वह नहीं चाहती कि उसे राम के वियोग का कष्ट सहन करना पड़े, फिर राम अकेले दशरथ या कैकेयी के ही तो सर्वस्व नहीं थे उनपर प्रजा का भी उतना ही अधिकार था जितना उनके माता-पिता और भाई-बन्धु का था। दशरथ ने कैकेयी से वचन बद्ध होकर राम को भले ही वनवास का आदेश दे दिया था पर प्रजा ने तो राम को राज्य-त्याग कर बाहर वन में जाने की अपनी सम्मति नहीं प्रदान की थी फिर राम को प्रजा की इच्छा के विरुद्ध वन जाने का क्या अधिकार था? आज का वर्तमान लोकतंत्र प्रजा के मत को विशिष्टता प्रदान करता है केवल सैद्धान्तिक रूप में और

व्यावहारिक रूप में इस सिद्धान्त का पालन ठीक उसी रूप में होता है जिस प्रकार कि 'हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और'। बस इसी समस्या को दृष्टि में रखकर कवि ने 'साकेत' के अन्तर्गत राम की वन-यात्रा का समावेश किया है। प्राचीन काल में हमारे देश में राजतंत्र के अन्तर्गत प्रजा के मत का जितना आदर होता था आज वर्तमान युग में लोकतंत्र के अंतर्गत उतना संभव नहीं। आज तो बात-बात में प्रजा के मत की अवहेलना कर दी जाती है। बस इसी का स्पष्टीकरण कवि ने इस अवतरण में किया है।

पितृ-आदेश से राम का वन-गमन की तैयारी करना, वन-गमन के समाचार से सारे नगर में शोक की लहर छा जाना, प्रजा का दशरथ के आदेश के विरुद्ध विद्रोह करके राम के मार्ग में लेटकर सत्याग्रह करना तथा राम का प्रजा को समझाते हुए उनसे मार्ग छोड़कर उठ जाने का आग्रह करना आदि का समावेश इस अवतरण में करके कवि ने तुलसीदास के राम चरित मानस में वर्णित 'राम-वन-गमन' से बिल्कुल भिन्न इस 'राम की वन-यात्रा' को दिखाने का प्रयत्न किया है। इसमें आधुनिकता का पुट पाक कवि ने बड़े ही कौशल से किया है जो पढ़ते ही बनता है। राम की मर्यादा के साथ ही साथ प्रजा का महत्व भी स्पष्ट रूप से निखर उठा है। राजा और प्रजा के संबंध के साथ साथ कवि ने राम के जन्म-भूमि के अलौकिक प्रेम का भी दिग्दर्शन पाठकों को सहज रूप से करा दिया है। जन्मभूमि की अलौकिक सत्ता का सरस वर्णन, प्रकृति का सरस चित्रण, लक्ष्मण के चरित्र की विशालता, गंगा का मनोहारी रूप, गुहराज की राम-भक्ति आदि का कवि ने सरस शैली में वर्णन करके इसे आधुनिकता के रंग में रंग दिया है।

## (पृष्ठ-१८)

**शब्दार्थ:**—वनदेवीगण=वन के निवासियों से तात्पर्य है। पर्व=त्यौहार। हर्ष=प्रसन्नता। गर्व=अभिमान। जाना, जाना,=विदित हुआ=ज्ञात हुआ। सुख-साज=सुख के सामान=सुख के साज।

**व्याख्या:**—वनदेवी गण ················सुख-साज सजाये जा रहे।

राजा दशरथ द्वारा राम के बनवास की आज्ञा के समाचार से नगरवासियों

को जितना ही महान कष्ट हुआ, उनमें जितना ही अधिक दुःख और विषाद की व्याप्ति हुई ठीक इसके विपरीत उतनी ही अधिक प्रसन्नता और हर्ष की व्याप्ति बन वासियों के हृदय में हुई क्योंकि यदि राम को वनवास न मिलता तो वनवासी उनके दर्शन से वंचित रह जाते। इसी भावना को राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरण जी गुप्त इस पद की पंक्तियों में व्यक्त करके वनदेवियों से प्रश्न करते हैं कि:—हे वनदेवी गण, ! आज कौन सा ऐसा त्यौहार या उत्सव का दिन आ गया है जिस पर इतनी अधिक प्रसन्नता और स्वाभिमान का भाव व्यक्त किया जा रहा है ? ( इसके बाद पुनः अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं अपने हृदय से पाकर राष्ट्रकवि कहते हैं ) हाँ, हाँ, ज्ञात हो गया आज श्रीरामचन्द्र जी वन को पधार रहे हैं इसीलिये हर्षोत्पादक सुख के साधन जुटाये जा रहे हैं ( सुख के साज सजाये जा रहे हैं )।

**शब्दार्थ:**—भानु-मूर्ति वाली ध्वजा=सूर्य कुल वाली पताका। राजरथ=राज्य का रथ=राजसीरथ। समागत=सम्मुख आते हुए।

**व्याख्या:**—तपस्वियों के योग्य··············किया श्रीराम ने।

तपस्वियों के लिए उपयुक्त वस्तुओं से सुशोभित तथा अपने सूर्य-कुल-वंशी पताका को फहराते हुए प्रमुख राज्य-रथ को सम्मुख आते हुए देखकर श्रीरामचन्द्र जी ने गुरु वशिष्ठ को पुनः प्रणाम किया।

**शब्दार्थ:**—प्रभु—मस्तक=श्रीराम के मस्तक। गुरु—पद=गुरुके चरण=वशिष्ठजी के पैर। छुए=स्पर्श हुए। चोटी तक=शिखा तक=सर तक। हृष्ट=उठा हुआ=प्रसन्न। रोम=रोवाँ। गद् गद=प्रसन्न। सुगौरव युत=गौरवशाली। सुत=पुत्र। वल्कल-गहन=वल्कल वस्त्र धारण करके।

**व्याख्या:**—प्रभु-मस्तक से गये···········शिष्य से सुत हुए।

श्रीराम चन्द्र जी के मस्तक से गुरु वशिष्ठ जी का चरण जैसे ही स्पर्श हुआ अर्थात् ज्यों हीं श्री रामचन्द्र जी ने अपने गुरु वशिष्ठ जी को साष्टांग दंडवत् किया त्योंहीं गुरु वशिष्ठ जी का हृदय रोमांच हो उठा और प्रसन्नता की लहर पैर से सरतक ( नीचे से ऊपर अर्थात संपूर्ण शरीर में ) व्याप्त हो गई। वशिष्ठ जी ने श्रीराम चन्द्र जी से कहा कि हे राम ! आज हम अच्छे गौरव से परिपूर्ण तथा

कृत कृत्य हो गये अर्थात् तुम्हारे जैसे शिष्य को पाकर हमारा गुरुत्व (गुरु-पद) धन्य हो गया। हे पुत्र! तुमने आज वल्कल वस्त्र धारण करके शिष्य-पद से पुत्र पद प्राप्त कर लिया है अर्थात तुम आज तपस्वी के पुत्र समान शोभायमान लग रहे हो।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद की प्रथम पंक्ति में कवि ने श्री राम चन्द्र जी के लिए 'प्रभु' शब्द का प्रयोग करके अपनी रामोपासना के भाव का अच्छा प्रमाण दिया है तथा पद की अंतिम पंक्ति में 'शिष्य से सुत हुए" के प्रयोग द्वारा यह स्पष्ट संकेत कर दिया है कि वशिष्ठ जी तो वनवासी थे ही वल्कल वस्त्र धारण करके श्री रामचन्द्र जी भी वनवासी हो गये।

**शब्दार्थ:**—इष्ट=अभिलषित=वांछित। प्रतीत=विदित=प्रसन्न। अरिष्ट=आपत्ति=अविनाशी=दृढ़=स्थिर=अशुभ। त्रिकालज्ञ=तीनों लोकों से परिचित=भूत वर्तमान और भविष्य काल जानने वाले। भविष्य चिह्न=भविष्य का संकेत। ज्ञात से =विदित से।

**व्याख्या:**—प्रभु बोले····················मुझे भी ज्ञात से।

श्री रामचन्द्र जी ने गुरु वशिष्ठ को उत्तर दिया कि मुझको यही (वल्कल वस्त्र धारण करना) अभिलषित है क्योंकि मेरे पिता दशरथ जी के लिये यही कल्याणकारी प्रतीत हुआ। भाव यह है कि—यदि मेरे बनवास से मेरे पिता को आत्म-संतोष है तो मैं सहर्ष इस कार्य को सवीकार करता हूँ। इसके वाद श्री रामचन्द्र जी ने वशिष्ठ जी से कहा कि—आप भूत वर्तमान तथा भविष्यत-तीनों कालों का हाल जानने वाले हैं अतएव आपकी वातों से मुझे भी भविष्य का संकेत मिल रहा है अर्थात् मेरे बनवास से ही भविष्य उज्ज्वल प्रतीत हो रहा है। भाव यह है कि-राम का बनवास ही राक्षसों का विनाश कर धर्म का स्थापन कर सकने में समर्थ होगा।

**शब्दार्थ:**—व्याकुल=दुखी। प्रजा-परिवार=प्रजा तथा कुटुम्ब के लोग। भार=बोझ=उत्तरदायित्व। सही=ठीक ठीक=पुत्रवत। प्रथम याचना=पहली माँग।

**व्याख्या:**—जो हो व्याकुल····················प्रथम याचना है यही।

श्री रामचन्द्र जी ने गुरु वशिष्ठ से कहा कि चाहे जो हो अर्थात् चाहे शिष्य

समझें या वल्कल वस्त्रधारी होने के कारण पुत्र मानें पर इतना ध्रुव सत्य है कि मेरे वनवास के कारण मेरी सारी प्रजा तथा सारा कुटुम्ब दुखी है अतएव उनकी देख रेख तथा कष्ट निवारण का सब भार आपके ऊपर है। मेरी आप से यही प्रार्थना है कि आप ऐसी व्यवस्था करें कि जिससे मेरी माँ मुझे पुनः सच्चे रूप में देख सकें। अर्थात् मेरे लिए मेरी माता के हृदय में स्नेह की भावना बराबर बनी रहे।

**शब्दार्थः**—महा=महान। व्रतनिष्ठ=दृढ़ संकल्प वाले। युग नेत्र=दोनों आँखें। वरिष्ठ=श्रेष्ठ=महर्षि।

**व्याख्याः**—भाव देखा.........................वरिष्ठ वशिष्ठ के।

दृढ़ संकल्प वाले श्री रामचन्द्र जी के अनुपम भाव को देख कर महर्षि वशिष्ठ जी के दोनों नेत्र आँसुओं से भर गये।

( पृष्ठ-१९ )

**शब्दार्थः**—वत्स=पुत्र। कल्याण=शुभ=लाभ। देव-कार्य=देवताओं का काम =पुण्य कार्य। उदित=उदय=उत्पन्न। क्षोभ-स्पर्श=पश्चात्ताप का होना।

**व्याख्याः**—कहा—उन्होंने.........................क्षोभ-स्पर्श ह ।

गुरु वशिष्ठ ने श्री रामचन्द्र जी से कहा कि हे वत्स! मैं अभी तुम्हें शिष्य रूप में ही देखना चाहता हूँ अर्थात् तुम्हारे वनवास को उचित नहीं समझता पर तुम्हारे इसी जीवन से जग का कल्याण है। इसी के द्वारा देवताओं का कार्य ( राक्षसों का विनाश ) सिद्ध होगा और उच्च आदर्श की उत्पत्ति होगी। अतएव तुम्हारे इस कार्य से मुझे पश्चात्ताप करना उचित नहीं है। भाव यह है कि राम के वनवास पर पश्चात्ताप करना अज्ञानता है।

**शब्दार्थः**—मुनि-रक्षक-सम=मुनियों की रक्षा करने वालों के समान। विपिन=वन। वास=रहना=निवास। मेटो=दूर करो। तप=तपस्या। विघ्न=बाधा। त्रास=भय=कष्ट। भूमिका भार=जगत कीउत्पीड़ा=संसार का कष्ट। लभ्य=श्रेष्ठ= प्राप्य=ओजस्वी। वन्य चरों को=वन में रहने वालों को।

**व्याख्या:**—मुनि-रक्षक-सम..............सभ्य तुम ।"

गुरु वशिष्ठ ने श्री रामचन्द्र जी के कर्तव्य का निर्देश करते हुए कहा कि—तुम मुनियों के रक्षक के समान जंगल ( वन ) में निवास करो। और तपस्या की सभी बाधाओं और कष्टों को दूर करो। आज भाग्यवश तुम संसार को प्राप्त हुए हो अतएव अपने प्रताप से वन में रहने वाले असभ्य व्यक्तियों को आर्यों के समान सभ्य बना दो।

**शब्दार्थ:**—उदयाचल=पुराण के अनुसार पूर्व दिशा का एक पर्वत जहाँ से सूर्य उदय होता है। सूर्य तुल्य=सूर्य के समान। रुदित=रुदन करते हुए=रोते हुए। जनों=लोगों=व्यक्तियों। भले=भली भाँति=अच्छी तरह से।

**व्याख्या:**—"जो आज्ञा" कह..............राम वन को चले।

गुरु वशिष्ठ जी के आदेश को शिरोधार्य करके श्री रामचन्द्र जी आगे बढ़े। जिस प्रकार सूर्य उदयाचल पर्वत पर चढ़ता है उसी प्रकार श्री रामचन्द्र जी रथ पर सवार हुए। रोते हुए व्यक्तियों को वहीं छोड़कर रथ में भली भाँति सवार होकर सीता और लक्ष्मण के साथ श्री रामचन्द्र जी वन को चले।

**विशेषटिप्पणी:**—'उदयाचल पर सूर्य-तुल्य रथ पर चढ़े।' इन पंक्तियों में उपमा सूचक भाव बिल्कुल स्पष्ट हो गया है।

**शब्दार्थ:**—सूर्योद्भासित=सूर्य की भाँति प्रतीत होना=सूर्य के उदय होने का भ्रम होना। कनक-कलश=सोने का कलश=रथ पर लगे सोने के गुंबज। केतु=पताका।

**व्याख्या:**—प्रजा वर्ग के..................रहा किस हेतु था?

प्रजा समूह की आँखों के आँसुओं से मार्ग सिंचित हो उठा और विशाल भीड़ के कारण रुक-रुककर रथ आगे को बढ़ा। उदय होते हुए सूर्य के रथ के समान सुनहले गुंबजों पर पताका फहर रही थी। कवि प्रश्न करके पूछ रहा है कि-वह पताका उत्तर दिशा ( अयोध्या ) की ओर क्यों फहर रही थी?

**विशेष टिप्पणी:**—( १ ) 'कनक-कलश' और 'फहर' का प्रयोग कवि ने ललित ढंग से किया है।

( २ ) उत्तर दिशा का तात्पर्य अयोध्या नगरी से है।

**शब्दार्थ:**—कर=हाथ=किरण=हाथी का सुंड। कला=किरण। कर-कला=हाथ रूपी किरण=झंडे की नोक से तात्पर्य है। जंगम=चर=चलने फिरने वाला=गतिमान। साकेत-देव=अयोध्या के देवता=श्रीरामचन्द्र जी। मज्जा=वह गूदा या भेजा जो हड्डी की नली में होता है। ताप=गर्मी=कैकेयी के कार्य से उत्पन्न क्रोध। गलित=गला हुआ=पानी हो गया।

**व्याख्या:**—कहता-सा था·················ताप गलित मज्जा हुई।

कवि अपने प्रश्न के उत्तर में कहता है कि—श्री रामचन्द्र जी के रथ पर लगी हुई सूर्य-कुल-सूचक पताका उत्तर दिशा ( अयोध्या ) की ओर उड़कर इस सत्य का उद्घाटन कर रही थी कि गतिमान अयोध्या का देवता मन्दिर की ओर प्रस्थान कर रहा है अर्थात आज श्रीरामचन्द्र जी अपने कर्तव्य-मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। उस सूर्य-कुल की पताका को कैकेयी के निन्दनीय कार्य को सुनकर उसी प्रकार लज्जा का आभास हुआ जिस प्रकार गर्मी के प्रभाव से मज्जा या सार गल जाता है।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में लज्जा की मात्रा का आभास मज्जा की गलित भावना से व्यक्त करके कवि ने अपनी काव्यानुभूति का अच्छा परिचय दिया है।

**शब्दार्थ:**—वैदेही=जानकी जी। वधू-गण=नव वधुओं का समूह। बच गया=शोकाकुल हो गया। कोलाहल=कुहराम। युग-भाव-पूर्ण=दोनों पक्ष से भावपूर्ण=करुणा से युक्त। मच गया=फैलगया। उभय=दोनों। बरसाती थीं=वर्षा करती थीं=गिराती थीं। साश्रु=अश्रु युक्त। सुमन=पुष्प=यहाँ आँसुओं के बूंद से तात्पर्य है। सुकुमारियाँ=कोमलांगिनियाँ।

**व्याख्या:**—वैदेही को देख··············सुमन सुकुमारियाँ।

जानकी जी को वनवास की अवस्था में देखकर अयोध्या की अन्य नववधुओं का समूह शोक से व्याकुल हो उठा और दोनों पक्ष से भावपूर्ण करुणा से युक्त कुहराम मच गया। मार्ग के दोनों ओर अयोध्या के पुरुष और स्त्रियाँ खड़ी थीं

श्रौर कोमलांगिनियाँ अश्रु युक्त पुष्पों की वर्षा कर रही थीं भाव यह है कि-जानकी जी के वियोग में सबकी आँखों से आँसुओं की बूँदे टपक रही थीं।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में सीता जी के वियोग में व्यथित नारियों के दृश्य का अच्छा चित्रण हुआ है।

**शब्दार्थ:**—जय-जय कार=जय घोष। अपवाद=निंदा। नव–नगर–निवास= नवीन नगर में रहने का स्थान।

**व्याख्या:**—करके जय–जयकार...............निवास बनायेंगे।

सारी प्रजा श्रीरामचन्द्र जी की जय और धर्म की जय बोलती हुई कैकेयी के कार्य की निन्दा कर रही थी। प्रत्येक व्यक्ति ( स्त्री और पुरुष ) के मुख से यही शब्द निकलता था कि जहाँ हमारे राजा श्रीरामचन्द्र जी जायेंगे वहीं हम सब लोग भी चलेंगे और वन में ही अपने रहने के निवास स्थान स्वरूप नवीन नगर का निर्माण करेंगे। भाव यह है कि जब अयोध्या को त्यागकर श्रीरामचन्द्र जी वन को जा रहे हैं तो राम से रहित उस अयोध्या का प्रजावर्ग के लिए कोई मूल्य नहीं है। वह राम से शून्य अयोध्या में रहने की अपेक्षा राम से युक्त वन में निवास करना ही श्रेयष्कर समझती है।

## ( पृष्ठ–२० )

**शब्दार्थ:**—महाकलकल=घोर रव=महान। भर्त्सना हर कर=छीन कर। प्रभु= श्री रामचन्द्र जी। कठोरा=कठोर हृदया। प्रजा-प्रीति=प्रजा का प्रेम।

**व्याख्या:**—ईंटों पर अब...................हरण करे अब यह नई।

कैकेयी के कार्य की भर्त्सना करते हुए प्रजा-वर्ग ने शोर मचाना प्रारंभ कर दिया कि अब भरत जी यहाँ ( अयोध्या में ) ईंटों पर राज्य करें अर्थात् सारी प्रजा राम के साथ वन चली जायगी तो भरत जी के शासन के लिए केवल अयोध्या के भवन और उसकी ईंटें आदि सामान ही रह जायेंगे। जन समूह ने चिल्ला कर कहना प्रारंभ कर दिया कि जिस प्रकार कठोर हृदया ( निर्दयी ) कैकेयी ने श्री रामचन्द्र जी का राज्य हरण कर लिया उसी प्रकार अब वह प्रजाके इस नवीन प्रेम को भी छीन ले अर्थात् प्रजा के प्रबल बहिष्कार-नीति को भी उसे ग्रहण करना ही होगा।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि पर आधुनिक जन-आन्दोलन और उसके नारों का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है।

**शब्दार्थ:**—भाभी=लक्ष्मण की भाभी=जानकी जी। भाव=रुख=जनता की कामना। जानने के लिए=बताने के लिए। निज नेत्र=अपनी आँख। प्रेरित किए=घुमाया=फेरा। वैदेही=जानकी जी। पुलक भाव=प्रसन्नता का भाव। प्रिय गुणानुभव=अपने प्रिय ( राम ) के गुणों का अनुभव=अपने पति श्री रामचन्द्र जी के गुणों की प्रतीति। रोम-रोम=रोवाँ-रोवाँ=कण कण।

**व्याख्या:**—भाभी को यह..........रोम रोम था कह रहा।

अपनी भाभी जानकी जी को जनता ( प्रजा वर्ग ) के कैकेयी और भरत विरोधी तथा राम समर्थक भाव का आभास कराने के लिए, लक्ष्मण जी ने अपनी आँखों को उधर फेरा तो उन्होंने देखा कि जानकी जी के हृदय में प्रसन्नता की भावना भर रही थी और अपने पति श्री रामचन्द्र जी के गुणों ( विशेषताओं ) की अनुभूति उनके रोम रोम से व्यक्त हो रही थी।

**विशेषटिप्पणी:**—नारी का सहज स्वभाव होता है कि वह अपने पति की प्रशंसा को सुनकर विशेष प्रसन्न होती है। उक्त पद में 'प्रिय गुणानुभव' शब्द का प्रयोग करके कवि ने इसी ओर संकेत किया है।

**शब्दार्थ:**—स्वार्थ=लोभ=स्वार्थपरता। परम=अधिक। खेद=चिंता=पश्चात्ताप=दुख। चरम=अधिक। अनुराग=प्रेम। अभिषेक-समय=राज्याभिषेक के समय। सहज=स्वाभाविक। सौम्य=शान्त।

**व्याख्या:**—कैकेयी का स्वार्थ..........सौम्य वैसा रहा।

जानकी जी के हृदय में रह-रहकर दो प्रकार के भाव उत्पन्न हो रहे थे। एक ओर कैकेयी की स्वार्थपरता की भावना और दूसरी ओर श्री रामचन्द्र जी के अनुपम त्याग का दृश्य उनकी आँखों में नाच रहा था। श्री रामचन्द्र जी के हृदय में सुख और दुख दोनों के लिए समान भाव था। वे अभिषेक के समय जिस भाव में थे उसी भाव से वन जाते समय भी उनके हृदय में स्वाभाविक शान्ति विराज रही थी।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में त्याग की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है।

**शब्दार्थ:**—ग्रीष्म=गर्मी की ऋतु। सिंधु=समुद्र। मर्यादा=स्थिरता=प्रतिष्ठा=धर्म या कर्तव्य की मर्यादा। साक्षिणी=गवाह=प्रमाण।

**व्याख्या:**— वर्षा हो या ग्रीष्म..................शान्त करते हुए।

श्री रामचन्द्र जी की सौम्यता और अनुपम धैर्य का वर्णन करते हुए राष्ट्र-कवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त कहते हैं कि:—चाहे जल के प्रवाह की चरमावस्था वर्षा ऋतु हो अथवा शुष्कावस्था ग्रीष्म ऋतु हो पर समुद्र के स्वभाव पर कोई अन्तर नहीं पड़ता, वह सर्वदा शान्त और गंभीर रहता है और यह पृथ्वी तो अपनी मर्यादा (स्थिरता) का प्रबल प्रमाण है। इसी प्रकार श्री रामचन्द्र जी भी अपनी निश्चलता और अनुपम धैर्य का परिचय दे रहे थे। वे जन-समूह में सच्चे कार्य की उत्तम भावना को भरते हुए तथा सबको शान्त करते हुए।

**शब्दार्थ:**—विपिनातुर=जंगल में जाने के लिए उत्सुक। प्रथम=पहले=पूर्व। मनोरथ=कामना=इच्छा। तत्क्षण=उसी समय=तुरत। विशेप वियोग=जुदाई का विशेप कष्ट।

**व्याख्या:**—विपिनातुर वे..................किन्तु विशेप वियोग थे।

वन में जाने को उत्सुक श्री रामचन्द्र जी किसी प्रकार कुछ आगे बढ़े पर मन की भावना पर सवार वे रथ से पूर्व ही गन्तव्य स्थान पर पहुँच गये अर्थात् जन-समूह की विह्वल अवस्था को देखकर अपने वन-वास काल में प्रजा के कष्ट की कल्पना उन्होंने स्वयं कर ली अतएव प्रजा वर्ग को सान्त्वना देते हुए उससे अयोध्या लौट जाने के लिए उन्होंने आग्रह किया। श्री रामचन्द्र जी के वचन का पालन करते हुए सब लोग वापस चल पड़ते थे पर उसी समय तत्काल उन्हें राम के वियोग का महान कष्ट सहन करना पड़ता था।

**शब्दार्थ:**—टोल के टोल=झुंड के झुंड=समूह के रूप में। जलधि-कल्लोल=समुद्र-गर्जन। ज्यों=जिस प्रकार। पौर जनों को=पुर के लोगों को=अयोध्या वासियों को।

व्याख्याः—जाते थे फिर वहीं.................यथोचित रीति से ।

श्री रामचन्द्र जी के समझाने बुझाने से प्रजावर्ग अयोध्या की ओर लौटने का प्रयास करता था पर तुरत राम के वियोग का कष्ट सहन न कर सकने के कारण झुंड के झुंड लोग श्री रामचन्द्र जी के पास जाकर उन्हें घेर लेते थे और इस प्रकार लोगों के आने जाने के कारण समुद्र-गर्जन के समान ध्वनि गूँज उठती थी। इसके वाद प्रेमपूर्वक अयोध्यावासियों को संवोधित करके हँसकर उचित ढंग से श्री राम चन्द्र जी ने कहा किः—

शब्दार्थः—यथासमय=उचित समय पर=वनवास की अवधि वीत जाने पर। भाव=भावना=प्रेम।

व्याख्याः—रोकर ही क्या.....................साथ हमारे जायेंगे ।

क्या आप लोग रोकर ही ( दुःख के साथ ) हमें वनवास के लिए यहाँ से विदा करेंगे? क्या अब हम पुनः लौटकर अयोध्या नहीं आयेंगे? अतएव आप लोग यहाँ से वापस लौट जायें। हम वनवास की अवधि समाप्त कर ठीक समय पर अयोध्या लौट आयेंगे और आप लोगों का प्रेम तथा सहानुभूति मेरे साथ वरा वर हर समय रहेगी।

( पृष्ठ-२१ )

शब्दार्थः—लोक=संसार। भद्र=श्रेष्ठ=सज्जन।

व्याख्याः—पहुँचाते हैं..................विदा ही कव अहो।

जिस व्यक्ति से इस संसार में फिर कभी मिलन नहीं हो सकता उसीको दुःख के साथ लोग दूर तक पहुँचाते हैं अर्थात् इस प्रकार तो मृतक व्यक्ति ( शव ) को ही विदा किया जाता है। श्री रामचन्द्र जी के इन शब्दों को सुनकर जनसमूह ने कहा किः—हे श्रेष्ठ राम ! आप अपने मुख से ऐसे अपशकुन के शब्द न निकालें। हम आपको अपने से दूर विदा ही कव कर रहे हैं अर्थात् आपकी विदाई का प्रश्न ही कहाँ उठता है?

**शब्दार्थः**—लोकमत=जनता की सम्मति। रौंद=कुचल कर। पथ=मार्ग। बहुजन=बहुत से लोग।

**व्याख्याः**— राजा हमने राम,......................बहुजन वहाँ।

हे राम! हमं प्रजावर्ग ने आपको ही अपना राजा वरण किया है अतएव इस प्रकार आप लोकमत (प्रजा की सम्मति) की उपेक्षा न करें और यदि आप हम लोगों की इच्छा के विरुद्ध हमें त्यागकर वन को जाना ही चाहते हैं तो हमें यहाँ कुचल कर (लाँघ कर) ही जा सकते हैं। इस प्रकार कहकर प्रजा वर्ग में से बहुत से लोग श्री रामचन्द्र जी के मार्ग में लेट गये।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में कवि पर गाँधी जी के सत्याग्रह की स्पष्ट छाप झलकती है।

**शब्दार्थः**—अड़े से=रुके से। वैर=शत्रुता। वक्ष=छाती। कन्धरा-संग में=कन्धा सहित। शंखालोड़न=गर्जन-तर्जन। उदग्र=उद्विग्न=क्षुब्ध। तरंग=लहर।

**व्याख्याः**—अश्व अड़े से खड़े...............उदग्र तरंग में।

जब प्रजा वर्ग ने श्री राम चन्द्र जी के मार्ग में लेटकर सत्याग्रह कर दिया तो उनके रथ के घोड़ों ने आगे बढ़ना अस्वीकार कर दिया। घोड़े अपना पैर ऊपर उठाये हुये रुक से गये क्योंकि पशु होते हुए भी उनमें प्रेम और वैर के भाव का पूर्ण ज्ञान था। श्री रामचन्द्र जी ने कन्धे सहित अपनी छाती को ऊँचा किया जिस प्रकार गर्जन के समय समुद्र की लहरें उद्विग्न हो उठती हैं।

**शब्दार्थः**—अम्बुनिधि=समुद्र। नाद=घोष=शब्द। सविषाद=खेदपूर्ण। विनत=नम्र।

**व्याख्याः**—करता है गंभीर...............विनत विद्रोह तुम।

जिस प्रकार अपनी उद्विग्न लहरों की उमंग में गर्जन तर्जन करते हुए समुद्र गंभीर शब्द करता है उसी प्रकार जन समूह के सत्याग्रह को देखकर कन्धे सहित अपनी छाती को ऊँचा करके खेद पूर्वक श्री रामचन्द्र जी इस प्रकार बोलेः—

हे प्रजावर्ग ! मार्ग से उठ जाओ और हमारे अयोध्या लौट जाने के मोह का त्याग कर दो । आप लोग किस कारण यह नम्र विद्रोह प्रदर्शित कर रहे हैं ?

**शब्दार्थः**—कातर=दुखी । नित्य=सदा । भव=संसार । आदित्य=सूर्य ।

**व्याख्याः**—तुमसे प्यारा मुझे कौन..........आदित्य का ।

श्री रामचन्द्र जी ने नर और नारायण के अमर संबंध की ओर संकेत करते हुए उपस्थित जनसमूह से कहा कि—आप लोगों को दुखित नहीं होना चाहिए क्योंकि जनवर्ग से अधिक प्रिय मुझे अन्य कोई भी नहीं है तो फिर क्या आप लोग यह चाहते हैं कि अपनेपन के साथ मैं अपना भी त्याग आप लोगों पर कर दूँ ? अर्थात् क्या मैं आप लोगों के मोह में पड़कर अपने कर्तव्य पालन से विरत हो जाऊँ ? अर्थात् यह कार्य श्रेयष्कर न होगा । फिर साथ ही आप लोगों को इस पर भी ध्यान देना चाहिए कि हमारा आप का आज का ही संबंध तो नहीं है बल्कि इस सृष्टि के निर्माण के समय से ही नित्य का सम्बन्ध है जब से इस संसार में सूर्य का उदय हुआ तब से ही हमारा आपका जन्म जन्मान्तर का संबंध किसी न किसी रूप में चला आ रहा है ।

**शब्दार्थः**—प्रकृति=स्वभाव । सन गये=मिल गये । स्वधर्म=कर्तव्य पालन । विमुख=विरत=अलग ।

**व्याख्याः**—प्रजा नहीं, तुम प्रकृति..........चाहते हो सभी ।

श्री रामचन्द्र जी प्रजावर्ग को संबोधित करके कहते हैं कि अब आप लोग केवल एकमात्र हमारी प्रजा ही नहीं रह गये हैं बल्कि हमारी प्रकृति बन चुके हैं और हमारे और आपके दोनों के ही दुख-सुख एक में मिल गये हैं अर्थात् आपका कष्ट हमारा कष्ट है और आपका सुख हमारा सुख है । यही तथ्य आपके पक्ष में भी है । आप लोगों का जो मेरे प्रति इतना प्रेम है उसका एकमात्र कारण बस यही है कि मैं अपने कर्तव्य पालन से कभी भी विरत न हूँगा । अर्थात् यदि मुझमें कर्तव्यपरायणता का भाव न होता तो आप लोगों का इतना अधिक मेरे प्रति अनुराग भी न होता ।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में कवि ने कर्तव्यपालन की महत्ता को विशेष महत्व प्रदान किया है ।

**शब्दार्थ:**—विलोककर=देखकर। ठौर=स्थान पर। आग्रही=हठी=हठ करने वाले।

**व्याख्या:**—पर मेरा यह विरह..............नहीं करते मही ?

श्रीराम चन्द्र जी प्रजा वर्ग को संबोधित करके कहते हैं कि—मेरे विशेष विरह ( जुदाई ) को देखकर मुझे धर्म-मार्ग से विरत करके आप लोग अनुचित कार्य न करें साथ ही यह भी ध्यान दें कि यदि आप हमारे स्थान पर होते तो क्या आप भी वही नहीं करते जो मैं आज करने जा रहा हूँ। भाव यह है कि क्या राजा क्या प्रजा सभी के लिए कर्तव्य पालन का निर्वाह उचित है।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने श्री रामचन्द्र जी के प्रजा-प्रेम और कर्तव्य-पालन इन दोनों का समन्वय व्याख्यात्मक ढंग से करके इस पर आधुनिकता की छाप लगा दी है।

( पृष्ठ–२२ )

**शब्दार्थ:**—सुयोग=अच्छा योग। अचानक=सहसा। लाभ=प्राप्ति। रूठकर=अप्रसन्न होकर। गेह=घर। दौर्बल्य=दुर्बलता। निस्नेह=स्नेह-हीनता।

**व्याख्या:**—पालन सहज, सुयोग..........तथा निस्नेह से।

श्री रामचन्द्र जी प्रजावर्ग से कहते हैं कि:—धर्म का पालन करना सुगम है पर इसका अच्छा योग ही कठिन है। आज मुझे सत्कर्म की सहसा प्राप्ति हुई है। मैं अपने घर से अप्रसन्न होकर अथवा किसी भय, दुर्बलता तथा स्नेहहीनता के कारण वन को नहीं जा रहा हूँ।

**शब्दार्थ:**—तात वचन=पिता के शब्द। असद्वस्तु=अस्थायी अथवा परिवर्तन शील वस्तु=नाशवान वस्तु। कुसुम=पुष्प=फूल।

**व्याख्या:**—तुम्हीं कहो............कुसुम सा बीन लूँ।

श्रीराम चन्द्र जी प्रजा वर्ग से प्रश्न करके कहते हैं कि आपही लोग बतायें कि क्या मेरे पिता के शब्द असत्य सिद्ध हों अर्थात् यदि आप लोग मुझे वन जाने से रोकते हैं तो इससे मेरे पिता दशरथ जी को वचन-भंग का कलंक लगेगा

क्योंकि उन्होंने कैकेयी को मेरे १४ वर्ष के वनवास का वचन दिया है। फिर हमारे और आप के लिये यह भी शोभा की वस्तु नहीं है कि नाशवान तथा परिवर्तनशील निकृष्ट वस्तु ( राज्य ) के लिए आपस में लड़ें। मान लीजिए कि वह अयोध्या का राज्य मैं अभी छीन लूँ और काँटो में फूल के समान इसे निकाल लूँ अर्थात् वल प्रयोग से अयोध्या का राज्य अपने वश में करलूँ।

**शब्दार्थः**—निज=अपने। नृप=राजा।

**व्याख्याः**—पर जो निज नृप............योग्य मानता मैं नहीं।

श्री रामचन्द्र जी प्रजावर्ग से कहते हैं कि—परन्तु जो अपने राजा और पिता का भी नहीं हो सकता भला बताइये वह कभी प्रजा का क्या हो सकता है अर्थात् जो व्यक्ति अपने राजा और पिता का ध्यान नहीं रखता वह प्रजा का हितैषी कदापि नहीं हो सकता। भला पिता जी कभी क्या ऐसे व्यक्ति को राज्य का भार सौंप सकते हैं जिसको कि उसके योग्य मैं स्वयं नहीं मानता। भाव यह है कि दशरथ जी ने श्री रामचन्द्र जी के वनवास का जो निर्णय किया था वह राम की दृष्टि में बिल्कुल ठीक और न्यायोचित था।

**शब्दार्थः**—सहमत=राजी। जड़ भरत-तुल्य—दुष्यन्त के पुत्र राजा भरत के समान। विख्यात=प्रसिद्ध।

**व्याख्याः**—तो अधिकारी नहीं............विख्यात हैं।

श्री रामचन्द्र जी पुनः प्रजावर्ग से कहते हैं कि प्रजा के ( आपके ) भाव से तो फिर मैं राज्य का अधिकारी ( मालिक ) नहीं रहा और न तो उस प्रस्ताव से ही मैं सहमत हूं। पर भरत जी के विचार से मैं पूर्णरूप से अवगत हूँ और वे हम लोगों के बीच दुष्यन्त के पुत्र राजा भरत के समान प्रसिद्ध हैं।

**शब्दार्थः**—प्रती=प्रति=लिए। व्रती=व्रत वाले।

**व्याख्याः**—भूलोगे तुम मुझे............न निकलें वे व्रती।

श्री रामचन्द्र जी प्रजावर्ग को संबोधन करके कहते हैं कि:—आप लोग ध्यान देकर सुनें। भरत जी को राजा के रूप में पाकर आप लोग निस्सन्देह मुझे भूल जायेंगे। अतएव यदि आप लोगों ने मुझे राजा चुना है तो अब मैं जिसे कहता

हूँ उसे राजा, चुनिये। मैं भरत के प्रति जैसा विश्वास रखता हूँ कहीं वे मेरे विश्वास से भी बढ़ कर आपके लिए प्रिय व्रत वाले न निकल पड़ें। भाव यह है कि भरत जी सब प्रकार से राज्य-भार संभालने में योग्य तथा प्रजा-प्रिय हैं।

**शब्दार्थ:**—स्वर्गीय=परलोक वासी। सगर=एक सूर्यवंशी राजा। त्याज्य=त्यागने योग्य।

**व्याख्या:**—तो तुम मुझको..........त्याज्य कर।

श्री रामचन्द्र जी प्रजावर्ग को संबोधन करके कहते हैं कि:—यदि आप लोग मेरे मतानुसार भरत को राजा स्वीकार करेंगे तो मैं अपना वचन देता हूँ कि मुझे अपने से कभी भी दूर न पायेंगे अर्थात् मैं आप लोगों का पूर्ण साथ दूँगा। अतएव इस समय आपलोग मेरा मार्ग अवरुद्ध न करके मुझे बन जाने की राह दे दें। हमारे वंश में स्वर्गीय राजा सगर उत्पन्न हुए थे जिन्होंने त्यागनीय पुत्र का भी आप लोगों (प्रजा) के लिए त्यागन कर दिया था। भाव यह है कि यह सूर्य वंशी राजाओं की परंपरा चली आ रही है कि प्रजा के हित के लिए पुत्र का भी त्याग कर दिया जाता है।

**शब्दार्थ:**—त्राता=रक्षक। देव-कार्य-साधक=देवताओं के कार्य को सफल बनाने वाले।

**व्याख्या:**—भरत तुम्हारे..........देव कार्य-साधक रहे।

श्री रामचन्द्र जी प्रजावर्ग से कहते हैं कि—यदि भरत जी आपके अनुकूल उपयुक्त रक्षक सिद्ध न हुए तो यह राम उन्हें अपना भाई भी नहीं मानेगा। आप लोगों को यह बात नहीं भूल जानी चाहिये कि आप लोग इस प्रकार की प्रजा हैं जिनके राजा सदैव देवताओं के कार्य की सिद्धि करते आये हैं।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पदों में कवि की वाणी भारतीय जन-क्रान्ति और नवीन चेतना की अपनी अनुभूति को मुखरित कर उठी है और राम के द्वारा 'जनता ही राजा' के सिद्धान्त को स्वीकार कराने में पूर्ण सफल हुई है।

(पृष्ठ-२३)

**शब्दार्थ:**—दैत्य-संग्राम=राक्षसों का युद्ध=देवताओं और राक्षसों का भयानक

युद्ध जो सृष्टि के आरम्भ कालीन युग में हुआ था। कीर्ण=सुन्दर=कोमल। कुंकुम=माथे की बिन्दी=प्रिय फूल।

**व्याख्या:**—गये छोड़ सुख-धाम...............कीर्ण कुंकुम हमें।

श्री रामचन्द्र जी प्रजावर्ग के सम्मुख अपने वंश की अतीतकालीन झाँकी उपस्थित करते हुए कहते हैं कि—हे प्रजावर्ग! आप धैर्य धारण करें। इस राम में उन्हीं महापुरुषों का ओज विराजमान है जिन्होंने राक्षसों के साथ युद्ध करते हुए इस संसार के सुख तथा अपने जीवन का त्याग कर दिया था। अतएव हे भाई! आप भी हमें उसी भाव से यहाँ से विदा करें जिससे वन के काँटे भी हमारे मार्ग में कोमल पुष्प अथवा कुंकुम की भाँति हो जायें अर्थात् आपकी शुभ-कामना हमारे मार्ग की कठिनाइयों को दूर कर दे सकती है।

**शब्दार्थ:**—भद्रता=सज्जनता। भगीरथ=एक सूर्यवंशी राजा थे जिनके तप के प्रभाव से गंगा जी स्वर्ग से इस लोक में अवतरित हुईं। शुल्क=फीस।

**व्याख्या:**—करूँ पाप संहार...................पिता को प्रीति से।

श्री रामचन्द्र जी प्रजा को लक्ष्य करके अपने दृढ़ संकल्प को दुहराते हुए कहते हैं कि:—मैं पाप का विनाश करके पुण्य का प्रसार करूँ और इस पृथ्वी पर के भय के भार और सारे विघ्नों का हरण करके मैं भद्रता का भरण करूँ। अथवा मुझे राजा भगीरथ के ढंग से ही वन में पदार्पण करने दें जिससे मैं प्रीति-पूर्वक पिता को ऋण के भार से मुक्त कर सकूँ।

**शब्दार्थ:**—व्रतोद्यापन=व्रत करने की प्रतिज्ञा को पूर्ण करना। नव्य=नवीन निधिस्थापन=भंडार भरना।

**व्याख्या:**—सौ विघ्नों के बीच.........कर्म के मार्ग में।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि:—चाहे असंख्य विघ्न-बाधायें मेरे मार्ग में आकर खड़ी क्यों न हो जायें पर मैं उन बाधाओं के बीच भी अपने व्रत की प्रतिज्ञा का पालन करूँ और जिस प्रकार राजा भगीरथ ने इस मृत्यु-लोक को गंगा जैसी निधि प्रदान की है उसी प्रकार मैं भी किसी पुण्य निधि की स्थापना इस लोक में कर सकूँ। अतएव हे प्रजावर्ग! आप हमारे मार्ग से उठ जायें

और धर्म के मार्ग में बाधा न डालें और स्वयं भी कल्याण के कार्य के मार्ग का अनुसरण करें।

**शब्दार्थ:**—विचरूँ=भ्रमण करूँ=घूमूँ। चरण-चिन्ह-अंकित करूँ=पदानुसरण करूँ=अपने पूर्वजों के आदर्शों का पालन करूँ। छित=छोड़ा हुआ=विकीर्ण।

**व्याख्या:**—दो मुझको उत्साह..........सँभाल-सँभाल के।

श्री रामचन्द्र जी प्रजावर्ग से कहते हैं कि:—आप लोग मुझे उत्साह प्रदान करें जिससे मैं अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ूँ और विचरता हुआ इसे पार कर सकूँ तथा पग पग पर अपने पूर्वजों के उच्च आदर्श का पालन कर सकने में समर्थ हो सकूँ। अपने हठीले पुत्र के विकीर्ण तथा छिटके हुए खिलौनों को देख कर जिस प्रकार माता उन्हें सभाँल कर ठीक स्थान पर रख देती है।

**शब्दार्थ:**—विभु-वाणी=श्री रामचन्द्र जी के शब्द। मन्त्र मुग्ध=ध्यानावस्थित=एकटक। पौरजन=पुर वासी=नगर निवासी।

**व्याख्या:**—विभु वाणी से..................फिर उन्हें।

श्री रामचन्द्र जी के शब्दों का उपस्थित जन समूह पर इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि जो लोग उनके मार्ग में लेटकर उनका मार्ग अवरुद्ध किये थे वे मन्त्र मुग्ध के समान उस मार्ग से उठ कर अलग खड़े हो गये। जब तक वे पुनः झुक कर सिर उठा कर देखें देखें कि श्री रामचन्द्र जी का रथ उनकी आँखों से ओझल हो गया (दूर चला गया) फिर तो भला नगर वासी उन्हें कहाँ पा सकते थे अर्थात् श्री रामचन्द्र जी का रथ शीघ्रता से बहुत दूर उनकी पहुँच से परे चला गया।

**शब्दार्थ:**—शून्य पथ=सुनसान मार्ग। भावित=भाव से पूर्ण। धावित हुए=दौड़े।

**व्याख्या:**—झोंके सा झट........ ......दृश्य धावित हुए।

वायु के झोंके के समान श्रीरामचन्द्र जी का रथ तुरंत साफ मार्ग से उड़ चला मानो

कुछ दूर बढ़ कर वह सुनसान मार्ग भी मुड़ गया। अचल भाव से पूर्ण रथ के पहिए चलने लगे और दोनों ओर के अटल दृश्य दौड़ते से प्रतीत होने लगे।

शब्दार्थ:—साकेत=अयोध्या नगरी। पुर=नगर। प्रान्तर=प्रदेश। उद्यान=बगीचा। सरित=सरिता=नदी। सर=तालाब। हय=घोड़े। हींस=उच्छ्वास करना। रज=धूल।

व्याख्या:—सीमा पूरी हुई..... ...........फिरे प्रभु घूम कर।

अयोध्या नगरी और उसके पुर, प्रदेश, बगीचा, नदी, तालाब तथा खेत आदि की सीमा जहाँ पूर्ण हुई वहीं सधे हुए रथ के घोड़े रुक गये और वहाँ की धूल को स्पर्श करके उच्छ्वास लेने लगे। श्री रामचन्द्र जी भी रथ से उतर कर अयोध्या नगरी की ओर मुख करके घूम कर खड़े हो गये।

## ( पृष्ठ-२४ )

शब्दार्थ:—आर्द्र भाव=विनीत स्वर=दुखमय भाव। प्रणति=प्रणाम्।

व्याख्या:—जन्मभूमि का भाव.....................तथा निज मान दे।

श्री रामचन्द्र जी ने रथ से उतर कर ज्योंहीं पृथ्वी पर पग रखा कि उनके हृदय के अन्दर का जन्म-भूमि विषयक भाव वाहर हो गया और उन्होंने नत मस्तक होकर कातर स्वर से कहा कि:—

हे जन्म भूमि! मेरा प्रणाम् स्वीकार करलो और मुझे विदा करो तथा अपने प्रति गौरव, अभिमान और सम्मान प्रदान करो।

शब्दार्थ:—कीर्ति-स्तम्भ=यश का खंभा। सौध=राज-मन्दिर=महल। शीर्ष=उच्च। समुन्नत=उन्नति शील। सर्वथा=सदैव।

व्याख्या:—तेरे कीर्ति-स्तम्भ...... ........और भी पायँगे।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि—हे जन्म-भूमि! तेरे यश रूपी स्तम्भ जो महल, मन्दिर आदि हैं वे सदैव उच्च और उन्नति शील बने रहें। आज हम वन को जा रहे हैं पर वनवास की अवधि समाप्त करके हम पुनः वापस लौटेंगे तब तुम्हें और भी आकर्षक रूप में देख सकेंगे।

**शब्दार्थ:**—पक्षि-कुल=पक्षियों का समूह। चंग=डफ जैसा एक बाजा=पतंग। कुंज-गृह-पाश=झाड़ी रूपी घर के बन्धन में। व्याप्त=विधे=फैले हुए=घुसे हुए। नय=नीति।

**व्याख्या:**—उड़े पक्षि-कुल··············शुभ, सत्व हैं।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि:—हे जन्मभूमि! जिस प्रकार पक्षी-समूह दूर दूर तक आकाश में उड़ जाता है पर तौ भी चंग के समान उसका मन कुंज रूपी अपने घर के बन्धन में ही बँधा रहता है उसी प्रकार हमारे अन्दर जो तुम्हारे स्वच्छ तत्व–दया, प्रेम, विनय, शील, शुभ सत्व आदि व्याप्त हैं।

**शब्दार्थ:**—उपयोग=प्रयोग। सूक्ष्म=बारीक=छोटा=संक्षेप। समीर=वायु। मानस=हृदय। अनल= अग्नि। उछ्वास=आह भरी साँस।

**व्याख्या:**—उन सब का उपयोग······ अनल उछ्वास में।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि हे जन्मभूमि! उपरोक्त तत्वों (दया, प्रेम, नय विनय, शील आदि) का प्रयोग हमारे साथ होने के कारण सूक्ष्म रूप में सब जगह तू हमारे साथ विराज रही है। तेरी स्वच्छ वायु हमारी सांसों में, तेरा जल मेरे हृदय में और तेरी अग्नि मेरे उछ्वास में हर समय व्याप्त हैं।

**शब्दार्थ:**—अनासक्ति=एक योग=आसक्ति रहित=त्याग। सतत=निरंतर= लगातार। नभस्थिति=आकाश के समान। अविचलता=स्थिरता। स्थिति=गंभीर स्थिति। उत्संग=गोद। अजिर=आँगन।

**व्याख्या:**—अनासक्ति में··········डोल कर।

श्री रामचन्द्र जी जन्मभूमि की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि–हे जन्मभूमि! अनासक्ति अथवा त्याग में तू आकाश के समान गंभीर है तथा स्थिरता में स्वयं तू एकही है अर्थात् तू त्याग तथा स्थिरता की मूर्ति है। तेरे ही गोद रूपी आँगन में गिर-गिर कर, उठ-उठ कर, खेल-कूद कर, हँस-बोलकर, तथा चल-फिरकर।

**शब्दार्थ:**—सहज=सुगम=स्वाभाविक। छलना=ठगिनी=प्रवंचना। सौरों= सूर्यवंशियों। प्राचि=प्राची=पूर्वदिशा=उत्थान की जननी=प्रकाश दात्री। पुराधि-ष्ठात्रि=नगर की श्रेष्ठा। मनुष्यत्व=मनुष्यता। धात्रि=धात्री=धारण करने वाल

**व्याख्या:**—इस पथ में है·········धात्रि तू।

श्री रामचन्द्रजी कहते हैं कि हे जन्मभूमि ! इसी राह पर मुझे सहज रूप से चलना पड़ा है तथा लोभ और मोह रूपी प्रवंचना मुझे ठग नहीं सकी है। हम सूर्यवंशियों के लिए पूर्व दिशा के समान तू उत्थान अथवा प्रकाश की जननी है तथा नगरों में सर्वश्रेष्ठ है, इतना ही नहीं मनुष्यता तथा मानवोचित धर्म को भी तू धारण करने वाली है।

**शब्दार्थ:**—जाये=उत्पन्न किए हुए। चारु=सुन्दर। चित्रशाला=वह घर जिसकी दीवारों पर चित्र लगे या बने हों=चित्रों से सजा हुआ घर। चारित्र्यों=चरित्रों। गीत-नाट्य माला=गीत रूपी नाटकों की शृंखला।

**व्याख्या:**—तेरे जाये············गीत नाट्य माला बनी।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि हे जन्मभूमि ! तेरे उत्पन्न किए हुए लोग ( तेरी संतानें ) सदैव स्मरण होते रहे और उन्हें नवीन गौरव तथा पवित्र त्यौहार प्राप्त होते रहें। तू भावों की सुन्दर चित्रशाला और चरित्रों के गीतरूपी नाटकों की शृंखला बन गई है।

## ( पृष्ठ- २५ )

**शब्दार्थ:**—पाठावली=पाठों की पंक्ति=पाठों का समूह। आर्य-कुल=आर्यवंश। कर्म=कर्तव्य। पत्र-पत्र पर=पृष्ठ-पृष्ठपर=पन्ने-पन्नेपर। ध्रुव=अटल। ध्रुवधर्म=शाश्वत-धर्म। पालना=झूला।

**व्याख्या:**—तू है पाठावली·········प्रेम-पालना है यहीं।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि—हे जन्मभूमि ! तू आर्यवंश के कर्तव्य के पाठों की पंक्ति अथवा समूह है और तुम्हारे पृष्ठ-पृष्ठ पर अटल धर्म की छाप लगी हुई है। हमारा चलना, फिरना और घूमना चाहे अन्यत्र भले ही हो पर हमारे प्रेम का झूला तो यहीं ( जन्मभूमि में ही ) है। भाव यह है कि मनुष्य अपनी जन्मभूमि से दूर भले ही चला जाय पर उसका मन बराबर उसीमें रमा करता है तथा उसके प्रति प्रेम में कोई कमी नहीं होती।

**शब्दार्थः**—ओक=गोद । नाभि-कंज=नाभि कमल । नाल=नारा या नाड़ा= जन्म काल का आसव । विधि-विधान=ब्रह्मा के विधान ।

**व्याख्याः**—हो जाऊं मैं लाख बड़ा.........सुविशाल है ।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि:—हे जन्मभूमि ! मैं इस संसार में चाहे भले ही बड़ा बनजाऊं पर तुम्हारी गोद में हर समय एक बालक ही बना रहूँगा । यहीं ( मातृभूमि में ही ) हमारे नाभि-कमल की नाल ( पैदा होने का नार ) है और ब्रह्मा के विधान की विशाल सृष्टि भी यहीं है ।

**शब्दार्थः**—जिष्णु=विजयी । धरे=धारण किये । अरि=शत्रु । आकण्ठमग्न= गर्दन=तक डूब कर । तरे=पार हो गये=तर गये ।

**व्याख्याः**—हम अपने........आकण्ठमग्न होकर तरे ।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि:—हे जन्मभूमि ! हम तुम्हारे जैसे दुग्ध-स्थान के विष्णु-स्वरूप हैं इसीलिए अनेक होते हुए भी विजयी हैं । हमारे शस्त्रों पर तुम्हारा ही पानी चढ़ा हुआ है जिसमें शत्रु लोग गले तक डुबकी लगाकर तर जाते हैं अर्थात् हमारे शत्रु हमारे शस्त्रों का ग्रास बन जाते हैं ।

**शब्दार्थः**—हाव=हविश=भाव=अभिलाषा । हिण्डोल=हिंडोला । निकुंजागार कुंज-गृह । भाव-रत्न भाण्डार=भाव रूपी रत्नों का कोष=भावनाओं का समूह ।

**व्याख्याः**—तब भी तेरा........भाव-रत्न भाण्डार तू ।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि—हे जन्मभूमि ! तब भी ( इतने पर भी ) तेरे सद्भाव ( अच्छे भाव ) शान्ति से युक्त हैं और हृदय के हाव-भाव ( भावनाएँ ) सभी क्षेत्रों में हरे अथवा नवीन हैं । मेरा प्रिय हिंडोला तथा कुंज-गृह तू ही है और मेरा जीवन-समुद्र तथा मेरे भाव रूपी रत्नों का भंडार एक मात्र तू ही है ।

**शब्दार्थः**—सुमन=पुष्प=पुत्र । सरसूँ=हर्षित होऊँ=विकसित होऊँ । जलद= बादल । शुचि रुचि=पवित्र इच्छा । शिल्पादर्श=कारीगरी का नमूना । शरद् घन= शरद् कालीन बादल । पुंज=समूह । कला-कलित=कला से युक्त । अति ललित= अत्यन्त सुन्दर । कल्पना-कुंज=विचारभूमि ।

**व्याख्या:**—मैं हूँ तेरा सुमन..........कल्पना-कुंज तू।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि–हे जन्मभूमि ! मैं तेरा पुष्प हूँ और कहीं अन्यत्र चढ़कर हर्षित होऊँ, मैं तेरा बादल हूँ और कहीं अन्यत्र जाकर वर्षा करूँ। तू पवित्र भावना, आदर्श शिल्प, और शरद्कालीन बादलों का समूह है। तू कला से युक्त, अत्यन्त सुन्दर कल्पना का कुंजगृह है।

**शब्दार्थ:**—स्वर्गाधिक=स्वर्ग से भी अधिक श्रेष्ठ। धाम=स्थान।

**व्याख्या:**—स्वर्गाधिक साकेत..........यहाँ आऊँ नहीं।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि:—हे राम के धाम ! स्वर्ग से भी अधिक श्रेष्ठ साकेत नगरी तू अपने अयोध्या नाम की सार्थकता को सुरक्षित रखे। चाहे राज्य चला जाय या मैं कहीं चला जाऊँ, चाहे मैं लौटकर फिर यहाँ आऊँ या न आऊँ।

**शब्दार्थ:**—भव-भूमि=संसार-क्षेत्र=जीवन-क्षेत्र। समर्पित=अर्पण।

**व्याख्या:**—रामचन्द्र भवभूमि........समर्पित राम ने।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि अयोध्या की भवभूमि रामचन्द्र और अयोध्या सदैव रामचन्द्र की रहेगी अर्थात् अयोध्या तथा रामचन्द्र का अन्योन्याश्रय संबंध है। सामने से वायुका एक झोंका आया और श्री रामचन्द्र जी के सरपर उसने एक फूल चढ़ा दिया।

## ( पृष्ठ–२६ )

**शब्दार्थ:**—सरस=रस से युक्त। गन्ध=महँक। रव=शब्द। मूर्ति जैसे गढ़े=मौन=स्तब्ध। निश्वास=उसाँस। दीर्घ=बड़ी।

**व्याख्या:**—पृथ्वी का गुण सरस..........दीर्घ रथ पर चढ़े।

पृथ्वी के सरस गुण से युक्त सुगन्धि से श्री रामचन्द्र जी का मन मुग्ध हो गया और पक्षियों का सुन्दर करुणामय शब्द चारों ओर फैल गया। श्री रामचन्द्र

लक्ष्मण तथा जानकी जी क्षण भर मौन होकर खड़े रहे इसके बाद लंबी उसाँस लेकर रथ पर सवार हो गये।

**शब्दार्थः**—निस्पन्द=शान्त। निरानन्द=आनन्द रहित। गति=चाल। तमसा-तीर=तमसा नदी का तट। तमी=रात्रि।

**व्याख्याः**—बैठ चले चुपचाप.............प्रथम पथ की तमी।

श्री रामचन्द्र लक्ष्मण तथा जानकी जी शान्त भाव से रथ पर बैठकर वन की ओर चल पड़े और रथ के घोड़े भी आनन्द रहित धीमी चाल से आगे बढ़े। वे तीनों संयमी व्यक्ति सायंकाल को तमसा नदी के तट पर पहुँचे और वहीं पर मार्ग की प्रथम रात्रि व्यतीत हुई।

**शब्दार्थः**—स्वजन-सोच-संकोच=अपने कुटुम्बियों आदि की चिन्ता। शयन=सोना। सजग=चैतन्य=जागते। सौमित्रि=लक्ष्मण। प्रहरी=रक्षक=पहरेदार। उर्मिला-सदृश=उर्मिला के समान।

**व्याख्याः**—स्वजन-सोच-संकोच.......घर ही रही।

रात्रि में श्री रामचन्द्र जी को निद्रा आने में अपने कुटुम्बियों की चिन्ता आदि ने कुछ बाधा अवश्य उत्पन्न की पर भरत के प्रति उनके दृढ़ विश्वास ने उनकी निद्रा का साधन प्रस्तुत कर दिया। श्री लक्ष्मण जी पहरेदार अथवा रक्षक बन कर, चैतन्य बनकर जागते रहे मानो उर्मिला के समान उनकी निद्रा भी घर पर ही रह गई।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में 'निद्रा भी उर्मिला-सदृश घर ही रही।' से लक्ष्मण के चरित्र पर उत्तम प्रकाश पड़ता है।

**शब्दार्थः**—सचेताचेत=सचेत और अचेत=चैतन्य और अचैतन्य। निरख=देखकर। स्वराज्य-समृद्धियाँ=अपने राज्य की अभिवृद्धि।

**व्याख्याः**—प्रभु-चर्चा में मग्न...........धान्य-धन वृद्धियाँ।

लक्ष्मण जी सुमन्त्र सहित श्री रामचन्द्रजी की चर्चा में लीन थे और इस प्रकार चैतन्य तथा अचैतन्य अवस्था में रात कब बीत गई उन्हें कुछ भी पता न चला।

पर दिन को मार्ग में अपने राज्य की अभिवृद्धि तथा प्रजा-समूह की धर्म-अन्न तथा धन की उन्नति को देखकर।

**शब्दार्थः**—गोरस-धारा-सदृश=गाय के दूध की धारा के समान। गोमती= गंगा में मिलने वाली एक नदी है। धृति=धैर्य।

**व्याख्याः**—गोरस-धारा-सदृश..........धरा पर गिर पड़ी।

धैर्यवान श्री रामचन्द्र जी गाय के दूध की धारा के समान गोमती नदी को पार करके, धैर्य धारण करके गंगा जी के तट पर पहुँचे। गंगा जी मोतियों की एक विशाल शृंखला ( माला ) के समान प्रतीत होरही थीं जो कि स्वर्ग के गले से छूटकर इस पृथ्वी पर गिर पड़ी थीं।

**शब्दार्थः**— भव-ताप=सांसारिक कष्ट। हिम=बर्फ। कल=सुन्दर। सपरिकर= परिवार सहित।

**व्याख्याः**—सह न सकी भव-ताप...........सपरिकर आ गया।

संसार के दैहिक, दैविक तथा भौतिक तापों को सहन न कर सकने के ही कारण गंगा जी सहसा गल गईं और इस प्रकार उनका हिम का आकार होने पर भी वे द्रवित होकर सुन्दर जलवाली बन गईं। श्री रामचन्द्र जी के आगमन का नवीन समाचार पाकर गुहराज सपरिवार भेंट लेकर उपस्थित हो गया।

**शब्दार्थः**—समादर=समान आदर। उत्थान=उठना। मान=सम्मान।

**व्याख्याः**—देख सखा को दिया...........किसे बहुमान यह!

अपने सखा गुहराज को देखकर श्री रामचन्द्र जी ने उसे समान आदर दिया और खड़ा होकर आगे बढ़ कर प्रेम से गले लगाया। इस पर गुहराज बोल उठा कि—रुकिये, रुकिये, आपका इस प्रकार उठना उचित नहीं है। भला आप किसे इतना अधिक सम्मान प्रदान कर रहे हैं! अर्थात् मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति को इतना अधिक सम्मान प्रदान करना आपके लिये उचित नहीं है।

( पृष्ठ-२७ )

**शब्दार्थः**—अनुगत=अनुयायी=सेवक=अनुग्रहीत । मृगयावास=आखेट का स्थान । विपिन=वन ।

**व्याख्याः**—मैं अनुगत हूँ......................फूल सब ।

गुहराज श्री रामचन्द्र जी से कहता है कि:—हे प्रभु ! आज मैं आपका बड़ा आभारी हूँ । आप भला यहाँ कैसे भूलकर आ गये ? अब आप इसे अपने आखेट का स्थान समझकर यहीं बास कीजिये । आपके मधुर हास्य पर अपने कुशल-क्षेमको भी भूलकर मैं अपने नील ( कमल ) वन के सब फूलों को निछावर कर दूँगा ।

**शब्दार्थः**—अतिथि=मेहमान । हीनता=क्षुद्रता=तुच्छता ।

**व्याख्याः**—सहसा ऐसे अतिथि...............मुझे निज हीनता ।

गुहराज श्री रामचन्द्र जी से कहता है कि:—भला किसी को कब ऐसे मेहमान सहसा मिलेंगे अतएव अतिथि रूप में आपको पाकर भला मैं अपने भाग्य को क्यों न सराहूँ ? आज आनन्द और प्रेम के इस संयुक्त मिलन को पाकर मुझे अपनी हीनता ( तुच्छता ) का आभास नहीं हो रहा है ।

**शब्दार्थः**—अभाव=त्रुटि=कमी । लेखता हूँ=देखता हूँ ।

**व्याख्याः**—मैं अभाव में भाव...............निहार निभाइये ।

गुहराज श्री रामचन्द्र जी से कहता है कि:—मैं आपको अपने अभाव ( त्रुटि ) में भाव के रूप में देख रहा हूँ । अपने घर में घर को नहीं केवल आप को देख रहा हूँ । अतएव आप हमारे दोषों और अभावों पर चरण-धूलि डाल कर पधारिये तथा मेरे घर का ध्यान न रखकर केवल मुझे देखकर अपनी भक्तवत्सलता का निर्वाह कर दीजिये ।

**शब्दार्थः**—आतिथ्य=मेहमानदारी=मेजबानी । अनुरक्ति=प्रेम । मृगया-शील=आखेट की भावना से । च

**व्याख्या:**—न हो योग्य आतिथ्य..............चरण ये पर कहाँ ।

गुहराज श्री रामचन्द्र जी से कहता है कि:—मुझमें आप के स्वागत-सत्कार की योग्यता भले ही न हो पर आपके प्रति अटल प्रेम अवश्य है । मुझमें सामर्थ्य भले ही न हो पर भक्ति का अभाव नहीं है अथवा आखेट के ध्येय से आपके चरण फिर कभी यहाँ पड़ सकते हैं पर इसकी संभावना कहाँ है ?

**शब्दार्थ:**—कुल देवी-सी=कुल देवी के समान । आह्लाद=प्रेम=हर्ष=प्रसन्नता।

**व्याख्या:**—आ सकती हैंवार वार...............हैं याद वे।

गुहराज श्री रामचन्द्र जी से कहता है कि:—माता जानकी बार बार यहाँ कहाँ आसकती हैं ? मुझे कुलदेवी के समान जानकी जो प्राप्त हुई हैं । इसके बाद जानकी जी को संबोधन करके गुहराज कहता है कि:—हे भद्रे ( श्रेष्ठा ) जानकी जी ! मुझ को हर्ष के वे दिन अब तक नहीं भूले हैं और मिथिलापुर के राज-भोग अब तक स्मरण हैं ।

**शब्दार्थ:**—ग्रास=कवर=नेवाला । तृप्त=संतुष्ट । इष्ट=अभिलषित । मिष्ट=मिष्ठान्न=मीठा=पकवान ।

**व्याख्या:**—पेट भरा था, किन्तु.................मिष्ट ही मिष्ट है ।

गुहराज अपने प्रसंग को जारी रखते हुए कहता है कि:—मेरा पेट भर चुका था, फिर भी भूख का आभास मिल रहा था । एक ही कवर में यदि संतुष्ट न कर दूँ, बात नहीं । रूखा-सूखा खाना-पीना भी अभिलषित होता है क्योंकि किसी को सदैव मिष्ठान्न पकवान आदि अच्छा नहीं लगता है ।

**शब्दार्थ:**—सौभाग्यवती=सुहागिनी । उभय-कुलों=दोनों वंशों । सुधा=अमृत । नत किया=झुकाया ।

**व्याख्या:**—तुम सदैव सौभाग्यवती..............में भर लिया ।

गुहराज जानकी जी को संकेत करके कहता है कि:—आप सदैव सुहागिनी बन कर जीती रहें और दोनों वंशों ( राजा जनक और राजा दशरथ के कुलों )

की प्रेम-सुधा का पान करती रहें। इसके बाद गुहराज ने स्वयं हँसकर तथा जानकी जी को हँसाकर अपना सर उनके सामने झुका दिया। उसी समय श्री रामचन्द्र जी ने उसको ( गुहराज को ) अपने गले से लगा लिया।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पदों में गुहराज की अनुपम भक्ति का वर्णन करने में कवि की कल्पना ने अपने अपूर्व कौशल तथा चमत्कार का प्रदर्शन किया है।

( पृष्ठ-२८ )

**शब्दार्थ:**—चौंका=चौंक पड़ा। शैवल परिवृत=वनवासी भेष भूषा। सरोरुह =कमल।

**व्याख्या:**—चौंका वह इस बार……………न पाई वह यही।

गुहराज श्री रामचन्द्र जी के कमलवत साँवले शरीर को बनवासी भेष-भूषा से लसित देखकर चौंक पड़ा और कहने लगा कि अरे! ये वल्कल वस्त्र, अब तक मेरी दृष्टि कहाँ गई थी जो इस कौतुक को न देख पाई।

**शब्दार्थ:**—राज-परिधान=राजसी वेष भूषा=शाही पोशाक।

**व्याख्या:**—कहिए, वे किस लिए………समीप न आयेंगे।

गुहराज श्री रामचन्द्र जी से कहता है कि:—कृपा कर आप बतलाइये कि आज इस प्रकार की वेष-भूषा क्यों बनानी पड़ी है? राजसी पोशाक और आभूषण कहाँ चले गये? क्या आप मुनि का रूप धारण करके हरिणों को भुलाना चाहते हैं पर वे अपनी स्वाभाविक चंचलता के कारण आपके निकट नहीं आयेंगे।

**शब्दार्थ:**—आभरणावरण-मुक्त=आभूषण से रहित=स्वाभाविक। लावण्य= सौन्दर्य। सखे=मित्र।

**व्याख्या:**—किसी वेष में रहे……………न अब कुछ श्रम सखे।

गुहराज कहता है कि—हे श्री रामचन्द्र जी! आप चाहे जिस वेष में रहें पर आपका रूप धन्य है। वेष-भूषा से रहित आपके इस सौन्दर्य की जय हो। इसके

वाद लक्ष्मण जी ने गुहराज से कहा कि हे मित्र ! हम तुम्हारे शब्दों से ही सन्तुष्ट हो गये अब हमारे लिए किसी प्रकार का कष्ट तुम न उठाओ।

**शब्दार्थ:**—व्रत=नियम। भाभी=जानकी जी। क्षेम=कुशल।

**व्याख्या:**—वन या व्रत हम आज ..............करेंगे क्षेम से।

लक्ष्मण जी गुहराज से कहते हैं कि:—यदि हमारे लिए आज वन का नियम तोड़ सकना संभव होता तो भाभी जानकी के लिए जो उपहार तुमने दिये हैं उसे कभी भी न त्यागते पर तपस्वियों के विघ्न को प्रेम से दूर करके हम कुछ दिन तक कुशलपूर्वक वन में निवास करेंगे।

**शब्दार्थ:**—पुर-कार्य=अयोध्या नगर का कारवार। पुण्यस्पृही=पुण्य की स्पृहा करने वाले। कृतकृत्य=धन्य।

**व्याख्या:**—देखेंगे पुर-कार्य........विनोदी वास वह।

लक्ष्मण जी गुहराज से कहते हैं कि:—पुण्य की स्पृहा करने वाले भरत जी अयोध्या नगरी के कार वार को सँभालेंगे। वास्तव में वहुत से लोगों से युक्त गृह वाला सहज ही धन्य हो जाता है अर्थात् वहुत से लोगों का भरण-पोषण करने वाला व्यक्ति ही धन्य कहा जा सकता है। लक्ष्मण जी के इन शब्दों को सुनकर गुहराज वोल उठा कि यदि ऐसा है तो आप लोगों के साथ यह सेवक चलेगा और वास्तव में इस सेवक के साथ वह निवास ( वास स्थान ) अवश्य ही हास्य और विनोद से युक्त हो जायेगा।

**शब्दार्थ:**—सृष्टि=प्रकृति। दृष्टि=नेत्र। कृतज्ञता=एहसान=आभार।

**व्याख्या:**—वन में वे वे चमत्कार हैं........राम की।

गुहराज लक्ष्मण जी से कहता है कि:—वन में प्रकृति के ऐसे ऐसे चमत्कार भरे पड़े हैं कि एक वार आँख से देख लेने पर नेत्रों के पलक फिर बन्द नहीं होंगे खुले के खुले ही रह जायेंगे। गुहराज के इन शब्दों को सुनकर लक्ष्मण जी ने कहा कि-हे गुहराज! श्री रामचन्द्र जी के घूमने और आराम करने की संपूर्ण सुविधा करके तुम स्वयं अकेले ही उनका आभार मत प्राप्त कर लो।

**शब्दार्थ:**—भाग=अंश=हिस्सा। ध्रुव तारक=ध्रुवतारा।

**व्याख्या:**—औरों को भी सखे,........दिया गुहराज को।

लक्ष्मण जी ने गुहराज से कहा कि—हे मित्र! प्रेम से अपनी सेवा और भक्ति का हिस्सा दूसरों को भी प्रदान करो और केवल कल हम लोगों को नाव से गंगा पार उतार दो। इसके बाद ध्रुवतारा से युक्त आकाश और समाज को देखकर श्री रामचन्द्र जी ने गुहराज को सम्मान प्रदान किया।

**( पृष्ठ–२९ )**

**शब्दार्थ:**—प्रकृतवृत्त=सच्चा वृत्तान्त=संपूर्ण विवरण। विषाद=खेद=दु:ख। तरु-तले=वृक्ष के नीचे।

**व्याख्या:**—प्रकृत वृत्त जब सुना........पड़े थे तरु-तले।

गुहराज निषाद ने जब राम के बनवास का खेदजनक सारा वृत्तान्त सुना तो पुष्प के समान उसका मन मुर्झा गया। उसने देखा कि राजमहलों में पले हुए देवता के समान मूर्ति ( रूप ) वाले राम लक्ष्मण और जानकी जी वृक्षके नीचे कुश की सेज पर सोये पड़े थे।

**शब्दार्थ:**—फूलते हुए=विकसित होते हुए भी। तरंगाघात=लहरों का टकराना।

**व्याख्या:**—हाय! फूलते हुए...............तरंगाघात भी।

गुहराज निषाद राम के बनवास के विषय में सोचता हुआ कहता है कि हाय! विकसित होते हुए भाग्य कैसे फलदायक हुए अर्थात् राज्याभिषेक के बदले राम को बनवास का कष्ट प्राप्त हुआ। इस प्रकार सोचकर भावुकता के वश में उस भावुक निषाद की आँखों से आँसू टपकने लगे। उस समय रात्रि साँय साँय कर घुरक रही थी मानों लहरों की टकराहट अपने लय ( गति ) में विलीन हो रही थी।

**शब्दार्थ:**—तुच्छ=छोटा। अभिशाप=श्राप। दुर्नीति=बुरी नीति।

व्याख्या:—तब भी लक्ष्मण घूम·········राज्य से ही अरे !

तिस पर भी लक्ष्मण जी अपनी नींद के लघु अंश का भी त्याग करके जागते हुए घूम रहे थे। पता नहीं किसके श्राप का फल उन्हें भोगना पड़ रहा था। ठीक ही है राज्य मे ही सारी कुटिल नीति का संचार होता है।

शब्दार्थ:—लाल=पुत्र। भव=संसार। असित=काला। वितान=मंडप=तम्बू।

व्याख्या:—खोकर ऐसे लाल·········शोक, भय, आपदा।

अरी कैकेयी! तूने ऐसे अनुपम रत्नों ( पुत्रों ) को खोकर क्या पाया? तुझे क्या करना चाहिये था और तूने यह क्या कर दिया? ठीक ही है इस संसार के ऊपर सदैव काला तंबू तना रहता है जिसके स्तम्भ दुःख, शोक, भय और आपत्ति हैं।

शब्दार्थ:—अचिंत्य गति=अचिन्तनीय स्थिति=कल्पना से परे।

व्याख्या:—उस अचिंत्य गति············शृंगवेर पुर क्या भला !

गुहराज निषाद सोचता हुआ कहता है कि:—कल्पना से परे इस आकाश के नीचे जब तक हम लोग हैं तब तक छोटे बड़े ( राजा रंक, उच्च नीच ) सभी विधि के विधान से विवश हैं। जो श्री रामचन्द्र जी अयोध्या नगरी को त्यागकर वन को चल पड़े हैं उनके सामने शृंगवेरपुर का भला क्या मूल्य है?

शब्दार्थ:—उपहार=भेंट। वार=निछावर। बद्धमुष्टि=मुट्ठी बाँधे हुए। भ्रान्त=भ्रम में पड़ना। सौमित्रि=लक्ष्मण।

व्याख्या:—वर उसको दूँ और············'बन्धु तुम शान्त हो।

गुहराज निषाद कहता है कि—जब अयोध्या नगरी के वैभव से तुच्छ शृंगवेरपुर का श्री रामचन्द्र जी की दृष्टि में कोई महत्व नहीं है तो भला अब अन्य कौन सा उपहार उन्हें मैं अर्पण करूँ? अतएव कल मैं स्वयं अपने को उनपर निछावर करके धन्य बनूँगा। इस प्रकार सोचता हुआ भ्रम में पड़कर गुहराज निषाद मुट्ठी बाँधे खड़ा रह गया। उसके इस भाव को देखकर तब लक्ष्मण जी ने कहा कि हे भाई! तुम शान्त हो जाओ।

शब्दार्थ:—रोष=क्रोध। सौख्य-सन्तोष=सुख-शान्ति।

**व्याख्याः**—तुमको जिनके लिए········तुम्हारी प्रीति से।

लक्ष्मण जी गुहराज निषाद से कहते हैं किः-तुम जिन श्री रामचन्द्र जी के लिए दुःख और क्रोध का प्रदर्शन कर रहे हो स्वयं उन्हें अपने लिए सुख और संतोष (शांति) प्राप्त है, तुम नीतिपूर्वक शृंगवेरपुर का राज्य करो। श्री रामचन्द्र जी को कुछ भी नहीं चाहिये वे तो तुम्हारे प्रेम तथा भक्ति-भाव से ही पूर्ण संतुष्ट हैं।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पदों में शृंगवेरपुर के राजा गुहराज निषाद के प्रेम और सहानुभूति पर कवि ने अनुपम प्रकाश डाला है।

(पृष्ठ-३०)

**शब्दार्थः**—कोसलराज्य=अयोध्या। वारा गया=निछावर हो गया। भुवन=संसार।

**व्याख्याः**—मिला धर्म का आज············भुवन में छा रहा।

श्रीरामचंद्र जी की चर्चा करते हुए लक्ष्मण जी गुहराज निषाद से कहते हैं कि-आज धर्म का नवीन धन श्री रामचन्द्र जी को प्राप्त हो गया और उसी पर अयोध्या का राज्य स्वयं निछावर हो गया। समय व्यतीत होता जा रहा है और काल का आगमन हो रहा है वास्तव में इस संसार में विपरीत भाव फैल रहा है अर्थात् काल की गति-चक्र से संसार में परिवर्तन हो चला है।

**शब्दार्थः**—कीट-पूर्ण=कीड़ों से युक्त। कुसुम=फूल। कंटकित=काँटेदार।

**व्याख्याः**—कीट-पूर्ण हैं कुसुम············कहाँ से धर सकें।

संसार की विषम परिस्थिति का वर्णन करते हुए लक्ष्मण जी कहते हैं किः—इस संसार में पुष्प कीड़ों से युक्त हैं और पृथ्वी कंटकाकीर्ण है अतएव इन सबसे बचकर जो पार हो जाय वही विजयी है। भाव यह है कि—इस संसार के दोषों और कठिनाइयों से बचकर जो अपने कर्तव्य का पालन करसके वही सच्चा कर्मवीर है। यदि हम कर्म के लिये ही कर्तव्य करते चलें तो उनका परिणाम हमें कैसे धर सकता है अर्थात् कर्तव्य करना मनुष्य का धर्म है फल तो ईश्वराधीन है।

**शब्दार्थः**-कर्त्ता=करने वाला। भोक्ता=भोगने वाला। युक्ति=उपाय। विषाद=खेद=दुख। सुप्त=सोया हुआ। सतत=लगातार। सजग=होशियार। चैतन्य=जाग्रत।

**व्याख्याः**—कर्त्ता मानों जिसे तात्........चैतन्य मैं।

लक्ष्मण जी गुहराज निषाद से कहते हैं कि—हे! तात् इस संसार से बन्धन मुक्ति का केवल एक यही उपाय है कि जिसे कर्त्ता माना जाय उसे भोक्ता भी समझ लिया जाय अर्थात् ईश्वर ही करने वाला और वही भोगने वाला है। अतएव मेरे लिये चिन्ता या खेद प्रकाश करना निरर्थक है, मैं अपने को इस कार्य ( वनवास ) में धन्य समझता हूँ, मैं सोया हुआ नहीं हूँ बल्कि सदैव चैतन्य हो कर जागता रहता हूँ।

**शब्दार्थः**—भव-सिन्धु=भवसागर। तर चुका=पार कर चुका। आत्म-समर्पण=आत्म-त्याग। दुरत्यया=असाध्य=कठिन।

**व्याख्याः**—मैं तो निज भवसिन्धु...........शक्तिशीला बड़ी।

लक्ष्मण जी गुहराज निषाद से कहते हैं कि:—मैंने तो अपने भवसागर का कभी का पार कर लिया और श्री रामचन्द्र जी के चरणों में अपने इस जीवन को निछावर कर दिया। वास्तव में जीव और ईश्वर के बीच में बाधक बन कर माया खड़ी है और वह बड़ी बलशालिनी और कठिनता से दूर की जासकनेवाली है।

**शब्दार्थः**—साधो=ठीक करो। युक्ति=उपाय। समन्वय=मिलाप=कार्य और कारण की संगति या निर्वाह। भुक्ति=लौकिक सुख। मुक्ति=मोक्ष। अभिसारिका=नायिका=प्रेमिका। द्विजोंने=ब्राह्मणों ने। बोधमयी=ज्ञानपूर्ण। कल=सुन्दर। कारिका=किसीसूत्रकी श्लोकबद्धव्याख्या=संकीर्ण राग का एक भेद।

**व्याख्याः**—साधो उसको...............बोधमयी कल-कारिका।

लक्ष्मण जी गुहराज निषाद से माया पर विजय पाने की युक्ति की चर्चा करते हुए कहते हैं कि:—माया को युक्ति से मनाना और साधना चाहिये तथा सांसारिक सुखों का मोक्ष से समन्वय ( निर्वाह ) करना चाहिये अर्थात् मनुष्य को

सांसारिक भोग विलास आदि की ओर से अपने मन को हटा कर मोक्ष की ओर लेजाना चाहिये। इस प्रकार चर्चा करते हुए नायिका सदृश रात्रि चुप चाप चली गई अर्थात् रात्रि व्यतीत हो गई और ब्राह्मणों ने ज्ञानमय सुन्दर स्वरों में सूत्रों का पाठ किया।

**शब्दार्थ:**-प्रात:छटा=प्रात: कालीन शोभा। स्वर्ण घटित=स्वर्णमयी=सुनहली। रजत=चाँदी के समान=श्वेत। जाह्नवी=गंगा। वट=बरगद का वृक्ष। रची=बनाया।

**व्याख्या:**—सबने मज्जन किया............न कुछ आशा बची।

प्रात: काल की शोभा को देखकर सब लोगों ने शौच, दन्तमंजन आदि नित्य कर्म किया। उस समय चाँदी के समान गंगा की धारा सुनहली प्रतीत हो रही थी। श्री रामचन्द्र जी ने वरगद का दूध लेकर अपनी जटा बनाई। इस दृश्य को देखकर अयोध्या लौटा ले चलने की सुमंत्र की रही सही आशा भी समाप्त हो गई।

**शब्दार्थ:**—क्षात्र=क्षत्रित्व=क्षात्र धर्म। प्रबोध=प्रबोधन=ढाढ़स।

**व्याख्या:**—"स्वयं क्षात्र ने लिया............निभा दे रीति से।

सुमंत ने श्री रामचन्द्र जी से कहा कि क्या आज क्षात्र धर्म ने स्वयं ही वैराग्य धारण कर लिया है? क्या आज हमारा भाग्य सर्वथा शान्त हो गया? इस पर श्री रामचन्द्र जी ने सुमंत को प्रेम पूर्वक ढाढ़स बँधाते हुए कहा कि—यदि किसी कार्य के लिए व्रत लिया जाय तो उसे नियम पूर्वक निभा भी देना चाहिये।

(पृष्ठ—३१)

**शब्दार्थ:**—छत्र=छाता=मंडप। सौम्य=सुशील=नम्र। विधिवाम=ब्रह्मा की विपरीतता= ब्रह्मा का टेढ़ापन।

**व्याख्या.**—जटा जूट पर छत्र.........तुम्हारे राम का।

श्री रामचन्द्र जी सुमंत जी से कहते हैं कि:—जटा-समूह पर छत्र छाया भले ही करले पर वृक्ष के नीचे मुकुट की तो केवल हँसी (मजाक) मात्र है। हे सुशील

सुमंत ! यहाँ भाग्य की विपरीतता अथवा ब्रह्मा के टेढ़ेपन का भला क्या कार्य है, यह तो तुम्हारे राम का अहोभाग्य है। भाव यह है कि-वन में राज मुकुट का कोई मूल्य नहीं है और न तो भाग्य की विपरीत रेखा ही कुछ प्रभाव डाल सकती है।

**शब्दार्थः**—तात=पिता। मूल-तुल्य=जड़ के समान। अवधि=समय की सीमा।

**व्याख्याः**—जाकर मेरा कुशल कहो.............आकर मिलें।

श्री रामचन्द्र जी सुमंत से कहते हैं कि—तुम अयोध्या जाकर पिता जी से मेरा कुशल समाचार बतलाओ और जिस प्रकार भी हो सके उन लोगों को-सान्त्वना और सन्तोष प्रदान करो। सब लोग वृक्ष की जड़ के समान सुखी रहें और हम लोग पुष्प के समान विकसित हों तथा वनवास की अवधि समाप्त होने पर आकर पुनः सब से मिल सकें।

**शब्दार्थः**— अल्प=थोड़ा। काल-सिन्धु=समय रूपी समुद्र। बिन्दु-तुल्य=बूँद के समान। युग=पुराणानुसार काल के चार परिमाण या विभाग यथा सतयुग त्रेता, द्वापर तथा कलि। कल्प=चौदह मन्वन्तर का एक काल=४३२००००००० वर्ष का एक कल्प होता है।

**व्याख्याः**—फिर भी ये दिन अधिक.............प्रकट सबने किये।

श्री रामचन्द्र जी सुमंत से कहते हैं कि:—वनवास के चौदह वर्ष विशेष नहीं बल्कि बहुत थोड़े हैं क्योंकि समय रूपी समुद्र में युग और कल्प भी बूँद के समान प्रतीत होते हैं। इसके बाद उन्होंने सुमंत को समयानुकूल उपदेश दिया और लक्ष्मण, तथा जानकी आदि ने भी सबके ( अयोध्या निवासियों दशरथ आदि के) प्रति अपने भाव प्रकट किए।

**शब्दार्थः**—अनमने=अन्यमनस्क=उदास। त्वरित=शीघ्र। निरोध=रोक= अवरोध।

**व्याख्याः**—कह न सके.............त्वरित तीनों जने।

श्री रामचन्द्र जी के नम्र विरोध में सुमंत जी कुछ भी न कह सके पर उनके

हृदय में ढाढ़स की सीमा तोड़ कर करुणा की धारा फूट पड़ी। सुमन्त के आत्म-कष्ट को देख कर सब लोग उदास हो गये और राम लक्ष्मण तथा जानकी तीनों व्यक्ति शीघ्र ही गंगा के तट पर चले आये।

**शब्दार्थ:**—लक्षणा=शब्द की वह शक्ति जिससे उसका अर्थ लक्षित हो=शब्द की वह शक्ति जिससे उसका साधारण से भिन्न और वास्तविक अर्थ प्रकट हो। यह शक्ति दो प्रकार की होती है निरूढ़ और प्रयोजनवती। व्यंजना=व्यक्त या प्रकट करने की क्रिया या भाव=शब्द की वह शक्ति जिससे वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ के सिवा कुछ विशेष अर्थ निकलते हैं। तरंगित=लहराती हुई। सुरसरी=गंगा।

**व्याख्या:**—बैठीं नाव-निहार............भूमती थी तरी।

लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्ति के समान जानकी जी नौका को देखकर उसमें बैठ गईं और इस प्रकार 'गंगा में गृह' इस वाक्य की सार्थकता सहज ही सिद्ध हो गई। लहराती हुई गंगा जी उनके चरणों की ओर चलीं तथा आनन्द में मग्न मस्त होकर भूमती हुई प्रवाहित होने लगीं।

**शब्दार्थ:**—अहिल्या-तारिणी=अहिल्या को तारने वाली। मानस-कोष-विभूति-विहारिणी=हृदय के भंडार की विभूति में विहार करने वाली=हृदय की भावना तथा कल्पना में विचरण करने वाली।

**व्याख्या:**—धोली गुह ने धूलि........अमर-सा हो गया।

अहिल्या का उद्धार करने वाली तथा कवियों के हृदय की कल्पना में विचरण करने वाली भगवान श्री रामचन्द्र जी के चरण की धूलि को गुहराज निषाद ने धो लिया। इस प्रकार भगवान के चरणों को धोकर स्वयं भक्त निषाद भी अपने पापों को धोकर पापरहित हो गया और उनके चरणों के धोये जल को पान करके अमर (देवता) के समान हो गया।

**शब्दार्थ:**—हींस रहे थे=हिनहिना रहे थे। अश्व=घोड़े। उदग्रीव=गर्दन ऊँची करके। जीव=प्राण। प्रबोध=सान्त्वना।

**व्याख्याः**—हींस रहे थे उधर अश्व.........मुँह फेरकर।

रथ के घोड़े गर्दन ऊँची करके हिनहिना रहे थे मानो उनका प्राण उनके शरीर का त्याग करके उड़ा जा रहा हो। श्री रामचन्द्र जी ने घोड़ों के ऊपर हाथ फेरकर ( सुहलाकर या थपथपा कर ) उन्हें सान्त्वना प्रदान की। उधर गुहराज निषाद ने अपना मुँह फेरकर अपने नेत्रों के आँसुओं को पोंछ डाला।

**विशेषटिप्पणीः**—( १ ) उक्त पदों में माया तथा धर्म-कर्म का अच्छा समन्वय किया गया है ( २ ) कवि ने ब्रह्मवाद का उत्तम निरूपण किया है। ( ३ ) गुहराज निषाद के अलौकिक प्रेम का दिग्दर्शन खूब बन पड़ा है।

## ( पृष्ठ–३२ )

**शब्दार्थः**—भव्य=सुन्दर। आनन्द-तरंगे=आनन्द की लहर वाली। कलरवे सुन्दर ध्वनि करने वाली। अमल=स्वच्छ=निर्मल=दोष रहित=पाप शून्य। अंचल= पल्ला=छोर=किनारा। दिव=स्वर्ग=दिन=वन। संभवे=संभव बनाने वाली।

**व्याख्याः**—कोमल है बस प्रेम, कठिन...........दिव-संभवे।

कवि प्रेम और कर्तव्य की चर्चा करते हुए कहता है कि:—केवल प्रेम ही वह कोमल वस्तु है जो सबके लिए संभव है पर कर्तव्य का पालन कठिन कार्य है, इसे सभी लोग पालन नहीं कर सकते। पर इन दोनों में कौन सा पवित्र है और कौन सा सुन्दर है इसे कोई नहीं बता सकता। जानकी जी गंगा जी की वन्दना करती हुई कहती हैं कि:—आनन्द की लहर वाली, सुन्दर ध्वनि करने वाली, स्वच्छ तट वाली, पुण्य जल वाली तथा स्वर्ग को भी संभव बना देने वाली हे गंगे ! तुम्हारी जय हो।

**शब्दार्थः**—भरत-भूमि=आर्यावर्त=भारत। चलाचल=चल और अचल। सुकृत=पुण्य=सत्कर्म। मैथिली=जानकी जी।

**व्याख्याः**—सरस रहे यह भरत-भूमि...... .....क्या मैथिली ?

गंगा जी को लक्ष्य करके जानकी जी कहती हैं कि:—हे गंगे ! तुम्हारे प्रभाव से यह भारत भूमि ( आर्यावर्त ) सदैव रसीली ( हरी भरी ) बनी रहे। हम लोगों

की तुम एक चल और अचल संपत्ति हो। जब तुम्हारे दर्शन और स्पर्श के पुण्य की सिद्धि प्राप्त हो गई तब यह मैथिली तुमसे और क्या माँगे?

**शब्दार्थः**—यथा विधि=ठीक तौर से=विधिवत। उद्भासित=उद्दीप्त=उत्तेजित जह्नु नन्दिनी=गंगा जी। किरण-मूर्त्तियाँ=लहरें=सीता जी का जल में प्रतिबिम्ब।

**व्याख्या**—बस यह बन की अवधि…………रही थीं गोद में।

जानकी जी कहती हैं कि हे गंगे! तुम मुझे आशीष दो कि वनवास की अवधि को विधिपूर्वक पार कर जाऊँ (व्यतीत कर लूँ) और वापस आकर तुम्हारी उचित पूजा और भेंट कर सकूँ। उस समय गंगा जी आनन्द से उद्दीप्त हो उठी थीं और उनकी गोद में (जानकी जी के प्रतिबिम्ब से युक्त) लहरें क्रीड़ा कर रही थीं।

**शब्दार्थः**—विविध-पवन-गति=तीन प्रकार की वायु की चाल। अलक=केश=घुँघराले बाल। पथी=राही। भागीरथी=गंगा।

**व्याख्याः**—वैदेही थीं झलक-झलक…………भागीरथी।

जानकी जी गंगा की लहरों का दृश्य देख-देखकर झूम रही थी और तीन प्रकार की वायु के झोंके से उनके बाल लहरा-लहरा कर उनके पलक का स्पर्श कर रहे थे। इसके बाद पुण्य (पवित्र) मार्ग के पथिक श्री रामचन्द्र जी ने उनसे कहा कि:—हे प्रिये! यह गंगा जी अपने ही वंश की उज्ज्वल कीर्ति हैं।

**शब्दार्थः**—अनुगामी=अनुसरण करने वाला=आज्ञाकारी। मात्र=केवल। परिहास=हास्य=क्रीड़ा=विनोद।

**व्याख्याः**—"तुम्हीं पार कर रहे…………बना वनवास तो!"

लक्ष्मण ने श्री रामचन्द्र जी को उत्तर दिया कि उसी वंश की उज्ज्वल कीर्ति गंगा को आज आप पार कर रहे हैं। इस पर सीता जी ने हँस कर कहा कि—देवर! भला तुम ऐसा क्यों न कहो? इस पर लक्ष्मण जी ने तुरत उत्तर दिया कि—हे देवि! यह सेवक तो आप लोगों का अनुकरण करने वाला मात्र है। इस बातचीत को सुनकर गुहराज निषाद ने कहा कि यह बनवास आज हास्य और विनोद का स्थान हो गया है।

**शब्दार्थ:**—कुतूहल=कौतूहल=आश्चर्य । मिलन-स्मृति-सी=मिलापकी यादगार सी । क्षुद्रिका=छोटी वस्तु । स्वर्ण मणि-मुद्रिका=सोने की अँगूठी ।

**व्याख्या:**—वहाँ हर्ष के साथ............स्वर्ण मणि-मुद्रिका ।

इस प्रकार नौका पर सवार हुए बातचीत करते हुए प्रसन्नता के साथ कौतूहल छा गया और किसीको पता भी न चला कि नौका चल रही थी या पार का तट स्वयं ही वहाँ आ पहुँचा । पार पहुँचकर गुहराज निषाद को सोने की अँगूठी देते हुए जानकी जी ने कहा कि यह हम लोगों के मिलन की यादगार के रूप में रहे ।

**शब्दार्थ:**—तज दो=छोड़ दो । चरण-रज=पैर की धूलि ।

**व्याख्या:**—गुह बोला कर जोड़............चरण-रज दो मुझे ।

गुहराज निषाद ने जानकी जी से हाथ जोड़कर कहा कि आप यह कैसी कृपा कर रही हैं । इस सेवक पर कभी भी ऐसी कृपा न करें । क्षमा कीजिये ! इस प्रकार मुझे आप लोग न त्याग दें । हे श्री रामचन्द्र जी ! मुझे सोना नहीं केवल अपने चरण की धूलि प्रदान कीजिये ।

## ( पृष्ठ-३३ )

**शब्दार्थ:**—जड़=जड़ पदार्थ=पत्थर । चेतन-मूर्ति=चैतन्य मूर्ति=जीवित । पाषाण=पत्थर । धी-धाम=बुद्धि के घर ।

**व्याख्या:**—जड़ भी चेतन-मूर्ति हुई.......धी-धाम ने ।

गुहराज निषाद श्री रामचन्द्र जी से कहता है कि:-आपके जिस चरण-रज को पाकर जड़मूर्ति अहिल्या पत्थर से जीवित नारी हो गई भला उसे छोड़कर रत्न के रूप में पत्थर किसे अच्छा लग सकता है । इन शब्दों को सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने उसे छाती से लगा लिया तथा बुद्धि के आगार उन्होंने ज्यों त्यों करके उसे विदा किया ।

**शब्दार्थ:**—तीर्थराज=प्रयाग । प्रान्तर=विस्तृत मैदान ।

**व्याख्या:**—पथ में सबके प्रीति············गाँव छोटे-बड़े।

श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण और जानकी जी प्रयाग की ओर चल पड़े और मार्ग में सबके प्रेम ने हर्ष और आश्चर्य का स्थान ग्रहण कर लिया। मार्ग में कहीं खेत थे तो कहीं विस्तृत मैदान थे और छोटे बड़े गाँव शून्य समुद्र के द्वीप के समान प्रतीत हो रहे थे।

**शब्दार्थ:**—प्रहरी=रक्षक। प्राकृतिक=स्वाभाविक=कुदरती।

**व्याख्या:**—पथ के प्रहरी वृक्ष············प्राकृतिक बाड़ियाँ।

कहीं पर राह के रक्षक वृक्ष झूम रहे थे और कहीं पर पक्षी, हिरण आदि चरते हुए घूम रहे थे। कहीं-कहीं पर छोटी-मोटी झाड़ियाँ दीख पड़ रही थीं और खरहे आदि छोटे जीवों के लिए प्राकृतिक बाड़ियाँ बनी हुई थीं।

**शब्दार्थ:**—पगडंडी=छोटी राह। लोक की लीक=संसार की रेखा। भरके=वह जमीन जिसकी मिट्टी काली और चिकनी हो।

**व्याख्या:**—पगडंडी थी गई मार्ग············सर के कहीं।

मार्ग से सटी हुई पगडंडी इस प्रकार गई थी जिस प्रकार शास्त्र संमत मत को त्याग कर संसार की लकीर उसका स्थान ग्रहण कर लेती है। कहीं पर टीले दिखाई पड़ते थे और कहीं पर भरके ( गड्ढे ), कहीं पर बावड़ी, कुँआ और तालाब के दृश्य दिखाई पड़ते थे।

**शब्दार्थ:**—पथ-पार्श्वों में=राह के आसपास में। चत्वर=चौराहा=चौरस्ता। सत्वर=शीघ्र। रज: पूर्ण=पराग से युक्त=पसीने से युक्त। पद्म=कमल। इन्दु=चन्द्र=नेत्र।

**व्याख्या:**—पथ-पार्श्वों में मिले················अमृत युत इन्दु थे।

श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण तथा जानकी जी को मार्ग में राह के आस-पास पथिकों के चौराहे मिले और आश्चर्यजनक दृश्यों ने उन्हें शीघ्र ही हरा कर दिया। उनके पैरों पर धूल के कण थे और मुखों पर पसीने की बूँदे थीं इस

प्रकार उनके कमलवत मुख पराग ( पसीने ) से युक्त थे तथा चन्द्रवत उनकी आँखें अमृतमय ( लाल ) हो गई थीं।

**शब्दार्थ:**—कुछ काल=कुछ समय तक=थोड़ी देर। कोसल-धनी=श्रीरामचन्द्र जी।

**व्याख्या:**—देख घटा सी पड़ी..............न आगे कह सकीं।

बादलों की घटा के समान एक घनी छाया को देखकर श्री रामचन्द्र जी कुछ समय के लिये वहाँ रुक गये। अब जानकी जी ने कहा कि-क्या आप लोग ( राम, लक्ष्मण से तात्पर्य है ) नहीं थके और मैं हो थक गई। इसके बाद आगे वह और कुछ भी न कह सकीं।

**शब्दार्थ:**—सती=जानकी जी। तप्तहेम=गर्म सोना।

**व्याख्या:**—हँसते हँसते सती...........यही संकोच है।"

हँसते हँसते सहसा जानकी जी रो पड़ीं। इस प्रकार गर्म सोने की मूर्ति के समान उनका हृदय द्रवित सा हो गया और उन्होंने श्री रामचन्द्र जी से कहा कि—मैं अपने लिए कुछ भी चिन्ता नहीं करती पर आपको असुविधा न हो यही चिन्ता बनी रहती है।

## ( पृष्ठ–३४ )

**शब्दार्थ:**—अभ्यास=प्रयोग। जुड़ आई थीं=एकत्र हो गई थीं।

**व्याख्या:**—प्रिये हमारे लिए...............हुई विश्राम को।

श्री रामचन्द्र जी ने जानकी जी से कहा कि हे प्रिये! तुमको हमारे लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अभी वनवास की यात्रा का यह नया प्रयोग है अतएव कुछ समय तक धैर्य धारण करो। उस समय तक वहाँ पर आसपास के गाँव की स्त्रियाँ एकत्र हो गई थीं। अतएव विश्राम की साधना में वे सहायक सिद्ध हो गईं अर्थात् उनके आ जाने से उन्हें कुछ समय तक विश्राम करने का अवसर मिल गया।

**शब्दार्थ:**—लतिकाओं=लताओं। कुसुम-कली=फूल की कली। शुभे=आर्ये=कल्याणी। उभय=दोनों।

**व्याख्या:**—सीता सबसे·····················ज्येष्ठ हैं।

सीता जी ग्रामीण स्त्रियों से प्रेम पूर्वक मिलीं और लताओं में पुष्प की कली के समान प्रसन्न हो उठीं। उन स्त्रियों ने सीता जी से पूछा कि हे आर्ये (कल्याणी)! ये दोनों श्रेष्ठ व्यक्ति तुम्हारे कौन लगते हैं? सीता जी ने उत्तर दिया कि गोरे तन वाले (लक्ष्मण) मेरे देवर तथा श्याम रंगवाले (राम) उन्हीं के जेठे भाई हैं।

**शब्दार्थ:**—स्वच्छन्द=स्वतंत्र=इच्छानुसार। विराम=विश्राम। लाभ=प्राप्त। भूरि=बहुत।

**व्याख्या:**—वैदेही यह सरल···········भाव भरते हुए।

जानकी जी ने सरल भाव से ग्रामीण स्त्रियों के प्रश्न का उत्तर दे दिया तब भी वे सब कुछ सरल हँसी हँसकर चुप रह गईं। इस प्रकार स्वच्छन्दता पूर्वक विश्राम करते हुए तथा राह में मिलने वाले लोगों में बहुत भाव भरते हुए।

**शब्दार्थ:**—पर=दूसरे। तीर्थ-राज=प्रयाग। द्विगुण=दूना=दोहरा। पर्व-सा=त्यौहार के समान। त्रिवेणी=गंगा, जमुना, सरस्वती। सौमित्रि=लक्ष्मण।

**व्याख्या:**—पर दिन तीनों तीर्थ-राज··············में लीन से।

दूसरे दिन श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण और जानकी जी प्रयाग राज में पहुँच गये और इस प्रकार उन लोगों के आगमन से भरद्वाज मुनि को दोहरे पर्व का सा लाभ हुआ और उन तीनों व्यक्तियों से गंगा, जमुना और सरस्वती नदियाँ भी धन्य हो उठीं। लक्ष्मण जी अमृत में सने हुए शब्द बोले।

**शब्दार्थ:**—जनक-सुता=जनक की लड़की=जानकी जी। देह=शरीर।

**व्याख्या:**—"देखो भाभी, तीर्थराज·············दो देह ज्यों।"

लक्ष्मण जी ने जानकी जी से कहा कि हे भाभी! प्रयागराज की शोभा देखो। ऐसा प्रतीत होता है मानो वर्षाऋतु से आकर शरद कालीन घटायें सी

मिल गई हैं इसे सुनकर प्रेम पूर्वक हँसकर जानकी जी ने कहा कि—यह मिलन ऐसा ही है जैसे साँवले रंग वाले तुम्हारे भाई और गौर वर्णवाले तुम दोनों अलग अलग दो तन धारण करते हुए भी प्राण के सदृश एक ही हो।

**शब्दार्थ:**—रामानुज=राम के अनुज=लक्ष्मण जी। सरस्वती सी=सरस्वती नदी के समान। मेरी सरस्वती=उर्मिला से तात्पर्य है। संगम=गंगा, यमुना और सरस्वती के मिलने का स्थान।

**व्याख्या:**—रामानुज ने कहा…………निमग्न हुई यहाँ!

लक्ष्मण ने जानकी जी से कहा कि—हे भाभी! ऐसा क्यों न होता क्योंकि यहाँ तो तुम सरस्वती के समान प्रकट हो रही हो। इस पर कटाक्ष करती हुई जानकी जी ने कहा कि हे देवर! मेरी सरस्वती (लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला) अब यहाँ कहाँ है? संगम के सौन्दर्य को देखकर वह यहाँ लुप्त हो गई।

**शब्दार्थ:**—गीत-काव्य-चित्रावली=गीत-काव्य का चित्र समूह। माई के लाल=माता का शौर्य शाली पुत्र। लली=लड़की।

**व्याख्या:**—धूप-छाँह का वस्त्र……………जनक की वे लली!

जानकी जी लक्ष्मण जी से कहती हैं कि—सरस्वती का धूप छाँह का बड़ा वस्त्र मात्र यहाँ पड़ा हुआ मन्द वायु से लहरा रहा है। इस पर श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि यह गीत-काव्य की चित्रावली उपस्थित की जा रही है? ठीक ही है लक्ष्मण माता के शौर्यशाली पुत्र हैं और तुम जनक जी की कन्या हो।

( पृष्ठ-३५ )

**शब्दार्थ:**—अभिव्यक्ति=प्रकाशन—विज्ञापन=व्यक्त करने का भाव। अनुभूति=अनुभव की गई।

**व्याख्या:**—अभिव्यक्ति की कुशल…………एक की भी अहो?

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि व्यक्त करने के भाव की कुशल शक्ति को ही कला कहते हैं पर यहाँ तो अनुभूति स्वयं ही निश्चल रूप से विराजमान है।

तुम दोनों कलाकार ( लक्ष्मण, जानकी जी ) जीते रहो। दोनों में से एक की भी प्रशंसा कर सकना मेरे लिए कठिन है।

**शब्दार्थ:**—महातीर्थ=बड़ा तीर्थ। परिणत=परिवर्तित।

**व्याख्या:**—सुनो मिलन ही..........ज्यों यहाँ।

श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण और जानकी जी को संबोधन करके कहते हैं कि:—सुनो! मिलन ही इस संसार में महान तीर्थ है और यहीं पर पृथ्वी एक परिवार के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जब दो मिलन में एक तीसरा मिलन हो जाता है तो वह उसी प्रकार संगम का रूप धारण कर लेता है-जिस प्रकार सरस्वती से मिलकर गंगा और यमुना ने अपना त्रिवेणी नाम सार्थक कर लिया है।

**शब्दार्थ:**—अनुराग=प्रेम। गृह-सम=घर के समान=गृहस्थ के समान।

**व्याख्या:**—त्याग और अनुराग..........रहो गृह-सम यहीं।

श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि—मिलन के लिए केवल त्याग और प्रेम की आवश्यकता है। इस पर भरद्वाज मुनि ने कहा कि तुम्हारे अन्दर वही ( त्याग और अनुराग) भरा है। अतएव तुम जहाँ कहीं भी जाओगे वहीं तीर्थ हो जायेगा। पर मेरी अभिलाषा है कि गृहस्थ के समान तुम यहीं पर अपना निवास बनाकर रहो।

**शब्दार्थ:**—कृत-कृत्य=धन्य। जनपद=बस्ती=आबादी। निर्देश कीजिये=बतलाइये।

**व्याख्या:**—प्रभु बोले..........का मन रहे।

श्री रामचन्द्र जी ने भरद्वाज मुनि से कहा कि यह सेवक आपकी कृपा का आभारी है पर मेरा बस्ती के निकट रहना क्या उचित है? अर्थात् नहीं। अतएव आप हमें ऐसा वन बतलाइये जहाँ पुष्प के समान जानकी जी का मन रम जाये।

**शब्दार्थ:**—सुधि=ध्यान=चिन्ता। कुल-स्त्रियाँ=कुल-नारियाँ। उपालम्भ=उलाहना। स्वात्म-संताप=अपना कष्ट।

**शब्दार्थ:**—मध्य-भाग=बीच में। मोद-धारा=आनन्द की धारा। नागर-भाव=नागरिकता का भाव=चतुर भाव।

**व्याख्या:**—"भाभी फिर भी गई········प्रिये अपना यही।

लक्ष्मण ने सीता जी के व्यंग्य का उत्तर देकरके कहा कि हे भाभी! हम दोनों भाइयों के चलने में वन में आगा पीछा ( स्थानान्तरण ) अवश्य हो गया पर तुम्हें कहीं भी जाना आना नहीं पड़ा, तुम बीच की बीच ही में रह गई, भाव यह है कि-चाहे राम, सीता, लक्ष्मण का क्रम रहे या लक्ष्मण सीता राम का क्रम रहे पर सीता का स्थान मध्य भाग ही रहेगा इसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। देवर भाभी के इस प्रसंग को सुनकर श्री रामचन्द्र जी मुस्करा पड़े और इस प्रकार उनके मुख से आनन्द की धारा वह गई। उन्होंने सीता से कहा कि हे प्रिये! वन में हम लोगों का यही नागरिक भाव है।

**शब्दार्थ:**—कक्ष=कोख=बगल=कछार=जंगल। पक्ष=पंखा।

**व्याख्या:**—बीते यों ही अवधि···········उड़ा दृढ़ पक्ष से।

श्री रामचन्द्र जी ने सीता जी से कहा कि यदि इसी प्रकार यहाँ हँस खेलकर वनवास की अवधि व्यतीत हो जाये तो कष्ट उठाकर भी हम लोग धन्य हो जायेंगे। उसी समय सीता जी ने कहा कि अरे! मैं तो चौंक पड़ी। अपने दृढ़ पंखों से फड़फड़ करके बगल से यह कौन उड़ा है?

**शब्दार्थ**—वैमानिक=उड़ाका। मनुज=मनुष्य। वसुधा=पृथ्वी।

**व्याख्या**—देखो, पहुँचा····· फाड़ फाड़ अपने गले।

सीता जी कहती हैं कि:—देखो वह पक्षी तुरत कहीं से कहीं पहुँच गया। ठीक ही है मनुष्य उड़ाका भले ही हो जाये पर वह पक्षी नहीं हो सकता। ऊपर अपार आकाश है और नीचे विस्तृत पृथ्वी है फिर भी किस प्रकार अपना गला फाड़-फाड़ कर—

( पृष्ठ-३७ )

**शब्दार्थः**—चंचु=चोंच । तुच्छ—छोटी । संकुचित=सँकरी । वन वीथि=जंगल की गली=जंगल का मार्ग । वन स्थली=वनभूमि । माँग=सरके बीचो बीच बाल की मध्य रेखा=मध्य मार्ग ।

**व्याख्याः**—वे तीतर नख-चंचु··············बनी वन-वीथि है ।

जानकी जी श्री रामचन्द्र जी से कहती हैं कि—वे तीतर पक्षी नख और चोंच मार-मारकर आपस में लड़ रहे हैं । भला कौन बता सकता है कि वे किस छोटी सी बात के लिए अपने अपने पक्ष पर अड़ रहे हैं । यह वन में सीधी, सकरी और घनी वन की गलियाँ ( राहे ) हैं । वास्तव में वन की गली वन-स्थान की माँग बनी हुई है ।

**शब्दार्थः**—पक्षों=पंखों । चपल=चंचल । चितचोर=चित्त को चुराने वाला ।

**व्याख्याः**—वनलक्ष्मी सौभाग्यवती··········चितचोर यह ।

जानकी जी श्री रामचन्द्र जी से कहती हैं कि:—यह वनलक्ष्मी सौभाग्यवती होकर सदैव फूले फले ( हरी भरी बनी रहे ) यहाँ शान्ति बच्चे की भाँति झूलती रहे और वायु पंखा झलने का कार्य करे । चंचल और चित्त को हरण करने वाला यह मयूर अपने पंखों से मार्ग को साफ करके आगे आगे भाग रहा है ।

**शब्दार्थः**—मचक-मचक=कूद कूद । कीश-मंडली=बन्दरों का समूह । बच= एक वनस्पति=उग्रगंधा । ठूंठ=सूखे वृक्ष ।

**व्याख्याः**—मचक-मचक वह············ठूंठ ही ।

जानकी जी श्री रामचन्द्र जी से कहती हैं कि—वह बन्दरों का समूह कूद कूदकर खेल रहा है और बच की डाल भी लचक लचक कर उनके बोझ को सँभाल लेती है । हे स्वामी ! ये ठूँठे वृक्ष अपना सब कुछ गँवाकर जानते हुए भी व्यर्थ में तपस्वी के समान खड़े हैं !

**शब्दार्थः**—कुसुम-शय्या=पुष्प की सेज ।

**व्याख्या:**—"इन पर भी तो प्रिये,..............जहाँ छाया घनी।

ठूँठे वृक्ष के विषय में जानकी जी के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि हे प्रिये ! इन ठूँठे वृक्षों पर भी तो लतायें चढ़ रही हैं मानो फिर वे इन्हें हरा करके बढ़ रही हैं। इसके बाद जानकी जी ने कहा कि—कहीं पर वृक्षों के नीचे स्वाभाविक पुष्प-सेज बनी हुई है जहाँ घनी छाया पड़कर ऊँघ रही है !

**शब्दार्थ:**—लोल=सुन्दर। दल-पुंज=पत्तों का समूह।

**व्याख्या:**—घुस धीरे से किरण..............लेटती है वहीं।

जानकी जी श्री रामचन्द्र जी से कहती हैं कि—सूर्य की किरणें सुन्दर पत्तों के समूह में धीरे से प्रवेश करके कुंज में छाया को हिलाकर जगारही हैं परन्तु छाया वहाँ से उठना नहीं चाहती है बल्कि वह वहीं पर कुछ करवट लेकर पलटकर लेटती है।

**शब्दार्थ:**—सखि=छाया के लिए प्रयुक्त है। तरुवर-पद-मूल=वृक्ष की जड़ या तना।

**व्याख्या:**—सखि तरुवर-पद-मूल..............अंग ढीला किये।

जानकी जी छाया को संबोधित करके कहती हैं कि—हे सखी ! तुम वृक्ष की जड़ को कभी मत छोड़ो क्योंकि इसका सदैव एक रूप ( समभाव ) रहता है वहाँ फूल और काँटे में भेदभाव नहीं है। लीला करके यह एक पक्ष फैलाये हुए है और अपना अंग ढीला करके छाती पर भरदिया।

**शब्दार्थ:**—ग्रीवा=गर्दन। विहंग=पक्षी।

**व्याख्या:**—देखो, ग्रीवा-भंग-संग..............चुगता वहीं।

जानकी जी कहती हैं कि—देखो ! वह पक्षी उत्साह से किस प्रकार अपनी गर्दन को टेढ़ी करके हमें देख रहा है। जो पक्षी जहाँ कहीं स्थान पाता है वहीं रुकता है और जो कुछ जिसे मिल जाता है वह उसे वहीं चुग लेता है।

( पृष्ठ-३८ )

**शब्दार्थ:**—यत्र-तत्र=यहाँ वहाँ। सत्र=घर।

**व्याख्या:**—यत्र-तत्र उद्योग………… …कर्म का योग है।

जानकी जी कहती हैं कि यहाँ वहाँ उद्योग ही सब सुखों का घर है पर अच्छे योग का मिलना ही सब जगह मुख्य ( प्रधान ) है। इसपर श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि—हे आर्ये! मैं इसे मानता हूँ कि सब कुछ भाग्य का ही फल है पर यह भाग्य भी पूर्व जन्म के कर्तव्य का प्रभाव होता है।

**शब्दार्थ:**—भेद रहा बस नाम का=नाम मात्र का ही अन्तर है। मैथिली=जानकी जी।

**व्याख्या:**—"प्रिये ठीक है,…………छोड़ न घर रहना पड़ा।

श्री रामचन्द्र जी जानकी जी से कहते हैं कि:—हे प्रिये! बस नाम का ही अन्तर है। लक्ष्मण का प्रयत्न है और राम का भाग्य है। इसको सुनकर जानकी जी ने कहा कि हे स्वामी! वास्तव में सबसे बड़ा भाग्य तो मेरा है क्योंकि यह वन का सुख छोड़कर मुझे घर नहीं रहना पड़ा अर्थात् यदि आपको वनवास न होता और वनवास होने पर भी यदि मुझे आप के साथ वन आने का अवसर न मिलता तो वन के सुन्दर दृश्य देखने का मेरा सौभाग्य भी न होता।

**शब्दार्थ:**—किंशुक=पलाश-पुष्प। केंचुली=सर्प का केंचुल।

**व्याख्या:**—वह किंशुक…………न हो फिर उठ खड़ी।

जानकी जी कहती हैं कि:—वह किंशुक ( पलाश-पुष्प ) हृदय खोलकर विकसित हो गया और पलाश को पुष्प-नाम प्राप्त हो गया। अरे! यहाँ कितनी बड़ी सर्प की केंचुल पड़ी हुई है। हवा पीकर फूलकर यह उठकर खड़ी न हो जाये ( जीवित न हो जाय )।

**शब्दार्थ:**—आर्ये=जानकी जी के लिये प्रयुक्त है।

व्याख्या:—आर्य तब भी हमें..................जानते बस यही।

लक्ष्मण जी जानकी जी से कहते हैं कि:—यदि सर्प की केंचुली हवा पान करके जीवित भी हो उठे तब भी हमें भला कौन सा भय है ? अर्थात् कोई भी भय नहीं है। जो भी हमें मारने चला वह पहले ही मर चुका। इसके बाद कुछ लक्ष्य करके लक्ष्मण जी ने जानकी जी से पूछा कि—अच्छा बतलाइये यहाँ ये क्या पड़े हैं ? इस पर जानकी जी ने उत्तर दिया—देवर ! सब कुछ, बस यही नहीं जानते।

शब्दार्थ:—शल्य=साही नामक जन्तु। शल=साही का काँटा।

व्याख्या:—विविध वस्तुएँ हमें..................बराबर चल गया।

जानकी जी लक्ष्मण से कहती हैं कि:—हमें वन में अनेक प्रकार की वस्तुयें देखनी हैं पर जो वस्तु तुम मुझे दिखला रहे हो क्या इनसे सुन्दर कलम नहीं बन सकती। इस पर लक्ष्मण जी बोल उठे कि ठीक है यह साही का काँटा है जिसे साही नामक जन्तु यहाँ पर छोड़ गया है। इस प्रकार इनसे अर्थ का पूर्ण भाव निकल गया चाहे नाम भले ही ज्ञात न हो।

शब्दार्थ:—मृत्तिका=मिट्टी=अरहर। आर्द्र=गीले। शुक-शिशु=तोते का बच्चा। नीड़=घोंसला।

व्याख्या:—मुस्तक गंधा खुदी..............भीत सा भीड़ से।

लक्ष्मण जी जानकी जी से वन-दृश्य की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि:—इधर मुस्तक गंधा और उधर खुदी हुई मिट्टी है। जिधर से शूकर गये हैं उधर उनके गीले पदचिह्न हैं। देखो तोतों के बच्चे अपने घोसलों से निकल निकल कर पुनः भीड़ के भय से उसीमें घुस जाते हैं।

शब्दार्थ:—नीरस तरु=शुष्क वृक्ष। उभय=दोनों।

व्याख्या:—नीरस तरु का प्राण..............दूसरा झड़ रहा।

लक्ष्मण जी शुष्क वृक्ष को लक्ष्य करके कहते हैं कि:—शुष्क वृक्ष के प्राण को शान्ति नहीं मिल रही है। उसका प्राण जा जा करके भी अपने मृत्यु की अन्तिम

अवधि बिना नहीं जा पाते हैं। इस पर जानकी जी दो वृक्षों को संकेत करके कहती हैं कि:—अहा! पास पास खड़े इन दोनों वृक्षों को जरा देखो। एक वृक्ष कुसुमित हो रहा है और दूसरा झर रहा है अर्थात् एक का उत्थान है तो दूसरे का पतन।

( पृष्ठ—३६ )

**शब्दार्थ:**—नर-लोक=मानव-लोक=संसार। ज्ञान=यथार्थ बात या तत्व की पूर्ण जानकारी=तत्व ज्ञान। बाँटे=पल्ले=भाग में।

**व्याख्या:**—है ऐसी ही दशा प्रिये..................बाँटे पड़े।

श्री रामचन्द्र जी जानकी जी से कहते हैं कि:—हे प्रिये! इस संसार की ऐसी ही दशा है और यहाँ कहीं पर प्रसन्नता और सुख विराजमान है तो कहीं पर दुख और शोक छाया हुआ है। यथार्थ बात या तत्वज्ञान तो इस वन में झंखाड़ के रूप में खड़े हैं जिनके भाग्य में काँटे और पुष्प एक साथ पड़े हैं। अर्थात् जिस प्रकार सुख-और दुख से युक्त यह मानव संसार है उसी प्रकार काँटों और पुष्पों से युक्त वन भी है।

**शब्दार्थ:**—मही=पृथ्वी। पशुता=बर्बरता। विपुल=अपार।

**व्याख्या:**—"काँटों का भी भार..............बीज ये बो गया?

जानकी जी श्री रामचन्द्र जी से कहती हैं कि:—काँटों अथवा दुख का भी बोझ पृथ्वी माता को ही सहन करना चाहिए जिससे पशुता ( बर्बरता ) यहाँ कुछ भय खाती रहे। अर्थात् यदि वन में काँटे न होते तो मनुष्य बर्बर बन कर यहाँ हिंसा और विनाश की और भी लीला प्रदर्शित करता। जानकी जी पुनः कहती हैं कि—वन तो मेरे लिए कौतूहल की वस्तु बन गया है पता नहीं किसने यहाँ अपार बीज बो दिये हैं?

**शब्दार्थ:**—भयंकर नाद=भयानक शब्द। शब्द वेध=शब्द का भेदन= शब्द वेधी बाण का प्रदर्शन।

**व्याख्या:**—अरे भयंकर नाद········शान्त ही तुम रहो।

जानकी जी ने कहा कि:—अरे यह कौन भयानक शब्द कर रहा है? इस पर लक्ष्मण जी ने कहा कि—हे भाभी! यह सिंह का गर्जन हो रहा है जो वन में हम लोगों का स्वागत कर रहा है। यदि आप शब्दवेध का प्रयोग देखना चाहें तो कहें? इस पर जानकी जी ने कहा कि फिर कभी देख लूँगी पर अभी तो तुम शान्त बने रहो।

**शब्दार्थ:**—मटके से=मिट्टी के घड़े के समान। क्षुद्र=तुच्छ जीव। मधुचक्र= मधुमक्खी के छत्ते। प्रभु की प्रिया=सीता जी।

**व्याख्या:**—वन में सौ सौ भरे········देख प्रभु की प्रिया।

वन में मधु-मक्खी के छत्ते को देखकर जानकी जी कहती हैं कि:—वन में रस से परिपूर्ण सैकड़ों घड़े पड़े हैं और ये कितने बड़े मटके ( मिट्टी के घड़े ) के समान लटक रहे हैं। भला एक तुच्छ जीव का भी कार्य ( प्रयत्न ) क्या नहीं कर सकता? अर्थात् छोटे से छोटे जीव के भी कार्य का बड़ा महत्त्व होता है। इस प्रकार मधुमक्खी के छत्ते को देखकर जानकी जी प्रफुल्लित हो उठीं।

**शब्दार्थ:**—वन धाम= वन-स्थल। गज-दन्त=हाथी के दाँत।

**व्याख्या:**—"माली हारें सींच"········साथ मानो झड़े।

वन प्रान्त के हरे भरे वृक्षों को देखकर जानकी जी कहती हैं कि:—जिन वृक्षों को आरामदेह स्थानों में सींच-सींचकर माली हार जाता है और वे नहीं बढ़ पाते वे ही वृक्ष वन में सरलता से बढ़ते और विकसित होते हैं। हाथी दाँत और मोती देखकर जानकी जी पुनः कहती हैं कि:—अरे! यहाँ ये हाथी दाँत और मोती पड़े हुये हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो पके हुए फलों के साथ ये पृथ्वी पर झड़ पड़े हैं ( टपक पड़े हैं )।

**शब्दार्थ:**—पण्य=सौदा=व्यापार। नगण्य=अत्यन्त तुच्छ। अरण्य=वन।

**व्याख्या:**—जिन रत्नों पर बिकें········प्राप्त कर वे खिले।

जानकी जी कहती हैं कि:—व्यापार की सौदेबाजी में जिन रत्नों पर लोग अपना प्राण तक निछावर कर देते हैं वे ही रत्न वन में बिल्कुल तुच्छ और

कंकड़ सदृश हैं। इस प्रकार आपस में चर्चा करते हुए चलकर श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण तथा जानकी जी सब लोग बाल्मीकि महामुनि से मिले। ध्यान की मूर्ति (भगवान के रूप) श्री रामचन्द्र जी को प्रत्यक्ष प्राप्त करके बाल्मीकि जी प्रसन्न हो उठे।

**शब्दार्थः**—कवि-कुल=कवि वंश। धरा=पृथ्वी। सपरिकर=परिवार सहित= सहचर सहित। भृत्य=सेवक।

**व्याख्याः**—वे ज्यों कवि-कुल देव........सपरिकर भृत्य है।

वाल्मीकि जी तथा श्री रामचन्द्र जी की तुलना करते हुए कवि कहता है कि:—बाल्मीकि जी कवि-वंश में देव समान (कवियों में सर्वश्रेष्ठ) और इस पृथ्वी पर धन्य पुरुष थे और श्री रामचन्द्र जी अपूर्व तथा अनन्य मानव-देवों के नायक तथा सर्व श्रेष्ठ थे। श्री रामचन्द्र जी ने बाल्मीकि जी को नतमस्तक होकर कहा कि:—हे कवि बाल्मीकि जी! आज दशरथ का पुत्र राम आप का दर्शन करके धन्य हो गया है और अपने सहचरों के साथ यह सेवक आपको प्रणाम करता है।

(पृष्ठ-४०)

**शब्दार्थः**—वृत्त=जीवन=छन्द=कथा। संभाव्य=संभव। मोदितमना=प्रसन्न मन से। अटूट=न टूटने वाला। गढ़=किला। गहन=घना। वन-श्री=वन की शोभा=वन लक्ष्मी।

**व्याख्याः**—"राम तुम्हारा वृत्त........वन-श्री का बना।

वाल्मीकि जी श्री रामचन्द्र जी से कहते हैं कि:—हे श्री रामचन्द्र जी! आपका जीवन या आपकी कथा स्वयमेव काव्य है अतएव आपके जीवन-वृत्त को पढ़कर किसी के लिए भी कवि बन जाना बिल्कुल स्वाभाविक तथा संभव है। इसके बाद सब लोग (श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण तथा जानकी जी) प्रसन्न मन से चित्रकूट में आये जो कि वन के सौन्दर्य (वन लक्ष्मी) का घना तथा अटूट गढ़ बना हुआ था।

**शब्दार्थः**—गर्भ-गृह=बड़ेगड्ढे=कन्दरा । धातु-पाषाण-पूर्ण=धातु और पत्थर से पूर्ण। शृंगावली=चोटियों की पंक्तियाँ। झूल=पीठ पर शोभा के लिए डालने का चौकोर वस्त्र।

**व्याख्याः**—जहाँ गर्भ-गृह और·······फूल पत्ती कढ़ी।

चित्र कूट की विशेषता का वर्णन करते हुए राष्ट्र कवि गुप्त जी कहते हैं कि:—चित्रकूट में अनेक कन्दरायें और सुरंगें थीं और उसके सब भाग भाँति भाँति की धातुओं और पत्थरों से परिपूर्ण थे, उसकी चोटियों की पंक्तियाँ एक से एक बढ़ चढ़कर थीं, उसके ऊपर हरियाली (हरे भरे वृक्षों) की झूल (चौकोर वस्त्र) पड़ी थी जिस पर फूल पत्ते कढ़े हुए थे। अर्थात् उसके ऊपर हरे भरे वृक्षों का वन था जिसमें सुन्दर फूल और पत्ते लगे हुये थे।

**शब्दार्थः**—गिरि हरि=कैलाश पर्वत । हर-वेष=शिवरूप। वृष=गाय का नर=साँड़=बैल। वृषारूढ़=बैल पर सवारी करने वाले=शंकर जी। शिला-कलश=शीला रूपी कलश। उत्स=ऊँचे। उद्रेक=धारा=प्रवाह=उछाल। नग=पर्वत। नान=स्नान=छिड़काव। अभिषेक=जल-सिंचन=छिड़काव।

**व्याख्याः**—गिरि हरि का हर-वेष········प्रकृति-अभिषेक-सा।

चित्रकूट की पर्वतमाला और झरनों का वर्णन करते हुए राष्ट्रकवि गुप्त जी कहते हैं कि:—कैलाश पर्वत के शंकर रूप को देखकर नान्दी रूप धारण करके वन उनसे मिला पर नान्दी पर सवारी करने वाले शंकर भगवान का मन उसके पहले ही प्रसन्न हो उठा। पत्थर की शिला रूपी कलश से ऊँचा उठाकर जल को प्रवाहित करता हुआ पर्वत का गर्जन तथा जल-सिंचन प्रकृति के अभिषेक के समान प्रतीत हो रहा था।

**शब्दार्थः**—क्षित=छोड़ा हुआ=विकीर्ण=फैलाया हुआ। सलिल-कण=जल के विन्दु। किरण=प्रकाश=सूर्य-रश्मि। योग=मेल=सहयोग=सहायता। वार रहे हैं =निछावर कर रहे हैं । रुचिर=सुन्दर । रत्न-मणि-संपदा=रत्न और मणि की संपत्ति। वन-मुद्रा=वन-मुद्रिका=वन की अंगूठी। नग=नगीना=शीशे अथवा पत्थर आदि का रंगीन बढ़िया जो अंगूठियों और आभूषणों में जड़ा जाता है। हर्ष-विस्मय=प्रसन्नता और आश्चर्य।

**व्याख्या:**—छिटके सलिल कण किरण............हर्ष-विस्मय बड़ा ?

चित्रकूट के झरनों के प्रपात के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए राष्ट्र कवि मैथिलीशरण जी गुप्त कहते हैं कि:—प्रपात से विकीर्ण ( फैले हुए ) जल की बूँदें सूर्य की किरणोंका सहारा पाकर सुन्दर रत्न और मणि रूपी संपत्ति को सदैव निछावर कर रही हैं। वन रूपी अँगूठी में चित्रकूट रूपी नगीना जड़ा हुआ है अतएव यहाँ आने पर प्रकृति के इस सुन्दर रूप को देखकर भला किसे प्रसन्नता और आश्चर्य न होगा अर्थात् सभी को होगा। भाव यह है कि चित्रकूट के वन पहाड़, झरने आदि के दर्शन मात्र से किसी का भी हृदय सहज ही आकर्षित और मुग्ध हो जा सकता है।

**शब्दार्थ:**—मन्दिराकृति=मन्दिर के आकार की। मधु-सुगन्ध=मधु की महक। सरोरुह-संपुटी=कमल की पंखड़ियाँ अथवा उसका पराग । वास्तु=घर=मकान। रीति=व्यवहार। तथापि=तिसपर भी। विधान=अनुष्ठान=व्यवस्था ।

**व्याख्या:**—लक्ष्मण ने झट रची..............तथापि विधान की।

लक्ष्मण जी ने तुरंत मन्दिर के आकृति के समान एक कुटी का निर्माण कर लिया जिसमें मधु की सुगन्ध के लिये कमल की पंखुड़ियों के पराग का प्रयोग किया गया था और वास्तु कला तथा मकान की शान्ति स्वरूप जानकी जी वहाँ स्वयं उपस्थित थीं तिस पर भी मुनियों ने अनुष्ठान की व्यवस्था कर दी ।

**शब्दार्थ:**—वनचारी जन=वन में रहने वाले लोग । रत हुए=लीन हुए=तत्पर हुए।

**व्याख्या:**—वन चारी जन जुड़े..............बजाकर तालियाँ ।

श्री रामचन्द्र जी के स्वागतार्थ वन के निवासी लोग समूह के रूप में एकत्रित हुए और तालियाँ बजा बजाकर नाच गान में तत्पर हो गये ।

**शब्दार्थ:**—अभिषेक=तिलक। द्योम=दिन। व्योम=आकाश। वितान=तम्बू। छत्र=छाता। सिंह-आसन=सिंहासन=मृगछाला।

( पृष्ठ-४१ )

**शब्दार्थ:**—अर्घ्य पात्र=अर्घ देने का बर्तन । मधु पर्क=पूजन सामग्री यथा दही, घी, जल चीनी और शहद । भूरि-भूरि=अनेकानेक । अतिथि-समादर=अतिथि के रूप में सम्मान । जनाओ=करो । नागर=नागरिक=सभ्य=निपुण ।

**व्याख्या:**—लेकर पवित्र ··············हमें नागर बनाओ तुम ।"

श्री रामचन्द्र जी के स्वागत में वन के लोग उनकी आर्ती करते हुए कहते हैं कि:—हे धैर्यवान रामचन्द्र जी ! आप यहाँ ( वन में ) विराजें और हम अपने नेत्रों के पवित्र जल से आपका अभिषेक करें । दिन ( आकाश ) के तम्बू के नीचे चन्द्रमा का छत्र तानकर सच्चा सिंहासन बिछा दें और उस पर आप बैठें। यहाँ वन में अर्घ्य पात्र और पूजन सामग्री अनेकानेक हैं । आपको रोज-नया नया सत्कार मिलेगा । आप यहाँ जंगल में मंगल मनायें और हमें अपनालें ( अपनी शरण में रख लें ), हमारे ऊपर शासन करें और हमें सभ्य नागरिक बना दें । भाव यह है कि—यद्यपि वन में सांसारिक भोग-विलास की सामग्री का अभाव है, वहाँ न रत्न जड़ित सिंहासन है और न तो चाँदी-सोने आदि के पात्र ही । कालीन और, गलीचे आदि का भी अभाव है पर प्रकृति के उपादान की कोई कमी नहीं है । वहाँ के निवासियों में प्रेम का अभाव नहीं है अतएव एक वनवासी के रूप में रामचन्द्र के वन में रहने में कोई भी असुविधा नहीं है । आकाश की छाया में मृगछाले का आसन तो मिल ही सकता है । साथ ही वन का प्रत्येक प्राणी प्रजा के रूप में उनका सच्चा सेवक है अतएव श्री रामचन्द्र जी उन्हें अपना-कर, उन पर शासन करके, उन्हें सभ्य नागरिक बनाने का श्रेय सहज ही प्राप्त कर सकते हैं ।

**शब्दार्थ:**—मन्दाकिनी=पयस्विनी=चित्रकूट के पास बहने वाली एक नदी । हिलोर=तरंग । स्वर्गंगा=आकाश गंगा । अंबर=अमृत=आकाश । बोर=डुबा कर ।

**व्याख्या:**—पृथ्वी की मन्दाकिनी··············डूबी अम्बर बोर ।

श्री रामचन्द्र जी के स्वागत सत्कार में वन के प्राणियों के अद्भुत प्रेम को

देखकर चित्रकूट के पास में बहने वाली मन्दाकिनी ( पयस्विनी नदी ) हिलोरें लेने लगी ( तरंगित हो उठी )। उसमें आकाश गंगा प्रवेश करके अमृत घोल कर तिरोहित हो उठी।

## कुब्जा

**संदर्भ:**—'कुब्जा' शीर्षक कविता राष्ट्रकवि श्री मैथलीशरण जी गुप्त के 'द्वापर' नामक ग्रन्थ से उद्धृत है। इसमें गुप्त जी ने श्री कृष्ण द्वारा राजा कंस की कुबड़ी और नीति-निपुण परिचारिका कुब्जा के उद्धार का वर्णन किया है। इसमें कथोपकथन की प्रणाली द्वारा राष्ट्रकवि गुप्त जी ने कुब्जा का सेवा-भाव, उसके हृदय की विह्वलता, प्रेम-प्रतीक्षा, वियोग की विरहावस्था आदि का वर्णन बड़े ही अनुपम ढंग से किया है। सार्वभौम प्रेम द्वारा कुब्जा को एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित करने में गुप्त जी को पूर्ण सफलता मिली है। कुब्जा का अनुताप कहीं-कहीं पर विरहिणी राधा से भी अधिक तीव्र हो उठा है। इस काव्य में प्रसाद और माधुर्य दोनों गुणों का समावेश है। सेव्य भाव की प्रधानता रखते हुए भी प्रेम में भक्तिमय वत्सलता का भी पुट-पाक है। अन्य प्राचीन कवियों द्वारा उपेक्षिता कुब्जा के चरित्र पर प्रकाश डालकर राष्ट्रकवि गुप्त जी ने साहित्य के एक अंग की पूर्ति ही नहीं की है बल्कि स्तुत्य कार्य किया है जिसके लिये हिन्दी साहित्य आप का आजन्म आभारी रहेगा। इस काव्य की भाषा सरल होते हुए भी बड़ी ही मार्मिक है जो पाठकों के हृदय पर सहज ही प्रभाव डाल देती है। संक्षेप में यह एक सरल,सरस और सफल काव्य है।

### ( पृष्ठ—४१ )

**शब्दार्थ:**—मैं=कुब्जा से तात्पर्य है। पार्श्व से=बगल से। पथ=मार्ग। शुभे= आर्ये=कल्याणी=सुन्दरी। नन्द-नन्दन=नन्द जी का पुत्र=कृष्ण।

**व्याख्या:**—कंसराज के लिए··········नन्द-नन्दन मैं।

कुब्जा कृष्ण के प्रथम साक्षात्कार के विषय में कहती है कि:—जब मैं राजा

कंस के लिए फूल और चन्दन लेकर जारही थी उसी समय मार्ग में बगल से सामने आकर श्रीकृष्ण ने कहा कि शुभे ! ( हे सुन्दरी ! ) मैं नन्द जी का पुत्र श्रीकृष्ण हूँ ।

**शब्दार्थः**—मुसकाया=मुस्करादिया । वन माली=श्रीकृष्ण ।

**व्याख्याः**—किसके लिये लिये……………वनमाली ।

कुब्जा कहती है कि श्रीकृष्ण ने मुझसे पूछा कि—"तुम यह पूजा की थाली किसके लिए लिए जारही हो ?" इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण जी न जाने किस भाव में किस प्रकार मुस्करा उठे । भाव यह है कि–श्रीकृष्ण के प्रश्न और मुस्कराहट के अन्दर क्या रहस्य था इसका उद्घाटन कुब्जा न कर सकी ।

**शब्दार्थः**—रवि-शशि=सूर्य और चाँद । शून्य=आकाश । सार=तत्व । धरा=पृथ्वी । धन=निधि=संपत्ति । गौरव-भार=सम्मान पूर्ण भार=वहन करने का गौरव ।

**व्याख्याः**—रवि-शशि लटके……………गौरव-भार धरा था ।

श्रीकृष्ण के गौरव की चर्चा करती हुई कुब्जा कहती है कि—उस दिव्य मूर्ति में वह विशेष तत्व भरा था जिससे आकाश में सूर्य और चन्द्र लटके ( टिके ) रहते हैं । यह पृथ्वी धन्य है जिसने उस विराट पुरुष (श्रीकृष्ण) का भार वहन करके अपने को गौरवान्वित कर लिया था । भाव यह है कि-श्रीकृष्ण जी अनुपम ज्योति और महान शक्ति वाले थे । उनके प्रभाव और सत्ता का आभास सूर्य, चन्द्र आकाश, पृथ्वी आदि से ज्ञात होता था तथा उनके इस संसार में जन्म लेने से यह पृथ्वी धन्य हो गई ।

**शब्दार्थः**—नरवर=नर-श्रेष्ठ । रसातल=पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में छठाँ । पद=चरण ।

**व्याख्याः**—अथवा अपने पैरों पर……………पद धरकर ।

श्री कृष्ण के विराट रूप और मानव जन्म धारण करने के विषय में दूसरा तर्क उपस्थित करती हुई कुब्जा कहती है कि:—या तो पृथ्वी ने उस विराट पुरुष का भार वहन किया था अथवा वह नर-श्रेष्ठ स्वयं ही अपने पैरों पर खड़ा था और

इस पृथ्वी पर उसने अपने उसी विशेष चरण को रखा था जिससे यह रसातल ( विनाश के गर्त ) में जाने से बची रह गई थी। भाव यह है कि—श्रीकृष्ण ने पृथ्वी का आश्रय नहीं लिया था वल्कि पृथ्वी स्वयं उनकी आश्रिता थी।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने श्रीकृष्ण के विराट भगवान रूप का परिचय देने के लिए सुन्दर व्यंजना की है।

**शब्दार्थ:**—कसी=भरी हुई। क्षीण=पतली। कटि=कमर। पीन=स्थूल=भरा पूरा। वक्ष=उरस्थल=छाती। कच=केश=बाल। कन्धरा=कंधा=गर्दन। स्वर्ण-वर्ण—सुनहरा। उत्तरीय=दुपट्टा=चादर। चित्रित=चित्रकारी सहित=चित्रमय। रत्न=मणि। टँके=सिले।

**व्याख्या:**—कसी क्षीण कटि············चित्रित रत्न टँके थे।

श्रीकृष्ण के शारीरिक अंग का वर्णन करती हुई कुब्जा कहती है कि:—श्रीकृष्ण की कमर पतली और भरी हुई थी तथा उनकी छाती चौड़ी थी। उनके सर के बाल कन्धों को ढँके हुए थे। उनके सुनहले दुपट्टे के ऊपर चित्रमय मणियाँ टँकी ( सिली ) हुई थीं।

**शब्दार्थ:**—भुज=बाँह=भुजा। पार्श्व=बगल। गण्ड=गंडस्थल=कनपटी। मंडित=शोभित। श्रुति-कुण्डल=कान का कुंडल=कानका एक आभूषण।

**व्याख्या:**—दुगुने से दो भुज···········थे हिलते।

श्रीकृष्ण के शारीरिक अंग का वर्णन करती हुई कुब्जा कहती है कि—श्रीकृष्ण की दोनों भुजायें दूने रूप में लंबी और विशाल थीं और अपनी स्थूलता के कारण वे अपने बगल ( काँख ) को छील देती थीं अर्थात् श्रीकृष्ण की भुजायें इतनी विशाल थीं कि जब वे उन्हें ऊपर उठाते थे और नीचे गिराते थे तो उनका संघर्ष ( स्पर्श ) काँख से हो जाता था। कनपटी के प्रकाश समूह से सुशोभित उनके कान के कुंडल हिलते रहते थे।

( पृष्ठ-४३ )

**शब्दार्थः**—चिबुक=ठुड्ढी=ठोड़ी। चिर=बहुत दिनों का। चेरा=सेवक=दास। उर=हृदय।

**व्याख्याः**—चिबुक देख............उर तेरा।

श्री कृष्ण के होंठ आदि की चर्चा करती हुई कुब्जा कहती है कि—श्री कृष्ण की ठोड़ी को देखकर यह चिर-कालीन हृदय उनका चरण चूमने के लिए लालायित हो उठा अर्थात् जिस श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा हृदय में बहुत दिनों से लगी हुई थी आज उन्हीं के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो गया। उनकी अनुपम ठुड्ढी ( ठोड़ी ) को देखकर उनके चरण-स्पर्श की भावना मन में प्रबल हो उठी। अब राधा पर व्यंग्य कसती हुई कुब्जा पुनः कहती है कि हे राधे! श्रीकृष्ण के वे दोनों होंठ नहीं थे बल्कि तुम्हारा क्षत हृदय था अर्थात् तुम्हारे दुःखी हृदय की स्पष्ट झलक श्रीकृष्ण के ओठों पर व्याप्त थी।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में कवि ने श्रीकृष्ण के ओठों की तुलना राधा के फटे हृदय से करके विरहिणी नारी के हृदय का स्पष्ट चित्र उपस्थित कर दिया है।

**शब्दार्थः**—दन्त-हास=दाँतों की हँसी=हँसते समय दाँतों की चमक= मुस्कराहट मोती=मुक्ता। नासा=नासिका=नाक। निरख=देखकर। कुटिल=टेढ़े= दुष्ट। सीधे=सरल।

**व्याख्याः**—फिर भी उसके दन्त-हास में............सीधे हो जावेंगे।

श्रीकृष्ण के दाँतों की चमक और उनके नाक की शोभा का वर्णन करती हुई कुब्जा कहती है कि:—श्रीकृष्ण की ठोड़ी और ओठों के सौन्दर्य के अतिरिक्त उनके दाँतों का सौन्दर्य भी अनुपम था। जब वे हँसते थे तो उनके दाँतों की चमक के सामने मोती भी नहीं टिक सकते थे अर्थात् मुस्कराते समय उनके दाँतों की चमक मोतियों से भी बढ़कर थी। उनकी नासिका ( नाक ) को देखकर दुष्ट व्यक्ति भी बिल्कुल सरल और सीधे होजायेंगे। अर्थात् नासिका कुटिल व्यक्तियों के समान टेढ़ी न होकर सरल तथा सीधे व्यक्तियों के समान सीधी थी।

**शब्दार्थः**—सहस्रदल=कमल=कमल का पुष्प। झाँकी=दर्शन। वाल=वालिका। पलट=लौटी। प्रौढ़ता=प्रौढ़ होने का भाव। प्रौढ़ा=अधिक उम्र वाली स्त्री ( ३० से ५० या ५५ वर्ष तक की वयस वाली स्त्री प्रौढ़ा मानी जाती है )। बाँकी=टेढ़ी=निराली=अनुपम।

**व्याख्या:**—देखलिया मैंने सहस्र दल............पलट प्रौढ़ता बाँकी।

श्रीकृष्ण के कमलवत् मुख की शोभा का वर्णन करती हुई कुब्जा कहती है कि:—उस मुख का दर्शन करके मैंने कमल का दर्शन कर लिया अर्थात् श्रीकृष्ण के कमल के समान अनुपम मुख के सौन्दर्य का दर्शन करके मैं धन्य हो उठी। उनके मुख के दर्शन का इतना व्यापक प्रभाव मुझ पर (कुब्जा पर) पड़ा कि मैं अब वृद्धा न होकर बाला बन गई थी और मेरी निराली प्रौढ़ता, पलट गई थी। अर्थात् प्रौढ़ावस्था दूर हो गई थी तथा वृद्धावस्था के चिह्न नष्ट होकर अब यौवनावस्था का रूप प्राप्त हो गया था।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने श्रीकृष्ण के मुख की उपमा कमल से देकर उसके दर्शन के व्यापक प्रभाव को बड़े ही अनुपम ढंग से व्यक्त किया है साथ ही "वृद्ध न होकर बाल बनी थी पलट प्रौढ़ता बाँकी" के द्वारा कुब्जा के ऊपर उसके व्यापक प्रभाव को भी सरल ढंग से प्रकट कर दिया है।

**शब्दार्थ:**—उजली=श्वेत। निहारी=देखी। ब्रज-कुञ्ज-विहारी=ब्रज के कुञ्जों में विहार करने वाला=श्रीकृष्ण। विश्व-विहारी=संपूर्ण विश्व में विहार करने वाला।

**व्याख्या:**—उन काली आँखो में कैसी............मुझको विश्व-विहारी

कुब्जा श्री कृष्ण के नेत्रों के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि:-श्रीकृष्ण के काले नेत्रों में मुझे उनका स्वच्छ विराट रूप दिखाई पड़ा और ब्रज के कुञ्जों में विहार करने वाले कृष्ण मुझे विश्व-विहारी के रूप में प्रतीत होने लगे। अर्थात् कृष्ण के काले नेत्रों में केवल रसिकता का ही वास नहीं था बल्कि उनकी विश्व-विमोहिनी मूर्ति की स्पष्ट आभा उसमें झलक रही थी। इस प्रकार कृष्ण केवल ब्रज मात्र के न होकर संपूर्ण विश्व के उद्धारक के रूप में दिखाई पड़ने लगे। उनका सर्व व्यापी रूप उनके नेत्रों में निहित था।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में 'जान पड़ा ब्रज-कुञ्ज-विहारी मुझको विश्व-विहारी' के द्वारा कवि ने नर-रूप-धारी श्रीकृष्ण को नारायण के रूप में प्रस्तुत किया है और उनकी सर्वव्यापकता की पुष्टि भी सहज ही कर दी है।

**शब्दार्थ:**—श्याम-रूप=कृष्ण के रूप में। राम=भगवान रामचन्द्र से तात्पर्य है। कंसपुरी=मथुरा। चाप=धनुष।

**व्याख्या:**—श्याम-रूप हो न हो,............चाप लाया वह?

श्रीकृष्ण को राम के अवतार के रूप में देखते हुए कुब्जा कहती है कि:—श्रीकृष्ण अपने श्याम रूप में हों अथवा स्वयं भगवान रामचन्द्र ने ही इस रूप में पुनः संसार में आकर दर्शन दिया हो पर इस मथुरा नगरी में अपने साथ वे धनुष क्यों नहीं लाये? भाव यह है कि-श्रीकृष्ण को राम का अवतार मानना ठीक है पर इसमें भेद केवल इतना ही है कि रामावतार में उन्होंने धनुष और बाण धारण किया था पर कृष्ण रूप में उनकी संगिनी एक मात्र मुरली थी।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने श्रीकृष्ण को राम के समान अवतारी पुरुष सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है।

**शब्दार्थ:**—सशंक=शंकित=भयभीत। बंक=टेढ़ी। भृकुटियां=भौंहें। तीखीं तेज=तीक्ष्ण। निस=निशा=रात्रि। विलास=प्रसन्न करने वाली क्रिया=मनोविनोद=आनन्द=हर्ष=स्त्रियोंकी पुरुषों के प्रति अनुराग सूचक चेष्टायें। विश्व=संसार। वंशीधर=श्रीकृष्ण जी।

**व्याख्या:**—हृदय सशंक हुआ पर ........दीखीं।

श्री कृष्ण की भौंहों का वर्णन करती हुई कुब्जा कहती है कि—श्रीकृष्ण को देखकर पहले तो मेरा हृदय भयभीत हो उठा पर रात्रि के मनोविनोद में उनकी टेढ़ी और तीक्ष्ण भौंहें संसार को नचाती हुई दीख पड़ने लगीं। अर्थात् श्रीकृष्ण की तिर्छी भौंहों के हाव भाव पर संपूर्ण विश्व निछावर हो रहा था।

**शब्दार्थ:**—सांचे=ढांचे=आवरण=आकृति=रूप रेखा। नारायण=ईश्वर। ढांचे=कंकाल=सांचा।

**व्याख्याः**—मेरे मन की·········ढांचे में वह।

श्रीकृष्ण की रूप रेखा का वर्णन करती हुई कुब्जा कहती है कि—श्रीकृष्ण के सांचे में मेरे हृदय की मूर्ति ढल गई थी अर्थात् मैं जिस मूर्ति को हृदय में बसाये हुए थी वह मूर्ति श्रीकृष्ण के रूप में सम्मुख विराज मान थी। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मनुष्य के रूप में स्वयं ईश्वर ही सम्मुख उपस्थित होकर क्रीड़ा कर रहा था।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में श्रीकृष्ण को साधारण मानव मात्र न दिखाकर ईश्वर का अवतार सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

(पृष्ठ-४४) ४३

**शब्दार्थः**—मोर-पङ्ख=मोर का पंखा। मुकुट=ताज। अपनाने से=ग्रहण करने से। सिंह पुरुष= वीर पुरुष। पीताम्बर=पीला वस्त्र।

**व्याख्याः**—मोर-पङ्ख भी·········· पाने से।

श्री कृष्ण के व्यक्तित्व की महत्ता प्रदर्शित करते हुए कुब्जा कहती है कि:—केवल कृष्ण के ग्रहण करने मात्र से ही मोर के पंख को मुकुट का स्थान प्राप्त हो गया था और उनके पीताम्बर वस्त्र को प्राप्त करके कोई भी व्यक्ति वीर पुरुष हो जा सकता है। भाव यह है कि—श्री कृष्ण के व्यक्तित्व की छाप उनके द्वारा ग्रहण की गई वस्तुओं पर स्पष्ट रूप से पड़ी हुई थी।

**शब्दार्थः**—तरल=चंचल=द्रव। तरङ्गिणी=तरंगवाली=नदी। घनी=लम्बाई, चौड़ाई और गहराई तीनों के विस्तार में। अंग=शरीर=अवयव=प्रकृति। भंगिमा=कुटिलता=टेढ़ापन=स्त्रियों के हाव भाव या कोमल चेष्टायें=अंग निवेश=अंदाज=प्रति कृति। रङ्ग-ढंग= परिचय=हाल चाल।

**व्याख्याः**—पड़ी तरल यमुना·········वह पावे।

श्री कृष्ण के हाव भाव की विशेषता प्रकट करती हुई कुब्जा कहती है कि:—श्री कृष्ण के शारीरिक अवयव की चेष्टाओं का अनुमान लगा सकना कठिन था।

यदि द्रव रूप में बहती हुई तरंग वाली यमुना नदी अपनी लंबाई, चौड़ाई और गहराई तीनों के विस्तार में ठोस पदार्थ का रूप धारण करके खड़ी हो जाती तो वह श्री कृष्ण के शारीरिक अंगों की कोमल चेष्टाओं का कुछ अनुमान लगा सकने में समर्थ हो पाती। भाव यह है कि—जिस प्रकार जल रूप में बहने वाली यमुना नदी का ठोस पदार्थ बनकर आकार रूप में खड़ा हो सकना असंभव है उसी प्रकार श्री कृष्ण के उस समय के अंगों की वक्रता या चेष्टाओं का अनुमान लगा सकना असंभव था।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में श्री कृष्ण की अंग-भंगिमा का अनुमान लगाने के लिए द्रव रूप में बहने वाली जमुना नदी को घनत्व प्रदान कर नर रूप में खड़ा कर देने की कवि की कल्पना वास्तव में अनूठे काव्य-कौशल का एक उत्कृष्ट नमूना है।

**शब्दार्थ:**—सजीव=जिसमें जीव या प्राण हो=प्राणयुक्त। युग=काल। झलकी=दिखाई पड़ी। समाई=डूबी। जड़=चेतना रहित। जंगम=चलने फिरने वाला=चर। छवि=शोभा=सौन्दर्य। छलकी=छलक पड़ी।

**व्याख्या:**—वह सजीव रचना.......जो छलकी।

श्री कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य की विशेषता प्रकट करती हुई कुब्जा कहती है कि:—श्री कृष्ण का अनुपम सौदर्य जो एक पल मात्र में दिखाई पड़ा था वह वास्तव में एक युग का सजीव ( प्राणयुक्त ) निर्माण था और वह सौन्दर्य चेतन और अचेतन जगत में परिपूर्ण होकर उसकी सीमा पार करके छलक पड़ा था। भाव यह है कि—श्री कृष्ण के सौंदर्य का जो दर्शन पल मात्र में प्राप्त हुआ था उसके निर्माण में एक युग लग गया था अर्थात् अवतार के रूप में भगवान का अवतरण इस पृथ्वी पर किसी विशेष युग में कभी कभी ही होता है। भगवान श्री कृष्ण के अनुपम सौंदर्य की समता इस जड़ और जंगम संसार में किसी भी वस्तु से नहीं की जा सकती है। वह इससे परे अद्वितीय और अपूर्व है। हाँ, संसार की सौंदर्य परिपूर्णता से बचा अंश ही छलक कर कुब्जा को प्राप्त हुआ था।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में श्री कृष्ण के सौंदर्य का सजीव चित्रण करने के लिए कवि ने अवतारवाद का आश्रय लिया है।

**शब्दार्थः**—काम=कामदेव=मनोरथ=कार्य। जलधर=मेघ=बादल। जगमग=प्रकाशित। ज्योतिर्मय=प्रकाशमय। घन=ठोस=गंभीर। सहृदय=दयालु=कृपालु=प्रेमी। निर्भय=निर्भीक। सदय=दयायुक्त=दयालु।

**व्याख्याः**—काम-रूप-धारी.........किन्तु सदय था।

श्री कृष्ण के व्यक्तित्व की चर्चा करती हुई कुब्जा कहती है किः—कामदेव के समान सुन्दर रूप धारण करने वाले तथा घन ( बादल ) के समान आनन्द की वर्षा करने वाले साँवले रंग के घनश्याम ( श्री कृष्ण ) की अनुपम ज्योति प्रकाश मय थी जिससे सारा संसार प्रकाशित हो उठा था। वे गंभीर होते हुए भी प्रेमी थे और निर्भीक होते हुए भी दयालु थे। भाव यह है कि—जिस प्रकार कामदेव अपने अनुपम सौन्दर्य से सबको मनमुग्ध करके वशीभूत कर लेता है उसी प्रकार श्री कृष्ण जी अपने अनुपम सौन्दर्य से सबको मुग्ध कर लेते थे और जिस प्रकार बादल जल की वर्षा करता है उसी प्रकार श्री कृष्ण जी अपने मधुर शब्दों से प्रेम की वर्षा करते थे। जिस प्रकार बादल ठोस पदार्थ होते हुए भी पृथ्वी को जल प्रदान करने के लिए द्रवित होकर जल का रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार श्री कृष्ण में गंभीरता के साथ नम्रता भी व्याप्त थी और वे निर्भीक होते हुए भी बड़े ही दयालु थे।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में श्री कृष्ण की उपमा कामदेव और जलधर से देकर कवि ने उनके मनमोहन और घनश्याम नाम की सार्थकता को सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है।

**शब्दार्थः**—ललित=सुन्दर। गभीर=गंभीर=धीर। तदपि=तौभी। चंचल सा=नटखट=चुलबुला। विस्फूर्ति=उत्साह=साहस। मूर्तिमन्त=प्रत्यक्ष=साक्षात। भव-भद्र=संसार में श्रेष्ठ। भाद्र=भादों का महीना।

**व्याख्याः**—ललित गंभीर.........हरा था।

श्री कृष्ण के स्वभाव का वर्णन करती हुई कुब्जा कहती है किः—श्री कृष्ण जी सुन्दर और गंभीर स्वभाव वाले थे पर तौभी उनमें चुलबुलापन भरा हुआ था और वे उत्साह से परिपूर्ण थे। इस संसार में श्रेष्ठ पुरुष की तो वे साक्षात

मूर्ति ही थे तथा उनमें श्यामता और सरसता तो भाद्रपद मास की हरीतिमा के समान व्याप्त थी। भाव यह है कि—श्री कृष्ण जी बड़े ही सुन्दर गम्भीर, नटखट, उत्साही श्रेष्ठ और सरस व्यक्ति थे।

**शब्दार्थ:**—कंकण=कलाई में पहिनने का एक आभूषण=कड़ा। रण-कंकण=युद्ध का कंगन। जय=विजय।

**व्याख्या:**—राधा ने पहनाया..........उसको।

श्री कृष्ण की सफलता का श्रेय राधा को प्रदान करती हुई कुब्जा कहती है कि:—राधा ने कृष्ण को युद्ध का कंगन पहनाया होगा जिससे उन्हें वहीं पर उसी क्षण अवश्य विजय प्राप्त हो गई होगी। भाव यह है कि—श्री कृष्ण की विजय-प्राप्ति का सारा श्रेय राधा के अनुपम प्रेम को है जिसकी अनन्यता ने उन्हें सफलता प्रदान की।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में प्रेम की अनन्यता का आभास स्पष्ट झलकता है।

**शब्दार्थ:**—व्रजरानी=श्री राधा रानी। वर=पति=श्री कृष्ण से तात्पर्य है। चेरी=दासी। भेंट=उपहार।

**व्याख्या:**—व्रज रानी के विजयी वर से........हो सकती है मेरी ?

अपनी तुच्छता का अनुभव करके आत्मग्लानि करती हुई खेदपूर्वक कुब्जा कहती है कि:—व्रजरानी राधा के समान मैं श्रेष्ठ तथा संपत्तिशालिनी नहीं हूँ जो श्री कृष्ण की पूरी आवभगत कर सकूँ अतएव यह दासी ( कुब्जा) व्रजरानी राधा के विजयी पति श्री कृष्ण के चरण का ही स्पर्श करेगी। पर मुझे इस बात का खेद है कि श्री कृष्ण को उपहार स्वरूप भेंट करने के लिए, मेरे पास कुछ भी नहीं है। अतएव स्वयं अपने आप को अर्पण कर देने के अतिरिक्त और कौन सा उपहार हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं। भाव यह है कि कुब्जा श्री कृष्ण के चरणों में स्वयं अपने आपको ही अर्पण कर देना श्रेयस्कर समझती है।

( पृष्ठ-४५ )

**शब्दार्थः**—देव=देवता। दानव-पूजन=राक्षस की पूजा।

**व्याख्याः**—देखा मैंने, देव आज ही·········मैंने जन्म गँवाया।

अपने विगत जीवन पर खेद-प्रकाश करती हुई कुब्जा कहती है किः—मैं देख रही हूँ कि मेरे जीवन में आज प्रथम वार देवता सम्मुख आकर खड़ा हुआ है और अब तक राक्षस की पूजा करने में ही मैंने अपना जीवन नष्ट कर दिया।

**शब्दार्थः**—हिलते=काँपते हुए। माथे=मस्तक।

**व्याख्याः**—मैं ऊँची न हो सकी, फिर भी ···· मैंने फूल चढ़ाये।

अपने झुके शरीर का वर्णन करती हुई कुब्जा कहती है किः—अपने कूबड़-पन के कारण मैं ऊँची न हो सकी ( तनकर खड़ी न हो सकी ) फिर भी काँपते हुए हाथ को मैंने आगे बढ़ाया और श्री कृष्ण के मस्तक पर चन्दन, और उनके चरणों पर पुष्प चढ़ा दिया।

**शब्दार्थः**—कर=हाथ। ठोड़ी=ठुड्ढी। उत्कर्षित=ऊँचा।

**व्याख्याः**—बाँयें कर से सिर सँभाल की······शक्ति लगाकर थोड़ी।

श्री कृष्ण के स्पर्श के विषय में कुब्जा कहती है किः—श्री कृष्ण ने बायें हाथ से मेरे सर को सँभालकर तथा दाहिने हाथ से मेरी ठुड्ढी पकड़कर थोड़ा बल लगाकर मुझे ऊँचा किया ( ऊपर को ताना )।

**शब्दार्थः**—कूबड़=पीठ का टेढ़ापन।

**व्याख्याः**—देख पैर उठते चरणों से··········मैंने पता न पाया।

श्री कृष्ण के चरण-स्पर्श की चर्चा करती हुई कुब्जा कहती है किः—मेरे पैरों को पृथ्वी से ऊपर उठता हुआ देखकर श्री कृष्ण ने हँसकर अपने पैरों से उन्हें दबाया। फल स्वरूप मैं कुछ ऊपर उठ गई और अपनी पीठ पर के कूबड़ ( टेढ़ेपन ) का मुझे कहीं पता न चला। भाव यह है कि श्री कृष्ण ने कुब्जा के पैरों को अपने पैरों से दबाकर तथा दाहिने हाथ से उसकी ठुड्ढी को पकड़ कर इस प्रकार ऊपर उठाया कि उसकी पीठ पर का कूबड़ मिट गया।

**शब्दार्थः**—कुब्जा=कंस की एक कुबड़ी दासी जो श्री कृष्ण से प्रेम करती थी।

**व्याख्याः**—चमक गई बिजली सी भीतर.........सरला बनी खड़ी थी।

जब श्री कृष्णचन्द्र ने कुब्जा के चरणों को अपने पैरों से दबाकर उसकी ठुड्डी को ऊपर उठाया तो उसके शरीर में बिजली के समान चमक उत्पन्न हो गई और प्रत्येक नसें कंपित हो उठीं अर्थात् उसके शरीर के सारे अवयव हिल उठे और उनमें स्फूर्ति उत्पन्न हो गई। इस प्रकार जन्म भर से कूबड़ का बोझ ढोने वाली कुब्जा दासी तन कर सीधे रूप में सरल भाव से खड़ी थी अर्थात् अब उसका कूबड़पन नष्ट हो गया था तथा वह सीधी सुन्दर रमणी बन गई थी।

**शब्दार्थः**—चिबुक=ठोड़ी=ठुड्डी। मायावी=छलिया। निस्पन्दन=स्थिरता= निश्चलता=स्तब्धता।

**व्याख्याः**—चिबुक हिलाकर छोड़ मुझे फिर.........पलट गई यह काया।

कुब्जा कहती है कि:—श्री कृष्ण ने मेरी ठुड्डी को हिलाकर छोड़ दिया और फिर वह मायावी व्यक्ति मुस्करा उठा। इसके बाद मेरे हृदय में एक नवीन प्रकार की स्थिरता उत्पन्न हो गई और मेरे शरीर का पूर्ण परिवर्तन हो गया।

**शब्दार्थः**—सृष्टि=प्रकृति। नन्दन वन=इन्द्र का बन। भूतल=पृथ्वी=संसार।

**व्याख्याः**—मैं ही नहीं सृष्टि ही सारी......छाया था भूतल में।

कुब्जा कहती है कि:—केवल मेरी ही काया-पलट नहीं हुई थी बल्कि पल-मात्र में ही सारी सृष्टि परिवर्तित हो गई थी अर्थात् केवल मेरे शरीर और रूप का ही परिवर्तन नहीं हुआ था बल्कि संपूर्ण प्रकृति का ही कलेवर बदल गया था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो इन्द्र का नन्दन वन स्वर्ग से उतरकर इस पृथ्वी पर छाया हुआ था।

( पृष्ठ-४६ )

**शब्दार्थः**—भव=संसार। रस=आनन्द=सुख का अनुभव। भाग=अंश= हिस्सा। स्रोत=सोता=झरना=प्रवाह। शतदल=कमल। मानस=हृदय।

**व्याख्याः**—इस भव में रस और भाग था''''''''फूटे इस मानस में ।

अपने मन की अभिलाषा का भाव व्यक्त करती हुई कुब्जा कहती है कि:—यह संसार रस और आनन्द से परिपूर्ण है तथा इस आनन्द में मेरा भी अंश था अतएव आनन्द की वह धारा फूट पड़े और उसके साथ ही मेरे हृदय में कमल विकसित हो जाये। अर्थात् इस संसार के आनन्द से कूबड़ के कारण अबतक जो मैं वंचित रही अब उसमें मेरा भी भाग आ गया अतएव उस आनन्द की धारा के साथ ही मेरा हृदय भी कमल के समान प्रफुल्लित हो उठे।

**शब्दार्थः**—अनदेखे=बिना देखा हुआ । सपने=स्वप्न=कल्पना । आत्म-ग्लानि=आत्म कष्ट ।

**व्याख्याः**—सत्य हुआ मैं देख रही थी''''''''''''देखा तब अपने को ।

कुब्जा कहती है कि:—अपने अनदेखे स्वप्न को सच्चे रूप में मैं प्रत्यक्ष देख रही थी अर्थात् हृदय में जिस आनन्द की कल्पना मैं बहुत दिनों से कर रही थी आज वह साकार होकर मेरे सम्मुख प्रस्तुत थी। इसके बाद अपने मन के ही आत्मकष्ट को भूलकर मैंने स्वयं अपने को देखा ( पहचाना )। भाव यह है कि श्री कृष्ण के दर्शन की जो लालसा बहुत दिनों से कुब्जा के मन में थी अब वह पूर्ण हो गई।

**शब्दार्थः**—ज्यों-ज्यों=जैसे-जैसे । धँसता=घुसता=प्रवेश करता ।

**व्याख्याः**—"अब फिर कभी मिलूँगा" कह कर''''''धँसता चला गया वह।

कुब्जा कहती है कि:—"पुनः कभी दर्शन दूँगा" इस प्रकार कहकर हँसते हुए श्री कृष्ण चले गये ( आँखों से दूर हो गये ) जैसे-जैसे वह आँखों से दूर होते जाते थे वैसे ही वैसे हृदय में और भी अधिक वे प्रवेश करते गये अर्थात् श्री कृष्ण के दूर होते ही उनके प्रति हृदय में प्रेम की भावना और भी बढ़ती गई तथा उनकी स्मृति बराबर बनी रही।

**शब्दार्थः**—पृष्ठ-भार=पीठ के बोझ से=कूबड़ के कारण। ग्रीवा=गर्दन ।

**व्याख्याः**—धरती ही देखी''''''''''''रुक रुककर ।

कुब्जा कहती है कि:—कूबड़ के कारण पीठ के भार से झुकी होने के कारण अब तक मुझको केवल पृथ्वी ही देखने का अवसर मिला था पर अब कूबड़ नष्ट

हो जाने से सीधी होकर गर्दन ऊँची करके मन भर कर मैंने आकाश भी देख लिया ।

शब्दार्थः—सुनील=सुन्दर नीला । वर्ण=रंग । मदन मोहन=श्री कृष्ण । पक्षिणी=चिड़िया=मादा पक्षी । तुल्य=समान । ठौर=स्थान । तन=शक्ति ।

व्याख्याः—ओ हो ! यही सुनील वर्ण था……कुछ कहाँ क्या बनता ।

नीले आसमान के रंग में घनश्याम श्रीकृष्ण के रूप की कल्पना करती हुई कुब्जा कहती है कि:—अहा ! इस नीले आसमान में श्रीकृष्ण के उसी नीले रूप की झलक मिल रही है और इस शून्य आकाश में केवल मादा पक्षी के समान कल्पना की उड़ान भरने वाली मुझ दीना का स्थान हो सकता है अर्थात् जिस प्रकार पंखवाली मादा पक्षी आकाश में उड़ती रहती है उसी प्रकार श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण के प्रेम की कल्पना की उड़ान मैं भरती रहती हूँ ।

शब्दार्थः—हरा-भरा=हरियाली से परिपूर्ण । शस्य=नई घास=नई दूब । श्यामल=कृष्ण वर्ण का=काला=साँवला । वर्ण=रंग ।

व्याख्याः—हरा-भरा भूतल भी…………कब था ।

पृथ्वी की हरीतिमा में कृष्ण के श्याम रंग की कल्पना करती हुई कुब्जा कहती है कि:—हरियाली से परिपूर्ण पृथ्वी को भला मैंने कब देखा था । अर्थात् कभी नहीं क्योंकि कूबड़ के कारण इस पृथ्वी की हरियाली देखने का अवसर ही नहीं मिला था । कुब्जा पुनः कहती है कि नई दूब या हरी हरी घास तथा वनस्पति के कारण जो हरियाली इस पृथ्वी पर व्याप्त है उस हरीतिमा में उसी कृष्ण का श्याम रंग व्याप्त है ।

शब्दार्थः—कुसुम=पुष्प । यह जन=कुब्जा से तात्पर्य है ।

व्याख्याः—अहा ! उसी में एक कुसुमसा……बस इतना मिल जावे ।

कुब्जा अपनी अभिलाषा व्यक्त करती हुई कहती है कि:—इस पृथ्वी पर एक पुष्प के समान मैं भी विकसित हो जाऊँ अर्थात् जिस प्रकार ईश्वर की कृपा से इस प्रकृति में पुष्प विकसित होकर आनन्द को प्राप्ति कर लेता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण के दर्शन के प्रभाव से मेरा मन भी आनन्द से प्रफुल्लित हो उठे । मैं केवल इसी की प्राप्ति की कामना करती हूँ । इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए ।

( पृष्ठ-४७ )

**शब्दार्थः**—निर्मल=स्वच्छ। अनल=अग्नि=आग। आभा=प्रकाश=चमक। अनिल=पवन=वायु=हवा।

**व्याख्याः**—देखा मैंने, रँगा.......गंध-गति-बल है।

जल, अग्नि और हवा में श्रीकृष्ण की सत्ता के आभास की कल्पना करती हुई कुब्जा कहती है कि:—मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों श्रीकृष्ण के ही रंग में यह स्वच्छ जल रंगा हुआ है और अग्नि उसी की कान्ति धारण करके चमक रही है तथा उसी के प्रभाव से वायु गंध धारण करने की शक्ति प्राप्त करके प्रवाहित हो रही है

**शब्दार्थः**—तरंग=मौज=उमंग=लहर। चिनगारी=आगका छोटा कण। सांस=श्वास=दम। वेणु=वंशी। नट नागर=श्रीकृष्ण। आँस=पीड़ा=दर्द=संवेदना

**व्याख्याः**—एक तरंग एक चिनगारी ......एक आँख मैं उसकी।

कुब्जा अपने मनकी भावना व्यक्त करती हुई कहती है कि:—मैं श्रीकृष्ण के आनन्द की एक तुच्छ लहर, एक अग्नि का कण और एक दम ( श्वास ) के समान हूँ और उस वंशी वाले की वंशी बज जाये तो मैं उसकी एक संवेदना अथवा पीड़ा के सदृश हूँ अर्थात् मेरा प्रेम श्रीकृष्ण के आनन्द, हर्ष और पीड़ा सभी में व्याप्त है।

**शब्दार्थः**—तत्त्व-तत्व=रोमरोम=पंचभूत=वास्तविक स्थिति=ब्रह्म। तन्मय=दत्त चित्त=लवलीन। विस्मय=आश्चर्य।

**व्याख्याः**—मेरा तत्त्व तत्त्व........विस्मय था।

कुब्जा अपने मन की वास्तविक स्थिति का परिचय देती हुई कहती है कि:—श्रीकृष्ण के प्रेम में शरीर के सभी तत्व ( पाँचो तत्त्व ) इस प्रकार दत्तचित्त हो गये थे कि अब मेरे मन में कंस का रंच मात्र भी भय व्याप्त नहीं था। अतएव मैं उसी रूप में ( आत्मविभोर होकर ) घर को वापस लौट पड़ी और मेरी यह स्थिति देखकर प्रत्येक व्यक्ति आश्चर्य प्रकट कर रहा था।

**शब्दार्थः**—निर्जन=एकान्त=सुन सान। अभीष्ट=अभिलषित। चिन्तनार्थ=चिन्तन करने के लिए। बिम्बित=प्रतिमूर्ति।

व्याख्या:—किन्तु मुझे········बिम्बित बन के।

कुब्जा अपने मनका भाव व्यक्त करती हुई कहती है कि:—श्री कृष्ण का दर्शन प्राप्त होने के बाद मन में चिन्तन करने के लिए मैं सुनसान स्थान या एकान्त चाहती थी और इस बात का अनुभव प्राप्त करना चाहती थी कि श्री कृष्ण की छाया पाकर क्या मैंने अपनी स्थिति पर भी कुछ विचार किया था?

शब्दार्थ:—विक्रान्त=वीर=योद्धा=तेजस्वी=प्रतापी। उग्रसेन=कंस का पिता, मथुरा का राजा।

व्याख्या:—लेने नहीं, राज्य देने ही········फिर भी भाग्य भला था।

श्री कृष्ण के अनुपम त्याग की चर्चा करती हुई कुब्जा कहती है कि:—वह तेजस्वी वीर पुरुष राज्य लेने की अभिलाषा से नहीं बल्कि राज्य देने की इच्छा से ही मथुरा आया था। इसी से कंस की मृत्यु के बाद उसके पिता उग्रसेन का भाग्य-उत्तम रहा।

शब्दार्थ:—वृद्ध नृप=उग्रसेन से तात्पर्य है। वसुदेव=श्री कृष्ण के पिता। देवकी=श्री कृष्ण की माता। मनमाना=मनवांछित।

व्याख्या:—रोता देख वृद्ध········मनमाना।

कुब्जा कहती है कि:—कंस की मृत्यु के बाद बूढ़े राजा उग्रसेन को पुत्र शोक में विह्वल होकर रोते देखकर श्री कृष्ण जी ने उन्हें 'नाना' शब्द से संबोधित करके तृप्त कर दिया और उन्हें पुत्र रूप में पाकर वसुदेव और देवकी को मनमाना सुख प्राप्त हुआ।

शब्दार्थ:—आप=स्वयं। चेरी=दासी। बाधा=रुकावट।

व्याख्या:—आने की न आप········बाधा थी।

"अब फिर कभी मिलूँगा" कृष्ण के इन शब्दों पर तर्क करती हुई कुब्जा कहती है कि:—श्री कृष्ण ने स्वयं अपने आने की बात क्यों कही? क्या कुब्जा को उन्होंने राधा के समान समझ लिया था? मैं तो स्वयं दासी थी फिर दासी को किसी के पास जाने में भला कौन सी रुकावट हो सकती है। अर्थात् मैं तो केवल सेवा भाव से ही कृष्ण के हृदय पर अधिकार जमाना चाहती हूँ, स्वामिनी भाव से कदापि नहीं।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कुब्जा के सेवा भाव की विशिष्टता प्रकट करना ही कवि का प्रमुख लक्ष्य है।

( पृष्ठ–४८ )

**शब्दार्थ:**—आकुल=विह्वल=कातर=दु:खी। ब्रजरानी=राधा। मर्म-वेदना=हृदय की पीड़ा।

**व्याख्या:**— किन्तु आज आकुल है बन में........मर्म-वेदना जानी।

राधा के विरह की कल्पना करती हुई कुब्जा कहती है कि:—आज बन में राधा जिस प्रकार कृष्ण के विरह में दु:खी है उसके हृदय की पीड़ा की अनुभूति यह दासी घर बैठे ही प्राप्त कर रही है।

**शब्दार्थ:**—परस=स्पर्श=छूने की क्रिया का भाव। तरस रही=लालायित हो रही=ललच रही। विकल=दु:खी। सदा-संगिनी=जीवन संगिनी।

**व्याख्या:**—अथवा एक परस में ......कितनी ?

राधा के विरह-कष्ट का अनुमान लगाती हुई कुब्जा कहती है कि:—केवल एक बार के स्पर्श मात्र से ही जब मैं श्री कृष्ण के दर्शन की लालसा करके कष्ट पा रही हूँ तब वह श्री कृष्ण की जीवन संगिनी राधा उनके वियोग में न जाने कितनी दुखी होगी। अर्थात् राधा के विरह कष्ट का अनुमान लगा सकना अत्यन्त कठिन है।

**शब्दार्थ:**—दूती=संदेश-वाहिका। मिस से=बहाने से। अरुण=लाल।

**व्याख्या:**—होती हाय !..................चरण तो छूती।

कुब्जा अपने मन में पश्चात्ताप करती हुई कहती है कि:—यदि आज मैं राधा की दूती होती तो इसी बहाने उसकी शरण में जाकर उसके लाल चरणों का स्पर्श कर पाती अर्थात् इसी के द्वारा श्री कृष्ण का सन्देश उसके पास पहुँचाने और उसके दर्शन तथा चरण रज स्पर्श करने का अवसर प्राप्त हो जाता।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने कुब्जा के सार्वभौम प्रेम, आदर्श नारीत्व और उसके सेव्य भाव का चित्रण वड़े ही अनुपम ढंग से किया है।

**शब्दार्थ:**—कल्प=विधि=विधान=काया कल्प=शरीर या किसी अंग को फिर

से नया तथा निरोग करने की युक्ति। अर्पण कर=समर्पण कर=देकर। परित्राण= छुटकारा=रक्षा=मुक्ति।

**व्याख्या:**—कल्प हुआ यह जिस···············मैं पाऊँ।

कुब्जा आत्म-समर्पण का भाव व्यक्त करती हुई कहती है कि:—मेरे जिस शरीर का नव निर्माण हुआ है उसे लेकर अब मैं कहाँ जाऊँ? अतएव मुझे यह रूप प्रदान करने वाले श्री कृष्ण जी जब आवेंगे तब मैं इस शरीर को उन्हें अर्पण करके इस जीवन से मुक्ति पा लूँगी अर्थात् इस शरीर को अब मैं श्री कृष्ण के चरणों में लगा देना ही ठीक समझती हूँ।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद आत्म-त्याग की भावना का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

**शब्दार्थ:**—शील=संकोच=स्वभाव की प्रवृत्ति।

**व्याख्या:**—दे न गया वह यह शरीर ही·········हूँ मैं करना जैसा।

कुब्जा अपने मन में संकोच का भाव व्यक्त करती हुई कहती है कि:—श्री कृष्ण ने मेरे इस शरीर को केवल नवीन रूप ही प्रदान नहीं किया है बल्कि इसमें इस प्रकार का संकोच भर दिया है कि मैं जो कुछ करना चाहती हूँ संकोच वश वह भी मुझ से नहीं हो पाता है।

**शब्दार्थ:**—विसासी=विश्वासघाती=धोखेबाज। लावण्य=सौन्दर्य। लावण्य-सिन्धु=सौन्दर्य का सागर=सुन्दर नेत्र।

**व्याख्या:**—आया नहीं विसासी अब भी······रस ये आँसू लाये।

कुब्जा श्री कृष्ण के प्रति क्षोभ प्रदर्शित करती हुई कहती है कि:—प्रतीक्षा करते-करते इतना समय व्यतीत हो गया पर वह विश्वासघाती श्री कृष्ण नहीं आया बल्कि उसकी स्मृति में आँखों में नीर ( आँसू ) आ गये पर इन आँसुओं की विशेषता यह है कि ये श्री कृष्ण के सुन्दर नेत्र रूपी समुद्र का रस ग्रहण करके आये हैं अर्थात् इन नेत्रों से जो आँसू टपकते हैं उनमें श्री कृष्ण के सौन्दर्य की झलक मिलती है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने क्षोभ और आत्म-संतोष दोनों का भाव एक साथ व्यक्त किया है।

**शब्दार्थः**—पी पी कर=पान करके। कोसूँ=बुरा भला कहूँ। अजान=अबोध =अनभिज्ञ। आतुर=व्याकुल=व्यग्र। पालूँ-पोसूँ=रक्षा करूँ।

**व्याख्याः**—पी पी कर मैं..............पालूँ-पोसूँ?

कुब्जा अपने हृदय में अनुताप का अनुभव करती हुई कहती है कि:—श्री कृष्ण के नेत्रों के सौन्दर्य के रस का पान करके भला अपने भाग्य को भला बुरा कैसे कह सकती हूँ? पर मेरे सम्मुख कठिन समस्या यह है कि—इस अबोध और व्यग्र हृदय की रक्षा कब तक करती रहूँ? अर्थात् श्री कृष्ण के दर्शन और सौन्दर्य पान से मैं धन्य अवश्य हो गई हूँ पर उनके वियोग में हृदय का कष्ट सहन नहीं हो पा रहा है।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में कुब्जा का अनुताप विरहणी राधा से भी बढ़ कर दिखाया गया है।

(पृष्ठ-४६)

**शब्दार्थः**—चन्द्रोदय=चन्द्र का उदय होना=चन्द्र का प्रकाश होना। शशि =चन्द्र। निशि=रात्रि। तमिस्र=घना अन्धकार=रात्रि।

**व्याख्याः**—आई रात................मैं तारा!

कुब्जा अपने मन में कल्पना करती हुई कहती है कि:—रात्रि का आगमन हुआ, आकाश में चन्द्रमा के उदय होने से प्रकाश की किरणें फैल गईं, मेरे मन में यह भाव उत्पन्न हो गया कि वह कृष्ण चन्द्रमा बन कर प्रकाशित होता और मैं रात्रि बन जाती, यदि वह रात्रि के घने अंधकार का रूप धारण कर लेता तो मैं तारा बन कर टिम टिमाने लगती। भाव यह है कि जिस प्रकार चन्द्र और रात्रि तथा घने अन्धकार और तारे का अन्योन्याश्रय संबंध है उसी प्रकार श्री कृष्ण के प्रति मेरा अनन्य प्रेम सदैव बना रहे।

**शब्दार्थः**—प्रभात=प्रातः काल। अरुणोदय=सूर्योदय। गूँजी=गूँज उठी= गुन गुनाने लगी। अलिनी=भ्रमरी=भौंरे की स्त्री। पूर्व=पूर्व दिशा। फटती= फूटती=फैलती। पौ=ज्योति=प्रकाश=किरण। पौ फटना=प्रातः काल सूर्योदय के पूर्व आकाश में लाली का दौड़ना। नलिनी=कमलिनी।

व्याख्याः—हुआ प्रभात .............. हंस की नलिनी ।

कुब्जा कहती है कि:—प्रात: काल हुआ, आकाश में सूर्य निकल आया और हमारे हृदय की भ्रमरी गुन गुना उठी । मैं उसी पूर्व दिशा की फैलती हुई लालिमा हूँ और उसी हंस की कमलिनी हूँ अर्थात् यदि श्री कृष्ण जी सूर्योदय हैं तो मैं भ्रमरी हूँ, यदि वे पूर्व दिशा हैं तो मैं उस दिशा में फैलने वाली लालिमा हूँ, यदि वे हंस हैं तो मैं उनकी सेविका कमलिनी हूँ ।

शब्दार्थः—नील गगन=नीले आकाश=यहाँ हृदय अथवा नेत्र से तात्पर्य है। पार=अन्त । ढुलक पड़ी=फिसल गई=गिर पड़ी । आधार=सहारा ।

व्याख्याः--चढ़ी बहुत .......... आधार न पाया ।

कुब्जा कहती है कि:—अपने हृदय रूपी नीले आकाश में मैं आशा भरी कल्पना की उड़ान बहुत दूर तक भरती रही पर उसका कहीं अन्त न मिला और रुकने का कोई सहारा न पाने से मैं ओस की बूँदों के समान स्वयं ही नीचे ढुलक पड़ी अर्थात् कृष्ण के दर्शन की आशा टूट गई ।

अथवा

श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा में अपने नीले नेत्रों से बहुत दूर-तक देखती रही पर मुझे उस प्रतीक्षा का कहीं अन्त न दिखलाई पड़ा इस प्रकार कोई आधार न मिलने से ओस की बूँदों के समान मेरे नेत्रों से अश्रु जल टपक पड़े ।

शब्दार्थः—पानी=अश्रु जल । नखों=नाखूनों । बढ़के=आगे बढ़कर ।

व्याख्याः—रह सकता है............ जिनको बढ़के ।

कुब्जा कहती है कि:—मेरे नेत्रों के ढुलके हुए आँसू केवल श्रीकृष्ण के चरण-नख पर ही चढ़कर स्थिर रह सकते हैं पर आज उनके चरण ही यहाँ नहीं हैं जिन्हें मैं आगे बढ़कर प्रेम पूर्वक स्पर्श करती । भाव यह है कि यदि आज श्रीकृष्ण जी यहाँ होते तो मैं उनके चरण को स्पर्श करके तथा उनके चरण नख पर अपने प्रेमाश्रु को चढ़ाकर अपने जीवन को धन्य बना लेती ।

शब्दार्थः—श्रुति=कान=सुनी हुई बात । वेद=वार्ता=ध्वनि=विद्वता । अतीत बीता हुआ=भूत ।

**व्याख्या:**—वह भीतर ही रहा,..............वजाये मैंने ?

श्रीकृष्ण के ईश्वरीय रूप की चर्चा करती हुई कुब्जा कहती है कि:—श्रीकृष्ण तो घट घट वासी हैं अतएव उनका वास मेरे भी हृदय में है अतएव उस अन्तर्वासी ईश्वर के रूप को वाह्य की संज्ञा देकर उसके स्वागत सत्कार के लिए व्यर्थ ही मैंने सजावट की है। वह श्रीकृष्ण तो अतीत काल से ही चर्चा और वार्ता का विषय है अर्थात् अतीत काल से ही उसकी सत्ता की व्यापकता का गुण गान वेद आदि ग्रन्थों ने किया है तो फिर उसके विषय में पूर्ण जानकारी रखते हुए तथा उसके विषय में सब कुछ सुनकर भी मैंने अपने हृद्तन्त्री के तारों को झंकृत क्यों किया ? अर्थात् उसके वाह्य रूप के दर्शन के लिए चिन्ता क्यों करने लगी ?

**शब्दार्थ:**—घृत-दीप=घी का दीपक। माखन-चोर=श्री कृष्ण। अन्तर में=हृदय में। नव-घन=नवीन बादल=श्री कृष्ण। मन-माया=मन को प्रिय लगा=मोह लिया।

**व्याख्या:**—क्यों घृत-दीप..................मन-भाया।

कुब्जा कहती है कि:—जब माखन चोर श्री कृष्ण जी ही नहीं आये तो फिर मैंने व्यर्थ में उनके स्वागत् के लिए घी का दीपक क्यों जलाया ? अर्थात् प्रेम पूर्ण भावों की कल्पना क्यों की ? फिर भी वह मनोमुग्धकारी नवीन बादलों के से रूप वाला घनश्याम मेरे हृदय में छाया हुआ है। भाव यह है कि प्रत्यक्ष रूप से श्रीकृष्ण का दर्शन मुझे भले ही न मिले पर उनकी मूर्ति तो हमारे हृदय में सदैव विराजती रहेगी।

**शब्दार्थ:**—स्नेह-हीन-प्रेम से रहित=भावना सेरहित। दीपक=चिराग=नेत्र। सजग=चैतन्य=जागृत। सजल=जल से युक्त=आँसू भरे हुए। लोचन=नेत्र। फीके पड़ें=मुरझायें। सुमन=पुष्प=भाव। अनुरंजित=प्रसन्न=आनंदित=प्रेम से आनन्द विभोर।

**व्याख्या:**—स्नेह=हीन दीपक........यह मन तो।

कुब्जा अपनी प्रेमानुभूति की चर्चा करती हुई कहती है कि:—प्रेम रहित भावना भले ही शान्त होजाये पर प्रेमाश्रु से पूर्ण मेरे नेत्र तो श्रीकृष्ण के दर्शन की प्रतीक्षा में बराबर चैतन्य रहकर एक टक उन्हें निहारते ही रहेंगे। मेरे भाव कुछ समय के लिए भले ही मुरझा जायें पर हृदय तो श्रीकृष्ण के प्रेम में बराबर ही

आनन्द विभोर रहेगा। भाव यह है कि श्रीकृष्ण के स्वागत की बाहरी वस्तुओं यथा दीपक सुमन आदि का मेरे लिये कोई भी मूल्य नहीं है। मैंने तो अपने प्रेमाश्रु और हृदय को ही उन्हें अर्पण कर दिया है।

( पृष्ठ–५८ )

**शब्दार्थः**—अतिथि=मेहमान। अतिथिदेव=श्रीकृष्ण से तात्पर्य है। सिरमाथे लूँगी=अत्यन्त श्रद्धा प्रकट करूँगी=विशेष सत्कार करूँगी। देह=तन=शरीर।

**व्याख्याः**—मेरा अतिथि........प्राण भी दूँगी।

श्रीकृष्ण के प्रति श्रद्धा का भाव प्रदर्शित करते हुये कुब्जा कहती है कि:—यदि मेरे अतिथिदेव ( श्रीकृष्ण जी ) यहाँ पधारें तो मैं उन्हें सिरमाथे पर बिठालूँगी अर्थात् उनका विशेष सत्कार करूँगी। उन्होंने मुझे यह तन ( सौन्दर्य मय रूप ) प्रदान किया है अतएव इसके बदले में मैं उन्हें अपना प्राण भी अर्पण कर दूँगी अर्थात् उनकी सेवा में यह तन और प्राण दोनों ही निछावर कर दूँगी।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में 'उसे प्राण भी दूँगी' कह कर कवि ने एक आदर्श नारी के अपूर्व बलिदान की प्रेरणा का भाव व्यक्त किया है।

**शब्दार्थः**—धड़क=धड़कना=स्पन्दन करना। वक्ष=उर–स्थल=छाती। कक्ष=बाहों के मिलने का स्थान=काँख। फड़क=फड़कना। वाम-भुज=बाईं भुजा। फड़क वाम-भुज=बाईं भुजा फड़कना=स्त्रियों का बायां अंग फड़कना शुभ माना जाता है। रुज=रोग=पाप=घाव=चोट।

**व्याख्याः**—धड़क न वक्ष,........सभी रुज मेरे।

कुब्जा अपने शरीर के अंगों को लक्ष्य करके कहती है कि:—हे उरस्थल! अब तू अपना स्पन्दन ( धड़कन ) बन्द करदे क्योंकि श्रीकृष्ण के मिलन का स्थल तू नहीं है। उनके मिलन का स्थान मेरी बाँहों का संधिस्थल है अतएव शुभ के लक्षण के रूप में मेरी भुजायें ही फड़कें जिससे उनका मिलन हो सके। इस प्रकार श्रीकृष्ण के मिलन में यदि मेरे इस जीवन का अन्त भी होजाये तो मेरा जीवन धन्य हो जायगा। मेरे तन के सभी कष्ट और पाप दूर हो जायेंगे।

**शब्दार्थः**—भ्रांतियाँ=भ्रम=सन्देह=धोखा=प्रवञ्चना=मोह। श्रांतियाँ=थकावट=

खेद=शिथिलता=परिश्रम जन्य कष्ट। क्रांतियाँ=परिवर्तन=उलट पलट=हेर फेर। नटवर=श्रीकृष्ण। नाट्य बन्धन=अभिनय मिलन। सन्धि-शान्ति=मिलन की शांति। निर्वाहे=निभाव करदे=निभादे=कार्य सम्पादन करे।

**व्याख्याः**—रहें भ्रांतियाँ·······निर्वाहे।

कुब्जा कहती है किः—इस संसार में भ्रांति, श्रांति और क्रांति (प्रवंचना, शिथिलता, और उलट फेर) चाहे जो कुछ भी होता रहे पर हे नटवर! श्रीकृष्ण जी आपका अभिनय-मिलन मिलन की सुख शान्ति का निर्वाह करदे अर्थात् संसार के परिवर्तन का प्रभाव आपके प्रेम या मिलन पर नहीं पड़ना चाहिये। आप मुझे प्रेम पूर्वक अवश्य अपना लें।

**शब्दार्थः**—श्रांति=थकावट। व्यजन=विजन=पंखा। मोती=अश्रुजल से तात्पर्य है। श्रम-कण=पसीने की बूँदें। बीन धरूँगी=चुनकर रखलूँगी।

**व्याख्याः**—क्रांति हो चुकी,···········बीन धरूँगी।

कुब्जा कहती है किः—हे श्रीकृष्ण! क्रांति हो चुकी है अर्थात् कंस को मारकर आपने शासन परिवर्तन कर दिया है। आप पधारें और इस कार्य में आपको परिश्रम जन्य जो कष्ट हुआ है उसकी थकावट दूर करके मैं आपको पंखा करूँगी और अपने अश्रुजल को आपपर निछावर करके आपके पसीने की बूँदों को चुन कर रखलूँगी अर्थात् अपनी सेवा से आपको सुख शांति पहुँचाकर अपना जीवन धन्य बनाऊँगी।

## अथवा

आपने मेरे जीवन में जो परिवर्तन ला दिया है और मेरी कुरूपता दूर करके अनुपम सौन्दर्य प्रदान किया है उसके उपलक्ष्य में अपनी सेवा से पंखा आदि झलकर तथा आपके चरणों में अपना प्रेमाश्रु अर्पित करके मैं आपको सन्तुष्ट करूँगी।

**शब्दार्थः**—रुष्ट=क्रुद्ध=अप्रसन्न। वंचित=अलग=दूर। तुष्ट=संतुष्ट=प्रसन्न।

**व्याख्या**—मेरा ही अधिकार···········तुष्ट न होगी।

कुब्जा कहती है कि हे श्रीकृष्ण! आप पर मेरे प्रेमपूर्ण अधिकार की बात सुनकर राधा कभी भी अप्रसन्न न होगी और मुझ जैसी सेविका को आपके प्रेम

से वंचित करके आप की रानी राधा कभी भी प्रसन्न न होगी अर्थात् मुझे अपना लेने में आपको राधा की ओर से भय नहीं खाना चाहिये।

**शब्दार्थ:**—व्रजरानी=राधा। आत्म-समर्पण=आत्मत्याग।

**व्याख्या:**—वह व्रजरानी भी............समान अधिकारी।

नारीत्व को प्रधानता देती हुई कुब्जा कहती है कि:—वह व्रजरानी राधा भी नारी है और मैं भी एक तुच्छ नारी ही हूँ अतएव नारी होने के नाते आत्म-त्याग करने के हम दोनों ही समान भाव से अधिकारी हैं अर्थात् नारीत्व की जो भावना राधा के हृदय में है वही भावना मेरे हृदय में भी है अतएव अपना प्रेम आपके चरणों में अर्पण करने का जितना अधिकार राधा को है उतना ही मुझे भी। भाव यह है कि नारीत्व-पद नारी जाति में छोटे बड़े का भेद भाव नहीं रखता।

**शब्दार्थ**—योषित्ता=नारी=नारीत्व। सहज=स्वाभाविक। नारीत्व=स्त्रीत्व। निहत=नष्ट=मृत।

**व्याख्या:**—एक पुरुष से............तूने आप जिलाया।

कुब्जा अपने शरीर की पूर्व स्थिति का स्मरण करके कहती है कि:—अपने प्रेम और नारीत्व के बल पर भला किस स्त्री ने स्वभावत: ( सहज रूप से ) पुरुष को आकर्षित नहीं कर लिया पर मेरा स्त्रीत्व तो मृतक हो चुका था उसे हे श्रीकृष्ण! तुमने ही जीवित किया अर्थात् कूबड़ के कारण मैं नारीत्व के आकर्षण शक्ति से हीन थी पर मेरा कूबड़ मिटाकर तथा पुन: यौवन और सौन्दर्य प्रदान करके तुमने मुझे आकर्षण की वस्तु बनादिया। भाव यह है कि मेरे नवीन रूप का सारा श्रेय तुम्हें ( श्रीकृष्ण को ) है।

( पृष्ठ-५१ ) ५०

**शब्दार्थ**—कुण्डली=साँप का घेरा देकर बैठना=सर्प।

**व्याख्या**—कूबड़ न था,............दूर खड़ा था।

कुब्जा अपने कूबड़ के विषय में कहती है कि—मेरी पीठ पर कूबड़ नहीं था बल्कि सर्प घेरा देकर मुझे जकड़े हुए बैठा था और इस प्रकार उसने मेरे शरीर को शक्ति-हीन बना दिया था। हे श्रीकृष्ण जी! आपने ऐसा कौन सा मंत्र फूँका

( जादू किया ) कि सर्प की कुण्डली-सदृश मेरा कूबड़ मेरे शरीर को छोड़ कर दूर चला गया।

**विशेषटिप्पणी**—उक्त पद में कूबड़ की उपमा कुण्डली से देकर कवि ने अपनी काव्य प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है।

**शब्दार्थ**—विरह=वियोग=जुदाई। वृश्चिक=बिच्छू। गुणी=गुणज्ञ=गुण का जानने वाला। गारुड़िक=बिच्छू या सर्प का विष झाड़ने वाला=यंत्र से सर्प पकड़ने वाला=सँपेरा। कौतुक=खेल=तमाशा=विनोद।

**व्याख्या**—किन्तु विरह वृश्चिक.........देख न मेरा।

श्रीकृष्ण के विरह की उपमा बिच्छू से देती हुई कुब्जा कहती है कि—हे श्री कृष्ण आपने सर्प की कुण्डली सदृश कूबड़ के कष्ट से तो मेरा छुटकारा करदिया पर अब आपके विरह रूपी बिच्छू ने मुझे घेर लिया है। अतएव इस बिच्छू के विष को मंत्र से दूर करने वाले ( झाड़ने वाले ) गुणज्ञ जो आप हैं वह मेरे विरह-कष्ट के तमाशे को दूर खड़ा होकर न देखें वल्कि इस कष्ट से मेरा उद्धार करदें।

**विशेषटिप्पणी**—उक्त पद में विरह को बिच्छू तथा विरह-कष्ट को बिच्छू के डंक मारने से उत्पन्न पीड़ा की संज्ञा देकर कवि ने अपनी अनूठी सूझ और अनुपम कल्पना का प्रबल प्रमाण प्रस्तुत किया है।

**शब्दार्थः**—कुटिल=टेढ़ी। भृकुटि=भौंहें।

**व्याख्याः**—तू न आज भी.........................मैं पाऊँगी।

कुब्जा कहती है कि:—हे श्री कृष्ण जी! यदि आप आकर मुझे दर्शन नहीं देते तो कल स्वयं मैं आपके पास पहुँचूँगी। यदि मुझे वहाँ जाने पर अन्य कुछ नहीं तो आपकी टेढ़ी भौंहों के दर्शन तो प्राप्त होंगे ही अर्थात् बहुत होगा तो आप अप्रसन्न होकर अपनी भौंहों की वक्रता ही प्रदर्शित करेंगे।

**शब्दार्थः**—अधीरे=उतावली।

**व्याख्याः**—यही कहेगा न तू...................तेरी ही।

कुब्जा कहती है कि:—हे श्री कृष्ण जी! सहसा मेरे पहुँचने पर आप मुझे

उतावली और चेरी ही कहेंगे पर मुझे इसमें कुछ भी आपत्ति न होगी हाँ, हाँ, मैं निस्सन्देह आप की दासी हूँ और आपकी ही हूँ और आपकी ही हूँ।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पदों में कुब्जा के आत्म-संतोष और आग्रह-भाव का उत्तम चित्रण हुआ है।

**शब्दार्थ:**—गये हुए धन-सा=खोये हुए धन के समान।

**व्याख्या:**—गये हुए धन-सा..............बनाकर मुझको ?

कुब्जा कहती है कि:—हे श्री कृष्ण जी! क्या मैं आपको अपने हृदय में खोये हुए धन के समान रखूँ ? तो फिर आपने मेरे शरीर का यह रूप बना कर मुझे अर्पित क्यों किया ? अर्थात् आप को मुझे अपनाना ही नहीं था और क्षणिक दर्शन देकर त्याग कर चला ही जाना था तो मेरे शरीर का कूबड़ मिटाकर आपने मुझे यह नया रूप और नई जवानी क्यों दी ? आपके बिना मेरे लिए इनका कोई भी मूल्य नहीं है।

**शब्दार्थ:**—रोम रोम=रोवाँ रोवाँ। पुलक=रोमाञ्च। जड़=जड़वत्=अचैतन्य। स्वेद=पसीना।

**व्याख्या:**—रोम रोम बस..............बह जावे।

कुब्जा कहती है कि:—हे श्री कृष्ण जी! आपको हर्षातिरेक के रोमांच के समान पाकर मेरे शरीर के सारे रोवें जड़वत् होकर अचैतन्य बने रह जायें और आपके चरणों में यह जीवन गल कर पसीना बन कर बह जावे। भाव यह है कि—यह संपूर्ण शरीर आप के लिए अर्पित है।

**शब्दार्थ:**—पत्र पत्र में=पत्ते पत्ते में। आहट=आने का संकेत। वेला=काल =समय=घड़ी।

**व्याख्या:**—पत्र पत्र में..............बीत जाती है।

कुब्जा कहती है कि:—हे श्री कृष्ण जी! आपके आने का संकेत पत्ते पत्ते में पाकर मैं चौंक पड़ती हूँ पर आपकी प्रतीक्षा में ही समय व्यतीत होता जारहा है अर्थात् मैं बराबर आपके आने की प्रतीक्षा कर रही हूँ पर आपके मिलन की घड़ी मेरे पास नहीं पहुँच रही है।

## ( पृष्ठ-५२ )

**शब्दार्थः**—निद्रा=नींद । स्वागतार्थ=स्वागत के लिए ।

**व्याख्याः**—निद्रा तेरा स्वप्न……………राजों के राजा !

कुब्जा कहती है कि:—हे श्री कृष्ण जी ! आपके आने की कल्पना करते करते मेरी नींद भी गायब हो गई है अतएव अब आप सच्चे रूप में मेरे सम्मुख आ जायें। हे राजाओं के भी राजा ! अर्थात् सर्वश्रेष्ठ मेरे प्यारे ! आप अब पधार कर मुझे दर्शन दें। मैं आप के स्वागत के लिए जागकर प्रतीक्षा कर रही हूँ । भाव यह है कि मेरी कल्पना साकार हो कर मुझे शान्ति तभी प्राप्त होगी जब आप मुझे दर्शन देकर उबार लेंगे ।

**शब्दार्थः**—सुध=स्मृति=चेतना । बिछुड़ती = विलग होती ।

**व्याख्याः**—अहो रात्र के……… …हूँ मैं ।

कुब्जा अपनी वियोगावस्था का वर्णन करती हुई कहती है कि:—हे श्री कृष्ण जी ! मैं रात्रि रूपी पंख धारण करके स्मृति के समान उड़ती रहती हूँ और इसी प्रकार आपसे मिलने के लिए मैं स्वयं अपने अपनत्व से भी अलग हो जाती हूँ अर्थात् आप की प्रतीक्षा की कल्पना में सोचते सोचते मेरी सारी रात्रि व्यतीत हो जाती है और मुझे अपने शरीर की भी सुधि नहीं रह जाती पर आपके दर्शन होते ही नहीं इस प्रकार मैं आप से और अपने शरीर की सुधि बुधि दोनों से वंचित रह जाती हूँ ।

**शब्दार्थः**—कौतुक=तमाशा=आश्चर्य । यहीं कहीं = पास में ही । कठोर= निर्दयी । पैठा = प्रविष्ट ।

**व्याख्याः**—और बड़ा कौतुक……………पैठा है ।

कुब्जा कहती है कि:—और सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि हे श्री कृष्ण ! मैं तो आप को दूर दूर ढूँढ़ती हूँ पर आप मेरे कहीं निकट ही बैठे हुए प्रतीत हो रहे हैं । अरे निर्दयी ! भला इतना तो आप बता देते कि आप किस कोठे (कमरे) में प्रवेश करके जा बैठे हैं । भाव यह है कि:—मैं तो आपको साकार समझ कर इधर-उधर ढूँढ़ती फिरती हूँ पर आप निराकार बन कर मेरे ही हृदय में विराज रहे हैं ।

**शब्दार्थः**—व्यथा=कष्ट=पीड़ा। कथा=कहानी=गाथा। योगी=सिद्ध=यती=आत्म ज्ञानी=ब्रह्मज्ञानी। वियोगी=वियोग में रमने वाला।

**व्याख्याः**—तेरी व्यथा विना..........वियोगी।

कुब्जा कहती है कि:—हे श्री कृष्ण जी! आपकी व्यथा विना जाने हुए मेरी कहानी अधूरी ही रह जायेगी और पूरी न हो सकेगी अर्थात् जब तक मुझे यह पता न लगेगा कि मेरे प्रेम और आत्मत्याग का आप पर क्या प्रभाव पड़ा है तब तक मेरी यह जीवन लीला समाप्त न होगी। मैं आजन्म आपको रटती रहूँगी और आपके दर्शन की प्रतीक्षा करती रहूँगी। आप चाहे जिसके भी सिद्ध पुरुष बने रहें पर मेरे लिए तो आप क्षण भर के वियोगी ही रहेंगे अर्थात् मैं आपके ब्रह्म रूप को नहीं चाहती बल्कि स्वयं आपको वियोगिनी बन कर आपको अपने वियोगी के रूप में देखना चाहती हूँ।

**शब्दार्थः**—जन=व्यक्ति। अगणित=असंख्य। विजनता=निर्जनता=जन शून्यता=असहाया नारी।

**व्याख्याः**—तेरे जन अगणित........गति मेरी।

कुब्जा कहती है कि:—हे श्री कृष्ण जी! आपको चाहने वाले असंख्य हैं पर मैं तो आपकी एक मात्र असहाया चेरी हूँ। बस इससे अधिक मैं और क्या कहूँ। मेरी इतनी ही बुद्धि है और मेरी यही अन्तर्दशा है अर्थात् मैं अपनी छोटी बुद्धि से अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि आप से प्रेम करने वाले असंख्य व्यक्ति हैं पर मैं तो केवल एक मात्र आप को ही अपना हृदय अर्पण कर चुकी हूँ अतएव आपके वियोग में तड़पने के अतिरिक्त मेरे लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है।

## गीत

### (१)

**संदर्भः**—प्रस्तुत गीत राष्ट्र कवि श्री मैथलीशरण जी गुप्त रचित 'यशोधरा' काव्य के 'यशोधरा' शीर्षक दसवें अध्याय से उद्धृत है। इस काव्य-संदर्भ में कवि

ने प्रकृति वर्णन के माध्यम से यशोधरा के विरह का वर्णन किया है। इसके अन्तर्गत् यशोधरा के विलाप के साथ साथ उसके कर्तव्य और ध्रुव निश्चय की अपूर्व झाँकी प्रस्तुत की गई है। आत्मसम्मान को ठेस लगने पर यशोधरा का नारीत्व जाग्रत हो गया है और वह अपने स्वामी सिद्धार्थ के त्याग को धन्य मान कर उनपर बलि बलि जाती है। संक्षेप में—प्रस्तुत गीत मौलिक आकर्षण, विरहिणी की वेदना, गहरी अनुभूति, भावों के कोमल और सरस व्यापार तथा करुणा और मार्मिकता से ओत प्रोत हैं।

**शब्दार्थः**—वसन्त-से=वसन्त ऋतु के समान=यौवनावस्था के सदृश=सुखमय दिनों के समान। ऊष्मा=ग्रीष्म=तपन=भाप=विरहावस्था=दुखमय घड़ी।

**व्याख्याः**—सखि वसन्त से..................बाधा-व्यथा सही।

राष्ट्र कवि श्री मैथलीशरण जी गुप्त ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए उसके द्वारा उत्पन्न यशोधरा की सद्भावना प्रकट कर रहे हैं। यशोधरा अपनी सखी से कहती है कि—हे सखी! मेरे जीवन-धन ( सिद्धार्थ ) जो बसंत ऋतु के समान सुखदायक थे न जाने कहाँ चले गये और मुझे वे ग्रीष्म ऋतु के समान कष्ट झेलने के लिये यहाँ छोड़ गये। मेरी व्यथा और मेरा कष्ट केवल मुझे ही पीड़ित नहीं कर रहा है प्रत्युत् सभी ने उसको सहन किया है।

( पृष्ठ-५३ )

**शब्दार्थः**—तप=तपस्या=ग्रीष्म। मेरे मोहन का=मेरे कृष्ण अर्थात् गौतम का। उद्धव=निर्गुणोपासना का संदेश वाहक। धूल उड़ाता आया=बगूले ( बवंडर ) उठाता आरहा है। विभूति=भभूत=राख। विभूति रमाने का=सन्यासिनी हो जाने का। योग=अवसर। सूखा कण्ठ=कण्ठ सूखने लगा। पसीना छूटा=पसीने से तर हो गई। मृग-तृष्णा=झूठी आशा और विश्वास=मृगमरीचिका। छाया=छाया-चित्र=सांकेतिक तस्वीर। ताप=गर्मी=दुःख। जठर=वृद्ध=कठिन। मही=पृथ्वी।

**व्याख्याः**—तप मेरे मोहन का..................मेरी बाधा व्यथा सही।

ग्रीष्म ऋतु में दोपहर की कड़ी धूप में उठते हुए बगूलों को देखकर उन्हें गौतम के सन्देश वाहक के रूप में अनुभव करती हुई यशोधरा अपनी सखी से कहती है कि:—हे सखी! यह ग्रीष्म ( ) मेरे मोहन ( गौतम ) की

निर्गुणोपासना का सन्देश भेजने के लिए बगूले ( ववंडर ) उठा रहा है अर्थात् मुझे सन्यासिनी होने का सन्देश दे रहा है पर खेद है कि मुझे भभूत लगाने का ( सन्यासिनी हो जाने का ) अवसर ही नहीं मिला। भाव यह है कि गोद में राहुल सा लाल है फिर उसे छोड़ कर सन्यासिनी या वनवासिनी कैसे हो सकती हूँ। इस प्रकार एक ओर गौतम का सन्देश और दूसरी ओर राहुल के लालन-पालन का भार, यही द्वन्द्व मुझे महान कष्ट दे रहा है। एक ओर ग्रीष्म ऋतु की कठोर गर्मी और दूसरी ओर विरह का ताप इन दोनों के कष्ट से कंठ सूख गया और शरीर पसीने से तर हो गया। उठते हुए बगूलो में गौतम का जो सांकेतिक चित्र दिखलाई पड़ रहा था वह भी मृग मरीचिका के समान आँखों से दूर हो गया। आँखें झुलस गईं, अश्रु सूख गये और चारों ओर अंधकार ही-अंधकार दिखाई पड़ने लगा। एक ओर मैं स्वयं विरह की अग्नि में भस्म हो रहीहूँ, दूसरी ओर गौतम तपस्या के ताप में जल रहे हैं तीसरी ओर यह पृथ्वी भी ग्रीष्म के कठोर ताप से जल रही है। इस प्रकार मेरी व्यथा और मेरा कष्ट केवल मुझे ही पीड़ित नहीं कर रहा है प्रत्युत सभी ने उसको सहन किया है।

**शब्दार्थः**—वाष्प राशि=व्यथित हृदय की आहें=भाप से बना बादल। सूने=सूने हृदय में=हृदय के अपरचित कोने में। स्मृति के बीज=यादगार के बीज। सृष्टि=प्रकृति=नियति=संसार। वृष्टि=वर्षा। दया दृष्टि=दया से पूर्ण आँखे। विश्व वेदना=संसार का कष्ट। चमक=विद्युत् चमक=कष्ट=अनुभूति=दयार्द्र होना। शतधा=सौ टुकड़े=सैकड़ों धाराओं में।

**व्याख्याः**—जागी किसकी वाष्प राशि.........मेरी बाधा व्यथा सही।

वर्षाऋतु के आगमन पर बादलों को देख कर यशोधरा अपनी सखी से कहती है किः—हे सखी! यह किसके जले हृदय की वाष्प राशि ( आह )-है जो पहले हृदय के किसी अनजान कोने में छिपी हुई थी अर्थात् इस समय आकाश में जो बादल दिखलाई पड़ रहे हैं वे पहले यहीं आकाश के कोने में छिपे हुए थे। ये बादल किसी जले हृदय के धुएँ हैं या किसी के हृदय की स्मृतियाँ हैं जिसे नियति हृदय के अन्दर बो रही ( बीज-वपन कर रही ) थी। अर्थात् आज जो फले फूले पेड़ पौधे दिखलाई पड़ रहे हैं वे भूतकाल में सृष्टि की गोद में ही छिपे हुए थे, सृष्टि उन्हें अदृश्य में बो रही थी उसी प्रकार गौतम

की स्मृतियाँ जो यशोधरा के हृदय में छिपी हुई थीं आज बाहर निकल कर बरबस उनकी याद दिला रहीं हैं। इसके बाद बरसते हुए बादलों की मूसलाधार वर्षा को देखकर यशोधरा के मन में यह भाव उठता है कि जिस प्रकार आज पानी की वर्षा हो रही है उसी प्रकार पीड़ित मानवता (संसार के कष्ट) को देख कर गौतम के दयार्द्र नेत्रों से अश्रु धारा प्रवाहित होती थी और वर्षाऋतु में जिस प्रकार आकाश में बिजलियाँ चमक रही हैं उसी प्रकार विश्व के दुःख को देख कर गौतम का हृदय विकल होकर उत्तप्त हो उठता था। वर्षा के जल को सैकड़ों धाराओं में बहते हुए देख कर यशोधरा को ऐसा अनुभव हो रहा है मानो उसके समान किसी विरहिणी के व्यथित हृदय से शत-सहस्र करुण स्रोत उमड़ पड़ा है। इस प्रकार गौतम के वियोग का कष्ट केवल यशोधरा मात्र को ही सहन नहीं करना पड़ा है अपितु सारा संसार उनके वियोग में रुदन कर रहा है।

**शब्दार्थः**—शान्ति-कान्ति=सौम्य मूर्ति की दीप्ति=शान्ति मूर्ति की शोभा या चमक। ज्योत्सना=चाँदनी=प्रकाश। शरदातप=शरद ऋतु का प्रकाश। दल=पत्ता। सलिल=सरोवर=जल। मध्याह्न=दोपहर। मूर्च्छा=आलस।

**व्याख्याः**—उनकी शान्ति-कान्ति········ मेरी बाधा व्यथा सही।

वर्षा ऋतु की समाप्ति और शरद ऋतु के आगमन पर, चारों दिशाओं को स्वच्छ और निर्मल लखकर तथा चारों ओर फैली हुई स्वच्छ चाँदनी को देखकर यशोधरा अपने मन में अनुभव करती हुई अपनी सखी से कहती है किः—हे सखी! क्षण क्षण पर बढ़ने वाली यह चाँदनी ठीक उसी प्रकार प्रतीत हो रही है मानो मेरे प्रियतम गौतम की शांत मूर्ति का स्वच्छ प्रकाश ही चमक कर चारों ओर विकास करता हुआ बिखर रहा हो अर्थात् मेरे स्वामी का कलंक रहित सौन्दर्य ही चन्द्र-प्रकाश के रूप में इस पृथ्वी पर फैल गया है। इतना ही नहीं यह शरद ऋतु का प्रकाश जो सर्वत्र छाया हुआ है मेरे स्वामी के शान्ति समन्वित विकास की सूचना देने वाला है और वृक्षों के हिलते हुए पत्तों पर चन्द्रमा की जो शीतल किरणें पड़ रही हैं उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो ये मेरे स्वामी सिद्धि प्राप्त गौतम के आगमन के लिए स्वागतार्थ ही रंगरेलियाँ मना रही हैं (क्रीड़ा कर रही हैं)। सरोवर का जल स्वच्छ हो गया है और उसमें कमल इस प्रकार खिले हुए हैं मानो सरोवर का हृदय ही विकसित हो गया है और हंसों का समूह

उनके पास कल कल शब्दों में मधुर ध्वनि कर रहा है। भाव यह है कि—सरोवर जो गौतम के महाभिनिष्क्रमण के कारण चेष्टा रहित ( उदास ) हो गया था अब वह गौतम के आगमन के समाचार को पाकर प्रसन्न होकर आनन्द मना रहा है। इस प्रकार गौतम के आगमन के समाचार से चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई है पर यशोधरा के जीवन में आनन्द की घड़ी अभी नहीं आई है। उसके जीवन की दुपहरी पहले के ही समान है और वह उसी कष्ट में जल रही है। इतने पर भी यशोधरा को इस बात से सन्तोष है कि केवल मैं ही गौतम के वियोग में दुखी नहीं हूँ बल्कि संपूर्ण संसार उनके वियोग के कष्ट का अनुभव कर रहा है।

**शब्दार्थः**—हेम-पुञ्ज=सोने का समूह। हेमन्त काल=हेमन्त ऋतु=शीत काल। आतप=गर्मी=प्रकाश=धूप। वारूँ=निछावर कर दूँ। प्रियस्पर्श=प्रिय का आलिंगन। पुलकावलि=रोमांच=प्रसन्नता। विसारूँ=विसरा दूँ=भूल जाऊँ। शिशिर=शिशिर ऋतु।

## ( पृष्ठ—५४ )

बाँह गही=हाथ पकड़ा=शरण में लिया। छाँह=छाया।

**व्याख्याः**—हेम-पुञ्ज हेमन्त काल के·········मेरी बाधा व्यथा सही।

हेमन्त ऋतु के आगमन पर यशोधरा गौतम को स्मरण करके अपनी सखी से कहती है कि:—हे सखी ! हेमन्त ऋतु की सुनहली धूप पर मैं सोने का समूह निछावर कर देना चाहती हूँ। आज रह रह कर अपने प्रिय के स्पर्श ( स्वामी के आलिंगन ) के आनन्द का जो स्मरण हो आरहा है भला मैं उसे अपने हृदय से कैसे भुला सकती हूँ। अब तो शिशिर काल का भी आगमन हो गया है और उसके साथ साथ शीतलता भी आ गई है भला मैं ठंडी साँसें कहाँ तक सहन कर सकती हूँ अर्थात् अब प्रीतम का वियोग मुझसे सहा नहीं जाता है। आज मेरा शरीर और मन दोनों ही कुम्हिला ( मुरझा ) गया है तो क्या इस प्रकार वियोग का कष्ट सहन करते हुए मैं अपना जीवन भी खो बैठूँ ? मेरे स्वामी ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे अपनी शरण में लिया था और मैंने उनकी छाया ( छत्र-छाया ) ग्रहण की थी पर आज मैं उनके बिना निराश्रित और दुखी हो गई हूँ। इस

प्रकार गौतम के वियोग का कष्ट केवल मुझे ही सहन नहीं करना पड़ा है बल्कि संपूर्ण संसार उनके वियोग में दुखी है।

**शब्दार्थः**—धुँधलापन=आकाश के क्षीण प्रकाश से युक्त निराशा का अन्धकार। तप के अग्नि कुण्ड=तपस्या की पंचाग्नि=भस्म=धूरा। कम्प=रोमांच। खट्टे दिन=बुरे दिन=कुसमय=बिगड़े दिन।

**व्याख्याः**—पेड़ों ने पत्ते तक…… ………मेरी बाधा व्यथा सही।

पतझड़ के आगमन पर पेड़ों पर से पत्तों को झड़ते ( भूमि पर गिरते ) हुए देखकर अनुभव करती हुई यशोधरा अपनी सखी से कहती है किः—हे सखी! मेरे स्वामी गौतम के अपूर्व त्याग ( उत्सर्ग ) को ही देख कर उससे प्रभावित होकर वृक्षों ने अपने पत्तों का त्याग कर दिया है और मेरे मन की निराशा और वेदना ही संसार के चारों ओर कुहरा ( कुहासा ) बन कर छा रही है। संध्या समय गृहस्थ लोग अपने घर में अँगीठी जला कर उसके चारों ओर बैठ कर जो तापते हैं ( अपनी सर्दी मिटाते हैं ) वह अन्य कुछ भी नहीं केवल मेरे स्वामी की तपस्या की पंचाग्नि से प्रभावित अग्नि शालायें हैं। इस प्रकार गौतम की तपस्या की पंचाग्नि से प्रभावित होकर अँगीठी जला कर सबने शीत से उत्पन्न अपने शरीर के कंपन को दूर कर लिया है पर स्वामी के वियोग के कष्ट से कंपित मेरे शरीर का कंपन अभी तक दूर नहीं हुआ है अर्थात् मैं अब भी वियोग के कष्ट से दुखी हूँ। शीत काल के कारण पानी भी जम गया पर मेरे खट्टे दिन का दूध ( बुरे दिन का कष्ट ) अभी जमकर दही नहीं बन सका अर्थात् मेरे बुरे दिन अभी दूर नहीं हुए। पर संतोष इसीसे है कि गौतम के वियोग का कष्ट केवल मुझे ही सहन नहीं करना पड़ रहा है बल्कि उनके वियोग में संपूर्ण संसार व्यथित है।

**शब्दार्थः**—श्वास-तन्तु=सांस की गति=प्राण। दिन-मुख=सूर्य। दमके=चमके। भव=संसार। नवरस=नवीन आनन्द=उत्साह=जीवन। सद्भाव=कल्याण कारी भावनाएँ। निर्झर=झरना। श्रम=चेष्टा=प्रयत्न।

**व्याख्याः**—आशा से आकाश…… ……मेरी बाधा व्यथा सही।

जीवन की घोर निराशा में भी आशा का प्रकाश देखती हुई यशोधरा अपनी सखी से कहती है किः—हे सखी! यह आधार रहित आकाश आशा की ही दीवाल पर टिका हुआ है अतएव स्वामी के आगमन की आशा को त्याग कर

मैं अपना प्राण विसर्जन क्यों करूँ। रात्रि के पश्चात् दिन का आगमन होता है, अंधकार के बाद सूर्य का प्रकाश फैलता है और दुख के बाद सुख का आगमन होता है अतएव मुझे पूर्ण आशा और विश्वास है कि प्रिय-वियोग में जो मेरा हृदय अंधकार मय हो गया है उसमें उनके आगमन और दर्शन के प्रकाश की किरणें अवश्य फूटेंगी, मेरा जीवन भी प्रकाश मय हो जायगा। अपने विश्वास के ही कारण आकाश को सुखद फल प्राप्त हुआ है फल स्वरूप सूर्य का उदय, वृक्षों में नये नये पत्तोंका पल्लवन, और सारे संसार में आनन्द का प्रसार हुआ है इसी प्रकार गौतम का यश और उनकी कीर्ति संसार में फैलेगी। इतना ही नहीं उनकी सद्भावना सुगंधि के समान पुष्प पुष्प में फूट निकलेगी और उनके दर्शन तथा खोज में नये सोते फूट कर बह चलेंगे। भाव यह है कि पुष्पों की सुगन्धि के समान गौतम का यश चारों ओर फैलेगा और झरनों के कल कल निनाद के समान लोग उनका यश गान करेंगे अतएव यशोधरा यही विनय करती है कि संपूर्ण विश्व उनकी तपस्या का फल भोगे क्योंकि केवल यशोधरा ने ही नहीं अपितु सारे संसार ने उनके वियोग के कष्ट को सहन किया है।

( २ )

**संदर्भः**—प्रस्तुत गीत राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण जी गुप्त रचित 'साकेत' महा काव्य के नवम सर्ग से उद्धृत है। इसमें विरहिणी उर्मिला की अपने पति लक्ष्मण जी के दर्शन की इच्छा का भाव व्यक्त किया गया है।

**शब्दार्थः**—प्रियतम=स्वामी। इच्छा=अभिलाषा=कामना। रज=धूलि=विभूति। रज रमाऊँ=विभूति धारण कर लूँ। अवधि=समय की सीमा=१४ वर्ष के वनवास की अवधि से तात्पर्य है। अपने को आप मिटाकर=आत्म त्याग करके।

**व्याख्याः**—अब जो प्रियतम..........उनको लाऊँ।

अपने पति लक्ष्मण जी के दर्शन की उत्कट अभिलाषा प्रकट करती हुई विरहिणी उर्मिला कहती है कि:—अब यदि मैं अपने स्वामी को पाजाती तो मेरी अभिलाषा है कि उनके चरणों की धूलि को भभूत के समान धारण करके मैं उनके प्रेम में योगिनी बनजाती। यदि मुझमें समयकी अवधि बन सकने की

शक्ति होती तो मैं ऐसा करने में रंच मात्र भी विलंब नहीं करती अर्थात् १४ वर्ष बनवास की अवधि बनकर उनके बनवास काल को समाप्त कर देती और इस प्रकार विरह की वेला स्वयमेव समाप्त हो जाती। इतना ही नहीं मैं अपने इस नश्वर शरीर को नष्ट करके उनके पास जाकर उन्हें अयोध्या बुला लाती।

**विशेषटिप्पणी:**—गीत की उक्त पंक्तियों में कवि ने प्रिय-दर्शन के औत्सुक्य को बड़े ही अनुपम ढंग से व्यंजित किया है।

**शब्दार्थ:**—ऊषा=ऊषा काल = कांति, प्रफुल्लता और जागृति की अवस्था। संध्या = सायंकाल = अवसान का समय=यौवन का ढलान। श्रान्त पवन=मन्दवायु शिथिल हवा। सुरभि=सुगन्धि=कीर्ति। समाऊँ=लीन हो जाऊँ।

**व्याख्या:**—ऊषा सी..............समान समाऊँ।

उर्मिला कहती है कि:—इस संसार में मैंने ऊषा वेला के सदृश कांति, प्रफुल्लता और जागृति लेकर पदार्पण किया था तो क्या मैं सायंकाल के समान उदासी और खिन्नता का भाव लेकर यहाँ से प्रस्थान करूँ ? अर्थात नहीं। ऐसा करना मेरे लिए उचित न होगा। अतएव मेरी अभिलाषा है कि मेरे स्वामी मन्द वायु के समान यहाँ पधारें और वायु में सुगन्ध के समान मैं उनमें लीन हो जाऊँ।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पंक्तियों में कवि ने उर्मिला के हृदयांकित भावों को बड़े ही सरल ढंग से व्यक्त कर दिया है साथ ही ऊषा और संध्या शब्दों से शारीरिक अवस्था के उत्थान और पतन का भी आभास करा दिया है। इतना ही नहीं पति पत्नी के संबंध की समता वायु और सुगन्ध से करके इसमें चार चाँद लगा दिये हैं।

## ( पृष्ठ—५५ )

**शब्दार्थ:**—रोदन=रोना=शब्दों द्वारा हार्दिक दुःख को व्यक्त करना। मचल रहा है= हठ कर रहा है=अभिव्यक्ति के लिए तड़प रहा है। गान=गाना= शब्दों द्वारा हार्दिक आनन्द को व्यक्त करना।

**व्याख्या:**—मेरा रोदन········तो मैं आऊँ !

उर्मिला कहती है कि:—मैं रोना चाहती हूँ पर रुदन हठ कर रहा है गाने के लिए। उधर गान कहता है कि पहले रुदन आवे तब मैं आऊँ। भाव यह है कि उर्मिला के हृदय से दुःख शब्दों द्वारा व्यक्त होना चाहता है पर उधर शब्द कहते हैं कि जब तक दुःख पूर्णतया प्रकट नहीं होगा हम नहीं निकलेंगे। तात्पर्य यह है कि हृदय के द्रवीभूत होने पर ही सच्ची कविता फूटती है अथवा सच्चे भाव निकलते हैं।

**विशेषटिप्पणी:**—(१) उक्त पंक्तियों में अभिव्यंजना का वैचित्र्य स्पष्ट झलकता है।

(२) 'मचल रहा है' लाक्षणिक प्रयोग है।

(३) 'रोदन' और 'गान' का मानवीकरण हुआ है।

(४) शिशुओं की सामान्य तर्क पद्धति के आधार पर कवि ने उर्मिला के 'रोदन' और 'गान' को दो सफल हठी शिशु के रूप में व्यक्त किया है।

**शब्दार्थ:**—अनल=अग्नि=वियोगाग्नि से तात्पर्य है। जल=पानी=आँखों के पानी अथवा आँसू से तात्पर्य है। वाष्प=भाप=उच्छ्वास=उसाँस। घट=शरीर रूपी बर्तन।

**व्याख्या:**—इधर अनल है·········हाहा खाऊँ ?

उर्मिला कहती है कि:—मेरे हृदय में विरह की अग्नि जल रही है और आँखों में जल के रूप में आँसू विराजमान है। इस प्रकार दुःख की उसाँस या भाप के लिए उपयुक्त उपकरण प्रस्तुत हैं पर भय है कि उच्छ्वास रूपी तीव्र भाप के उठने से कहीं यह मेरा शरीर रूपी बर्तन ही न फूट जाये। अतएव मैं किस प्रकार अपने हृदय के हाहाकार को व्यक्त करूँ। भाव यह है कि प्रिय के वियोग में जो हार्दिक कष्ट हो रहा है उसे पूर्ण रूप से मैं व्यक्त भी नहीं कर पारही हैं।

( ३ )

**संदर्भ:**— प्रस्तुत गीत राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण जी गुप्त रचित 'साकेत' महाकाव्य के नवम सर्ग से उद्धृत है। इसमें मानव स्वभाव वश कभी क्षणिक

भोग की लालसा उत्पन्न होने पर उर्मिला तुरत दूसरे ही क्षण सँभल कर मनसिज ( कामदेव ) को अपने आत्म-विश्वास के बल पर चुनौती देती हुई प्रतीत होती है

**शब्दार्थ:**—फूल=पुष्प=कामदेव। अबला=नारी=स्त्री=पराशक्ति। वाला=बारह वर्ष से सोलह वर्ष तक की स्त्री=पुत्री=कन्या। वियोगिनी=विरहिणी। दया-विचारो=दया लाओ। मधु=मधुर वसन्त। मीत=मित्र। मदन=कामदेव। पटु=निपुण=प्रवीण=धूर्त। कटु=कठोर=कड़वा। गरल=विष। न गारो=न छोड़ो=न डालो। विकलता=व्याकुलता। विफलता=असफलता। ठहरो=रुको। श्रम=परिश्रम=मेहनत। परिहारो=त्याग करो=मोचो। भोगिनी=रखैल=सांसारिक सुख चाहने वाली=भोग की इच्छा रखने वाली। जाल पसारो=जाल फैलारहे हो। सिन्दूर विन्दु=माथे के सिन्दूर की विन्दु। हर नेत्र=शिव का तीसरा नेत्र। निहारो=देखो। रूप=सौन्दर्य। दर्प=अभिमान=रोष। कन्दर्प=कामदेव=मनोज=मन्मथ। वारो=निछावर करदो। रति=कामदेव की स्त्री।

**व्याख्या:**—मुझे फूल मत ········सिरपर धारो।

वसन्त ऋतु अपने पुष्पों द्वारा अनुरंजित करना चाहता है पर उर्मिला पर उसका रंच मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता है। यदि मानव-स्वभाव वश कभी क्षणिक भोग की लालसा उसके मन में उत्पन्न होती है तो वह दूसरे ही क्षण मनसिज ( कामदेव ) को चुनौती देती है। उर्मिला कहती है कि:—हे कामदेव! तुम मुझ पर अपने पुष्प बाण का प्रहार मत करो। मैं पराशक्ति विरहिणी बाला हूँ अतएव मेरी इस अवस्था पर अपने मन में कुछ तो दया करो। हे मदन ( कामदेव )! तुम तो मधुर वसन्त ऋतु के मित्र और बड़े ही प्रवीण हो अतएव मुझ पर कड़ुवी विष न डालो अर्थात् मुझ पर निर्दयता न दिखाओ। तुम्हारे इस कार्य-व्यापार से मुझे व्याकुलता होगी और तुम्हें असफलता होगी अतएव तुम रुको और व्यर्थ का जो श्रम कर रहे हो उसे त्याग दो अर्थात् अपना यह कार्य व्यापार बन्द करदो। मैं कोई विषय की कामना या सांसारिक सुख की अभिलाषा रखने वाली नारी नहीं हूँ जो तुम काम वासना का जाल यहाँ फैला रहे हो अर्थात् जो संयोग की दशा में हैं उन्हीं के लिए तुम्हें अपना जाल फैलाना चाहिये मैं तो इस समय वियोगिनी ठहरी। यदि तुम्हें अपने बल का घमण्ड हो तो मेरे मस्तक के इस सिन्दूर-विन्दु को देख लो। इसे

शिव का तीसरा नेत्र ही समझना। अर्थात् जिस प्रकार तुम शिवजी के तीसरे नेत्र से भस्म हो गये थे उसी प्रकार यह मेरा सिन्दूर बिन्दु भी भस्म कर देगा। हे काम देव ! यदि तुम्हें अपने रूप ( सौन्दर्य ) का घमंड हो तो तुम उसे हमारे पति ( लक्ष्मण जी ) पर निछावर कर दो । अर्थात् तुम्हारे सौन्दर्य का घमंड भी व्यर्थ है क्योंकि मेरा पति तुम से कहीं अधिक सुन्दर है। यदि तुम्हें अपनी पत्नी रति के प्रेम का गर्व है तो मेरे इस पैर की धूलि को लेजाकर उसके सिर पर डाल दो। अर्थात् तुम्हारी पत्नी रति का प्रेम मेरे पैर की धूलि के भी बराबर नहीं है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'मधु' और 'रति' का श्लिष्ट प्रयोग हुआ है।

( ४ )

**संदर्भ:**—प्रस्तुत गीत राष्ट्र कवि श्री मैथली शरण जी गुप्त रचित 'साकेत' महाकाव्य के नवम सर्ग से उद्धृत है। उर्मिला की सखी सायंकाल को जब दीपक जलाती है तो उस पर पतिंगे टूट पड़ते हैं और जल जल कर मरने लगते हैं। पतिंगो के प्रेम-बलिदान का उर्मिला के हृदय पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ता है। उसकी उसी मनोदशा का चित्रण कवि ने इस गीत में किया है।

**शब्दार्थ:**—दोनों ओर=दोनों पक्ष से=प्रेमी और प्रेमिका दोनों की ओर से। प्रेम पलता है=प्रेम का पालन या निर्वाह होता है। पतंग=पतिंगा=फतिंगा= एक प्रकार का उड़ने वाला कीड़ा। दीपक=दीया=चिराग़।

**व्याख्या:**—दोनों ओर.......... दीपक भी जलता है।

दीपक पर पतिंगे को जलते हुए देख कर उर्मिला अपनी सखी से कहती है कि:—हे सखी ! पतंग और दीपक ( प्रेमी और प्रेमिका ) दोनों ही पक्षों से प्रेम का निर्वाह होता है। प्रेम में पतंग और दीपक दोनों को ही जलना पड़ता है अर्थात् प्रेम का कष्ट प्रेमी और प्रेमिका दोनों को ही सहन करना पड़ता है।

**शब्दार्थ:**—सीस=सर=यहाँ दीपक की लौ से तात्पर्य है। 'बन्धु'=यहाँ पतंग से तात्पर्य है। दहता=जलता। विह्वलता=व्याकुलता=व्यग्रता।

**व्याख्याः**—सीस हिलाकर············प्रेम पलता है।

प्रेम की विह्वलता की चर्चा करती हुई उर्मिला अपनी सखी से कहती है कि:—हे सखी! दीपक अपनी लौ को हिलाकर पतंग से कहता है कि हे भाई! तू व्यर्थ ही क्यों जलता है पर फिर भी पतंग जले बिना नहीं रहता। वास्तव में प्रेम में कितनी व्याकुलता (व्यग्रता) भरी हुई है। दोनों पक्ष से ही प्रेम का पालन होता है।

**शब्दार्थः**—प्रणय=प्रेम=प्रीति=घनिष्टता=श्रद्धा।

**व्याख्याः**—बच्च कर हाय!········प्रेम पलता है।

यदि पतंग स्वयमेव दीपक पर निछावर न हो जाये और प्रेम का त्याग करके प्राण धारण करे (जीवित रहे) तो उसका इस प्रकार बचना (जीवित रहना) उसके लिए मरण तुल्य होगा और यह उसकी सबसे बड़ी असफलता (हार) होगी। वास्तव में उसकी सफलता तो दीपक पर बलिदान होकर प्रेम का पालन करने में ही है। ठीक ही है दोनों ही पक्ष से प्रेम का पालन होता है।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पंक्तियों में 'बच कर मरे' तथा 'जले नहीं तो मरा करे' में विरोधाभास का चमत्कार है।

**शब्दार्थः**—मन मारे=उन्मन होकर=व्यग्र होकर=उदास होकर। महान=बड़ा। लघु=तुच्छ=छोटा। शरण किसे छलता है=शरण किसी को वंचित नहीं करता=शरण आये हुए को लौटाता नहीं।

**व्याख्याः**—कहता है पतंग········ ············प्रेम पलता है।

व्यग्र होकर पतंग दीपक से कहता है कि:—हे प्यारे! तुम बड़े हो और मैं छोटा हूँ पर क्या मरण भी मेरे हाथ नहीं है अर्थात् क्या मैं अपनी इच्छानुसार अपना प्राण विसर्जन भी नहीं कर सकता। भाव यह है कि प्रेम का अधिकारी न होने पर भी मैं तो प्रेम कर चुका अब इसे अंगीकार करना या न करना तुम्हारी इच्छा पर है पर मर कर भी इसे निभा देना मेरे हाथ में है और मृत्यु की शरण में जाने पर मुझे किसी प्रकार का भी धोखा नहीं होगा अर्थात् प्रेम के लिए अपने आत्म-समर्पण और बलिदान पर मुझे पूर्ण विश्वास है और जो कुछ भी मैं कर रहा हूँ या करने जा रहा हूँ वह खूब सोच समझ कर और उसके

परिणाम से परिचित होकर ही कर रहा हूँ इसका सारा दायित्व मुझ पर ही है। प्रेम का पालन दोनोंपक्ष से होता है।

( पृष्ठ-५६ )

**शब्दार्थ:**—आली=सखी। लाली=लालिमा=शान। पतंग-भाग्य-लिपि= पतंग के भाग्य की लिखावट=पतंग की भाग्य रेखा। वश=जोर=शक्ति=अधिकार।

**व्याख्या:**—दीपक के जलने में.........प्रेम पलता है।

उर्मिला कहती है कि—हे सखी! दीपक के जलने में भी क्या शान है! अर्थात् दीपक किस दिव्य आभा (सुन्दर चमक) से जलता है पर पतंग का भाग्य दीपक की भाँति उज्ज्वल नहीं काला है अर्थात् दीपक की लौ में जलकर पतंग राख हो जाता है। यह तो अपने अपने भाग्य की बात है उसमें किसी का कुछ भी वश नहीं है। भाव यह है कि दीपक के जलने में भी जीवन की लालिमा है क्योंकि प्रेम का पालन पतंग और दीपक दोनों ही करते हैं।

**शब्दार्थ:**—जगती=दुनियां=संसार। वणिग्वृत्ति = बनियपन=लेनदेन का व्यवहार। चखती=खाती=लाभ उठाती=कुछ पाती। परिणाम=नतीजा=फल। निरखती = जाँचती=देखती। खलता है=कष्ट देता है = खटकता है।

**व्याख्या:**—जगती वणिग्वृत्ति........प्रेम पलता है।

उर्मिला अपनी सखी से कहती है कि:—हे सखी। यह दुनियाँ बनियपन का भाव रखती है और जिससे कुछ लाभ होता है उसे ही लोग चाहते हैं। भाव यह है कि संसार लेन-देन के व्यवहार को जानता है वह प्रेम की महत्ता को नहीं पहचानता। संसार में कार्य की नहीं परिणाम या फल की पूछ है। कोई कार्य चाहे कितना ही उत्तम क्यों न हो, पर यदि उससे स्वार्थ सिद्धि न होती हो तो उसकी कोई भी सराहना नहीं करेगा और यदि साधारण से भी साधारण कार्य से स्वार्थ सिद्धि होती हो तो लोग उसकी प्रशंसा का पुल बांध देंगे। दीपक और पतिंगे के प्रसंग में भी यही बात है। दीपक से अंधकार दूर होता है, इससे संसार उसी का गुण गान करता है। बस संसार की यह स्वार्थपरता और स्वार्थ सिद्धि वाली नीति मुझे कष्ट देती है क्योंकि वास्तविक बात यह है कि दोनों ही पक्ष से प्रेम का पालन होता है।

( ५ )

**संदर्भः**—प्रस्तुत गीत राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त रचित 'कुणाल-गीत' से उद्धृत है। अपने नेत्रों के नष्ट हो जाने पर कुणाल बाह्य दर्शन से वंचित अवश्य हो गया था पर उसकी अन्तर्दृष्टि और भी तीक्ष्ण हो गई थी, वह आत्मा में ही परमात्मा के दर्शन की अनुभूति करने लगा। उसी की एक उज्ज्वल झांकी कवि ने यहाँ प्रस्तुत की है।

**शब्दार्थः**—अद्भुत=अनुपम=अलौकिक=अपूर्व। संगिनि=जीवन संगिनी=कांचना से तात्पर्य है। अधिराज=राजाओं के राजा=सम्राट=ईश्वर=स्वामी।

**व्याख्याः**—देखता हूँ·········मेरे अधिराज।

अपनी विमाता तिष्यरक्षिता के षड्यन्त्र से जब कुणालकी आंखें फुड़वाली गईं और वह प्रकृति के बाह्य दर्शन से वंचित हो गया तथा राज्य से उसका निष्कासन ( निर्वासन ) हो गया तो अपनी पत्नी कांचना के साथ जाता हुआ कुणाल अपनी अंतर्दृष्टि से परमात्मा की सत्ता का आभास पाते हुए कहता है कि-हे जीवन-संगिनी कांचना ! आज मुझे अनुपम दृश्य दिखाई देरहा हैं और मेरे प्रभु मुझसे दूर नहीं हैं।

**शब्दार्थः**—हेम हर्म्य=सोने का महल। अनुचर=सेवक। शिल्प-कौशल=दस्तकारी=कारीगरी। राजोचित=राजाओं के लिए उपयुक्त।

**व्याख्याः**—हेम हर्म्य में·······अद्भुत आज।

राजसी ठाट बाट के प्रति घृणा का भाव प्रदर्शित करते हुए कुणाल कहता है कि—सोने के महल में बैठकर क्या हम अपने प्रभु ( ईश्वर ) को बुलाते थे ? अर्थात् नहीं क्योंकि वहाँ तो हम को ही ईश्वर तुल्य समझ कर सेवक लोग चँवर डुला कर हमारी सेवा करते थे। वहाँ राज महल में सुन्दर दस्तकारी तथा कारीगरी में हम अपने मन को माया के भ्रम में भूल बैठे थे और ईश्वर के बदले हमें राजसी ठाट बाट, भोग विलास ही प्राप्त होता था पर आज नेत्र रहित, राज्य से दूर होने पर मुझे प्रभु का अनुपम दृश्य दिखाई पड़ रहा है। भाव यह है कि—

संसार के राजसी ठाट बाट और भोग विलास ईश्वर भक्ति के मार्ग में बाधक हैं तथा नेत्र द्वारा मनुष्य सांसारिक सौन्दर्य में उलझ कर प्रभु से दूर रह जाता है।

**शब्दार्थः**—आराधन=पूजन। किंवा=अथवा=और। शत-तरंग=सैकड़ों लहरों से। मानस=हृदय। अन्यमनस्क=उदास। विचरते थे=घूमते थे। पतियाते थे=विश्वास करते थे। जलचर = जलके जीव।

**व्याख्याः**—निर्मल जलके तीर·········अद्‌भुत आज।

कुणाल कहता है कि—स्वच्छ जल के तालाब आदि के निकट हम उन्हीं की आराधना करते थे और जल से उठती हुई सैकड़ों लहरों के दृश्य से अपने मन को परिपूर्ण कर लेते थे। इस प्रकार हमें उदासीन देखकर हमारे प्रभु भी हमसे दूर ही रहते थे और जल के जीव भी हमारे ऊपर विश्वास नहीं करते थे। इस प्रकार हमें अपने पूर्व कार्य पर लज्जा उत्पन्न होती है कि हम अब तक ईश्वर भक्ति से विमुख होकर उसके दर्शन से दूर क्यों पड़े रहे। वास्तव में अब नेत्रों की शक्ति नष्ट हो जाने से मुझे अपूर्व दृश्य दिखाई पड़ रहा है।

( पृष्ठ—५७ )

**शब्दार्थः**—कुंजों में=वृक्षों के झुरमुट में। वाट=राह। कुसुम-वैभव=पुष्प का सौन्दर्य। मोहते=मुग्ध होते। अन्धभाव=आँख मूँद कर। टोहते=ढूँढ़ते। मां की कृपा=तिष्यरक्षिता की कृपा=कुणाल के नेत्र फुड़वा लेने से तात्पर्य है। कुणाल=अशोक का पुत्र। फूले=प्रसन्न रहे=सुखी रहे। स्वजन-समाज=अपने कुटुम्ब के लोग।

**व्याख्या**—कुंजों में ही·········अद्‌भुत आज।

कुणाल कहता है कि—जब हम वृक्षों के झुरमुट में अपने प्रभु की राह देखते रहते थे पर उनको भूलकर पुष्पों के सौन्दर्य और सुगंधि पर मुग्ध होकर उनसे दूर हो जाते थे तब हम अन्ध भक्त होकर ( आंख मूँदकर ) एक टक उनकी प्रतीक्षा नहीं कर पाते थे पर आज हम अपनी मां की कृपा को नहीं भूल सकते क्योंकि उसने हमारी आँखें फुड़वाकर हमें ईश्वर दर्शन का अवसर प्रदान किया है।

अतएव हम उसके आभारी हैं और हमारी कामना है कि हमारे कुटुम्ब के लोग सुखी रहें। आज हमें ईश्वर-दर्शन का अनुपम दृश्य दिखाई देरहा है।

( ६ )

**संदर्भः**—प्रस्तुत गीत राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त के 'कुणाल-गीत' से उद्धृत है। इसमें निर्वासन के समय राज्य से विदा होते समय कुणाल के मन में उठे भाव को कवि ने कौशल के साथ चित्रित कर दिखाया है।

**शब्दार्थ**—अवनि=पृथ्वी। अम्बर=आकाश। राम राम=विदा या प्रस्थान होते समय का नमस्कार।

**व्याख्याः**—हे अवनि·························सबसे राम राम।

कुणाल राज्य से प्रस्थान होते समय कहता है कि हे पृथ्वी! और आकाश! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ और सब से विदा हो रहा हूँ अतएव मेरा राम राम स्वीकार करो।

**शब्दार्थः**—रवि-शशि-ग्रह-तारक-समाज=सूर्य-चन्द्र-ग्रह तथा तारों का समूह। वर्ण वर्ण के=भाँतिभाँति के=रंग रंग के। साज-बाज=ठाट बाट। हरा-भरा=सुखी=प्रफुल्लित। धरा=पृथ्वी। धाम=स्थान।

**व्याख्याः**—हे रवि-शशि·····························सबसे राम राम।

कुणाल कहता है कि:—हे सूर्य, चन्द्र, ग्रह और तारों के समूह तथा भाँति भाँति के ठाट बाट आज मैं सबसे विदा हो रहा हूँ अतएव यह पृथ्वी और स्थान सब सुखी रहें तथा मैं सबको राम राम कर रहा हूँ।

**शब्दार्थः**—हृद=सरोवर। नद=बड़ी नदी। निर्भर=सोता। वेत्र=वेत्स=बेंत। वन उपवन=बाग बगीचा। रिक्त=खाली। मरे नेत्र=क्षीण आँखें। चिर=सदा। सरस-श्याम=रसीले तथा साँवले=हरे भरे।

**व्याख्याः**—हे हृद-नद·····················सबसे राम राम।

कुणाल कहता है कि:—हे सरोवर, नदी, सोता, वेत्स, वन, उपवन, तथा हरे स्थान तुम सदैव हरे भरे और लहराते रहो। मेरे क्षीण नेत्र भले ही रिक्त बने रहें पर तुम सदैव पूर्ण रहो। मैं सबको प्रस्थान समय का राम राम कर रहा हूँ।

शब्दार्थः—सान्ध्य=संध्या काल। वृष्टि-घन=वर्षा के बादल। मधुर=सुन्दर। मन्द्र=कर्मठ=चपल। शरन्निशा=शरद काल की रात्रि। मधु=शहद=अमृत=चैत्र मास। प्रभात-अम्बुज=प्रातः कालीन कमल। अतन्द्र=आलस्य हीन=चंचल।

व्याख्याः—हे सान्ध्य वृष्टि-घन..................राम राम।

कुणाल कहता है किः—हे संध्या काल के वर्षाकालीन सुन्दर और चंचल बादल! हे स्वच्छ शरद कालीन रात्रि के कुमुद ( कोइन ) और चाँद! हे चैत्र मास के चपल प्रभात कालीन कमल! मैं आज किस किस का नाम गिनाऊँ। अतएव मैं सबसे विदा लेता हुआ राम राम कर रहा हूँ।

( पृष्ठ-५८ )

शब्दार्थः—विराज=प्रस्तुत=विराज मान। रम रहा=विराज रहा। अष्ट याम=रात दिन=आठों पहर।

व्याख्याः—बाहर से कुछ...........सबसे राम राम।

कुणाल कहता है किः—मैं आज नेत्र रहित हो गया हूँ अतएव मुझे बाहरी प्रकृति का कोई भी दृश्य नहीं दिखाई पड़ रहा है पर मेरे हृदय के अन्दर स[illegible] का रूप उसी प्रकार विराजमान है जिस प्रकार व्यक्ति के अन्दर समाज की रू[illegible] रेखा व्याप्त रहती है अतएव मेरे हृदय के अन्दर प्रकृति के दृश्यों का रूप आठ[illegible] पहर ( रात दिन ) जागृत बना है अर्थात् हृदय से इन दृश्यों का भाव कभी भी दूर न हो। इस प्रकार सबसे विदा होता हुआ मैं [illegible] को राम राम कर रहा हूँ।

शब्दार्थ—अवलोक=देखकर=अवलोकन करके। लोक=संसार=जगत=विश्व सौन्दर्य=सुन्दरता। सृष्टि=निर्माण=रचना। कृतार्थ—धन्य=सफल। कुणाल-दृष्टि=कुणाल के नेत्र। संसृति=संसार=सृष्टि। अमृत वृष्टि—अमृत की वर्षा ग्राम=लोकालय=जन समूह का वासस्थान=गाँव।

व्याख्याः—अवलोक लोक.........सबसे राम राम।

कुणाल कहता है किः—विश्व के सौन्दर्य निर्माण को देख देख कर मेरी दृ[illegible] सफल हो चुकी है अतएव इस संपूर्ण विश्व पर अब अमृत की वर्षा होती र[illegible] तथा घर घर में तीन ग्राम ( आकाश पाताल, मृत्युलोक ) की गूँज होती र[illegible]

अर्थात् संपूर्ण विश्व सुख और शान्ति का लाभ प्राप्त करे और मैं सबका त्यागन करके सबसे विदा हो रहा हूँ अतएव सबको मेरा राम राम है।

**शब्दार्थः**—मणिरत्न=हीरे जवाहरात आदि। यत्न=प्रयत्न=उपाय। दक्षिण=दाहिना। वाम=बायां। सपत्न=प्रति द्वन्द्वी=शत्रु=विरोधी। विधि=ब्रह्मा।

**व्याख्याः**—छोड़े मैंने·······सबसे राम राम।

कुणाल कहता है कि:—मैंने आज हीरा जवाहरात आदि मणि रत्नों का त्याग कर दिया है अतएव सारे साधन स्वयं ही समाप्त हो गये हैं। आज मेरा कोई भी शत्रु या विरोधी नहीं हैं। मुझे किसी से भी वैमनस्य या शत्रुता या घृणा नहीं है। मेरे लिए शत्रु मित्र सब समान हैं, आज मैं अपने कर्तव्य मार्ग पर आरूढ़ हूँ फिर ब्रह्मा मुझसे विपरीत ही क्यों न रहे मुझे इसकी रंच मात्र भी चिन्ता नहीं है। मैं सबसे विदा लेता हुआ सबको राम राम कर रहा हूँ।

**शब्दार्थः**—दीखे=दिखलाई पड़े। द्विज !=ब्राह्मण=दांत=पक्षी=चन्द्रमा। ध्वनि तरंग=शब्द की लहरें। दर्शन=एक शास्त्र जो जगत, जीव और ब्रह्म का यथार्थ तत्व निरूपण करता है। निष्काम=काम रहित। श्रुति=वेद=वार्ता=कान=विद्वता। प्रसंग=चर्चा। पूर्ण काम=संपूर्ण रूप।

**व्याख्याः**—दीखे न भले ही·········राम राम।

कुणाल कहता है कि:—नेत्र हीन होने के कारण आज मुझे ईश्वर की सत्ता का रूप रंग भले ही दिखलाई न पड़े पर मुख से उसका शब्दोच्चारण तो होता ही रहेगा। वेदो में ही जगत जीव, और ब्रह्म के यथार्थ तत्व निरूपण की चर्चा है अतएव ब्राह्मणों द्वारा वेद ध्वनि बराबर होती रहे पर ईश्वर तो काम रहित भावना में ही अपनी पूर्णता का अनुभव करता है अतएव मैं भी निःस्वार्थ और निष्काम भावना से आज सबका त्याग करके सबसे बिदा लेता हुआ सबको राम राम कर रहा हूँ।

**शब्दार्थः**—निर्मुक्त=बन्धन रहित=पूर्ण मुक्त। सीप=सुतुहा=एक जलजन्तु=यहाँ नेत्र से तात्पर्य है। अर्थ=हेतु=लिए। दीप=दीपक। झुलसें=न जलें। शलभ=पतिंगा। निशि=रात्रि। विराम=विश्राम=शान्ति।

**व्याख्या:**—निर्मुक्त हुई यह·········राम राम।

कुणाल अपने नेत्रों को लक्ष्य करके कहता है कि:—आज ये सीप ( मेरे ) नेत्र ) बन्धन मुक्त होगये। हे दीपक ! अब तुम्हें हमारे हेतु नहीं जलना पड़ेगा और तुम्हारे निकट आकर पतिंगों को झुलसना भी न पड़ेगा। अब मेरी रात्रि में सबको विश्राम और शान्ति मिलेगी अर्थात् नेत्र हीन होने से अब किसी प्रेमी की जलन और तड़पन मुझे न देखनी पड़ेगी अतएव मैं सबसे विदा लेता हुआ सबको राम राम कर रहा हूँ।

## प्रश्नोत्तर

**प्रश्न**( १ ) 'राम की वन यात्रा' में गुप्त जी राम की महत्ता, परिस्थिति का नया रूप और भाषा की प्रभावुकता का विधान करने में कैसी सफलता पा सके हैं ?

( बी० ए० परीक्षा १९४५ का० वि० वि० )

**उत्तर:**—'साकेत' महाकाव्य है। उसके रचयिता राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण जी ने उसमें जीवन को समग्र रूप में ग्रहण किया है तथा भारतीय संस्कृति के अनुपम आदर्श का पूर्ण निर्वाह किया है। यही कारण है कि साकेत के चरित्र नायक राम को आर्य-संस्कृति के महान प्रतिष्ठापक के रूप में तथा उनकी पत्नी सीता को भारत लक्ष्मी अथवा आर्य संस्कृति के रूप में दिखाया गया है। राम की विजय को कवि ने आर्य संस्कृति की विजय की संज्ञा प्रदान की है। 'राम की वन यात्रा' में भी कवि ने अपनी इसी नीति का पालन किया है और राम की महत्ता, परिस्थिति का नया रूप और भाषा की प्रभावुकता का विधान करने में उसने अपूर्व काव्य-कौशल का परिचय दिया है जिस पर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है—

'साकेत' के राम अपने माता पिता के सच्चे सेवक और पिता की आज्ञा पालन करने वाले पुत्र हैं जब पिता ने वनवास की आज्ञा प्रदान करदी तो उन्हें अयोध्या त्याग कर वनवास जाना ही अभीष्ट हुआ। वे सीता और लक्ष्मण को साथ लेकर वन को चल पड़ते हैं। गुरु वशिष्ठ के पास पहुँच कर उनका आशीर्वाद

प्राप्त करते हैं और जब वशिष्ठ जी उनकी दशा देखकर कहते हैं कि—'सुत तुम वल्कल पहन, शिष्य से सुत हुए' तो श्री रामचन्द्र जी झट कह उठते हैं—'क्योंकि पिता के लिए प्रतीत अरिष्ट है।' इतना ही नहीं और भी—'माँ मुझको फिर देख सकें जैसे, सही, पिता पुत्र की प्रथम याचना है यही।' श्री रामचन्द्र जी की कर्तव्य परायणता पर विश्वास करके वशिष्ठ जी उन्हें आदेश देते हुए कहते हैं कि—

मुनि-रक्षक-समकरो विपिन में वास तुम, मेटो तप के विघ्न और सब त्रास तुम।
हरो भूमिका भार भाग्य से लभ्य तुम। करो आर्य-सम वन्य चरों को सभ्य तुम॥

इस आदेश को शिरोधार्य करके श्री रामचन्द्र जी आगे बढ़ते हैं पर उन्हें एक दूसरे आसन्न संकट का सामना करना पड़ता है। अयोध्या की जनता कभी भी नहीं चाहती कि राम उसे त्याग कर वन को जायँ। फिर राम केवल दशरथ और कैकेयी ही के तो नहीं थे उन पर जनता का भी पूर्ण अधिकार था फिर वे जनमत की उपेक्षा क्यों करें? अतएव जनता ने एक स्वर से कहना प्रारंभ कर दिया—'जहाँ हमारे राम वहीं हम जायँगे, वनमें ही नव नगर निवास बनायेंगे।' जनता के रुदन और कष्ट को देखकर बरबस राम को कह ही देना पड़ा—
'रोकर ही क्या विदा करोगे सब हमें?

आना होगा नहीं यहाँ क्या अब हमें?
लौटो तुम सब, यथा समय हम, आयेंगे, भाव तुम्हारे साथ हमारे जायँगे।

पर जनता अपने हठ पर अड़ी रही और उसने कहना प्रारंभ किया:—

राजा हमने राम, तुम्हीं को है चुना, करो न तुमयों हाय! लोकमत अन सुना।
जाओ, यदि जा सको रौंद हमको यहाँ!' यह कह पथ में लेट गये बहुजन वहाँ।

सच्चा राजा या शासक वही है जो जनता के प्रेम और कष्ट का ध्यान रखे राम एक ऐसे ही आदर्श जन-सेवक राजा थे उन्होंने प्रजा से निवेदन किया कि—

× × ×

उठो प्रजा-जन उठो, तजो यह मोह तुम, करते हो किस हेतु विनत विद्रोह तुम।
तुमसे प्यारा मुझे कौन ! कातर न हो, मैं अपना भी त्याग करूँ तुम पर कहो ?

× × ×

होते मेरे ठौर तुम्हीं हे आग्रही, तो क्या तुम भी आज नहीं करते यही ?
तुम्हीं कहो, क्या तात-वचन झूठे पड़ें, असद्वस्तु के लिए परस्पर हम लड़ें।

× × ×

फिर राम घर से रूठ कर अथवा, भय दौर्बल्य आदि के कारण वन को नहीं जारहे थे। उनकी वन यात्रा का मुख्य उद्देश्य था पाप का विनाश और पुण्य की रक्षा अतएव इस ओर संकेत करके जनता को प्रभावित करते हुए श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि:—

करूँ पाप संहार, पुण्य-विस्तार मैं, भरूँ भद्रता हरूँ विघ्न भय-भार मैं।

× × ×

उठो विघ्न मत बनो धर्म के मार्ग में, चलो स्वयं कल्याण कर्म के मार्ग में।

श्री रामचन्द्र जी के उपदेश का जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ा और—

विभु वाणी से वहीं पड़े थे जो अड़े, मन्त्र मुग्ध से हुए अलग उठ कर खड़े।

× × ×

इस प्रकार राजतंत्र युग के राम ने जनमत को अपनी ओर आकर्षित करके यह बता दिया कि भारतवर्ष का प्राचीन राजतंत्र आज के लोकतंत्र की अपेक्षा अधिक संयत तथा जनमत का आदर करने वाला था। आज के युग में यदि प्रजा सत्याग्रह करे तो उसके उत्तर में शासन यंत्र लाठीप्रहार और गोली वर्षा तथा अश्रु गैस प्रयोग से कदापि नहीं चूकेगा पर धन्य थे राम जिन्होंने परिस्थिति के नवीन रूप का नवीन ढंग से परिमार्जन करके अपनी महत्ता का चमत्कार प्रदर्शित कर दिखाया। 'साकेत' के राम केवल ईश्वर के अवतार ही नहीं हैं बल्कि वे मातृ-

भूमि के सच्चे सेवक और पुजारी भी हैं। बन जाते समय जन्म भूमि से विदा लेते हुए वे कहते हैं कि:—

× × ×

"जन्म-भूमि, ले प्रणति और प्रस्थान दे, हम को गौरव, गर्व तथा निज मान दे।

× × ×

तेरा स्वच्छ समीर हमारे श्वास में, मानस में जल और अनल उच्छ्वास में।

× × ×

चलना फिरना और विचरना हो कहीं, किन्तु हमारा प्रेम पालना है यहीं।
हो जाऊँ मैं लाख बड़ा नर लोक में, शिशु ही हूँ तुझ मातृ-भूमि के ओक में।
यहीं हमारे नाभि-कंज की नाल है, विधि-विधान की सृष्टि यहीं सुविशाल है।

× × ×

रामचन्द्र भव भूमि अयोध्या का सदा, और अयोध्या रामचन्द्र की सर्वदा॥

इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी ने मातृ-भूमि विषयक अपने उद्गार से "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" के सिद्धान्त का पूर्ण समर्थन करके अपनी मातृभक्ति, और देश-भक्ति की महत्ता का अच्छा परिचय दिया है।

अब जरा राम की भक्त वत्सलता का नमूना देखिये:—श्री राम चन्द्र जी के आगमन का समाचार पाकर गुहराज निषाद दर्शन के लिये आता है और राम बरबस उसे हृदय से लगा लेते हैं यथा:—

देख सखा को दिया समादर राम ने, उठ कर, बढ़ कर, लिया प्रेम से सामने।

श्री रामचन्द्र जी द्वारा जटा जूट धारण करने पर उन्हें वापस अयोध्या लौटा ले जाने की सुमंत की आशा जाती रही और वह विह्वल होकर कह उठा:—

"स्वयं क्षात्र ने लिया आज वैराग्य क्या, शान्त सर्वथा हुआ हमारा भाग्य क्या?"

इसके उत्तर में श्री रामचन्द्र जी का कर्तव्य ज्ञान की ओर संकेत करना उनके गौरव के ही अनुकूल है—

प्रभु ने उन्हें प्रबोध दिया तब प्रीति से—"व्रत ले तो फिर उसे निभा दे रीति से।

और श्री रामचन्द्र जी ने अपने व्रत का निर्वाह जिस सच्चाई के साथ किया वह विश्व विदित और बेजोड़ है। वन में श्री रामचन्द्र जी ने अपने व्यवहार से पशु पक्षी मानव सभी को मुग्ध कर लिया। उनका गंगा का अभिवादन, तीर्थराज प्रयाग की प्रशंसा आदि सभी अपने स्थान पर ठीक हैं। मार्ग में पड़ने वाले गाँवों की स्त्रियों का जानकी जी से व्यंग विनोद करते हुए कहना कि:—

"शुभे, तुम्हारे कौन उभय ये श्रेष्ठ हैं ?"

और जानकी जी का:—"गोरे देवर, श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं ?"

कह कर उत्तर देना तथा लक्ष्मण और जानकी का आधुनिक देवर भाभी के से हास्य संलाप का परिचय देना आदि परिस्थिति के नवीन रूप के साथ साथ आधुनिकता की छाप छोड़ जाते हैं। राम की महत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण गुप्त जी की कल्पना में महामुनि वाल्मीकि के रामचन्द्र जी के प्रति यह उद्गार है:—

"राम तुम्हारा वृत्त आपही काव्य है, कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है।"

राम की महत्ता और परिस्थिति के नये रूप के अतिरिक्त अब भाषा की प्रभावुकता के विधान की भी झाँकी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है। 'साकेत' की भाषा सर्वत्र प्रसंगानुकूल है। उसका स्वरूप भाव और पात्र के अनुरूप ही है। 'राम की वन यात्रा' भी इसी विशिष्टता से युक्त है। राम के वाक्य गंभीर और दृढ़ हैं। लक्ष्मण की वाणी में कुछ गर्मी और औद्धत्य है तथा सीता के वाक्य एकान्त-सरल, और भोले हैं। प्रसंग के अनुसार भाषा का रूप बदलता चलता है तथा इसमें लाक्षणिक-समृद्धि और मूर्तिमत्ता प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। संक्षेप में इसमें खड़ी बोली का अत्यन्त शिष्ट और प्रौढ़ स्वरूप मिलता है ? अब यहाँ भाषा की प्रभावुकता के विधान के प्रमाण स्वरूप 'राम की वन यात्रा' से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं:—

धोली गुह ने धूलि अहिल्या तारिणी, कवि की मानस-कोष विभूति विहारिणी।

यहाँ 'मानस-कोष-विभूति-विहारिणी' संस्कृत व्याकरण की देन है। अब जरा भाषा पर अंग्रेजी के अभाव के साथ साथ इस पर नाटकीय गुण का प्रभाव देखिये—

"तुम्हीं पार कर रहे आज जिसको अहो।" सीता नें हँस कहा, "क्यों न देवर कहो!"

'सरस्वती' शब्द के प्रयोग द्वारा निम्न पंक्तियों में भाषा की शक्ति का अच्छा परिचय दिया गया है—

रामानुज ने कहा कि "भाभी क्यों नहीं, सरस्वती सी प्रकट जहाँ तुम हो रहीं।"
"देवर मेरी सरस्वती अब है कहाँ, संगम शोभा देख निमग्न हुई यहाँ।"

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि—'राम-वन-यात्रा' में गुप्त जी राम की महत्ता, परिस्थिति का नया रूप और भाषा की प्रभावुकता का विधान करने में पूर्ण सफल हुए हैं।

**प्रश्न**( २ ):—मैथिली शरण जी की काव्यात्मक विशेषताओं का निरूपण करते हुए नवीन हिन्दी काव्य में उनके स्थान का निर्देश कीजिए।

( बी० ए० परीक्षा १६४७ का वि० वि० )

**उत्तरः**—देखिये 'काव्यगत विशेषताएँ' पृष्ठ १०२ और 'नवीन हिन्दी काव्य में गुप्त जी का स्थान' पृष्ठ १०३।

**प्रश्न** ( ३ ) श्री मैथिली शरण जी गुप्त तथा श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की तुलनात्मक समीक्षा कीजिये।

**उत्तरः**—देखिये 'तुलनात्मक समीक्षा' पृष्ठ १०८, १०६, ११०।

**प्रश्न**( ४ ) "मैथिली शरण जी गुप्त गार्हस्थ,जीवन की अभिव्यक्ति करने वालों में सर्वश्रेष्ठ हैं।" पठित अंश से अपेक्षित उद्धरण देते हुए इस कथन का विचार कीजिए।

( बी० ए० परीक्षा १६४६ का वि० वि० )

**उत्तरः**—श्री मैथिली शरण जी गुप्त की प्रसिद्ध रचना 'साकेत' गार्हस्थ्य जीवन की अभिव्यक्ति का प्रवल प्रमाण है। वास्तव में यह एक जीवन काव्य है और इसमें एक व्यक्ति का जीवन अनेक अवस्थाओं और व्यक्तियों के बीच अंकित है। 'साकेत' में रघु परिवार के सुख और दुख का वर्णन किया गया है। इस परिवार का जीवन आदर्श हिन्दू गृहस्थ का जीवन है। इसके अन्दर पति, पत्नी, माता, विमाता, पुत्र पुत्री, देवर भाभी, सासें पुत्र वधुएँ, स्वामी और सेवक आदि

का सफल चित्र उपस्थित किया गया है पर यहाँ हमारा ध्येय संपूर्ण 'साकेत' महा काव्य का गृहस्थ्य-चित्र उपस्थित करना नहीं हैं। बल्कि पाठ्य पुस्तक के संकलित अंश से उद्धरण देकर इसे समीक्षा की कसौटी पर कसना है। नारी जाति की चर्चा करते हुए श्री रामचन्द्र जी भरद्वाज मुनि से कहते हैं कि:—

अपनी सुधि ये कुलस्त्रियाँ लेती नहीं,
पुरुष न लें तो उपालम्भ देती नहीं।"

उत्तर में भरद्वाज जी कहते हैं कि:—

"कर देती हैं दान न अपने आप को,
कैसे अनुभव करें स्वात्म-संताप को।

उपरोक्त पंक्तियाँ नारी जाति के अपूर्व त्याग और आत्मदान की सर्व श्रेष्ठ झाँकी हैं। नारी जगत के वात्सल्य और दाम्पत्य की मध्यवर्तिनी भावना देवर भाभी का स्निग्ध संबंध होता है। इसका सुन्दर उदाहरण सीता और लक्ष्मण का संलाप है। प्रयागराज में गंगा और यमुना के संगम को देखकर सीता जी लक्ष्मण जी से प्रसन्नता पूर्वक कहती हैं कि:—

'श्याम-गौर तुम एक प्राण दो देह ज्यों।'
इस पर— रामानुज ने कहा कि—भाभी क्यों नहीं,
सरस्वती-सी प्रकट जहाँ तुम हो रहीं।'

लक्ष्मण जैसे देवर के उत्तर में सीता जैसी भाभी तुरत प्रत्युत्तर प्रस्तुत कर देती हैं—

देवर मेरी सरस्वती अब है कहाँ, संगम-शोभा देख निमग्न हुई यहाँ।

कितना सुन्दर जोड़ है इसे कोई भी सहृदय सहज ही आँक सकता है। सच्चे गृहस्थ के प्रमुख कर्तव्य का संकेत करते हुए लक्ष्मण जी गुहराज निषाद से कहते हैं कि:—

होता है कृत कृत्य सहज बहुजन गृही।"

संक्षेप में—पति पत्नी संबंध में राम सीता, देवर भाभी के प्रसंग में लक्ष्मण और जानकी जी तथा स्वामी और सेवक के रूप में रामचन्द्र जी और गुहराज

निवाद के वार्तालाप के जितने उदाहरण इस पाठ्य ग्रन्थ के पठित अंश में उपलब्ध हैं वे गार्हस्थ्य जीवन की अभिव्यक्ति के लिए उसी प्रकार पर्याप्त हैं जिस प्रकार हाँडी के एक तंदुल से ही उसके अन्दर के संपूर्ण तन्दुलों की परिपक्वता का सहज ही अनुमान लगा लिया जाता है। अतएव यहाँ पठित अंश के जो उद्धरण दिये गये हैं उनके आधार पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि:—"मैथिली शरण जी गुप्त गार्हस्थ्य-जीवन की अभिव्यक्ति करने वालों में सर्व श्रेष्ठ हैं।"

**प्रश्न( ५ )** भाव पक्ष और कला-पक्ष पर समान दृष्टि रखते हुए "यशोधरा" की समीक्षा कीजिए। यह भी बतलाइये कि इसे आप काव्य के किस भेद के अंतर्गत रखेंगे और क्यों ?

( बी० ए० परीक्षा १६५४ का० वि० वि० )

**उत्तर:**—'कला' केवल कला के लिए है या कला का कुछ व्यावहारिक उपयोग भी है इस पर विद्वानों का एक मत नहीं है। भिन्न भिन्न विद्वानों ने इस पर अपना भिन्न भिन्न मत व्यक्त किया है पर इस बात पर सभी एक मत हैं कि—'सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ही कला है।"

वास्तव में कला की सार्थकता तभी है जब कि इसमें सत्यं, शिवं, तथा सुन्दरम तीनों के दर्शन हो जायें। गुप्त जी की काव्य कला में वाह्य पक्ष को प्रधानता न देकर हृदय के आन्तरिक सौन्दर्य का अनुपम सम्मिश्रण प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में गुप्त जी की दृष्टि में कला कला के लिए नहीं है वल्कि जीवन के प्रत्येक अंग-प्रत्यंगों को सुन्दर और सुखमय बनाने के लिए है। वे एक उपयोगितावादी कलाकार हैं तथा 'जीवन के लिए कला' के सिद्धान्तों के अन्यतम पुजारी हैं। उनके लिए कला अभिप्रेत ही नहीं अभिव्यक्ति भी है, लक्ष्य नहीं-लक्षण है, साध्य नहीं साधन है। गुप्त जी की प्रत्येक रचनाओं में प्राचीन और नवीन का पूर्ण सामंजस्य मिलता है। 'यशोधरा' में जीवन संदेश निहित हैं साथ ही गांधीवाद से प्रभावित आत्म संयम, आदर्श पालन, त्याग और गृहस्थ-जीवन की महत्ता का भी इसमें सफल चित्रण हुआ है यशोधरा काव्य के नायक सिद्धार्थ ने एक साधारण मनुष्य के रूप में नारी को 'हास्य विलास-विनोद पूर्ण' समझ कर यशोधरा का त्याग किया

'यशोधरा' के दृढ़ निश्चय की प्रतीक ये पंक्तियाँ हैं—

"विदा न लेकर स्वागत से भी वंचित यहाँ किया है।"

यशोधरा के आदर्श मातृत्व की प्रमाण निम्न पंक्तियाँ हैं—

"स्वामी मुझ को मरने का भी दे न गए अधिकार,
छोड़ गये मुझ पर अपने राहुल का सब भार।

और यशोधरा ने अपने उत्तर दायित्व का पूर्ण निर्वाह किया भी है। उसका जीवन वात्सल्य स्नेह, आत्मग्लानि, कर्तव्यपरायणता, विरह वियोग, साधना, तपश्चर्या तथा प्रेम तन्मयता का अभूत पूर्व सम्मिश्रण है। यशोधरा वेदना तथा करुणा की सजीव मूर्ति हैं। नारी की वेदना और कर्तव्यपरायणता की अनूठी झलक इन पंक्तियों में मिलती है।

"अबला जीवन, हाय! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल में है दूध और आँखों में पानी!"

संक्षेप में— यशोधरा के गीतों में उदात्त भाव, सूक्ष्मता, हृदय-स्पर्शी प्रसंग तथा नाद-सौन्दर्य आदि सभी गुण वर्तमान हैं अर्थात् इसमें नाटक की नाटकीयता, उपन्यास की मोहकता, कहानी की रोचकता तथा कविता की सरसता सभी कुछ व्याप्त है। काव्य की श्रेणी विभाजन की दृष्टि से यह प्रबंध काव्य और गीति काव्य के बीच की रचना कही जा सकती है शैली की दृष्टि से, काव्य की दृष्टि से, मनो विज्ञान की दृष्टि से, युग धर्म तथा उपयोगिता की दृष्टि से, मौलिकता की दृष्टि से इसे एक श्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ कहा जा सकता है।

**प्रश्न** ( ६ ) यशोधरा के चित्रण में "नारी के व्यक्तित्व-निर्माण की अपेक्षा करुणा का प्रभाव ही प्रमुख बन गया है।" इस उक्ति की विस्तृत समीक्षा कीजिए और पक्ष या विपक्ष में स्पष्ट मत दीजिये।

( बी० ए० परीक्षा १९५४ का० वि० वि० )

कोई कृति चाहे कितनी ही कवितामयी, कौतूल जनक और रोचक क्यों न हो वह कला कृति नहीं हो सकती यदि कलाकार अपनी कला से दूसरों को प्रभावित नही करता और स्वयं आनन्द विभोर नहीं होता। अतएव कलाकार को अपनी

कला में आत्मानुभूति के तत्व उत्पन्न करने के लिए, वैयक्तिकता, प्रसाद गुण और सहृदयता पर ध्यान देना परम आवश्यक है।

'यशोधरा' गुप्त जी के गूढ़ चिन्तन, गंभीर मनन, प्रौढ़ विचार तथा युग धर्म का बना एक सजीव चित्र है। यह उनकी सहृदयता और आत्मानुराग से ओत-प्रोत है। 'यशोधरा' में उन्होंने 'यशोधरा' के वैयक्तिक जीवन और भावनाओं पर विशेष बल दिया है क्योंकि वे उनसे स्वयं प्रभावित हैं। इस काव्य के अन्तर्गत् जीवन को उन्नतमना एवं वासना और इन्द्रियों पर विजयी बनाने वाले संदेशों का सुन्दर समावेश है।

'यशोधरा' में रस निरूपण की दृष्टि से विद्वानों में मतभेद है। कुछ ने शान्त रस, कुछ ने करुण रस और कुछ ने विप्रलंभ शृंगार-रस प्रधान काव्य इसे माना है। जहाँ तक 'यशोधरा' में नारी के व्यक्तित्व निर्माण और करुणा के प्रभाव का प्रश्न है विरहिणी 'यशोधरा' का संपूर्ण जीवन ही करुणामय बन गया है पर उसने कठिन से कठिन परिस्थिति में भी अपने व्यक्तित्व पर आँच नहीं आने दी है। इसमें कोई भी संशय नहीं है कि 'यशोधरा' काव्य के अन्दर कवि ने यशोधरा तथा राजकुमार राहुल का चरित्र बड़े ही अनूठे ढंग से चित्रित किया है और छोटे से बालक की भोली क्रीड़ाएँ, अटपटी बोली, माँ के साथ प्रश्नोत्तर आदि सभी करुणापूर्ण ढंग से वर्णित हैं पर जहाँ कहीं भी 'यशोधरा' के हृदय में करुणा की धारा प्रवाहित हुई है वहीं उसका व्यक्तित्व कर्तव्य परायणता का बाँध बनाकर उसे रोक देता है और इस प्रकार करुणा के ऊपर यशोधरा के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप पड़ जाती है। अब हम यहाँ 'यशोधरा' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करके इसकी पुष्टि करने का प्रयत्न करेंगे। यशोधरा विरहिणी है, उसके हृदय में वियोग की भट्ठी जल रही है। अपनी कामना को अपने भीतर सँजोकर वह आकांक्षा करती है कि:—

जल में शतदल तुल्य सरसते,
तुम घर रहते हम न तरसते,
देखो दो-दो मेघ बरसते।
मैं प्यासी की प्यासी!
आओ हे वन वासी!

विरहिणी यशोधरा जब अपनी भावनाओं को हृदय में छिपा सकने में असमर्थ हो जाती है तो सहसा उसके उद्‌गार फूट पड़ते हैं—

रुदन का हँसना ही तो गान।
भीड़ भसक है कसक हमारी, और गमक है हूक,
चातक की द्रुत हृदय हूति जो, सो कोयल कीकूक
राग हैं सब मूर्छित आह्वान !

एकान्त में गौतम की स्मृति में रोना और राहुल के सामने हँसना यही 'यशोधरा' का नित्य का काम है। राहुल के सोने पर वह कहती है—

'सो मैं करलूँ जी भर क्रन्दन।'

कभी कभी विरह ताप से घबड़ाकर वह कह उठती है—

'मेरा मरण तुमको खला।
'किन्तु मैं लेकर करूँ क्या विरह जीवन जला?'

अपने गत जीवन को स्मरण करके वह कहती है—

'रोहिणी, हाय ! यह वह तीर,
बैठते आकर जहाँ वे धर्म धन, ध्रुव धीर।

कहाँ तक कहा जाय 'यशोधरा' में विरहिणी यशोधरा की अभिलाषा, चिन्ता स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, संलाप उन्माद, जड़ता व्याधि और मरण आदि सभी का चित्रण सफलता पूर्वक किया गया है तथा गौतम के विरह में यशोधरा को मरने से बचाने के लिए कवि ने एक अनूठा तर्क उपस्थित कर दिखाया है यथा—

'स्वामी मुझको मरने का भी दे न गये अधिकार,
छोड़ गए मुझपर अपने उस राहुल का सब भार।'

इसमें कोई संशय नहीं है कि विरह वर्णन की दृष्टि से यशोधरा एक अभिनव-काव्य है और इसमें प्रवास जनित विरह की अन्तर्दशाओं का सुन्दर परिपाक हुआ है पर जहाँ तक इस काव्य के संदेश और चरित्र का प्रश्न उठता है वहाँ एक मात्र यशोधरा का व्यक्तित्व और चरित्र सर्वोपरि दिखाई पड़ता है। गौतम तो नाम मात्र के लिए इस कृति में आये हैं प्रत्युत यशोधरा के महान व्यक्तित्व की ही झाँकी इसमें देखने को मिलती है। अन्य सभी पात्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से यशोधरा से ही संबंधित हैं।

यशोधरा विनय, नम्रता शान्ति संतोष तथा शिष्टाचार की साक्षात् प्रति मूर्ति रही। उसे प्रकृति के प्रत्येक अवयव में अपने पति गौतम के सद्भाव का चित्र दिखाई पड़ता था और उसकी कामना थी कि:—

'स्वामी के सद्भाव फैलकर फूल-फूल कर, फूटे,
उन्हें खोजने को ही मानो नूतन निर्झर छूटे।'

संक्षेप में—यशोधरा के चित्रण में नारी के व्यक्तित्व निर्माण की अपेक्षा केवल करुणा के प्रभाव को प्रमुखता देना उचित नहीं है। उसमें नारी का आदर्श त्याग, उसका सुन्दर व्यक्तित्व, उसकी कर्तव्य परायणता आदि की विशिष्ट झांकी देखने को मिलती है।

**प्रश्न ( ७ ):**—(क) निम्नांकित पद्यों की सहृदयता पूर्ण व्याख्या कीजिये?

देख लिया मैंने सहस्र दल,........पलट प्रौढ़ता बांकी!
उन काली आँखो में........मुझको विश्व विहारी।

( बी० ए० परीक्षा १९४५ का० वि० वि )

**उत्तर:**—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ १७१।

(ख) नीचे लिखे अवतरणों की व्याख्या कीजिए:—

पड़ी तरल यमुना तरङ्गिणी,.............रङ्ग ढङ्ग वह पावे॥
वह सजीव रचना थी युग की,......छवि उसकी जो छलकी।
काम रूप धारी वह जलधर,........निर्भय किन्तु सदय था।

( बी० ए० परीक्षा १९५० का० वि० वि० )

**उत्तर:**—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ १७३, १७४, १७५।

( ग ) प्रसंग निर्देश पूर्वक व्याख्या कीजिये:—

तप मेरे मोहन का उद्धव..............मेरी बाधा व्यथा सही

**उत्तर:**—देखिये पृष्ठ—१९४। ( बी० ए० परीक्षा १९५४ का० वि० वि० )

( घ ) नीचे लिखे उद्धरणों की व्याख्या प्रसंग निर्देश पूर्वक कीजिये तथा उनका काव्य-सौन्दर्य समझाइये।

जागी किसकी वाष्प राशि..................मेरी बाधा व्यथा सही।

( बी० ए० परीक्षा १९४९ का० वि० वि० )

**उत्तर:**—देखिये पृष्ठ - १९६।

# ३—प्रसाद

**परिचयः**—श्री जयशंकर प्रसाद जी का जन्म काशी के गोवर्धन सराय मुहल्ले में एक प्रतिष्ठित कान्य-कुब्ज वैश्य परिवार में माघ शुक्ल दशमी सम्वत् १९४६ को हुआ था। इनके पितामह का नाम श्री शिवरत्न साहु और पिता का नाम श्री देवी प्रसाद था। श्री देवी प्रसाद जी सुँघनी साहु के नाम से प्रसिद्ध तम्बाखू के विख्यात व्यापारी, बड़े ही दानी और उदार पुरुष थे।

प्रसाद जी बचपन से ही बड़े होनहार थे। संस्कृत की ओर इनकी विशेष रुचि थी और थोड़ी ही अवस्था में इन्होंने अमरकोष तथा लघु सिद्धान्त कौमुदी पढ़ डाली थी। बारह वर्ष की अवस्था में इन्होंने मिडिल की परीक्षा पास कर ली थी। पिता के स्वर्गवास हो जाने के कारण इनका स्कूल से संबंध टूट गया पर घर का अध्ययन चलता रहा। इनके बड़े भाई ने इन्हें पढ़ाने के लिए घर पर ही अध्यापक रख दिये और इस प्रकार इन्होंने घर पर ही पढ़ कर हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, संस्कृत और बंगला में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। जब इनकी अवस्था सत्रह वर्ष की हुई तभी इनके बड़े भाई का देहान्त हो गया अतएव गृहस्थी का सारा भार इन्हीं के कंधों पर आगया। इनका पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं था। ऋण के भार से ये अधिक चिन्तित रहा करते थे। अतएव अपनी पैतृक संपत्ति का कुछ भाग बेचकर इन्होंने अपने को ऋण मुक्त किया। यों तो साहित्य की ओर इनका झुकाव बचपन से ही था और कविता की ओर इनकी विशेष रुचि थी पर ऋण-मुक्ति के बाद से इन्होंने अपना सारा जीवन साहित्य साधना में लगा दिया। इनके साहित्यिक मित्रों में राय कृष्ण दास, विनोदशंकर व्यास, मु० प्रेमचन्द और पं० केशव प्रसाद मिश्र थे। पहल ये पुराने विषयों पर कविता लिखते थे बाद में रहस्यात्मक भाव नवीन ढंग से व्यक्त करने लगे। इनका साहित्यिक जीवन सन् १९१० से आरम्भ होता है, इनकी कहानियाँ सर्व प्रथम 'इन्दु' और 'सरस्वती' में प्रकाशित हुईं। इन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी, काव्य, निबंध सभी का भंडार भरा है। इन्होंने व्रजभाषा में भी कवितायें

लिखी हैं। इस प्रकार ये बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न आजकल के अत्यन्त प्रतिष्ठित साहित्य कार थे। इनकी मृत्यु क्षय रोग से संवत् १६६४ में कार्तिक शुक्ल ( देवोत्थान ) एकादशी को हो गई।

**धर्म तथा स्वभाव:**—प्रसाद जी बड़े ही धार्मिक, उदार, दानशील तथा संयमी व्यक्ति थे। कहानी अथवा कविता के लिए पुरस्कार स्वरूप वे एक पैसा भी नहीं लेते थे। यदि उन्हें कुछ पुरस्कार प्राप्त हुआ तो वे उसे पुनीत संस्था में दान कर देना ही अपना परम कर्तव्य समझते थे यथा उन्हें हिन्दुस्तानी एकेडेमी से ५००) तथा प्रचारिणी सभा से २००) पुरस्कार में मिले थे पर उन्होंने इन सब रुपयों को नागरी प्रचारिणी सभा को ही दान दे दिये। वे कवि सम्मेलनों में भी बहुत कम जाते थे।

**व्यक्तित्व:**—प्रसाद का व्यक्तित्व उनके काव्य में पूर्णतः प्रतिबिम्बित है। उनका ठिगना कद, गेहुँआ रंग, गले में रेशमी कुरता और रेशमी दुशाला ऊँचा ललाट होटों में मंद हँसी, आंखों में मादकता की लाली, स्निग्ध-स्वच्छ व्यवहार आदि उनकी प्रतिभा के द्योतक थे।

**सम्मान:**—प्रसाद जी को इनकी 'कामायनी' पर साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा मंगला प्रसाद पुरस्कार प्राप्त हुआ था जिसका निर्णय इनकी मृत्यु के बाद घोषित हुआ था।

**रचनायें:**—प्रसाद जी की रचनाओं को कालानुसार तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—१—पूर्व काल (सन् १६१० से १६२२ तक) २—मध्य काल ( सन् १६२३ से १६२६ तक ) ३—अंतिम काल ( १६२६ से १६३७ तक )। विषय की दृष्टि से प्रसाद जी की रचनाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है:—

**१—उपन्यास**—कंकाल, तितली और इरावती ( अपूर्ण )।

**२—नाटक**—राज्य श्री, अजातशत्रु, स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुव स्वामिनी, एक घूँट, विशाख, जन्मेजय का नाग यज्ञ, कामना, प्रायश्चित, सज्जन।

**३—कहानी-संग्रह**—छाया प्रति ध्वनि, आकाश दीप, आँधी तथा इन्द्रजाल।

**४—काव्य**—चित्राधार, कानन-कुसुम, करुणालय, महाराणा का महत्व,

लहर, झरना, आँसू तथा कामायनी।

**५—निबंध**—काव्य और कला।

**भाषा:**—प्रसाद जी की प्रारंभिक रचनाओं में भाषा का सरल रूप देखने को मिलता है पर बाद की रचनाओं में गंभीर अध्ययन और विचारों की प्रौढ़ता के प्रभाव से भाषा प्रांजल और संस्कृत प्रधान होती गई है। गद्य में इनकी भाषा खड़ी बोली है परन्तु पद्य में इन्होंने शुद्ध ब्रज भाषा तथा खड़ी बोली दोनों का प्रयोग किया है। इनकी रचनाओं में मुहावरों तथा कहावतों का बहुत कम प्रयोग मिलता है तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग बिल्कुल नहीं हुआ है। इनकी भाषा भावों की अनुगामिनी है तथा उसमें संगीत की अद्भुत तल्लीनता और मस्ती भी है। इनके नाटकों की भाषा उपन्यासों से कठिन है पर उनमें सर्वत्र माधुर्य और प्रवाह पाया जाता है। भाषा की दृष्टि से इन्हें हिन्दी का सबसे समर्थ कवि कहा जा सकता है।

**शैली:**—प्रसाद जी की शैली उनकी दार्शनिकता से ओतप्रोत है तथा उनके छोटे छोटे वाक्य सूत्रवत हैं। गंभीरता तथा सहृदयता ही इस शैली की विशिष्टता है। काव्यात्मक चमत्कार से युक्त उनकी शैली काव्यों, नाटकों, कहानियों तथा उपन्यासों सभी में विशेष आकर्षक सिद्ध हुई है तथा उसे और भी प्रभाव पूर्ण बनाने के लिए उन्होंने व्यंगात्मक शैली का भी अनुकरण किया है। विषय-निर्वाचन, शब्द-चयन, वाक्य विन्यास, मानव अनुभूतियों का वास्तविक मूल्य उनकी शैली के सफल गुण हैं।

**छन्द:**—खड़ी बोली में अपने विशिष्ट काव्य के विशेष प्रकाश के लिए प्रसाद जी को नए छंद गढ़ने पड़े हैं तथा नवीन प्रयोग भी करने पड़े हैं। 'इन्दु' काल में इन्होंने सानेट जैसे अंग्रेजी और त्रिपदी तथा पयार जैसे बँगला छन्दों का प्रयोग किया है। कई छन्दों को मिलाकर नया छन्द बना लेना और लय तथा भाव के अनुसार पंक्तियों को छोटी बड़ी कर देना प्रसाद जी की अपनी विशेषता थी। इन्होंने तुकान्त तथा अतुकान्त दोनों प्रकार के छन्दों की रचना की है। इनकी कविता केवल एक दो निश्चित छन्दों तक ही सीमित नहीं है। अकेले कामायनी में ही ताटंक, पादाकुलक, रूपमाला, सार, रोला आदि लगभग एक दर्जन छन्दों का प्रयोग हुआ है।

**रस:**—प्रसाद जी की रचनाओं में किसी विशेष रस का निश्चित मार्ग नहीं मिलता। इनके काव्य में प्रधानतः शृंगार-रस का उद्रेक मिलता है जो निर्वेद में विलीन हो जाता है। पर हाँ करुण रस का सुन्दर आयोजन इन की काव्य-सृष्टि में दृष्टिगोचर होता है।

**अलंकार:**—प्रसाद जी की अलंकार योजना बड़ी सुन्दर हुई है। प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में इन्होंने अलंकारों का आश्रय लिया है। उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा के प्रयोग से इनका काव्य अधिक अलंकृत हो गया है।

**काव्यगत विशेषताएँ:**—प्रसाद जी की रचनाओं में निम्नलिखित विशेषताएँ प्राप्त होती हैं:—(१) इनकी कविताओं में सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् का साक्षात् स्वरूप परिलक्षित होता है।

( २) मानव सौन्दर्य के साथ प्रकृति सौन्दर्य का भी इन्होंने चित्रण किया है।

( ३ ) इन्होंने ब्रज भाषा तथा खड़ी बोली दोनों को ही अपनी काव्य-साधना का साधन बनाया है।

( ४ ) इनकी छन्द व्यवस्था और अलंकार योजना बड़ी ही सुन्दर बन पड़ी है।

( ४ ) इनकी शैली साहित्यिक, परिमार्जित और प्रवाहपूर्ण है।

( ५ ) इनके गीतों में मधुर संगीत का भव्य पुट है।

( ६ ) इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी।

( ७ ) ये छायावाद तथा रहस्यवाद के प्रथम प्रवर्तकों में अग्रगण्य हैं।

( ८ ) इनकी कविता की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं यथा—वैयक्तिक तथा-ईश्वरोन्मुख प्रेम, प्रकृति प्रेम तथा प्राचीन गौरव।

( ९ ) इनके वर्णनों में एक रहस्यमयी भावना है और वर्णन पार्थिव होते हुए भी स्वर्ग की ओर इंगित करते हैं।

( १० ) इनके काव्य पर बौद्ध धर्म का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है

( ११ ) इनकी रचनाओं में प्रेम की पीड़ा तथा कसक अधिक परिलक्षित होती है।

( १२ ) इनकी रचनाएँ समन्वयवाद की पोषिका हैं।

( १३ ) इनकी कविता कल्पनाओं से ओत-प्रोत है।

( १४ ) इनकी कल्पना में जीवन की अनुभूति का सामंजस्य है।
( १५ ) इनके प्रेम का विषय एक अव्यक्त भावना है।

**हिन्दीसाहित्य में स्थान:**—प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न हिन्दी काव्य के युगेतर कवि हैं। संस्कृत साहित्य के मनन और चिन्तन द्वारा हिन्दी साहित्य का मस्तक ऊँचा करने का श्रेय इन्हें प्राप्त है। इनकी गणना आधुनिक हिन्दी के स्रष्टाओं में की जाती है। इन्होंने हिन्दी साहित्य को प्रौढ़ और सर्वांग बनाने में पूर्ण योग दिया। इनके उपन्यास, गीति-नाट्य काव्य, कहानी, महाकाव्य और निबन्ध विश्व साहित्य के टक्कर के हैं। इनकी कामायनी हिन्दी साहित्य के लिए कौस्तुभ-मणि है।

**समीक्षा:**—प्रसाद जी के काव्य में कल्पना तथा सौन्दर्य का महत्व पूर्ण स्थान है। इनकी रचना 'आँसू' का भव्य प्रासाद कल्पना के ही आधार पर खड़ा है। प्रमाण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ पर्याप्त हैं—

बुल बुले सिंधु के फूटे, नक्षत्र-मालिका टूटी।
नभ-मुक्त-कुन्तला, धरणी, दिखलाई देती लूटी।

एक विराट चित्र की कल्पना करके कवि कहता है—

मेरे जीवन का जल निधि, बन अंधकार ऊर्मिल हो।
आकाश-दीप-सा तब वह तेरा प्रकाश झिलमिल हो।

कहीं कहीं संयम में बद्ध होकर कल्पना कवि के काव्य को शक्तिशाली भी बना देती है, मनु इड़ा से कहते हैं—

नहीं पा सका हूँ मैं जैसे, जो तुम देना चाह रही।
क्षुद्र पात्र तुम उसमें कितनी मधु-धारा हो ढाल रही॥

कल्पना का सर्वश्रेष्ठ विलास कामायनी के 'लज्जा' सर्ग में मिलता है। लज्जा श्रद्धा से कहती है—

इतना न चमत्कृत हो बाले, अपने मन का उपकार करो।
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती, ठहरो, कुछ सोच विचार करो॥

× × ×

चंचल किशोर सुन्दरता की, मैं करती रहती रखवाली।
मैं वह हल्की सी मसलन हूँ, जो बनती कानों की लाली॥

कामायनी में शुद्ध मानव सौन्दर्य का चित्रण करने में कवि पूर्ण सफल हुआ है। चिंतित मनु का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

तरुण तपस्वी-सा वह बैठा, साधन करता, सुरश्मशान।
नीचे प्रलय-सिन्धु लहरों का, होता था सकरुण अवसान॥

प्रकृति के सौन्दर्य पूर्ण गति-विधानों पर दृष्टिपात करके 'चित्राधार' में कवि कहता है—

नील नभ से शोभित विस्तार। प्रकृति है सुन्दर परम उदार।
नर-हृदय परिमित, पूरित स्वार्थ, बात जँचती कुछ नहीं यथार्थ॥

'कामायनी' में प्रकृति के विराट एवं रहस्यमय रूप का अंकन इस प्रकार हुआहै—

नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था, एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन।

कवि ने संपूर्ण 'कामायनी' को प्रकृति के स्वप्न-शासन में गढ़ दिया है— उदाहरणार्थ—

देख लो, ऊँचे शिखर का व्योम-चुम्बन व्यस्त।
लौटना अंतिम किरण का और होना अस्त॥
चलो तो इस कौमुदी में देख आवें आज।
प्रकृति का यह स्वप्न-शासन, साधना का राज॥

'प्रेम पथिक' में प्रेम को अनन्त रहस्यमयता प्रदान करते हुए कवि कहता है—

इस पथ का उद्देश्य नहीं है अंत भवन में टिक रहना,
किन्तु चले जाना उस हद तक जिसके आगे राह नहीं।

'प्रसाद' के प्रेम को लौकिक प्रेम में आध्यात्म का संकेत मिलता है। वे जीवन को अनंत मानते हैं अतएव उनका प्रेम भी स्वतः अनंत हो जाता है— 'आँसू' की ये पंक्तियाँ इसकी पुष्टि करती हैं—

हे जन्म-जन्म के जीवन साथी संसृति के दुःख में।
पावन प्रभात हो जावे, जागो आलस के सुख में॥

'प्रसाद' के काव्य में रहस्यवाद आनंदवाद बन कर आया है इसी से वे 'लहर' में गुन गुना उठते हैं—

मेरी आँखों की पुतली में, तू बन कर प्राण समाजा रे।

प्रसाद जी भारतीयता के सच्चे पुजारी थे। उन्हें अपने देश के गौरव का बड़ा अभिमान था। वे इसी के लिए जीना और इसी के लिए मरना अपना परम कर्तव्य समझते थे। वे भारत वर्ष की प्रशंसा में कहते हैं—

हिमालय के आंगन में इसे, प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरकहार।

× × ×

जियें तो सदा इसी के लिए यही अभिमान रहे, यह हर्ष।
निछावर करदें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष॥

संक्षेप में-प्रसाद जी प्रेम-तत्व तथा सौन्दर्य और हर्ष विषाद युक्त मानवीय मनोभाव के कवि हैं। उनमें करुणा, दया, सहानुभूति और विश्व प्रेम का स्वर है। वर्तमान युग के छायावादी कवियों में उनका प्रथम स्थान है। उनके नाटकों में ओज प्रसाद तथा माधुर्य अधिक है यथा—

हिमाद्रि तुङ्ग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयं प्रभा समुज्वला स्वतन्त्रता पुकारती॥
अमर्त्य आर्य वीर हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्यपन्थ है, बढ़े चलो बढ़े चलो॥

## लज्जा

**कथा-प्रसंगः**-प्रस्तुत कविता स्वर्गीय जयशंकरप्रसाद जी के महा काव्य कामायनी का एक सर्ग है। कामायनी के सर्गों का नाम करण मानोवैज्ञानिक आधार

पर इस प्रकार किया गया है १—चिन्ता २—आशा—३—श्रद्धा ४—काम ५—वासना ६—लज्जा ७—कर्म ८—ईर्ष्या ९—इड़ा १०—स्वप्न ११—संघर्ष १२—निर्वेद १३—दर्शन १४—रहस्य १५—आनन्द। कामायनी के प्रधान नायक मनु हैं। इन्हीं के आधार पर कथा का क्रम आगे बढ़ता है। जल प्रलय में सृष्टि जलमग्न हो जाती है। भाग्य वश कुछ देव-सन्तानें शेष रह जाती हैं। मनु, श्रद्धा, इड़ा आदि भी इनमें से हैं। जल प्रलय के समय मनु एक पहाड़ की ऊँची चोटी पर बैठे बैठे सृष्टि के प्रलय का दृश्य देख रहे थे। पृथ्वी धीरे धीरे निकल रही थी। देव सन्तान के मन में चिन्ता ने जन्म लिया। प्रकृति मुस्करा उठी और मनु के हृदय में आशा का संचार हुआ। मनुने पर्वत की एक कन्दरा में अपना आवास बनाया और अग्निहोत्र द्वारा-देव संस्कृति की आराधना की। एक दिन संयोग वश सहसा समुद्र तट पर श्रद्धा से मनु की भेंट हो गई। श्रद्धा ने योगी मनु को करुणा, माया, मोह युक्त मानव जीवन की ओर आकर्षित कर लिया और वे दोनों ( श्रद्धा और मनु ) एक साथ रहने लगे। फल स्वरूप मनु के हृदय में काम वासना की भावना उठी और उन्होंने अपने को श्रद्धा के हाथों समर्पित कर दिया। इसके बाद लज्जा का आगमन हुआ। मनु अप्रतिहत कर्म स्रोत में बहने लगे और श्रद्धा के प्रति उनके मनमें घृणा का भाव उत्पन्न हो गया। श्रद्धा से रहित होकर मनुने इड़ा का सहारा लेकर नये जगत का निर्माण किया। सहज श्रद्धा से हीन जनता बुद्धि के जड़तामय जटिल जाल के प्रति विद्रोह कर उठी और हो गया संघर्ष। संघर्ष के कारण मनुमें निर्वेद का जन्म हुआ और वे कर्म से विरत होकर अकर्म में शांति ढूँढ़ने लगे पर श्रद्धा के बिना शांति प्राप्त करने में वे बिल्कुल असमर्थ रहे। अन्त में संघर्ष के फल स्वरूप मनुमें निर्वेद का जन्म हुआ और उधर श्रद्धा ने उन्हें जीवन के समन्वयात्मक रहस्य से परिचित कराया तथा पूर्ण शांति के लिए ज्ञान कर्म और भाव के संतुलित योग को अनिवार्य बताया। जब मनु इस रहस्य से परिचित हो गये तो उन्हें शुद्ध आनंद तत्त्व की प्राप्ति भी हो गई।

संक्षेप में—'कामायनी' मनु और श्रद्धा की कथा तो है ही, मनुष्य के क्रियात्मक बौद्धिक और भावात्मक विकास में सामंजस्य स्थापित करने का अपूर्व काव्यात्मक प्रयास भी है।

अब हम मुख्य प्रसंग लज्जा सर्ग पर आते हैं। एकदिन चाँदनी रात में मनु

के मुख से अपने लिए प्रेम की मधुर विह्वल बातें सुनकर श्रद्धा के हृदय में मनु के सम्मुख आत्म समर्पण कर देने का भाव जाग उठता है। ठीक उसी समय उसके हृदय के अन्दर लज्जा ने प्रवेश किया और उसने श्रद्धा को नारी के सच्चे कर्तव्य का ज्ञान कराना प्रारंभ किया। बस इसी आधार को लेकर कथोपकथन के रूप में यहाँ काव्य की धारा प्रवाहित हो उठती है।

( पृष्ठ–५६ )

**शब्दार्थः**—कोमल=मुलायम । किसलय=कोंपल=नवीन पत्ते । अंचल=आँचल=आड़ । नन्हीं=छोटी=लघु । कलिका=कली । ज्यों=जैसे=जिस प्रकार । गोधूली=संध्या वेला=दिन और रात्रि के बीच का वह समय जब गायें वन से लौटती हैं और अपने खुरों से धूल उड़ाती चलती हैं । धूमिल=धुँधले । पट=वातावरण । दीपक=दिया=चिराग । स्वर=लौ । दिपती=दीप्ति=उजली । सी=समान ।

**व्याख्याः**—कोमल किसलय..............में दिपती सी ।

नारी हृदय की परवशता 'लज्जा' का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए कवि कहता है कि:—मुलायम कोंपलों की आड़ में नन्हीं कली के समान छिपती हुई सी तथा सन्ध्या-वेला में धुँधले वातावरण में दीपक की लौ के समान जलती सी अर्थात् जिस प्रकार मुलायम कोपलों की आड़ में छिपी हुई नन्हीं कली और भी सुन्दर प्रतीत होती है तथा संध्या समय दीपक की लौ और भी उजली तथा चमकदार दिखाई पड़ती है।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद का भाव चौथे छंद पर जाकर पूर्ण होगा ।

**शब्दार्थः**—मंजुल=सुन्दर । विस्मृति=सुध-बुध भूल जाना । उन्माद=उन्मत्तता=मस्ती=उमंग । निखता=निखरता=तीव्र होता । सुरभित=सुगंधित । लहरों=तरंगों । छाया=आड़=प्रतिबिम्ब । बुल्ले=पानी के बुलबुले । विभव=वैभव=रम्यता=सुन्दरता । बिखरता=बढ़ता ।

**व्याख्याः**—मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में...बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों ।

सुन्दर स्वप्नों के विस्मरण में जिस प्रकार मन की उन्मत्तता और भी तीव्र हो

उठती है तथा सुगंधित तरंगों के अन्तराल में हुल्ले की रम्यता और भी बढ़ जाती है।

**विशेष टिप्पणी:**—स्वप्न मन की कल्पना के परिणाम होते हैं। मन की जो भावनायें जाग्रतावस्था में सुप्त रहती हैं वे ही स्वप्नावस्था में तीव्र होकर सुन्दर तथा भयंकर रूप धारण कर लेती हैं।

**शब्दार्थ:**—माया=माया-मोह=विशिष्ट आकर्षण। लिपटी=सनी=युक्त। अधरों=ओठों। माधव=वसंत=मनु। सरस=सुन्दर=रसीला। कुतूहल=आश्चर्य। पानी भरे हुए=सुन्दरता लिए हुए।

**व्याख्या:**—वैसी ही माया में..............पानी भरे हुए।

उसी प्रकार माया मोह के आवरण में लिप्त, ओठों पर उँगली धारण करके, वसन्त ऋतु की सरसता तथा सौन्दर्य से युक्त आँखों में कौतूहल का जल भरे हुए।

**अथवा**

उसी प्रकार विशिष्ट आकर्षण से युक्त, ओठों पर उँगली रखे हुए आश्चर्य भाव से मनु के आगमन की जिज्ञासा रूपी नेत्रों में करुणा की बूँदें धारण करके।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'अधरों पर उँगली धरे हुए' नारी के लज्जा भाव का द्योतक है, तथा 'आँखों में पानी भरे हुए' के अन्तर्गत 'पानी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ के लिए किया गया है।

**शब्दार्थ:**—नीरव=शांत। निशीथ=रात्रि=रात। लतिका=लता। सी=तरह =समान। आलिंगन=स्पर्श। जादू पढ़ती=वशीकरण मंत्र पढ़ती=आकर्षण उत्पन्न करती।

**व्याख्या:**—नीरव निशीथ.......................जादू पढ़ती!

रात्रि के शान्त वातावरण में लता के समान तुम कौन हो जो मेरी ओर बढ़ती चली आ रही हो? और अपनी कोमल बाँहों को फैलाकर वशीकरण मंत्र पढ़ती हुई स्पर्श के लिए मुझे आकर्षित कर रही हो?

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त चारों पदों के पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है मानो

रात्रि के शांत वातावरण में श्रद्धा कहीं एकांत में बैठी हो और उसके सामने से किसी रमणी की छाया मूर्ति आती हुई दीख पड़ रही हो और वह उससे प्रश्न कर रही हो—कौन हो ? क्यों आई हो ? क्या काम है ? पर वास्तव में यह छाया मूर्ति मन की लज्जा-वृत्ति मात्र है अन्य कोई नहीं। मन में प्रथम बार लज्जा का भाव उत्पन्न होने पर अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प का उठना अनिवार्य है पर उसके साथ ही मन में उत्पन्न हुए कौतूहलपूर्ण भाव का समाधान बुद्धि के अनुसार श्रद्धा स्वयं ही कर लेती है। वृत्ति-विश्लेषण की शुष्कता और वर्णन की दुरूहता को दूर करने के लिए ही कवि ने दो रमणी पात्रों ( श्रद्धा और लज्जा ) में कथोपकथन की शैली का प्रयोग किया है।

**शब्दार्थ:**—इन्द्र-जाल=अद्‌भुत=अनुपम। सुहाग कण=सुहावना=पराग या पुष्परज। राग=रस=मकरंद। मधु धार=माधुर्य।

**व्याख्या:**—किन इन्द्र जाल.......................मधु-धार ढरे ?

सुन्दर पराग और मकरंद से परिपूर्ण किन अनुपम कुसुमों को लेकर तुम सिर नीचा किए हुए पुष्प माला पिरो रही हो ? जिससे विलक्षण माधुर्य टपक रहा है।

## ( दूसरा शब्दार्थ )

फूलों=भावों। सुहाग=सौभाग्य। राग=प्रेम। सिर नीचा करना=लज्जित होना।

**दूसरा अर्थ ( लज्जा के पक्ष में ):**—मेरे सौभाग्य के सूचक तथा प्रेम से पूर्ण कुछ अद्‌भुत भाव मेरे मन में उत्पन्न हो रहे हैं जिन्हें पिरोकर हृदय में संचित करने में मेरा सर लज्जा से नत हो रहा है और मन में लज्जा का अनुभव होते ही अंतकरण में एक अनुपम माधुर्य की सृष्टि होने लगती है।

**( श्रद्धा के पक्षमें ):**—अपने सौभाग्य को स्थिर करने के उद्देश्य से मैं प्रेम के अनुपम भावों की एक लड़ी मन में पिरो रही हूँ पर मनु के गले में भावों की उस माला को पहनाते समय मुझे लज्जा का अनुभव होता है और वह माला हाथ की हाथ ही में रह जाती है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद के भाव सिर झुकाये हुए फूलों की माला

गूँथती हुई किसी सुन्दर बाला का मनोरम दृश्य स्पष्ट रूप से पाठकों के सम्मुख लाकर खड़ा कर देते हैं ।

( पृष्ठ–६० )

शब्दार्थ:—पुलकित=पुलकायमान=रोमांचित । फल भरता=फलों से भरे रहने के कारण। उर=भार के अधिकार से ।

व्याख्या:—पुलकित कदंब की..........................टर में ।

श्रद्धा कहती है कि हे लज्जा ! रोमांचित कदंब की माला के समान तुम हृदय में भावों की लड़ियाँ पहना देती हो अर्थात् जिस प्रकार कदंब माला का एक एक कुसुम देखने में पुलकायमान प्रतीत होता है उसी प्रकार तुम मन में एक भाव के बाद दूसरा भाव उत्पन्न करती रहती हो। जिससे अपने भार के आधिक्य से मन की डाली झुक जाती है अर्थात् जिस प्रकार फलों के बोझ से बोझिल होकर वृक्ष की डाली स्वयं झुक जाती है उसी प्रकार मन के ऊपर जब लज्जा का भार पड़ता है तब वह लज्जावश कुछ कहने में संकुचित होकर दबा रह जाता है।

शब्दार्थ:—वरदान सदृश=वरदान के समान=कल्याणमय। नीली किरणों से=धुँधले प्रकाश का। सौरभ से सना=सुगन्ध से युक्त।

व्याख्या:—वरदान सदृश......: ..............से सना हुआ।

श्रद्धा लज्जा का अनुभव करती हुई उसे लक्ष्य करके कहती है कि:—हे लज्जा! तुम मेरे हृदय पटल पर वरदान के समान धुँधले प्रकाश से बुने हुए, चादर को डाल रही हो जो कि बहुत ही महीन और सुगंध से सना हुआ है अर्थात् मेरे हृदय पर जो तुम्हारा धुँधले प्रकाश से युक्त बहुत हलका और अत्यंत सुगंधित लाज का अंचल ( चादर ) पड़ा हुआ है वह नारी मात्र के लिए कल्याणमय है।

विशेषटिप्पणी:—'लज्जा' नारी का एक विशेष आभूषण है। नारी ही नहीं शिष्टता के ध्यान से पुरुष के लिए भी इसकी मर्यादा का पालन अनिवार्य है। लज्जा पुरुष और नारी दोनों के असंयम की बाढ़ को रोकने में सहायक होती है। अतएव नारी के लिए वरदान सदृश कल्याणमय है।

**शब्दार्थः**—मोम से=कोमल। बलखाना=लचकना। सिमटना=सिकुड़ना=संकोच का अनुभव करना। परिहास=उपहास=व्यंग्य हास्य।

**व्याख्याः**—सब अंग मोम..............सुन पाती हूँ।

श्रद्धा कहती है कि लज्जा के प्रभाव से मेरे शरीर के सभी अवयव मोम के समान कोमल होते जा रहे हैं और कोमलता के कारण शरीर लचक लचक जाता है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो मेरे शरीर के परिवर्तन को देखकर कोई मुझ पर व्यंग्य, करके हँस रहा है और उसे सुनकर लज्जा और संकोचवश मैं अपने ही तन में सिकुड़ी जा रही हूँ।

**शब्दार्थः**—स्मित=मंद हास्य। तरल हँसी=खिलखिलाकर हँसना। बाँक-पना=टेढ़ापन=तिर्छीपन। प्रत्यक्ष=आँखों के सामने।

**व्याख्याः**—स्मित बन जाती है..................है सपना।

मेरा अट्टहास मंद हास्य का रूप धारण कर लेता है अर्थात् मैं खिलखिला कर हँसना चाहती हूँ पर लज्जावश संकुचित होकर मन्द मन्द मुस्कराकर रह जाती हूँ और मेरी आंखें तिर्छी हो जाती हैं। मुझमें एक ऐसी विचित्र मादकता भर जाती है कि मेरे नेत्रों के सम्मुख उपस्थित प्रत्यक्ष वस्तुयें भी मुझे स्वप्न तुल्य प्रतीत होती हैं।

**शब्दार्थः**—सपने=कल्पनायें। कलरव=मधुर ध्वनि=सुख=आनन्द। संसार=जीवन=पक्षी जगत्। आँख खोल रहा=जगरहा=प्रारंभ होरहा। अनुराग=प्रेम। समीर=पवन=वातावरण। तिरता=तैरता हुआ=उड़ता हुआ। इतराता सा=इठलाता सा।

**व्याख्याः**—मेरे सपने...............सा डोल रहा।

जिस प्रकार स्वप्न काल ( रात्रि ) की समाप्ति पर चिड़ियों का संसार जागकर सुन्दर ध्वनि करने लगता है और मधुर स्वर लहरी हवा की लहरों पर तैरती हुई इठलाती फिरती है उसी प्रकार मेरी कल्पनाओं की समाप्ति पर जब मेरे आनन्द का जीवन प्रारंभ हुआ और यह आनंद प्रेम के वातावरण में समाकर इठला उठा।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद का भाव आगे के तीसरे पद में जाकर पूर्ण होगा।

**शब्दार्थः**—यौवन=तीव्रता। वैभव=भावनाओं की विभूति। सत्कृत=सत्कार।

**व्याख्या:**—अभिलाषा अपने..............दूरागत को।

हृदय की अभिलाषा अपनी पूर्ण तीव्रता के साथ जब उस आनन्द का सत्कार करने लगी और अपने जीवन भर की शक्ति और भावनाओं की विभूति से जब उसने बहुत दूर से आये हुए ( कठिनता से प्राप्त ) उस आनन्द ( मनुके मिलन ) का स्वागत करना चाहा।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में मनु के प्रेम की चर्चा करके श्रद्धा ने इस ओर संकेत किया है कि—केवल पुरुष ही स्त्री के प्रेम का पिपासु नहीं होता बल्कि स्त्री भी पुरुष के प्रेम की प्राप्ति के लिए तड़पती है।

**शब्दार्थः**—किरनों का=साहस का। रज्जु=डोर=सहारा। समेट लिया=खींचलिया=बटोर लिया। अवलंबन=आश्रय=सहारा। रस=प्रेम। निर्झर=झरना। धँस=प्रवेश करके। शिखर=चोटी। प्रति=ओर।

**व्याख्या:**—किरनों का रज्जु..................के प्रति बढ़ती।

तुमने साहस की वह किरण-डोर खींच ली जिसके सहारे मैं प्रेम के झरने में प्रवेश करके आनन्द के शिखर की ओर बढ़ती।

**विशेषटिप्पणी:**—( १ ) उक्त पद में कवि ने एक ऐसे दृश्य का रूपक खड़ा किया है मानो एक ऊँचा पर्वत है। उसमें से झरना बह रहा है। झरने के जल के परे एक युवती खड़ी है जिसकी आकांक्षा उस पर्वत के शिखर पर पहुँचने की है पर वह तैरने की कला से अनभिज्ञ है। उसी समय उसकी दृष्टि जल की ओर जाती है और वह पर्वत के शिखर पर से लटकती हुई एक रस्सी देखती है। उसका मन आशा और प्रसन्नता से खिल उठता है। अपनी आशा की पूर्ति के लिये वह रस्सी पकड़ने का प्रयत्न करती है पर उसी समय पर्वत के शिखर पर बैठी एक अन्य रमणी उस रस्सी को ऊपर खींच लेती है और जल के परे खड़ी युवती की लहलहाती हुई आशारूपी लता पर सहसा तुषारपात हो जाता है। वह अपने लक्ष्य सिद्धि से वंचित हो जाती है।

( २ ) उक्त पद में रूपक के उपादान निम्न हैं—पर्वत-आनन्द। निर्झर-प्रेम। डोर-साहस । पथिक युवती-श्रद्धा। डोर खींचने वाली रमणी-लज्जा।

( पृष्ठ-६१ )

**शब्दार्थ:**–हिचक=झिझक। कलरव=मधुर शब्द। अधरों पर आकर रुकना=ओठों तक आकर रुक जाना=कुछ कह न सकना।

**व्याख्या:**—छूने में हिचक,..............सहसा रुकती हैं।

श्रद्धा कहती है कि:–मैं मनु को स्पर्श करना चाहती हूँ तो लज्जावश मेरे मन में एक प्रकार की झिझक का अनुभव होता है। उन्हें आँखें भरकर देखना चाहती हूँ तो पलकें नीचे की ओर झुक जाती हैं। मधुर परिहास पूर्ण बातें हृदय से उमड़ती हैं पर ओठों तक आकर सहसा रुक जाती हैं; आगे नहीं बढ़ पाती हैं अर्थात मैं उनसे जो कुछ भी कहना चाहती हूँ लज्जावश कह नहीं पाती।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने लज्जा के प्रमुख लक्षणों का विश्लेषण बड़े ही अनुपम ढंग से कर दिया है यथा-हिचकना, आँखें भरकर न देख सकना, मन की बात न कह सकना आदि।

**शब्दार्थ:**—संकेत कर रही=कह रही। रोमाली=रोम समूह=रोम–रोम। बरजती=टोकती=विरोध करती=मना करती। भ्रम में पड़ी रही=अर्थ न खुल पाया।

**व्याख्या:**—संकेत कर रही...... ......पड़ी रही।

श्रद्धा कहती है कि:–मनु को आलिंगन या स्पर्श करने की भावना ज्यों हीं मेरे मन में उत्पन्न होती है त्योंहीं मेरे शरीर के रोम-समूह खड़े होकर मानो मुझे ऐसा करने से मना करते हैं। इस प्रकार मैं कुछ कह सकने या कर सकने में असमर्थ अवश्य हो जाती हूँ पर मेरी काली भौंहें अपनी चंचलता प्रदर्शित करके मेरे हृदय के प्रेम की भाषा का भाव व्यक्त कर देती हैं बशर्ते कोई इस भाव की भाषा को पढ़ सकने वाला हो अर्थात् मेरी भौंहों के संकेत का अर्थ उस समय तक स्पष्ट न होगा जब तक मनु स्वयं इसका अनुभव न करेंगे।

**शब्दार्थ:**—परवशता=विवशता। स्वच्छन्द=स्वतंत्र। सुमन=ऋतु की प्रेरणा से पुष्प=यौवन की प्रेरणा से उठे भाव। बीन रही=चुन रही।

**व्याख्या:**—तुम कौन ? हृदय की·····················बीन रही !"

श्रद्धा प्रश्न करती हुई कहती है कि:—तुम कौन हो ? क्या तुम्हारा ही दूसरा नाम विवशता है ? जो तुम मेरी स्वतंत्र भावना का अपहरण कर रही हो। मेरे जीवन में यौवन की प्रेरणा से स्वाभाविक रूप से जो भाव उत्पन्न हुए थे उसे तुमने उसी प्रकार विकसित होने से रोक दिया है जिस प्रकार वन में ऋतु की प्रेरणा से स्वतः पुष्पित पुष्प को कोई चुन ले जाता है।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने इस ओर स्पष्ट संकेत कर दिया है कि:—जब नारी के हृदय में लज्जा का प्रवेश होता है तब लाख चाहने पर भी क्रियात्मक रूप से वह कुछ भी नहीं कर पाती है।

**शब्दार्थ:**—संध्या की लाली=आश्रय= शरीर धारण करना। छाया प्रतिमा= छाया मूर्ति=सूक्ष्म शरीर वाली।

**व्याख्या:**—सन्ध्या की लाली··············उत्तर देती सी।

सायंकाल की लालिमा के सदृश शरीर वाली, सुनहली किरणों के से हास्य वाली, सूक्ष्म शरीर धारिणी लज्जा, श्रद्धा के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए धीरे से बोली।

**विशेषटिप्पणी:**—(१) उक्त पद में लज्जा की छाया मूर्ति के भ्रम में न पड़ना चाहिये वास्तव में श्रद्धा ने जो प्रश्न किये थे उनका उत्तर उसकी बुद्धि स्वयं दे रही है।

(२) प्रेम और लज्जा दोनों का रंग लाल माना जाता है। इसीसे कवि ने छाया-मूर्ति के शरीर और हास्य की कल्पना संध्या की लालिमा से की है।

**शब्दार्थ:**—चमत्कृत=चमकना=चौंकना। उपकार=हित। पकड़=रोक।

**व्याख्या:**—"इतना न चमत्कृत·············सोच विचार करो।

लज्जा श्रद्धा के प्रश्नों का उत्तर देती हुई कहती है कि:—हे बाले ! मुझे देखकर तुम इतना न चौंको वल्कि मेरे उपदेश पर ध्यान देकर अपने मन पर नियंत्रण रखकर अपना हित साधन करो। जो स्त्रियाँ प्रेम के आवेश में उतावली होकर अपना अनिष्ट करने पर तत्पर होती हैं उनके आवेशपूर्ण मन

के लिए मैं एक 'रोक हूँ'। अतएव तुम जो कुछ करने जा रही हो उसके परिणाम पर ध्यान देकर मेरी बातों पर थोड़ा सा रुककर विचार करलो।

**विशेष टिप्पणी:**—(१) उक्त पद में "मैं एक पकड़ हूँ" के द्वारा कवि ने श्रद्धा के प्रश्नों यथा–तुम कौन हो? सारी स्वतंत्रता छीन रही हो आदि का सटीक उत्तर प्रस्तुत कर दिया है।

(२) आगे के ग्यारह छन्दों में यौवन का वर्णन है जिसके अंत में लज्जा को यौवन की धात्री बताकर कवि ने उसे युवतियों की हितसाधिका सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है।

**शब्दार्थ:**—अंबर=आकाश। चुम्बी=छूने वाली=चुंबन करने वाली। अंबर-चुम्बी=ऊँची। हिम=बर्फ। शृंङ्गों=चोटियों। कलरव=मधुर शब्द। कोलाहल=शोर गुल=हाहाकार=ध्वनि। प्राणमयी=चेतनामयी। धारा=लहरें। उन्माद=उमंग=मौज=मस्ती।

**व्याख्या:**—अम्बर चुम्बी··········उन्माद लिये।

आकाश को छूने वाली पर्वत की ऊँची चोटियों पर जमे हुए बर्फ के पिघलने से जल की धारायें जिस प्रकार का मधुर कोलाहल ( ध्वनि ) करती हुई बहती हैं। यौवन काल में भी भावों के फूटने से वैसी ही मधुर गूँज हृदय में व्याप्त हो जाती है। जीवन में इस यौवन के पदार्पण करते ही चेतना की मस्ती भरी लहरें उत्पन्न करती हुई विद्युत के समान धारा मन में बहने लगती है।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में यौवन के प्रथम चरण की उत्तम झाँकी प्रस्तुत की गई है।

**शब्दार्थ:**—मंगल=मांगलिक या शुभ लक्षण सम्पन्न। कुंकुम=रोली। श्री=शोभा। सुहाग=सौभाग्य। इठलाना=इतराना। हरियाली=प्रसन्नता।

**व्याख्या:**—मंगल कुंकुम की············हरियाली।

जिस प्रकार रोली को एक मंगलसूचक शोभा की वस्तु माना गया है उसी प्रकार सुन्दरता से युक्त यौवन काल जीवन का सबसे अधिक शुभ काल है। यौवन काल के आते ही शरीर के अन्दर ऊषा से भी अधिक निखरी हुई लालिमा छा जाती है। उसमें एक प्रकार की ऐसी हरियाली या प्रसन्नता व्याप्त हो जाती है कि

सुन्दर तथा भोला सौभाग्य इतराता फिरता है। भाव यह है कि यौवन काल में मन और शरीर सभी पर एक नयी कान्ति विराजने लगती है और हृदय आनन्द से उमंगित हो उठता है।

## ( पृष्ठ-६२ )

**शब्दार्थः**—कल्याण=सुख=आनन्द। वासंती=वसन्त ऋतु। वन-वैभव=वन का ऐश्वर्य=वन की ऐश्वर्य शालिनी वस्तुयें यथा-हरे भरे खेत, खिले पुष्प, मौर से युक्त रसाल वृन्द, पक्षियों का चहकना। पंचम स्वर=मधुर कूक=उत्कृष्टता= उत्तमता। पिक=कोकिल।

**व्याख्याः**—हो नयनों का..............स्वर पिक सा हो।

यौवन काल नेत्रों के लिए बड़ा ही कल्याणकारी होता है अर्थात् दर्शकों के नेत्रों को वह सुख देता है तथा वह आनन्द रूपी पुष्प के समान प्रफुल्लित रहता है अर्थात् इस काल में खिले हुए पुष्प के समान आनन्द अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। वसन्त ऋतु के आगमन पर वन की सभी ऐश्वर्य शालिनी वस्तुओं में जिस प्रकार कोकिल का पंचम स्वर में कूकना पृथक रूप से पहचान में आ जाता है उसी प्रकार जीवन की सभी विभूतियों में यौवन की उत्कृष्टता स्पष्ट रूप से झलकती है।

**शब्दार्थः**—गूँज उठे= भर उठे। मूर्च्छना=मधुर तान। रमणीय=सुन्दर।

**व्याख्याः**—जो गूँज उठे.............बन ढलता था।

यौवन काल का प्रभाव मानव के नस नस में व्याप्त होकर मधुर तान के समान मचलने लगता है अर्थात् जिस प्रकार कोकिल की तान सुनने वालों के रोम रोम में छा जाती है उसी प्रकार यौवन का दर्शन करने मात्र से ही उसका माधुर्य दर्शक की नस नस में व्याप्त होकर उमड़ पड़ता है। इतना ही नहीं साँचे के सदृश दर्शकों के नेत्रों में प्रवेश करके यौवन सुन्दर रूप के दृश्यों में परिणित हो जाता है। भाव यह है कि यौवन काल में सभी वस्तुयें आकर्षक और सुन्दर प्रतीत होती हैं।

**शब्दार्थः**—नयनों=नेत्रों । नीलम की घाटी=काली पुतलियाँ । रस-घन=रस भरे बादल । कौंध=बिजली की चमक ।

**व्याख्याः**—नयनों की नीलम········पाती हो ।

यौवन काल के आगमन के साथ ही नीलम के पर्वतों की घाटियों में उमड़ने वाले जल भरे बादलों के सदृश काली काली पुतलियों वाली स्त्रियों की आँखों में रस भर जाता है और जिस प्रकार उन बादलों में विद्युत की बाहरी चमक के साथ साथ भीतर शीतल जल भी भरा रहता है उसी प्रकार यौवन काल में रूप की बाहरी चकाचौंध या चमक के साथ साथ अन्तर ( हृदय ) में प्रेम की शीतल धारा भी प्रवाहित रहती है । भाव यह है कि यौवन का वाह्य और अन्तरंग दोनों ही रूप विशिष्टता से पूर्ण रहता है ।

**शब्दार्थः**—हिल्लोल=आनन्द । ऋतु-पति=वसंत । गोधूली= सांध्यवेला=संध्या । ममता=करुणा=अनुराग । मध्याह्न=दोपहर ।

**व्याख्याः**—हिल्लोल भरा···········मध्याह्न निखरता हो ।

यौवन काल के अन्तर्गत वसंत ऋतु का सा आनन्द सांध्य वेला की सी करुणा ( अनुराग ) प्रभात काल की सी जाग्रति और दोपहर का सा तीव्रतम ओज निहित रहता है अर्थात् जिस प्रकार वसंत ऋतु के आगमन पर प्रकृति सौन्दर्य और हरियाली से परिपूर्ण होकर सबके मन को मुग्ध कर लेती है उसी प्रकार यौवन काल के आते ही मानव शरीर स्वस्थ और सुन्दर तथा मन प्रेम की उमंग से भर जाता है तथा अपनी विशिष्टता से दर्शकों के मन को मुग्ध कर लेता है । जिस प्रकार सांध्य वेला दिन के थके और झुलसे व्यक्तियों को घनी छाया और विश्राम देकर अपनी करुणा या ममता प्रकट करती है उसी प्रकार यौवन युवतियाँ संसार के ताप से दग्ध और कार्य भार से शिथिल अपने प्रेमियों को कोमल कर के शीतल स्पर्श और चितवन की स्निग्धता से विश्राम देकर अपना अनुराग अथवा अनुग्रह प्रकट करती हैं । जिस प्रकार रात व्यतीत होने पर प्रातः काल होते ही संसार के प्राणी जागकर अपने भावी कार्य का चिन्तन करते हैं उसी प्रकार किशोरावस्था की भूलों से शिक्षा ग्रहण करके यौवन काल में उत्तरदायित्व वहन करने की ओर दृष्टि जाती है । दोपहर के समय जिस प्रकार सूर्य

की किरणें अपनी प्रखरता की चरम सीमा पर पहुँच जाती हैं उसी प्रकार यौवन काल में शरीर की सभी शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हो जाती हैं।

**शब्दार्थः**—हो चकित=चौंककर। सहसा=अकस्मात्। प्राची के घर=पूर्व दिशा के आकाश। नवल=नवीन। बिछले=फिसले। मानस=सरोवर=मन। लहरों=तरंगों=भावों।

**व्याख्याः**—हो चकित निकल..............लहरों पर से।

जिस प्रकार पूर्व दिशा के आकाश से चाँदनी चौंककर ( आश्चर्यचकित होकर ) इधर उधर झाँकती ( देखती ) है, उसी प्रकार यौवन काल में सौन्दर्य शरीर से सहसा ( अकस्मात् ) फूट कर इधर उधर झाँकता है ( इस उस को देखता है )। जिस प्रकार नवीन चांदनी सरोवर की लहरों पर पड़कर फिसल जाती है उसी प्रकार भावों से लहराते हुए प्रेमियों के हृदय रूप ( सौन्दर्य ) की चाँदनी को सँभाल नहीं पाते। भाव यह है कि युवकाल में मनुष्य अपने सौन्दय पर गर्व करके इठलाता फिरता है और उसके नेत्र इधर उधर ताक झाँक की कला का प्रदर्शन करते हैं तथा उसका मन उसके वश में नहीं रहता।

**शब्दार्थः**—फूलों=पुष्पों=हृदयों। पंखड़ियाँ=भाव। बिखरें=फैले। अभिनंदन=स्वागत। मकरंद=पुष्परस=प्रेम का रस=पराग। कुंकुम=केसर।

**व्याख्याः**—फूलों की.............कुंकुम चन्दन में।

यौवन का अभिनन्दन करने के लिए फूल अपनी कोमल पंखड़ियों को विखेर देते हैं और स्वागतार्थ केसर मिश्रित चन्दन के समान कुसुम अपने रस व अपने हृदय में रक्षित रखते हैं।

## ( भाव पक्ष में )

यौवन के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करने के लिए प्रेमियों के हृदय अपनी भाव-निधि ( भाव का भंडार ) खोल देते हैं और इसके स्वागत सत्कार के लिये अपने प्रेम-रस की केसर और चन्दन को सुरक्षित रखते हैं।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कुंकुम और चन्दन दोनों के एक साथ प्रयुक्त होने का अभिप्राय–मकरंद में पीले पराग के घुलन और काव्य में निर्दिष्ट अनुराग के रंग में साम्य स्थापन प्रतीत होता है।

**शब्दार्थ:**–किसलय=कोंपल=पल्लव=नवीन पत्ते। मर्मर=वह ध्वनि जो पत्तों के हिलने से उत्पन्न होती है। रव=ध्वनि=शब्द। जय घोष=जय ध्वनि=जय के नारे। उत्सव=पर्व=कोई मांगलिक या प्रसन्नता का अवसर।

**व्याख्या:**—कोमल किसलय..........आनंद मनाते हों।

'किसी सम्राट् के आगमन पर स्वागतार्थ जिस प्रकार 'महाराज की जय' की ध्वनि चारों ओर गूँज उठती है उसी प्रकार यौवन महाराज के आगमन पर कोमल पल्लव अपनी मर्मर ध्वनि से उसके विजय-की घोषणा करते हैं। जिस प्रकार कुछ लोग मिलकर कोई आनन्दोत्सव मनाते हैं उसी प्रकार यौवन काल में सुख और दु:ख के सम्मिश्रण से जीवन का उत्सव मनाया जाता है।

६२

( पृष्ठ–६३ )

**शब्दार्थ:**—उज्ज्वल=शुभ्र=सुन्दर=मंगलमय। चेतना=चैतन्य प्राणियों से तात्पर्य है। सौन्दर्य=सुन्दरता। अनन्त=अपार=असंख्य। अभिलाषा=इच्छा। सपने=कामना। जगते रहते हैं–बने रहते हैं।

**व्याख्या:**—उज्ज्वल वरदान चेतना............जगते रहते हैं।

यौवन चैतन्य प्राणियों के लिए भगवान के दिए हुए शुभ्र वरदान के सदृश है और इसी को लोग सौन्दर्य नाम से पुकारते हैं। यौवन काल जीवन की वह अवस्था है जिसमें असंख्य इच्छाओं की पूर्ति की कामना सदैव बनी रहती है भाव यह है कि यौवन भगवान की अनुपम देन है और इसी का दूसरा नाम सौन्दर्य है तथा इस काल में मन में असंख्य कल्पनायें उठती रहती हैं।

**शब्दार्थ:**—चपल=चंचल यौवन। धात्री=धाय=संरक्षिका। गौरव=गरिमा=प्रतिष्ठा। ठोकर=आघात=पतन। धीरे से=सहृदयता से=शांतिपूर्वक।

**व्याख्या:**—मैं उसी चपल की धात्री हूँ······उसको धीरे से समझाती।

लज्जा श्रद्धा से अपना परिचय देती हुई कहती है कि—हे श्रद्धा ! मैं उसी चंचल यौवन की धाय या संरक्षिका हूँ और नारी जाति को गरिमा तथा महत्ता के साथ व्यवहार करना सिखलाती हूँ। इतना ही नहीं जीवन में आने वाली बाधाओं या ठोकरों से बचने के लिए धीरे से आगाह कर देती हूँ। भाव यह है कि जिस प्रकार धाय अपने संरक्षण में रहने वाले चंचल बालक की पल पल रक्षा करती है और उसे गौरव, महानता का पाठ पढ़ाती है तथा मार्ग में लगने वाली ठोकरों से आगाह करती हुई उससे बचे रहने का आदेश देती है उसी प्रकार लज्जा समस्त नारी जगत की संरक्षिका बनकर नारी मात्र को गरिमा और महत्ता के साथ व्यवहार करने का पाठ पढ़ाती है और जब यौवन की उमंग में उन्मत्त होकर नारी उच्छृंखलता की ओर बढ़ती है और पतन के मार्ग की ओर अग्रसर होने लगती है तब लज्जा चुपचाप सहृदयता के साथ उसके हृदय में कह देती है कि यदि इस ओर बढ़ी तो गर्त में गिर जाओगी।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने लज्जा को चपल यौवन की धात्री सिद्ध करके विशिष्ट गुणों पर अनुपम प्रकाश डाला है।

**शब्दार्थ:**—देव-सृष्टि=देव जाति। रति=कामदेव की पत्नी=एक देवी। पंच बाण=काम देव=काम देव के पांच बाण द्रवण, तापन, शोषण मोहन और उन्माद हैं। आवर्जन=निषेध।

**व्याख्या:**—मैं देव-सृष्टि की··············संचित हो।

लज्जा श्रद्धा से अपना परिचय देती हुई कहती है कि:—मैं इस पृथ्वी पर देव जाति के निवास के समय रानी रति के नाम से प्रसिद्ध थी और प्रलय काल में उस जाति का विनाश हो जाने पर मुझे अपने पति कामदेव से बिछुड़ जाना पड़ा। तब से मैं निषेध की दीन मूर्ति मात्र रह गई हूँ अर्थात् जिस प्रकार पहले देवियों के मन में प्रबल उत्तेजना उत्पन्न करने की शक्ति मुझ में थी अब वह शक्ति मुझ में नहीं रह गई है। इसी कारण अपने असन्तोष की भावना को एकत्र करके—

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त-पद का भाव आगे के छन्द में पूरा होगा।

**शब्दार्थः**—अवशिष्ट=शेष। अतीत=अतीतकाल=भूतकाल। लीला=प्रणय लीला=प्रणय-क्रीड़ा। विलास=भोग। अवसाद=थकावट। अवसादमयी=थकावट से पूर्ण। श्रम-दलिता=श्रम से चूर।

**व्याख्याः**—अवशिष्ट रह गई..........श्रम-दलिता सी।

लज्जा श्रद्धा से कहती है कि:—अब तो मैं अपनी भूतकालीन असफलता के संस्कार स्वरूप अनुभव मात्र में शेष रह गई हूँ और मुझ में तीव्रता का आवेग उसी प्रकार कम हो गया है जिस प्रकार प्रणय-क्रीड़ा में भोग के बाद श्रम से चूर होने के कारण उत्साह पूर्ण मन में खिन्नता और सशक्त शरीर में थकावट का अनुभव होता है। भाव यह है कि लज्जा के भाव में अनुभव की विशेषता रहती है उच्छृंखलता का लेश मात्र भी नहीं।

**शब्दार्थः**—प्रतिकृति=प्रतिमा=मूर्ति। शालीनता=विनम्रता। नूपुर=घूँघरू।

**व्याख्याः**—मैं रति की प्रतिकृति..............लिपट मनाती हूँ।

मैं रति कीप्रतिमा लज्जा हूँ और नारीमात्र को विनम्रता का पाठ पढ़ाती हूँ तथा मस्त रमणियों के पैरों में घुँघरू के समान लिपटकर उन्हें उच्छृंखलता वश पतन के गर्त में गिरने से मनाकर रोक लेती हूँ। भाव यह है कि जिस प्रकार नर्तकी के पैरों में घुँघरू रहने से उसकी गति में अधिक बन्धन और संयम आ जाता है उसी प्रकार लज्जा मस्त तथा सुन्दर रमणियों की उच्छृंखलता पर पूर्ण नियंत्रण रख कर उन्हें संयमित जीवन व्यतीत करने को वाध्य करती है।

**शब्दार्थः**—लाली=लालिमा। कपोलों=गालों। अंजन=काजल। कुंचित= बल खाती हुई। अलकों=लटों=बालों। घुँघराली=घूँघरदार=गोल, लच्छे दार। मरोर=ऐंठन।

**व्याख्याः**—लाली बन............बन कर जगती।

लज्जा श्रद्धा से कहती है कि:—मैं रमणियों के सरल गालों में लालिमा बन कर रहती हूँ और उनके नेत्रों में काजल के समान प्रतीत होती हूँ अर्थात् मेरे कारण (लज्जा का अनुभव करके) रमणियों के सरल गाल लाल हो जाते हैं और बिना अंजन की आँखें काजल से युक्त प्रतीत होती हैं। बल खाती हुई घुँघराली लटों के समान मैं (लज्जा) रमणियों के मन में ऐंठन (टीस) उत्पन्न

**व्याख्या:**—मैं उसी चपल की धात्री हूँ·····उसको धीरे से समझाती।

लज्जा श्रद्धा से अपना परिचय देती हुई कहती है कि—हे श्रद्धा! मैं उसी चंचल यौवन की धाय या संरक्षिका हूँ और नारी जाति को गरिमा तथा महत्ता के साथ व्यवहार करना सिखलाती हूँ। इतना ही नहीं जीवन में आने वाली बाधाओं या ठोकरों से बचने के लिए धीरे से आगाह कर देती हूँ। भाव यह है कि जिस प्रकार धाय अपने संरक्षण में रहने वाले चंचल बालक की पल पल रक्षा करती है और उसे गौरव, महानता का पाठ पढ़ाती है तथा मार्ग में लगने वाली ठोकरों से आगाह करती हुई उससे बचे रहने का आदेश देती है उसी प्रकार लज्जा समस्त नारी जगत की संरक्षिका बनकर नारी मात्र को गरिमा और महत्ता के साथ व्यवहार करने का पाठ पढ़ाती है और जब यौवन की उमंग में उन्मत्त होकर नारी उच्छृंखलता की ओर बढ़ती है और पतन के मार्ग की ओर अग्रसर होने लगती है तब लज्जा चुपचाप सहृदयता के साथ उसके हृदय में कह देती है कि यदि इस ओर बढ़ी तो गर्त में गिर जाओगी।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने लज्जा को चपल यौवन की धात्री सिद्ध करके विशिष्ट गुणों पर अनुपम प्रकाश डाला है।

**शब्दार्थ:**—देव-सृष्टि=देव जाति। रति=कामदेव की पत्नी=एक देवी। पंच बाण=काम देव=काम देव के पांच बाण द्रवण, तापन, शोषण मोहन और उन्मांद हैं। आवर्जन=निषेध।

**व्याख्या:**—मैं देव-सृष्टि की···············संचित हो।

लज्जा श्रद्धा से अपना परिचय देती हुई कहती है कि:—मैं इस पृथ्वी पर देव जाति के निवास के समय रानी रति के नाम से प्रसिद्ध थी और प्रलय काल में उस जाति का विनाश हो जाने पर मुझे अपने पति कामदेव से बिछुड़ जाना पड़ा। तब से मैं निषेध की दीन मूर्ति मात्र रह गई हूँ अर्थात् जिस प्रकार पहले देवियों के मन में प्रबल उत्तेजना उत्पन्न करने की शक्ति मुझ में थी अब वह शक्ति मुझ में नही रह गई है। इसी कारण अपने असन्तोष की भावना को एकत्र करके—

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद का भाव आगे के छन्द में पूरा होगा।

**शब्दार्थ:**—अवशिष्ट=शेष। अतीत=अतीतकाल=भूतकाल। लीला=प्रणय लीला=प्रणय-क्रीड़ा। विलास=भोग। अवसाद=थकावट। अवसादमयी=थकावट से पूर्ण। श्रम-दलिता=श्रम से चूर।

**व्याख्या:**—अवशिष्ट रह गई............श्रम-दलिता सी।

लज्जा श्रद्धा से कहती है कि:—अब तो मैं अपनी भूतकालीन असफलता के संस्कार स्वरूप अनुभव मात्र में शेष रह गई हूँ और मुझ में तीव्रता का आवेग उसी प्रकार कम हो गया है जिस प्रकार प्रणय-क्रीड़ा में भोग के बाद श्रम से चूर होने के कारण उत्साह पूर्ण मन में खिन्नता और सशक्त शरीर में थकावट का अनुभव होता है। भाव यह है कि लज्जा के भाव में अनुभव की विशेषता रहती है उच्छृंखलता का लेश मात्र भी नहीं।

**शब्दार्थ:**—प्रतिकृति=प्रतिमा=मूर्ति। शालीनता=विनम्रता। नूपुर=घूँघरू।

**व्याख्या.**—मैं रति की प्रतिकृति...............लिपट मनाती हूँ।

मैं रति कीप्रतिमा लज्जा हूँ और नारीमात्र को विनम्रता का पाठ पढ़ाती हूँ तथा मस्त रमणियों के पैरों में घुँघरू के समान लिपटकर उन्हें उच्छृंखलता वश पतन के गर्त में गिरने से मनाकर रोक लेती हूँ। भाव यह है कि जिस प्रकार नर्तकी के पैरों में घुँघरू रहने से उसकी गति में अधिक बन्धन और संयम आ जाता है उसी प्रकार लज्जा मस्त तथा सुन्दर रमणियों की उच्छृंखलता पर पूर्ण नियंत्रण रख कर उन्हें संयमित जीवन व्यतीत करने को वाध्य करती है।

**शब्दार्थ:**—लाली=लालिमा। कपोलों=गालों। अंजन=काजल। कुंचित=बल खाती हुई। अलकों=लटों=बालों। घुँघराली=घूँघरदार=गोल, लच्छेदार। मरोर=ऐंठन।

**व्याख्या:**—लाली बन............बन कर जगती।

लज्जा श्रद्धा से कहती है कि:—मैं रमणियों के सरल गालों में लालिमा बन कर रहती हूँ और उनके नेत्रों में काजल के समान प्रतीत होती हूँ अर्थात् मेरे कारण (लज्जा का अनुभव करके) रमणियों के सरल गाल लाल हो जाते हैं और बिना अंजन की आँखें काजल से युक्त प्रतीत होती हैं। बल खाती हुई घुँघराली लटों के समान मैं (लज्जा) रमणियों के मन में ऐंठन (टीस) उत्पन्न

करती हूँ अर्थात् जिस प्रकार घुँघराले बालों में एक प्रकार की एँठन होती है उसी प्रकार लज्जाशील स्त्रियों के भी मन में एक प्रकार की एँठन या टीस उत्पन्न होती है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने लज्जा को संयम और सौन्दर्य दोनों की पोषिका सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है।

**शब्दार्थ:**—किशोर सुन्दरता=वे सुन्दरियाँ जो अभी किशोरावस्था में हैं। हल्की=धीमी=थोड़ी। मसलन=दबाव=रगड़=उँगलियों से किसी वस्तु को दबाते हुए मलना या रगड़ना।

**व्याख्या:**—चंचल किशोर सुन्दरता की······जो बनती कानों की लाली।'

लज्जा श्रद्धा से कहती है कि:—मैं किशोरावस्था की चंचल सुन्दरियों की रखवाली ( रक्षा ) करती रहती हूँ अर्थात् सुन्दर किशोरियों के मन जब चंचल हो उठते हैं तब मैं उन पर नियंत्रण रखकर उन्हें उच्छृंखल होकर पतन के गर्त में गिरने से बचाती हूँ। वह साधारण मसलन हूँ जो कानों की लालिमा बन जाती है अर्थात् जिस प्रकार हाथ की उँगलियों से कानों को हल्का हल्का मसलने ( रगड़ने ) से वे लाल हो जाते हैं और इस क्रिया से थोड़ी सी पीड़ा अवश्य होती है पर कानों में लालिमा आ जाने से उनका सौन्दर्य बढ़ जाता है उसी प्रकार लज्जा के नियंत्रण में रहने वाली रमणी यद्यपि कुछ क्षुब्ध अवश्य हो जाती है पर संयम के कारण प्रेम में अनुपम माधुर्य आ जाता है।

( पृष्ठ-६४ ) ६३

**शब्दार्थ:**—पथ=मार्ग=निर्दिष्ट कर्मों की तालिका। निविड़=घना=घोर। निशा=अनिश्चित भविष्य। संसृति=जगत=संसार। आलोकमयी=प्रकाश से पूर्ण=आशाभरी। रेखा=किरण=सहारा।

**व्याख्या:**—"हाँ" ठीक, परन्तु··········रेखा क्या है?

लज्जा के कथन पर विश्वास करती हुई श्रद्धा उससे कहती है कि:—तुम जो कुछ कहती हो, वह सब सच है। पर मुझे इस बात का उत्तर दो कि मैं

अपने जीवन को किस मार्ग पर चलकर बिताऊँ अर्थात् कर्म-क्षेत्र में किस मार्ग का अनुसरण करना मेरे लिए उचित होगा। संसार रूपी इस घोर रात्रि में मेरे लिए प्रकाश की किरण कहाँ से प्राप्त होगी? भाव यह है कि निश्चित भविष्य पर विश्वास करके बैठ रहना उचित नहीं है जीवन-मार्ग में आगे बढ़ने के लिए कोई आश्रय या सहारा अवश्य चाहिए अतएव तुम ( लज्जा ) मुझे ( श्रद्धाको ) उसी सहारे का संकेत करो।

**शब्दार्थ:**—दुर्बलता=शारीरिक बल की हीनता। अवयव=शरीर। सबसे=प्रकृति के अन्य प्राणियों विशेषतः पुरुष जाति से।

**व्याख्या:**—यह आज समझ तो..........हारी हूँ।

श्रद्धा लज्जा से कहती है कि:—आज इतनी बात मुझे ज्ञात हो गई, कि नारी होने के फल स्वरूप मैं निर्बल तथा बलहीन हूँ। शरीर की सुन्दर कोमलता प्राप्त करने के ही कारण मैं ( नारी मात्र) सबसे पराजित हुई हूँ। भाव यह है कि ईश्वर ने नारी जाति के शरीर को सुन्दर और कोमल बनाया है पर उसकी कोमलता शारीरिक बल की हीनता की द्योतक है। अपने इसी अभाव के कारण नारी जाति सभी से सदैव पराजित होती रही है।

**शब्दार्थ:**—ढीला=परवश=पराधीन। अपने ही=स्वतः=बिना किसी प्रकार के दबाव के। घनश्याम खंड=काले बादलों के टुकड़े।

**व्याख्या:**—पर मन भी क्यों..........भर आता है?

श्रद्धा शारीरिक अभाव की बात छोड़कर मन की निर्बलता को स्पष्ट करती हुई लज्जा से कहती है कि:—थोड़ी देर के लिए शरीर की बात छोड़ दी जाये पर मैं पूछती हूँ कि मेरा यह मन अपने आप ही क्यों पराधीन होता जा रहा है? और जल से पूर्ण बादल के टुकड़ों के समान मेरी आँखें आँसुओं से क्यों भर आई हैं? भाव यह है कि जिस प्रकार बादल का कार्य तथा स्वभाव बिना किसी के कहे जल बरसना है उसी प्रकार प्रेम करना भी नारी का स्वभाव है।

**शब्दार्थ:**—समर्पण=न्यौछावर। महातरु=विशाल वृक्ष। छाया=आश्रय। ममता=इच्छा=कामना। माया में=मोहमयी।

**व्याख्या:**—सर्वस्व समर्पण··········माया में ?

श्रद्धा लज्जा से कहती है कि:—विश्वास रूपी विशाल वृक्ष की छाया में अपना सब कुछ अर्पण करके चुपचाप पड़े रहने की मोहमयी कामना मेरे हृदय में क्यों उत्पन्न होती है ? अर्थात् जिस प्रकार कठोर ग्राम के कष्ट से दुःखी तथा झुलसा हुआ व्यक्ति जब किसी विशाल वृक्ष की छाया में पहुँचता है तो उसकी इच्छा होती है कि अब यहीं इस वृक्ष की छाया में चुपचाप पड़ा रहूँ और आगे न बढ़ूँ तो अच्छा है उसी प्रकार मेरे मन में ऐसी मोहमयी कामना क्यों उत्पन्न होती है कि मैं किसी पुरुष का महान विश्वास प्राप्त करके उसपर अपना सब कुछ न्यौछावर कर दूँ और उसके आश्रय में अपना जीवन चुपचाप व्यतीत कर दूँ। भाव यह है कि—आज मन में किसी से प्रेम करके अपना सर्वस्व समर्पण करने की भावना क्यों उत्पन्न हो रही है ?

**शब्दार्थ:**—छाया पथ=आकाश गंगा। तारक द्युति=तारिका का प्रकाश। झिलमिल करने की=टिमटिमाने की। लीला=भावना। अभिनय=क्रीड़ा। निरीहिता=भोलापन। श्रम शीला=श्रम का जीवन।

**व्याख्या:**—छाया पथ में········निरीहता श्रम-शीला ?

श्रद्धा लज्जा से कहती है कि:—मेरे हृदय में ऐसी मधुर कामना क्यों क्रीड़ा कर रही है ? कि आकाश गंगा में मंद मंद टिमटिमाने वाली तारिका के सदृश मैं अपने जीवन का ध्येय स्थिर करलूँ अर्थात् न तो मैं अपने अस्तित्व को बिल्कुल मिटा देना चाहती हूँ और न तो मैं सूर्य और चन्द्र जैसे महान व्यक्तित्व वाले अपने व्यक्तित्व को प्रधानता ही देना चाहती हूँ। इस प्रकार मैं कोमलता, भोलेपन और श्रम के जीवन को क्यों पसन्द करती हूँ ?

**शब्दार्थ:**—निस्संबल=बिना सहारे के। मानस=सरोवर=मन। गहराई=गहरापन=गम्भीरता। जागरण=जागृति। सपने=भावनायें। सुघराई=सुन्दरता।

**व्याख्या:**—निस्संबल होकर ·····इस सुघराई में।

श्रद्धा लज्जा से कहती है कि:—मैं अपने मन की गहराई में बिना सहारे के ही तैरती हूँ और अपनी भावना की सुन्दरता में पड़ी रहना चाहती हूँ। मैं अन्य

किसी प्रकार की जागृति नहीं चाहती। भाव यह है कि:—जिस प्रकार गहरे सरोवर में तैरने वाला प्राणी किसी भी समय सहारे की आवश्यकता का अनुभव करता है उसी प्रकार मैं गंभीरता पूर्वक विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुँचती हूँ कि एकाकी जीवन बिताने से मैं आश्रयहीन बनी रहूँगी। जब मैं अपनी इस सुन्दर भावना में डूब कर सोचती हूँ कि पुरुष का आश्रय पाकर मुझे फिर कुछ करना शेष नहीं रहेगा तो फिर मैं अन्य किसी प्रकार की जागृति की कल्पना कभी भी करना नहीं चाहती।

**शब्दार्थ:**—चित्र=सत्य=सत्ता=रहस्य। विकल=इधर, उधर=अस्त-व्यस्त। अस्फुट=टेढ़ी सीधी। आकार=जन्म।

**व्याख्या:**—नारी-जीवन............को देती हो।

श्रद्धा लज्जा से कहती है कि:—क्या तुम नारी जीवन को एक चित्रकार की तूलिका से इधर उधर टेढ़ी सीधी रेखाओं को खींच कर उनमें रंग भर देने के सदृश, त्वचा की सीमा में हड्डियों और नसों का एक ढाँचा मात्र समझती हो? अर्थात् क्या नारी जीवन की यही परिभाषा या चित्र है जो मैंने तुम्हें अपने शब्दों द्वारा अभी खींच कर दिखलाया है? भाव यह है कि—चित्रकार अपनी तूलिका द्वारा जब टेढ़ी सीधी रेखाओं में इधर उधर रंग भरता है तब उसमें एक कला-कृत्ति ( चित्र ) निर्मित हो जाती है उसी प्रकार नारी का शरीर त्वचा की सीमा में हड्डियों और नसों का एक ढाँचा मात्र है पर जब लज्जा का आवरण इस पर पड़ता है तब उसमें अपूर्व रम्यता आ जाती है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में 'चित्र' शब्द का प्रयोग विशेष रूप से 'सत्ता' के अर्थ में हुआ है।

( पृष्ठ—६५ )

**शब्दार्थ:**—अनुदिन = रात दिन। बकती=ऊट पटाँग बातें सोचती।

**व्याख्या:**—रुकती हूँ और..................अनुदिन बकती।

श्रद्धा लज्जा से कहती है कि:—मैं भावावेश में आकर कुछ करने का निश्चय

करके बीच बीच में कभी कभी कुछ रुक जाती और ठहर जाती हूँ पर मेरी यह रुकावट कुछ सोचने विचारने या अपने लक्ष्य को बदलने के अभिप्राय से नहीं होती। एक बार मैंने जो निश्चय कर लिया वह कर लिया। जिस प्रकार कोई उन्मादिनी नारी रात दिन ( नित्य ) कुछ ऐसी बड़ बड़ाती रहती है कि उसकी एक बात का तारतम्य दूसरी बात से नहीं रहता अर्थात् एक बात का दूसरी बात से लगाव रखे विना वह व्यर्थ की बातें बकती रहती है उसी प्रकार मेरा मन भीतर ही भीतर रात दिन न जाने कैसी कैसी ऊट पटाँग बातें सुझाता रहता है।

**शब्दार्थ:**—तोलने = अधिकार करने। उपचार=प्रयत्न=उपाय। तुल जाना= अधिकार में होना। भुज-लता=बाँह रूपी लता। नर-तरु=पुरुष रूपी वृक्ष। झूले सी=पालने के समान। झोंके खाना=धक्के खाना=आकर्षण के बन्धन में आना।

**व्याख्या:**—मैं जभी तोलने.................. ......खाती हूँ।

पुरुष के प्रति नारी की आसक्ति की चर्चा करती हुई श्रद्धा लज्जा से कहती है कि:— जब मैं पुरुष पर अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न करती हूँ तो स्वयं उसके अधिकार में पड़ कर उसके हाथों बिक जाती हूँ। इस प्रकार अपनी बाँह रूपी लता को पुरुष रूपी वृक्ष में फँसा कर मैं झूले के समान झोंके खाने लगती हूँ। भाव यह है कि जिस प्रकार वृक्ष को बाँधने का प्रयत्न करती हुई लता अपने लघु भार के कारण स्वयं उसमें लटक कर फँसी रह जाती है उसी प्रकार नारी अपनी शारीरिक और मानसिक दुर्बलता के कारण पुरुष को अपने वश में कर सकने में असमर्थ रहती है विपरीत इसके वह स्वयं पुरुष की चेरी बन जाती है।

**शब्दार्थ:**—अर्पण=आत्म समर्पण। उत्सर्ग=त्याग। दे दूँ=त्याग कर दूँ= दान दे दूँ। न फिर कुछ लूँ = फिर कुछ न लूँ=स्वार्थ का संबंध न रखूँ।

**व्याख्या:**—इस अर्पण में ....................सरल झलकता है।

श्रद्धा लज्जा से कहती है कि:—मेरे आत्मसमर्पण में अन्य कुछ भी नहीं बल्कि त्याग की भावना भरी रहती है। इसका सीधा सा अर्थ यह है कि मैं केवल अपना दान कर दूँ पर किसी से कुछ भी न लूँ। भाव यह है कि:—नारी पुरुष के सम्मुख अपना आत्मसमर्पण स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि त्याग के लिए करती

है। नारी का भोला हृदय केवल देना जानता है उसने किसी से कुछ लेना नहीं सीखा हैं।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने नारी के अनुपम त्याग का वर्णन बड़े ही सरल ढंग से किया है।

**शब्दार्थ:**—क्या कहती हो=तुम क्या कह रही हो=आश्चर्य की बात है। ठहरो=रुको=अपनी बात बन्द करो। संकल्प=दृढ़ निश्चय। सोने से सपने=सुनहली साधें=सुन्दर भावनायें।

**व्याख्या:**—क्या कहती हो······· ············सोने से सपने।

लज्जा श्रद्धा से कहती है कि:—हे नारी! यह तुम क्या कह रही हो, रुको, तुम्हारी बातों को सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे समझाने के पूर्व ही तुमने अपने जीवन की सुनहली साधों (सुन्दर भावनाओं) को अपनी आँखों की अंजली में आँसुओं का जल भर कर दृढ़ निश्चय का मंत्र पढ़ते हुए किसी को दान में दे डाला है। भाव यह है कि पुरुष के कारण नारी का जीवन चाहे जितना भी कष्टकर क्यों न हो, उसका सारा जीवन रोते ही रोते भले ही बीत जाये पर वह पुरुष के लिए बराबर त्याग करती जाती है। त्याग करना उसका स्वभाव है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने 'संकल्प अश्रुजल' के प्रयोग द्वारा दान देने के विधान में अंजली में जल भर कर मंत्रोच्चारण करने की विधि की ओर स्पष्ट संकेत कर दिया है।

**शब्दार्थ:**—श्रद्धा=आस्था=विश्वास। रजत-नग=रुपहला। पर्वत=कैलाश। पगतल=तलहटी। पीयूष=अमृत=मधुर। स्रोत=सोता=झरना।

**व्याख्या:**—नारी! तुम केवल·················समतल में।

लज्जा श्रद्धा से कहती है कि:—हे नारी! तुम श्रद्धा की मूर्ति हो अर्थात् तुम्हारा ही दूसरा नाम श्रद्धा है। जिस प्रकार कैलाश पहाड़ के पग (तलहटी) की सम भूमि में मीठे जल के सोते बहते रहते हैं उसी प्रकार पुरुष पर अपार विश्वास करती हुई तुम प्रेम की धारा से जीवन के मार्ग को सम (बराबर) अथवा सुगम और सुखमय करती हुई उसे सुन्दर बना डालो। भाव यह है कि नारी

पुरुष के अभावों पर ध्यान न देकर उस पर अटूट विश्वास रखती है और अपने अनुपम प्रेम श्रद्धा और त्याग से उसके जीवन को सुखमय बना देती है ।

**शब्दार्थ:**—देवों=सद् विचारों। दानवों=असद् विचारों। नित्य विरुद्ध= स्वभावत: विरोधी ।

**व्याख्या:**—देवों की विजय……………………विरुद्ध रहा।

लज्जा श्रद्धा से कहती है कि:—हृदय के अन्तर्गत अच्छे और बुरे विचारों का स्वभावत: विरोध होने के कारण उनमें बराबर संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष ( युद्ध ) में अंत में अच्छे विचारों की जय और बुरे विचारों की पराजय होती है। भाव यह है कि मन के अच्छे और बुरे विचारों के अन्तर्द्वन्द्व में अच्छे विचारों की जीत ध्रुव है ।

**शब्दार्थ:**—स्मिति-रेखा=मुस्कान। संधि-पत्र=आत्म-समर्पण की प्रतिज्ञा ।

**व्याख्या:**—आँसू से भींगे……………………लिखना होगा ।

नारी के आत्म-समर्पण की विवशता को लक्ष्य करके लज्जा श्रद्धा से कहती है कि:—जिस प्रकार एक पराजित जाति को विजेता के सम्मुख अपना सब कुछ समर्पण कर देने के लिए बाध्य होना पड़ता है और फलस्वरूप विजेता की ओर से प्रस्तुत किए गये संधिपत्र की शर्तों को ज्यों का त्यों स्वीकार करके उसपर हस्ताक्षर कर देना पड़ता है तथा पराजित जाति इसके विरुद्ध रंचमात्र भी ननुनच नहीं कर सकती उसी प्रकार जब नारी विवश होकर पुरुष के सम्मुख झुक जाती है तो उसे अपने मन की सभी इच्छाओं को उसे अर्पित कर देना पड़ता है। ऐसा करने में चाहे कष्ट से नारी को अपनी आँखों के आँसुओं से अपना अंचल ही क्यों न भिगो देना पड़े पर उसे सर्वस्व समर्पणकी प्रतिज्ञा ओठों पर मुस्कान की रेखा लाकर करनी होगी। भाव यह है कि—जब प्रेम के वशीभूत होकर नारी पुरुष के चरणों में अपना जीवन अर्पण कर देती है तब उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करने का साहस नहीं होता।

# प्यारा भारतवर्ष

**संदर्भः**—प्रस्तुत कविता "प्यारा भारत वर्ष" स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद जी के राष्ट्र-प्रेम और मातृ-भूमि के प्रति अटल अनुराग की एक ज्वलंत झाँकी है। इसमें उन्होंने राष्ट्र की पावन भूमि और उसके प्राचीन गौरव की चर्चा करके मातृ-भूमि के ऋण से मुक्त होने के लिए बलिदान का अनुपम सन्देश प्रसारित किया है।

( पृष्ठ–६६ )

**शब्दार्थः**—हिमालय के आँगन=आर्यावर्त=भारतवर्ष। उसे=भारतवर्ष को। प्रथम किरणों का=उस सूर्य की किरणों का जो संसार में सर्व प्रथम प्रकट हुआ था। अभिनन्दन=स्वागत=सम्मान। हीरक-हार=हीरों का हार=यहाँ ओस की बूँदों से तात्पर्य है जिन पर किरणें पड़ रही थीं। आलोक=प्रकाश। व्योम=आकाश। अखिल=संपूर्ण। संसृति=सृष्टि=संसार। अशोक=दुःख रहित।

**व्याख्याः**—हिमालय के आँगन में·········हो उठी अशोक।

कवि भारतवर्ष की प्रशंसा करते हुए कहता है कि:—ऊषा ( ऊषा काल ) ने भारतवर्ष को हिमालय के आँगन मे सूर्य की प्रथम किरणों का उपहार दिया। उसने ( ऊषा ने ) हँसकर ( प्रसन्नता पूर्वक ) उसका ( भारतवर्ष का ) सम्मान किया और ओस की बूँदरूपी हीरों का हार पहना दिया। तात्पर्य यह है कि सृष्टि के आदि में सर्व प्रथम सूर्य भारतवर्ष में ही प्रकट हुआ। प्रातः काल होने पर हम भारतवासी जग गये, संसार को जगाने लगे और संसार में पुनः प्रकाश फैल गया। आकाश में व्याप्त अंधकार–समूह नष्ट हो गया और संपूर्ण संसार दुःख रहित हो गया। भाव यह है कि—इसी भारतवर्ष में गंगा तथा सिन्धु के जल से प्रक्षालित भूमि में भारतीय सभ्यता का उदय हुआ था और यहीं से सभ्यता विश्व के अन्य देशों में गई थी।

**शब्दार्थः**—वाणी=सरस्वती देवी। कमल-कोमल-कर=कमल के समान मुलायम हाथ। प्रतीत=प्रेम पूर्वक। सप्त स्वर=संगीत के सात स्वर=सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। सप्त सिंधु=वह प्रदेश जो आर्यों का आदिम निवास-स्थान था=पंजाब से तात्पर्य है। साम-संगीत=सामवेद का गान=वैदिक काल से तात्पर्य है। अरुण-केतन=लाल झंडा। वरुण-पथ=समुद्र। अभीत=निर्भय।

**व्याख्या:**—विमल वाणी ने..............................बढ़े अभीत।

प्रलय की चर्चा करते हुए कवि कहता है कि:—विमल ( सुन्दर ) सरस्वती देवी ने कमल के समान कोमल हाथों में प्रेम पूर्वक वीणा को धारण किया और पंजाब में सप्त स्वरों का आविर्भाव हुआ तथा सामवेद का गान होने लगा। अर्थात् सर्वप्रथम अक्षरों का उच्चारण पंजाब में हुआ और तदनन्तर शब्द-शक्ति का विकास होता गया। होते होते ( विकास करते करते ) शब्द-शक्ति विकास की अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई और लोग देवताओं की आराधना वेदों के द्वारा करने लगे। हमने ( भारत वासियों ने ) बीज रूप से संसार को नष्ट होने से बचाया और प्रलय काल की ठंढक नाव पर रहकर झेली। हम ( भारत वासी ) उस समय लाल झंडा लेकर निर्भय होकर समुद्र में घूमते फिरते थे।

**विशेष टिप्पणी:**—( १ ) बचा कर बीज रूप से......बढ़े अभीत। का तात्पर्य यह है कि प्रलय के समय केवल मनु अपनी नौका पर बच रहे थे और पुनः उन्हीं के द्वारा मानव सृष्टि हुई।

( २ ) जब प्रलय हुआ था तब भगवान मनु ने संसार के सब प्राणियों का एक-एक जोड़ा नाव पर रख लिया था और इस प्रकार उन्होंने बीज रूप से संसार की प्रलय भर रक्षा की थी। प्रलय के बाद उन्हीं जीवों से फिर इतना बड़ा संसार हो गया। प्रलय भर वह नाव जल में घूमती फिरती रही।

( ३ ) कुछ विद्वानों का मत है कि उक्त प्रलय संपूर्ण विश्व में न होकर किसी विशेष स्थल पर ही हुआ था और उस स्थान के कुछ जीव बचा लिए गये थे।

( ४ ) ईसाइयों और मुसलमानों में भी इसी प्रकार की मिलती जुलती घटना का उल्लेख मिलता है।

( ५ ) कुछ लोगों का मत है कि सृष्टि प्रारंभ सप्त सिन्धु पंजाब से हुआ था।

**शब्दार्थ:**—दधीचि=एक ऋषि थे, इन्होंने लोक-हित के लिए वृत्रासुर को मारने के निमित्त वज्र बनाने के लिए इन्द्र को अपनी हड्डी दे दी थी। जातीयता विकास=जातीय या राष्ट्रीय उन्नति। पुरन्दर=इन्द्र। पवि=वज्र। अस्थि=हड्डी। विस्तृत=लम्बा चौड़ा=विशाल। निर्वासित=श्री रामचन्द्र जी से तात्पर्य है। भग्न=टूटी हुई। मग्न=डूबी हुई=रत्नाकर। राह=पुल।

**व्याख्या:**—सुना है दधीचि का.............................वह राह ।

जातीय उत्कर्ष और राष्ट्रीय उत्थान की चर्चा करते हुए कवि कहता है कि:—महर्षि दधीचि का अस्थि-दान और हमारा जातीय उत्कर्ष विश्व विदित है और इन्द्र ने अपने वज्र से हमारे अस्थि-युग का इतिहास लिखा है अर्थात् प्राचीन काल में हमारे देशवासी हड्डियों का अस्त्र-शस्त्र बनाकर प्रयोग करते थे इसका प्रमाण दधीचि की हड्डियों से बना इन्द्र का वज्र था । महान विस्तृत और अगाध समुद्र में एक देश निर्वासित युवक श्री रामचन्द्र जी के द्वारा पाटकर राह ( पुल ) बनाने के उत्साह के प्रमाणस्वरूप टूटा-फूटा और समुद्र में डूबा हुआ सेतुबन्धु रामेश्वर ( लंका का पुल ) अब भी दिखाई पड़ रहा है ।

**विशेष टिप्पणी:**—( १ ) यूरोपीय विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में एक अस्थि युग था जब लोग हड्डियों के बने शस्त्रों का प्रयोग करते थे। दधीचि की हड्डियों से बने वज्र की चर्चा द्वारा कवि ने इसी ओर संकेत किया है साथ ही भारतीय उदारता और परोपकारिता की झांकी भी प्रस्तुत कर दी है ।

( २ ) वनवासी रामचन्द्र ने समुद्र समान गंभीर और विस्तीर्ण उत्साह से बंदरों की सहायता से समुद्र के ऊपर लंका जाने के लिए पुल बनवाया था। रामेश्वरम् और सिंहल ( लंका ) के बीच में कुछ टापू दिखाई देते हैं, वे इसी के भग्नावशेष बताये जाते हैं । कहा जाता है शेषांश जल में डूब गया है ।

**शब्दार्थ:**—बलि=बलिदान=जीव-हिंसा । विजय केवल लोहे की नहीं=भारतवासियों ने तलवार से नहीं प्रत्युत प्रेम और धर्मोपदेश द्वारा विश्व-विजय किया था । भिक्षु=संसार त्यागी बौद्ध ।

**व्याख्या:**—धर्म का ले लेकर...............घर घर घूम ।

बौद्ध संस्कृति की चर्चा करते हुए कवि कहता है कि—धर्म के नाम पर विश्व में जो पशु बलिदान किये जाते थे वे बन्द कर दिए गये । हमारे ही द्वारा संसार को शांति का सन्देश प्राप्त हुआ । सब को आनन्द देकर, सब को सुख पहुँचाकर ही हम प्रसन्न होते थे । हमने तलवार के बल पर ही देश नहीं जीते प्रत्युत धर्म की भी संसार में धूम थी । हमारे सम्राट भिक्षु होकर रहते थे और जन-

**विशेषटिप्पणी:**—'कहीं से हम आये थे नहीं'—के द्वारा कवि ने इस ऐतिहासिक मत का खंडन किया है कि—आर्य लोग मध्य एशिया या दक्षिणी द्वीप समूह अथवा अन्य कहीं बाहरी देश से भारत में आये हैं। कवि का प्रबल मत है कि आर्यों का आदि-स्थान भारतवर्ष ही है और यहीं से लोग अन्यत्र गये हैं।

**शब्दार्थ:**—उत्थान पतन=उन्नति एवं अवनति। पूत=पवित्र। संपन्न=संपत्ति-युक्त। गर्व=अभिमान। विपन्न=दुखी=विपत्ति में पड़े हुए।

**व्याख्या:**—जातियों का उत्थान पतन··········देख न सके विपन्न।

कवि भारत के पूर्व गौरव की चर्चा करते हुए कहता है कि:—जातियों की उन्नति और अवनति देखने का अवसर हमें (हमारे देश को) मिला है अर्थात् अनेक जातियाँ हमारे सामने बनी बिगड़ीं। आँधी, वर्षा आदि को खड़े होकर हमने देखा और हँसकर टाल दिया क्योंकि हम प्रलय में पले हुए वीर थे। तात्पर्य यह है कि संसार की अनेक जातियों के उत्कर्षापकर्ष की प्रचंड आँधी चलती रही और वायु के उन झोंकों को हमने खड़े होकर देखा और सहन किया क्योंकि हम कठिन से कठिन आपत्ति को सहन करने वाले वीर हैं। हमारे चरित्र में पवित्रता थी, भुजाओं में अपार शक्ति थी और हम नम्रता से परिपूर्ण थे। हमारे हृदय में देश का गौरव और गर्व भरा हुआ था और हम किसी को दुख से दुखी नहीं देख सकते थे अर्थात् प्राणी मात्र के कष्ट को दूर करने के लिए हम हर समय सन्नद्ध रहते थे।

(पृष्ठ–६७)

**शब्दार्थ:**—संचय में=एकत्र करने के भाव में=इकट्ठा करने में। अतिथि=मेहमान। देव=देवता। टेव=पूरा करने की आदत। रक्त=खून। दिव्य=पवित्र=सुन्दर=श्रेष्ठ।

**व्याख्या:**—हमारे सञ्चय में था दान········वही हम दिव्य आर्य संतान।

कवि अपने देश (भारतवर्ष) के अतीत और वर्तमान की चर्चा करते हुए कहता है कि:—हम दान करने के ही लिए धन या वस्तु आदि का संग्रह करते

थे और हमारे अतिथि देवता लोग होते थे अर्थात् देवताओं को भी हमारा आतिथ्य स्वीकार करने के लिए हमारे द्वार पर आना पड़ता था। हम सत्य भाषण करने वाले, तेजस्वी हृदय वाले और अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रह कर उस पर मर मिटने वाले थे। आज भी हमारे शरीर में वही वीरता पूर्ण रुधिर प्रवाहित हो रहा है। हमारा देश भी पूर्ववत उसी गौरव से परिपूर्ण है। हमारे अन्दर वही प्राचीन साहस भरा हुआ है और उसी प्रकार का ज्ञान भी हमारे अन्दर विराज रहा है। हमारे अन्दर शान्ति और शक्ति भी उसी प्रकार विद्यमान है और हम उन्हीं श्रेष्ठ आर्यों की सन्तान हैं।

**शब्दार्थः**—जियें=जीवित रहें। अभिमान=आत्म गौरव। निछावर=अर्पण= समर्पण=बलिदान।

**व्याख्याः**—जियें तो सदा········हमारा प्यारा भारत वर्ष।

कवि निष्कर्ष पर पहुँचता हुआ कहता है कि:—हम भारतवासियों का प्रमुख कर्तव्य है कि हम अपने देश के कल्याण के लिए ही जीवन धारण करें और इसके गौरव पर सदैव गर्व करें तथा अवसर पड़ने पर प्रसन्नतापूर्वक अपना सब कुछ इसके लिए बलिदान कर दें। हमारा भारतवर्ष हमें अत्यन्त प्रिय है।

## अरी वरुणा की शान्त कछार

**संदर्भ**—प्रस्तुत कविता 'अरी वरुणा की शान्त कछार' की रचना स्वर्गीय जयशंकरप्रसाद जी ने मूलगन्ध कुटी विहार के उपलक्ष में की थी। इसके अन्दर कवि प्रसाद ने ऐतिहासिक वातावरण का उत्कर्षमय चित्रण बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है तथा इस प्रगीति में आध्यात्मिक आशा और निराशा के सुन्दर रूप दृष्टिगोचर होते हैं।

**शब्दार्थः**—वरुणा=एक छोटी सी नदी है जो काशी के उत्तर बहती हुई गंगा जी से मिल जाती है। कछार=नदी या समुद्र के पास की वह नीची और नम भूमि जहाँ तक बाढ़ या ज्वार का पानी चढ़ जाता है=देवार या दियार की भूमि।

सतत=लगातार=निरंतर । व्याकुलता = विह्वलता=कष्ट । विश्राम=शान्ति=आराम । नश्वरता=नाश होने का भाव । पादप=वृक्ष । पुञ्ज=समूह । व्यापार=कार्य= व्यवहार । वसुधा=पृथ्वी=भूमि । शुचि=पवित्र । सन्धि=मिलन=संयोग=संघठन ।

**व्याख्या**—अरी वरुणा की शान्त कछार'·····गूँजता था जिससे संसार ।

कवि बौद्धकालीन भारत की झाँकी प्रस्तुत करने के लिए वरुणा नदी की तलहटी को लक्ष्य बनाकर ( संबोधन करके ) कहता है कि—ऐ वरुणा नदी की शान्त तलहटी ! तू तपस्वी गौतम के वैराग्य के प्रेम की प्रतीक है अर्थात् तुझे गौतम के वैराग्य और त्याग का स्नेह प्राप्त हुआ है । निरन्तर संसार के दुःख और कष्ट से पीड़ित मानव को तू विश्राम देने वाली है तथा तू ऋषि-मुनियों के कानन की कुंज है और इस संसार के विनाश से रक्षा करने में तुम्हारे लता-वृक्ष और पुष्प-समूह सहायक रहे हैं । तुम्हारी तलहटी में निर्मित साधु सन्तों के कुटीरों में शान्ति-पूर्वक सब कार्य व्यवहार होता रहता था और स्वर्गभूमि के पवित्र मिलन अथवा संघटन से संपूर्ण संसार गूँज उठता था भाव यह है कि तपस्वी गौतम ने अपने उपदेशों का केन्द्र स्थान वरुणा नदी की कछार को ही बनाया था और यहीं से जन-कल्याण और प्राणीमात्र के कष्ट निवारण की भावना उत्पन्न हुई थी ।

**शब्दार्थः**—तल्लीन=लीन=तत्पर । दर्शनों=दर्शन शास्त्रों । वाद=बहस= विवाद=व्याख्यान प्रतियोगिता । प्रादुर्भाव=उद्भव । उत्पत्ति=विकास महिमा । स्निग्ध=चिकना=स्नेह युक्त । परिषद=गोष्ठी=बैठक=सभा ।

**व्याख्याः**—'अरी वरुणा की शान्त कछार'''हृदय का कितना है अधिकार ।

कवि वरुणा की शान्त कछार को संबोधन करके कहता है कि—ऐ तपस्वी के वैराग्य के स्नेह की मूर्ति ! शान्त वरुणा की कछार ! तुम्हारे कुञ्जों के अन्दर बड़ी तत्परता के साथ दर्शनशास्त्र पर वादविवाद हुआ करते थे और तुम्हारे ही क्षेत्र में देवताओं का उद्भव हुआ करता था, तथा स्वर्गीय स्वप्नों का संवाद मिला करता था । तुम्हारे शान्त वृक्षों की छाया में बैठकर सभा समितियों में लोग अपने अच्छे विचार प्रकट किया करते थे और उससे मस्तिष्क और हृदय के बलाबल का निर्णय हो जाता था

**शब्दार्थः**—पार्थिव=भौतिक=स्थूल । वक्ष भरा=भरी छाती ( सिद्धार्थ की ) ।

शैशव-शुलभ=वात्सल्य प्राप्त=गौतम पुत्र राहुल से तात्पर्य है। निदान=उपचार। आरण्यक=वेदका अंश विशेष=वन जात। तथागत=गौतम बुद्ध। प्रेयसी=प्रेमिका=पत्नी=यहाँ यशोधरा से तात्पर्य है।

**व्याख्या:**—अरी वरुणा की शान्त कछार"""तथागत आया तेरे द्वार।

वरुणा की शान्त कछार को लक्ष्य करके कवि कहता है कि:—ऐ तपस्वी गौतम के वैराग्य की प्यारस्वरूप वरुणा की शीतल तलहटी! तेरे ही द्वार पर ( तुम्हारे पास ) संसार के सारे भोग विलास और अपनी पत्नी के कठिन प्रेम को तथा वात्सल्य प्रेम से पूर्ण अपने हृदय को और पुत्र के वात्सल्यरस से पूर्ण दुलार को त्याग करके दुःख को दूर करने के सच्चे उपचार को लेकर प्राणीमात्र के कष्ट का निवारण करने के लिए या वेद वाक्य सुनाने के लिए गौतम बुद्ध आए थे अर्थात् पुत्र, पत्नी, सांसारिक भोगविलास का त्याग करने के बाद मनः शान्ति के लिए तथा अपने उपदेशों का प्रचार करने के लिए गौतम बुद्ध को तुम्हारा ( वरुणा की शान्त कछार का ) ही आश्रय लेना पड़ा था।

## ( पृष्ठ–६८ )

**शब्दार्थ:**—मुक्ति-जल=मोक्ष साधन का तत्व। शीतल= सुख और शान्ति तिमिर=अंधकार=अज्ञान=माया। अमिताभ= अत्यन्त तेजस्वी=अत्यन्त कान्ति वाला। विक्षुब्ध=अशान्त= दुःखी। भव-बन्ध=संसार का बन्धन=माया मोह का बन्धन।

**व्याख्या:**—अरी वरुणा की शान्त कछार"""तुम्हें है यह पूरा अधिकार।

कवि वरुणा की शान्त कछार को सम्बोधित करके कहता है कि:—ऐ तपस्वी के विराग की प्यार वरुणा की शान्त कछार! तुम्हारे आश्रम से मोक्ष प्राप्ति के साधन की वह शान्तिदायक बाढ़ आई जिसने संसार के जलन ( कष्ट ) को शान्त कर दिया और जगत के माया मोह के अज्ञान के अन्धकार को हरण करने तथा संसार के कष्ट के भार को हल्का करने के लिए अत्यन्त तेजस्वी महान कान्ति वाले गौतम बुद्ध अवतरित हुए जिन्होंने देव ऋण तथा संसार के कष्ट से

पीड़ित मानव-मात्र को पुकार कर कहा कि तुम्हें इस संसार के माया मोह के बन्धन और कष्ट को मिटाने का पूर्ण अधिकार है और तुम इसका मोचन कर सकते हो। भाव यह है कि गौतम बुद्ध ने सर्वप्रथम वरुणा की तलहटी में बसे सारनाथ में अपना उपदेश दिया। संसार के कष्ट का निवारण कर मोक्ष-प्राप्ति का सुगम साधन बताया।

**शब्दार्थः**—अतिवाद=सांसारिक मोहमाया। सुगति=अच्छी दशा। समुदय=उदित होने की क्रिया=युद्ध=संग्राम।

**व्याख्याः**—अरी वरुणा की शान्त कछार.......साक्षी हैं रवि-चन्द्र।

वरुणा की शान्त कछार को संबोधित करके कवि कहता है कि—ऐ तपस्वी (गौतम) के वैराग्य की प्यार वरुणा की शान्त कछार! तुम्हारे ही आश्रम में घनघोर बादलों की घड़घड़ाहट के समान तपस्वी गौतम ने संसार की मानवता के संदेश का जय-घोष किया था और संसार के प्राणिमात्र को वह पवित्र आदेश दिया जिसके साक्षी आज भी सूर्य-चन्द्र हैं। गौतम बुद्ध ने अपने उपदेश में मनुष्यों को संबोधित करके कहा था कि संसार के माया-मोह और अज्ञान के मार्ग से दूर रहकर तटस्थ मार्ग का अवलम्बन करके अपनी दशा का सुधार कर लो और इस पर ध्यान रखो कि कष्टों की उत्पत्ति और विनाश मनुष्य के कर्म का ही फल है।

**शब्दार्थः**—ध्वंसों=खँडहरों=भग्नावशेषों=नाशों। प्रतिध्वनि=प्रतिशब्द। दिगन्त=दिशाओं की सीमा=क्षितिज। विहार=क्रीड़ास्थल=बौद्ध मठ।

**व्याख्याः**—अरी वरुणा की शान्त कछार.......विराग की प्यार।

कवि वरुणा की शान्त कछार को संबोधित करके कहता है कि—ऐ तपस्वी के विराग की प्यार वरुणा की शान्त कछार! तुम्हारा अतीतकालीन दिव्य अभिनन्दन और उस कीर्ति का स्वच्छ प्रचार संपूर्ण विश्व को सन्देश देकर बार बार धन्य हो उठता है। आज कई शताब्दियों बाद उन खँडहरों से वह ध्वनि उठी है जिसकी प्रतिध्वनि दिग-दिगन्तों में गूँज उठी है और बौद्ध मठ विश्व सन्देश के केन्द्र बन चले हैं। भाव यह है कि बौद्ध मठों के भग्नावशेषों से

भी गौतम बुद्ध के मानवता के सन्देश का आभास प्राप्त होता है। ऐ तपस्वी गौतम के वैराग्य की प्यार वरुणा की शान्त कछार!

## आत्मकथा

**संदर्भ:**—प्रस्तुत प्रगीति "आत्म कथा" स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद जी के 'लहर' 'काव्य-संग्रह' की रहस्यवादी कविताओं में से एक है। इसमें कवि ने अपनी अतीत की स्मृति को कल्पना के तागे में पिरोकर भावों की सुन्दर माला तैयार करने का सफल प्रयत्न किया है। कवि के व्यक्तित्व, उसके मनोवैज्ञानिक चित्रण और उसकी युगेतर कला का दर्शन इसके द्वारा पाठक को सहज ही प्राप्त हो जाता है।

**शब्दार्थ:**—मधुप=प्रेमी=भ्रमर। अनन्त नीलिमा=अपार नीला आकाश। जीवन-इतिहास=जीवन-गाथा। व्यङ्ग्यमलिन=व्यंग्य पूर्ण उदास।

**व्याख्या:**—मधुप गुन गुनाकर......व्यंग्य मलिन उपहास।

जीवन के अवसान और हृदय की मधुर कल्पना, हर्ष-विषाद, उत्थान-पतन आदि के रहस्य की कहानी का उद्घाटन करने के अभिप्राय से कवि जीव और ब्रह्म के संबंध की कथा को मानवीय सुख-दुःख के आधार पर प्रारंभ करता हुआ कहता है कि:—भ्रमर के समान गुन्जार करके मेरे हृदय में कौन अपनी गाथा सुना रहा है? और देखते देखते कितनी घनी पत्तियाँ मुरझाकर मेरे सम्मुख गिर पड़ी हैं। इस प्रकार इस गंभीर और अपार नीले आसमान के नीचे असंख्य जीवन की कहानी चलती रहती है और लोग अपने जीवन का व्यंग्यपूर्ण खिन्न उपहास प्रस्तुत करते रहते हैं। भाव यह है कि यह जीवन नश्वर है, संसार के सारे सुख क्षणिक हैं। यौवन की उमंग में अपने जीवन का विनाश करके लोग उपहास की वस्तु बन जाते हैं। प्रकृति के सौन्दर्य अथवा मानव सौन्दर्य पर मुग्ध होकर लोग अपने स्रष्टा को भूल जाते हैं पर जिसके लिए उससे विरत होते हैं वह अनन्त और अमर नहीं हैं। जिनके प्रेम पर नव यौवनायें अपना यौवन

निछावर करती हैं वे भी संसार में सब दिन नहीं रहते और उनका यौवन पूर्ण जीवन भी नहीं रहता। इस प्रकार एक न एक दिन सभी का अवसान हो जाता है।

**शब्दार्थः**—दुर्बलता=अभाव। बीती=भुक्त। गागर=जीवन=हृदय। रीती=खाली=विषाद पूर्ण।

**व्याख्याः**—तब भी कहते हो............अपनी भरने वाले।

शुष्क जीवन की व्याख्या करते हुए कवि कहता है कि:—जीवन की इस क्षणभंगुरता के तथ्य से परिचित होकर भी भला अपनी कहानी कैसे कही जा सकती है। अपने हृदय के अभाव और दोषों का वर्णन किस प्रकार किया जाय। इस जीवन को विषादपूर्ण पाकर तथा सुख रहित देखकर इस जीवन की कहानी को सुनकर सुनने वाले को भला क्या आनन्द प्राप्त होगा! फिर साथ ही यह भी आशंका है कि श्रोता स्वयं कहीं इस जीवन को शुष्क बनाने वाला तथा इस जीवन के रस को स्वयं ग्रहण करने वाला अपने को ही दोषी न समझ बैठे। भाव यह है कि आत्म समर्पण करने वाला अपने प्रेमी को कभी भी दोषी नहीं ठहराता क्योंकि वह अपना त्याग जान बूझकर अपनी इच्छानुसार ही करता है।

( पृष्ठ–६६ )

**शब्दार्थः**—बिडम्बना=उपहास=परिहास=निन्दा। प्रवञ्चना=छलना। चाँदनी रातों की=आनन्द मय जीवन की=सुखमय रातों की।

**व्याख्याः**—यह विडम्बना!.........उन बातों की।

कवि अपने सुनहरे दिनों की स्मृति की चर्चा करते हुए कहता है कि—अरी भोली! यह उपहास? भला मैं तेरी हँसी कैसे उड़ा सकता हूँ अर्थात् तुम्हारा उपहास मुझसे किया नहीं जा सकता और अपने अभाव ( दोष ) या छलना को दूसरोंके सम्मुख प्रकट नहीं किया जा सकता। अपने जीवन के सुनहले दिनों ( आनन्द तथा क्रीड़ामय दिनों ) तथा खिलखिलाकर हँस हँसकर मधुर बात चीत की सुन्दर कहानी भला कैसे सुनाई जा सकती है।

**शब्दार्थः**—आलिङ्गन=स्पर्धा। अरुण=लाल। अनुरागिणी=प्रेम करने

वाली । ऊषा=ऊषा=सुख=जीवन । सुहाग=सौभाग्य=हास्य । मधुमाया=मधुमास=सुख ।

**व्याख्या:**—मिला कहाँ वह सुख............सुहाग मधुमाया में ।

कवि जीवन के रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहता है कि—जिस सुख का स्वप्न देखकर मैं चैतन्य हो गया था वह मुझे कहाँ मिला ? अर्थात् जिस आनन्द की कल्पना करके मैं सुषुप्ति अवस्था से जागृति अवस्था में आया वह भी मुझे प्राप्त न हो सका । जब मैं आनन्द ( सुख ) को स्पर्श करने ही वाला था कि वह मुस्कराकर ( मेरा उपहास करके ) मुझसे दूर हो गया । जिसके सुन्दर गालों की मदमस्त सुन्दर छाया में प्रेममयी ऊषा ( जीवन ) अपने सौभाग्य के मधुमास ( सुख ) का आनन्द ले रही थी ।

**शब्दार्थ:**—स्मृति=सामग्री =स्मरण । पाथेय=सम्बल=राह-खर्च=मार्ग में साथ की भोजन सामग्री । पन्था=राह=मार्ग-माया मोह आदि । कन्था=गुदड़ी=कथरी । मौन=शान्त=चुपचाप ।

**व्याख्या:**—उसकी स्मृति पाथेय........मैं मौन रहूँ ?

भग्न हृदय का चित्र उपस्थित करते हुए कवि कहता है कि:—हमारे विगत जीवन की स्मृतियाँ श्रांत क्लांत राही के मार्ग की सम्बल ( राह की सामग्री ) के रूप में हैं तो क्या मेरे जीवन की गुदड़ी को उधेड़ कर उसकी सीयन ( सिलाई ) को देखोगे ? भाव यह है कि जीवन के सुखमय दिनों की स्मृतियाँ या विषाद की रेखा को स्मरण करके पुनः उस पर चर्चा करना सुखप्रद नहीं हो सकता । उसे भग्न हृदय में छिपाये रखना ही उत्तम है । इस लघु जीवन ( नश्वर जीवन ) की लम्बी कहानी कहना या हृदय की टीस का वर्णन करना उचित नहीं है बल्कि उत्तम यह है कि दूसरों की करुण कहानी या जीवन कथा सुनकर स्वयं अपने विषय में मौन रहा जाय । भाव यह है कि जीवन के सुख दुःख की स्वान्तः सुखाय अनुभूति ग्रहण करना ही ठीक है ।

**शब्दार्थ:**—भोली=सरल=सीधी । आत्म-कथा=आत्म कहानी ।

**व्याख्या:**—सुनकर क्या तुम............मौन व्यथा ।

कवि अपने विचारों के निष्कर्ष पर पहुँचता हुआ कहता है कि:—मेरी सीधी

सादी आत्म कहानी को सुनने से दूसरों का कोई लाभ नहीं है साथ ही अभी अपने जीवन के रहस्य का उद्घाटन करने का उपयुक्त अवसर भी नहीं आया है क्योंकि मेरे हृदय की वेदना अभी अभी मौन होकर सुप्त हुई है। भाव यह है कि विगत जीवन के विषाद को इस समय मैं भूल सा गया हूँ अतएव उसे स्मरण करके हृदय को दुःखी करना नहीं चाहता।

## अशोक की चिन्ता

**संदर्भः**—प्रस्तुत प्रगीति "अशोक की चिन्ता" स्वर्गीय श्री जयशंर जी प्रसाद के 'लहर' काव्य संग्रह से उद्धृत है। इसकी रचना ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर की गई है। कलिंग विजय में भीषण नर-संहार को देखकर सम्राट अशोक के हृदय पर जो आघात पहुँचा और उसने जीवन की नश्वरता की जो अनुभूति प्राप्त की तथा उसके मन में संसार-विरक्त के जो भाव उठे उसे कवि प्रसाद ने अपनी कल्पना से सँजोकर काव्य कौशल द्वारा विभूषित कर दिया है। इस कथात्मक कविता का मानसिक तथा कलात्मक चित्रण देखते ही बनता है।

**शब्दार्थः**—जीवन पतंग=जीवन रूपी शलभ। लघु=छोटा। क्षण=क्षणिक। शलभ-पुञ्ज=पतिंगों का समूह। अनल शिखा=अग्नि की चोटी या लौ। रक्तिम=लाल।

**व्याख्याः**—जलता है यह जीवन पतंग............क्यों न उठे उमंग?

कवि के शब्दों में जीवन की नश्वरता पर चिन्ता प्रकट करता हुआ सम्राट अशोक कहता है कि:—जीवन रूपी पतंग चिन्ता और विषाद की अग्नि में जलता रहता है। यह मानव जीवन कितना छोटा और क्षणिक है तथा इसका प्रत्येक कण ( भाग ) पतिंगों के समान जलता रहता है। मनुष्य की तृष्णा अग्नि की लौ बनकर अपने जवानी की लालिमा दिखाती रहती है तो फिर यह जीवन-रूपी पतंग उसपर जल मरने को उत्साहित क्यों न हो उठे। भाव यह है कि जवानी मनुष्य को अंधा बना देती है और वह भोगविलास की अभिलाषा, और माया मोह की तृष्णा में फँसकर अपना जीवन नष्ट कर देता है।

**शब्दार्थ:**—पद तल=पैरों के नीचे। विजित=हारा हुआ। दूरागत=दूर से आती हुई। अस्थिर=चंचल।

**व्याख्या:**—है ऊँचा आज मगध शिर........अभिमान भंग?

कलिंग के युद्ध-क्षेत्र में पड़े घायल व्यक्तियों के करुण क्रन्दन से प्रभावित सम्राट अशोक के हृदय में उत्पन्न भावों का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि:—सम्राट अशोक अपने मन में सोचते हुए कहते हैं कि:—यद्यपि आज मेरे शौर्य और साहस से मगध ने कलिंग को पराजित करके अपना मस्तक ऊँचा कर लिया है ( गौरव बढ़ा लिया है )। आज कलिंग परास्त होकर मगध के पैरों तले पड़ा हुआ है तो फिर आज मुझ विजयी सम्राट के गर्व को नष्ट करके दूर से आती हुई घायल व्यक्तियों की करुण ध्वनि मेरे हृदय को चंचल क्यों बना रही है?

( पृष्ठ–७० )

**शब्दार्थ:**—पैनी=तीक्ष्ण। नत=नीचा=झुका हुआ।

**व्याख्या:**—इन प्यासी..................आज हुआ कलिंग।

कलिंग की दशा देखकर सम्राट अशोक कहता है कि:—रक्त की प्यासी तलवारों से, इन तलवारों की तेज धारों से, निर्दयता पूर्ण प्रहारों से और हिंसा पूर्ण भावना की ललकारों से आज कलिंग का सर नीचा हो गया है अर्थात् कलिंग का पतन हो गया है।

**शब्दार्थ:**—गिरि-भार=पहाड़ का सा बोझ। घटा टोप=घटाओं का छा जाना=बादल समूह।

**व्याख्या:**—यह सुख कैसा..................किरणों का प्रसंग!

मानव की शासन-प्रवृत्ति के विषय में चिन्ता प्रकट करता हुआ सम्राट अशोक कहता है कि–मनुष्य में शासन करने की भावना का यह कैसा आनन्द है? और मनुष्य अपने मन का शासन करता है। एक तिनके को पहाड़ के समान बोझिल बना देता है अर्थात् छोटी वस्तु को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। दो दिन के लिए युद्ध के बादलों की घनघोर घटाएँ उठीं और फिर शांत हो गईं तथा

फिर सूर्य चन्द्र की किरणों का क्रम चल पड़ा। भाव यह है कि मानव अपनी पद लोलुपता के अभिमान में दूसरों पर शासन करने के लिए जन-संहार करता है पर जिस जीवन के सुख के लिए वह ऐसा करता है वह जीवन स्वयं नश्वर और क्षण-भंगुर है।

**शब्दार्थ:**—अनङ्ग=देह रहित=कामदेव। आसव=मदिरा।

**व्याख्या:**—यह महादम्भ का········पराजय का कुढंग।

सम्राट अशोक चिन्ता प्रकट करता हुआ कहता है कि:—यह प्रचंड अभिमान की दानवीय प्रवृत्ति वासना की मदिरा पीकर महाभीषण चीत्कार कर चुकी अर्थात् राज्यलिप्सा के अभिमान में मैंने भीषण नर-संहार करके पाप कमा लिया। वास्तव में मनुष्य का कर्तव्य है कि वह जय और पराजय की बुरी भावना और जीवन के बुरे ढंग का त्याग करके प्राणीमात्र को सुख प्रदान करने का प्रयत्न करे।

**शब्दार्थ**—नश्वरता=नष्ट होने का भाव। तुरंग=घोड़ा।

**व्याख्या:**—संकेत कौन············थिरकते हैं तुरंग।

मनुष्य के सद् और असद् विचारों की तुलना करते हुए सम्राट अशोक अपने मन में सोचता है कि:–मानव की वह कौन सी भावना है जो मानवता की ओर संकेत करके साम्राज्य लिप्सा की प्रवृत्ति को नष्ट करती है। विजय की माला को सुखाकर संसार की क्षण भंगुरता का गीत गाती है। इस गीत को सुनकर मन रूपी घोड़े उल्लासहीन हो जाते हैं अर्थात् मानवता के पावन संदेश का ध्यान करके मनुष्य की कलुषित और हिंसापूर्ण भावना दब जाती है।

**शब्दार्थ:**—मधुशाला=मदिरालय=शराब पीने का स्थान। हाला=मदिरा शराब=आसव।

**व्याख्या:**—वैभव की यह·········रहा राग रंग।

संसार के ऐश्वर्य तथा भोग विलास की भावना के विषय में सम्राट अशोक कहता है कि–यह संसार ऐश्वर्य का मदिरालय है और इस ऐश्वर्य की मदिरा का पान करके ही संसार अमानवीय कार्य करने के लिए उन्मत्त हो जाता है और वह उन्माद में गिरता और फिर उठता रहता है। इस प्रकार उसके उन्मादमय जीवन

के प्याले में फिर भी ऐश्वर्य की मदिरा भरी रहती है और इस प्रकार यह क्षण भंगुर राग रंग ( सांसारिक क्रीड़ा ) चलती रहती है।

**शब्दार्थः**—अलकों=लटों=काले काले घुँघराले बालों। मद-नत=उन्माद में झुकी हुई।

**व्याख्याः**—काली काली·········क्षण भंगुर है तरंग।

सम्राट अपने विगत जीवन के विषय में कहता है किः—रमणी ( नारी ) के काले काले घुँघराले बालों और उसकी वासना पूर्ण अलसाई आँखों में तथा हीरे जवाहरात आदि मणिरत्नों की चमकों में और सुख की पिपासापूर्ण लालसाओं में मैंने जीवन और संसार की क्षणभंगुरता की उठती हुई लहरों का आभास पाया है।

( पृष्ठ-७१ )

**शब्दार्थः**—श्लथ=शिथिल=ढीला ढाला। मधुबाला=प्रेयसी।

**व्याख्याः**—फिर निर्जन·········न वहाँ मृदङ्ग।

जीवन के क्षणिक उल्लास और स्थायी विषाद के विषय में सम्राट अशोक कहता है कि—समारोह और उत्सव आदि में रंगरलियों का आयोजन भी कुछ ही समय के लिए होता है इसके बाद वह समारोह भवन सुनसान हो जाता है और नूपुरों की झन्कार शिथिल और शान्त होजाती है तथा प्रेयसी या नर्तकी भी मनोरंजन की क्रिया बन्द करके सो जाती है और मदिरा का प्याला भी खाली होकर दूर लुढ़क जाता है। अब वहाँ वीणा और मृदङ्ग बजने की ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती। इस प्रकार जीवन और संसार की क्षण भंगुरता का स्पष्ट आभास मिल जाता है।

**शब्दार्थः**—विषाद=दुख=चपला=विद्युत। दुख-घन=दुखरूपी बादल। मरु= माया=रेगिस्तान। मरीचिका=मृगतृष्णा। कुरंग=हरिण=मनरूपी हरिण से तात्पर्य है।

**व्याख्याः**—इस नील विषाद-गगन में······ चंचल मन कुरंग।

संसार के माया जाल और दुःख विषाद की चर्चा करके सम्राट अशोक कहता

है कि:—इस विषाद और दुःख-पूर्ण नीले आकाश में दुखरूपी बादलों के बीच में बिजली की क्षणिक चमक के समान सुख की व्याप्ति है और आनन्दपूर्ण नवीन मिलन में चिरकालीन वियोग की मात्रा है। इतना ही नहीं मायारूपी मरुस्थल की मृगमरीचिका में मनरूपी हिरण उलझ गया है। भाव यह है कि यह मन माया मोह में लिप्त होकर दुःख भोग रहा है और परमानन्द से वंचित हो गया है।

**शब्दार्थ:**—सरिता=नदी=जीवन। निषंग=तरकस=तूणीर।

**व्याख्या:**—आँसू कन कन ले·········है निषंग।

मृत्यु की अनिवार्यता को लक्ष्य करके सम्राट अशोक कहता है कि:—जीवन रूपी नदी आँसू (वेदना) की बूँदों को ले लेकर छलछलाती हुई नेत्रों में विषाद की मात्रा भर रही है। संसार के सभी प्राणी अपनी मौज मस्ती में लीन हैं और वियोग के सूने पल भी छूटे जारहे हैं। कालका तरकस खाली नहीं है। भाव यह है कि काल बली से कोई भी बच नहीं पायेगा ऐसा जानते हुए भी मानव इस जीवन की क्षण भंगुरता का अनुभव नहीं कर पा रहा है और माया मोह तथा भोग विलास और रंगरलियों में अपना जीवन नष्ट कर रहा है।

**शब्दार्थ:**—चेतन=चेतना=चैतन्य जीवन। जड़=संसृति=संसार। लय=प्रलय से तात्पर्य है। अभिनयमय=नाटकीय।

**व्याख्या:**—वेदना विकल···········कब से कुढंग।

संसार की परिवर्तनशीलता की चर्चा करते हुए सम्राट अशोक कहता है कि:—यह चैतन्य मानव जीवन-वेदना से पीड़ित है और जड़वत् इस संसार का पीड़ा के साथ नृत्य हो रहा है अर्थात् यह संसार कष्ट से भरा हुआ है। प्रलय की सीमा में कंपन उठ रही है और विश्व का परिवर्तन नाटकीय ढंग से हो रहा है। परिवर्तन की यह बेढंगी प्रणाली आदि काल से चल रही है।

**शब्दार्थ:**—मधु=माधुर्य। पिंगल=एक रंग=छन्द शास्त्र। सुरंग=हिंगुल=नारंगी=सुन्दर=सुरस=जमीन के नीचे का मार्ग।

**व्याख्या**—करुणा गाथा·········सन्ध्या सुरंग।

संसार की परिवर्तनशीलता के प्रसंग में सम्राट अशोक कहता है कि—संसार में करुणा अपनी कहानी सुना रही है, वेदना की वायु बह रही है, ऊषा उदास भाव से आती है और सन्ध्या के समान पीला मुख करके चली जाती है। वनरूपी मधुर जीवन में वेदना सन्ध्यारूपी सुरंग के समान प्रवेश करके क्षणमात्र में अन्धकार (दुख) से आच्छादित कर लेती है। भाव यह है कि इस संसार में दुःख ही दुःख है और जिसका आज उत्थान है उसका कल पतन अवश्य होगा।

**शब्दार्थः**—आलोक=प्रकाश=ज्ञान=सुख। तम=अंधकार। दुख=अज्ञान। विहंग=पक्षी=जीव। कलरव=आमोद प्रमोद।

**व्याख्याः**—आलोक किरन········जाते विहंग।

जीवन की पख शता की चर्चा करते हुए सम्राट अशोक कहते हैं कि:— जीवन में सुख की क्षीण रेखा अवश्य आती है पर वह रेशम की डोर के सदृश वेदना की फाँसी का रूप धारण कर लेती है और गले में बँधकर खिंच जाती है। आँखों की पुतलियाँ कुछ समय तक छटपटाती अवश्य हैं पर पुनः सदा के लिए दुःख पूर्ण अन्धकार के पर्दे में इस प्रकार छिप जाती हैं मानो पक्षी मधुर गान करके सो गये हों। भाव यह है कि मानव जीवन की जिस सुखमय घड़ी को बहुत आनन्द पूर्ण समझता है वह क्षणिक है और इसके बाद दुःख और मौत का ही शिकार होना पड़ता है। निष्कर्ष यह है कि यह मानव जीवन क्षण-भंगुर है।

( पृष्ठ–७२ )

**शब्दार्थः**—झिलना=नीचे ऊपर होना=डूबना उतराना। चटकीला= सुन्दर=सुखमय।

**व्याख्याः**—जब पल भर का····················चटकीला सुमन-रंग।

जीवन की क्षणभंगुरता पर आत्म ग्लानि का भाव प्रकट करते हुए सम्राट अशोक कहता है कि:--जब जीवन में सुख की प्राप्ति पल भर की है और अन्त में इसके वियोग में कष्ट में ही डूबना उतराना है तथा पुष्प रूपी इस जीवन को केवल एक

सुबह ही विकसित होना है और अन्त में सूखकर मिट्टी में मिल जाना है तब जीवन रूपी फूल का रंग इतना चटकीला ( सुन्दर ) क्यों है। भाव यह है कि यह मानव जीवन क्षण भंगुर है और इसमें सुख की प्राप्ति क्षणिक ही है अन्त में दुःख ही दुख है। इसका अंत विनाश है।

**शब्दार्थः**—संसृति=विश्व=आवागमन=सृष्टि । विक्षत=घायल=आहत । अनुलेप=उबटन=सुगंधि ।

**व्याख्याः**—संसृति के विक्षत……… मधु-पान भृंग ।

जीव के आवागमन पर अपना विचार व्यक्त करते हुए सम्राट अशोक कहता है कि:—इस सृष्टि के पग आहत हैं अतएव इनका क्रम डगमग रूप में चलता है अतएव उबटन अथवा सुगंधि के समान ही इससे संबन्ध रखना चाहिये। इस मार्ग पर मधुर पत्तों को बिखेर देना चाहिये अब भ्रमर इसके मधुर पराग का पान कर चुके हैं। भाव यह है कि—यह जीवन तथा संसार क्षण भंगुर है तथा इसके सुख-विलास क्षणिक हैं।

**शब्दार्थः**—वसुधा=पृथ्वी । नग=पहाड़=जीव । अग-जग=संपूर्ण संसार । सिकता=बालू=रेत ।

**व्याख्याः**—भुनती वसुधा……… जीवन पतंग ।

कवि सम्राट अशोक की चिन्ता का निष्कर्ष प्रकट करते हुए कहता है कि:— संपूर्ण पृथ्वी कष्ट की भट्ठी में जल रही है और इस पर के संपूर्ण जीव ( प्राणी ) इस वेदना में तप रहे हैं इस प्रकार सारा संसार दुःखी है। यहाँ प्रत्येक राह ( साधन ) कंटकाकीर्ण है और संसार पथ ( जीवन पथ ) जलते हुए बालू के समान है अतएव इसे पार करने के लिए वरुणा की लहर बनकर वह जाने की आवश्यकता है। यह जीवन रूपी पतंग संसार की वेदना में जलता रहता है।

## प्रलय की छाया

**संदर्भः**—प्रस्तुत कथात्मक कविता 'प्रलय की छाया' स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद जी के 'लहर' काव्य ग्रन्थ से उद्धृत है। इसका मूल स्रोत ऐतिहासिक है।

सन १२६७ ई० में दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने अपने सेनापति उलुग्र खाँ और नुसुर खाँ को गुजरात के बघेल क्षत्री राजा कर्णसिंह को पराजित करने के लिए भेजा। अलउद्दीन की सेना के सम्मुख कर्ण सिंह की सेना न टिक सकी और वह भयभीत होकर युद्धभूमि से भाग खड़ा हुआ और भागकर देवगिरि के राजा रामचन्द्र की शरण में चला गया। इधर उसकी रानी कमलादेवी यवन सेना द्वारा बन्दी बनाकर अलाउद्दीन के पास दिल्लीलाई गई। रानी कमला देवी अनुपम सुन्दरी थी और अलाउद्दीन उसे अपनी पटरानी बनाकर रखना चाहता था। कमला देवी ने उसकी प्रार्थना को ठुकरा दिया और रानी पद्मावती के समान अपने सतीत्व की रक्षा के लिए प्राण त्याग कर देना चाहा पर जवानी की उमंग, वासना की भावना इन दोनों ने अन्त समय तक उसे अपनी आत्म हत्या करने में सफल न होने दिया। वह अपने सतीत्व की रक्षा न कर सकी। कवि प्रसाद ने इस कथात्मक कविता में बन्दिनी कमला के अतीत और वर्तमान जीवन का एक अनुपम चित्र खड़ा कर दिया है साथ ही यौवनागमन से नारी के भीतर सौन्दर्य और स्वप्न का जो संसार जाग्रत हो उठता है उसकी एक उज्ज्वल झाँकी भी प्रस्तुत कर दी है। इसमें विषाद की छाया के साथ साथ प्रकृति और मानव के घात प्रतिघात का भी सफल चित्रण हुआ है। सौन्दर्यानुभूति, मानसिक वेदना, भूल, खेद-प्रकाश, आत्म-ग्लानि आदि के चित्रण में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। उसका मानसिक और कलात्मक चित्रण अपनी पूरी ऊँचाई पर पहुँच कर चमक उठा है।

**शब्दार्थ:**—धूसर=मटमैला रंग=धूमिल। क्षितिज=वह मंडलाकार स्थान जहाँ भूमि और आकाश मिले हुए दिखाई पड़ते हैं। जलधि-वेला=समुद्र तट का समय। रागमयी=प्रेम पूर्ण। सौरभ=सुगन्ध। रंग रलियाँ=क्रीड़ा।

**व्याख्या:**—"थके हुए दिन के ................ भरी रंगरलियाँ।

बन्दिनी रानी कमला अपने विगत जीवन की स्मृति में कहती है कि:— आज भी धूमिल क्षितिज ( अन्तरिक्ष ) में थके हुए दिन के निराशामय जीवन की संध्या हो रही है अर्थात् जिस प्रकार दिन भर का थका सूर्य अन्त में सायंकाल को अपने स्थान को चला जाता है और संसार में अन्धकार छा जाता है उसी प्रकार आज मेरे जीवन में निराशा व्याप्त हो रही है। और अभी पिछले कुछ

ही दिनों की बात है कि समुद्र तट की सांध्य वेला में मेरी जवानी सौन्दर्य की मोहकता से पूर्ण क्रीड़ाओं का खेल सीख रही थी। भाव यह है कि बन्दिनी बनाये जाने से पूर्व मैं अपने पति राजा कर्णसिंह के साथ आनन्द-क्रीड़ा में लीन थी।

**शब्दार्थः**—दूरागत=दूर से आता हुआ। वंशीरव=मुरली की ध्वनि। धीमरों=मछुओं। मुकुल=कली=मंजरी=बौर। रन्ध्र=छिद्र=छेद=दोष।

**व्याख्याः**—दूरागत वंशीरव..............हँसाने को।

अपने विगत जीवन की मदमस्त जवानी की चर्चा करती हुई बन्दिनी कमला कहती है कि:—मल्लाहों की छोटी छोटी नावों से दूर से आता हुआ वंशी का शब्द गूँज रहा था और मेरी यौवनावस्था रूपी मालती पुष्प की कली में उद्दीपन का भाव उत्पन्न करने के लिए रात्रि की नीली किरणें उसमें छिद्र कर रहीं थी अर्थात् स्वच्छ चाँदनी रात के प्रभाव से मेरा मन चंचल होता जा रहा था और मैं काम वासना की भावना से उन्मत्त होती जा रही थी।

( पृष्ठ–७३ )

**शब्दार्थः**—मृदु गन्ध=मादकता। अलकावली=लटों का समूह।

**व्याख्याः**—पागल हुई मैं....................समीर मुझे छूकर।

अपने सौन्दर्यशोज यौवनपूर्ण विगत जीवन के विषय में सोचती हुई बन्दिनी रानी कमला देवी कहती हैं कि:—जिस प्रकार मृग अपनी कस्तूरी की गन्ध से मत्त हो जाता है उसी प्रकार मैं अपनी जवानी की मादकता से उन्मत्त हो उठी थी। मेरी काली बल खाती हुई लटों के समान पश्चिमी समुद्र की लहरें मानों मेरे सौन्दर्य का आलिंगन करने के लिए तट से टकरा रही थीं और वायु भी मेरे यौवन को स्पर्श करके साँस लेरहा था ( जीवन धारण किये हुए था ) भाव यह है कि मेरे सौन्दर्य से जल और वायु भी प्रभावित हो गये थे।

**शब्दार्थः**—स्फूर्तियाँ=उमंगें। विजड़ित=सुसजित=जकड़े से। मधु भार=मादकता। अनंग=कामदेव।

**व्याख्याः**—नृत्य शीला शैशव की .............नतशिर देख मुझे।

बन्दिनी कमला अपने विगत जीवन के विषय में कहती है कि:—नटखट

शैशव काल की उमंगें अब मुझसे दूर जा कर खड़ी होकर हँस रही थीं अर्थात् अब मेरा शैशव काल समाप्त हो चुका था और मैं युवती हो गई थी। उस समय जवानी की मादकता के भाव से मेरे पग जकड़ से उठे थे और स्वर्ग में स्थित कामदेव की पुत्रियाँ मुझे अपनी इस उन्मादमयी क्रीड़ा पर नतमस्तक देखकर हँस रही थीं।

**शब्दार्थ:**—कमनीयता = सुन्दरता। अङ्गलतिका=संपूर्ण शरीर अथवा उसका अंग विशेष=यौवन के प्रतीक स्तन। कुन्तला=केश=कली। नन्दन=इन्द्र। अधर=ओंठ। अलक्तक=महावर।

**व्याख्या:**—कमनीयता थी………………अलक्तक की लाली से।

वन्दिनी रानी कमला अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात करती हुई कहती है कि:—संपूर्ण गुजरात का सौन्दर्य आकर मेरे अंग विशेष में समा गया था और उन्माद के भार से बोझिल होकर मेरी पलकें झँप झँप जा रही थीं। इन्द्रवन की सैकड़ों कुसुम केशों से संपन्न अप्सरायें ( देव कन्यायें ) जो सुगन्ध की मूर्ति के समान प्रतीत हो रही थीं आ आकर मेरे लाल ( गुलाबी ) ओंठों का चुम्बन कर रही थीं। मेरे उस सौन्दर्य को देखकर मुस्कराहट स्वयं मुस्करा उठती थी। मेरे पैरों की महावरयुक्त लालिमा से घुँघरुओं की मधुर झनकार घुली जा रही थी।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने नारी के महान सौन्दर्य का अद्भुत चित्र खींचा है।

**शब्दार्थ:**—अन्तरिक्ष=आकाश। अरुणिमा=लालिमा। दिगंत व्यापी= दिशाओं में व्याप्त। सुख-रजनी—सुख की रात्रि। विश्रम्भ-कथा=प्रेम-कथा=प्रेम पूर्ण कहानी।

**व्याख्या:**—जैसे अन्तरिक्ष………………अभिलाषा से भरी थी जो।

वन्दिनी रानी कमला देवी अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात करती हुई कहती है कि:—जिस प्रकार आकाश की लालिमा दिशाव्यापी सन्ध्या काल के सौन्दर्य का पालन कर लेती है उसी प्रकार उन्माद सौन्दर्य की लालिमा से युक्त होकर मेरे शरीर में व्याप्त हो गया था और मैं सुख की उनीदें लेने लगी थी। उस

समय सुखमय रात्रि में मैं उस प्रेम कथा को सुन रही थी जो मधुर आशा और अभिलाषा से परिपूर्ण थी।

( पृष्ठ–७४ )

**शब्दार्थः**—कामना=अभिलाषा। कमनीय=सुन्दर। सुरा=आसव=सुख। प्रणत=झुके=शरण में। गुर्जर-महीप=गुजरात के राजा कर्ण सिंह।

**व्याख्याः**—कामना के कमनीय..............वह एक सन्ध्या थी।

बन्दिनी रानी कमला देवी अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात करती हुई कहती है किः—अभिलाषा के सुन्दर तथा कोमल आनन्दमय जीवन के आसव की वह प्रथम प्याली थी अर्थात् प्रेम पिपासा की शान्ति का वह प्रथम अवसर था ( सुहाग रात की वह प्रथम रात्रि थी )। जब मैं चैतन्य हुई ( जागी ) तो देखा कि मेरे पैरों के नीचे विश्व के ऐश्वर्य का समूह लोट रहा है, गुजरात नरेश कर्ण सिंह जी मेरी शरण में थे अर्थात् वे मेरे प्रेम के दास बन चुके थे। मेरे जीवन का वह एक सुखमय संध्या काल था।

**शब्दार्थः**—श्यामा-सृष्टि=रात्रि। तारक=नक्षत्र=नेत्रों की पुतली। खचित=संयुक्त=खींचा हुआ। परिधान=वस्त्र=पोशाक=आवरण। लालसा=अभिलाषा=इच्छा=कामना। दीप्त=ज्वाला=उत्तेजना=प्रकाश। हासमयी=हास्ययुक्त। विकल=व्याकुल=खंडित=टूटा हुआ=फलहीन=बेकरार। विलासमयी=सुख भोग की भावना से युक्त=विनोदमयी।

**व्याख्याः**—" श्यामा सृष्टि युवती थी ......विकल विलास मयी।

बन्दिनी रानी कमला देवी अपने विगत जीवन पर प्रकाश डालती हुई कहती है किः—रात्रि जवान युवती के समान थी और संपूर्ण आकाश तारों से ढके हुए नीले रंग का वस्त्र धारण किये हुए था। उस समय मेरे ( कमला देवी के ) मन में प्रकाश ( उन्माद ) हास्य, व्याकुलता और सुख भोग की भावना से युक्त कामना रूपी चमकीली मणियाँ चमक रही थीं। भाव यह है कि तारों भरी रात में मेरे मन में अपने प्रियतम से हँसने-बोलने, क्रीड़ा करने और सुख भोग का आनन्द प्राप्त करने की भावना उठ रही थी।

**शब्दार्थः**—मधु-यामिनी=मादकता पूर्ण रात्रि। मद कल=मतवाला हाथी।

मरन्द=मकरंद=पुष्प रस=पराग। पुलिन=तट=किनारा। अलस=सुस्त=आलसी=दीर्घ सूत्री।

**व्याख्या:**—बहती थी धीरे धीरे.....................अलस नींद ले रहा।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—उस मादकता पूर्ण रात्रि में सुखरूपी नदी धीरे धीरे प्रवाहित हो रही थी। उन्मत्त सुरभित वायु सौन्दर्य रूपी पुष्पों से पराग ग्रहण करके उसकी बूँदों को उस सुख सरिता में मिला रहा था। चन्द्र की सुन्दर किरणों के ओट में हरा भरा ( सुखमय ) जीवन सरिता का तट मीठी नींद में सो रहा था।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने आनन्दवादी सुख-छाया का अद्भुत् चित्र खींचा है।

**शब्दार्थ:**—सी=समान=सदृश। परखने=जाँचने। मुद्रित=चिन्हित=विजित।

**व्याख्या:**—सृष्टि के रहस्य सी.........बहाती लावण्य धारा।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—आकाश की तारिकायें मेरे सौन्दर्य को सृष्टि के रहस्य के रूप में समझकर उसे जाँचने के लिए मेरी ओर देख रही थीं और सैकड़ों कमलों के समूहों से चिन्हित ( निर्मित ) भीनी भीनी मधुर सुगन्ध की सौन्दर्यपूर्ण धारा मेरे रोम-रोम में प्रवाहित हो रही थी। भाव यह है कि मेरे ( कमला देवी के ) सौन्दर्य ने आकाश की सुन्दर तारिकाओं को भी मुग्ध कर लिया था और मेरे शरीर से सौन्दर्य की जो सुगंधि निकल रही थी उसकी समता सैकड़ों कमल-पुष्प भी नहीं कर सकते थे।

**शब्दार्थ:**—स्मर=कामदेव। स्मृति=स्मरण। चन्द्रकान्त मणि=एक प्रकार का विशेष पत्थर=यहाँ कमला देवी के कोमल शरीर से तात्पर्य है। स्निग्धता=चिकनापन=प्रियत्व।

**व्याख्या:**—स्मर-शशि-किरणों,...............रहे पलकों के।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—मेरे कोमल शरीर रूपी चन्द्र कान्त मणि को कामदेव के समान चन्द्र की किरणें स्पर्श करती थीं और जिससे मेरे शरीर के अंगों पर चिकनाहट फिसल फिसल पड़ती थीं। मेरा ( कमला देवी का ) हृदय प्रेम से परिपूर्ण था और गुजरात नरेश कर्णसिंह इस पर पुरस्कार स्वरूप अपनी पलकों के पाँवड़े बिछाते थे, भाव यह है कि मेरा ( कमला देवी का ) यौवन और

सौन्दर्य अपनी उत्कृष्टता की चरम सीमा पर था और उस पर मेरे प्रीतम कर्णसिंह बलि बलि जाते थे।

( पृष्ठ—७२ )

**शब्दार्थः**—तिरते=तैरते=बहते। मकरंद=पराग। सरोज=कमल।

**व्याख्याः**—तिरते थे.........................कितना अनुराग था।

बन्दिनी कमला कहती है किः—मेरे प्रियतम गुर्जरेश कर्णसिंह मेरे शरीर की अँगड़ाई ( मादकता ) की तरंगों में बहते रहते थे और मेरे अर्द्ध विकसित कमलवत् मुख के पराग का पान करते रहते थे। अहा! वह मेरा कैसा सौभाग्य था! मेरे प्रति मेरे स्वामी का कैसा अनन्य प्रेम था!

**शब्दार्थः**—मल्लिका=जूही=यूथिका=एक पुष्प। सुरभित=सुगंधित। वल्लरी=वल्ली=लता। गुर्जर=गुजरात। नियति=भाग्य=दैव अदृष्ट।

**व्याख्याः**—खिली स्वर्ण मल्लिका.............नचाती भौहें अपनी।

अपने अदृष्ट की चर्चा करती हुई बन्दिनी कमला कहती है किः—इस प्रकार सुनहले रंग की जूही की सुगंधित लता के समान गुजरात देश के थाले ( जड़ स्थान ) में मैं अपने पराग ( सौन्दर्य ) की वर्षा करती थी कि सहसा मेरे भाग्य का यह उलट फेर हो गया और भाग्यरूपी नटी नीले बादल समूह के समान मेरे हृदय रूपी आकाश में बिजली के से खेल सदृश अपनी भौहों का नृत्य प्रदर्शित करती हुई आगई अर्थात् जब कि मेरे सौन्दर्य की ख्याति संपूर्ण गुजरात में फैल रही थी उसी समय मैं दुर्भाग्यवश बन्दिनी बना ली गई।

**शब्दार्थः**—पावक सरोवर=अग्नि रूपी तालाब=जौहर। अवभृथ=यज्ञ के समय का स्नान।

**व्याख्याः**—"पावक सरोवर में........महिला महत्व का।

पद्मिनी के जौहर की चर्चा करती हुई बन्दिनी कमला कहती है कि—अपने आत्म सम्मान और सतीत्व की रक्षा में पद्मिनी द्वारा अपने प्राणों की आहुति दे देना वास्तव में अग्निरूपी तालाब में पर्व अथवा यज्ञ के समय के स्नान के

समान था। जिस दिन पद्मिनी के जल मरने का समाचार मिला था उस सती के पवित्र आत्म-गौरव की कहानी जिस दिन भारत के कोने कोने में गूँज उठी उस दिन महिला जगत का मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया।

**शब्दार्थ:**—दृप्त=गर्वित। ऊर्जित=शक्ति शाली=उत्साही=प्रतापी।

**व्याख्या:**—दृप्त मेवाड़ के पवित्र..............नये सिर से।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—प्रतिष्ठित और स्वाभिमानी मेवाड़ के पवित्र बलिदान का दिव्य प्रकाश सबके नेत्र खोल देता था और अब कुटुम्ब की बहुएँ और कुमारी कन्याओं ने अपने भविष्य के विषय में नये सिरे से सोचना आरंभ कर दिया अर्थात् सतीत्व की रक्षा करने के लिए जौहर को अपनाना सबने अपना कर्तव्य समझना प्रारंभ किया।

**शब्दार्थ:**—बींधने लगी=कचोटने लगी। मूक=मौन।

**व्याख्या:**—उसी दिन...........लाज भरी निद्रा से।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—उसी समय तथा उसी दिन कठोर परतन्त्रता का वातावरण मेरे हृदय को वेधने लगा और मुसलमानी आक्रमण के आतंक से देव मन्दिरों की घंटा ध्वनि की मौनता जब मुझ पर दीन भाव से कटाक्ष करने लगी तो मैंने अपने जीवन की लज्जामय निद्रा का त्याग कर दिया अर्थात् मुझे भी अपने गौरव का ज्ञान हो गया।

( पृष्ठ-७६ )

**शब्दार्थ:**—दावानल ज्वाला=दावाग्नि के समान लपट। स्पर्द्धा=होड़=संघर्ष बराबरी=साहस।

**व्याख्या:**—मैं भी थी कमला,........कैसी स्पर्द्धा थी।

वन्दिनी कमला अपने विगत जीवन की चर्चा करती हुई कहती है कि:—मेरा नाम भी कमला था और मैं गुजरात की रूप-रानी (सौन्दर्य-मलिका) थी। मैं अपने मन में सोचती थी कि अपने सतीत्व की रक्षा के लिए रानी पद्मिनी स्वयं जल मरी थी पर मैं एक ऐसी दावाग्नि की लपट उत्पन्न करूँगी जिसमें स्वयं बादशाह

अलाउद्दीन जलकर भस्म हो जाये। वह अपने विरुद्ध मुझे अग्नि की लपट के समान प्रचंड रूप से प्रत्यक्ष खड़ा देखे। अहा! मेरे मन में बदला लेने का कितना सुन्दर भाव था अर्थात् सुलतान के विरुद्ध संघर्ष का मोर्चा लेने की मुझमें कितनी प्रबल भावना थी।

**शब्दार्थ:**—नगण्य=तुच्छ=जिसकी गणना न की जा सके। मुकुर=शीशा।

**व्याख्या:**—स्पर्द्धा थी रूप की·······मैंने समझा था यही।

बन्दिनी कमला कहती है कि सुलतान अलाउद्दीन के विरुद्ध मेरे मन में जो होड़ उत्पन्न हुई थी वह होड़ अन्य कुछ भी नहीं बल्कि सौन्दर्य की स्पर्द्धा (होड़) थी। पद्मिनी के शरीर की बाह्य रूप रेखा अर्थात् शारीरिक सौन्दर्य मेरे सम्मुख तुच्छ था। साँचे के समान ढले हुए मेरे शरीर के सौन्दर्य के सम्मुख कुछ भी नहीं था (बहुत ही तुच्छ था)। मैं पद्मिनी के चित्र को और दर्पण में अपने मुख को देखकर दोनों की तुलना करके यही समझती थी। भाव यह है कि जब मैं दर्पण में अपने शरीर के सौन्दर्य को देखती थी तथा पद्मिनी के चित्र की ओर मेरी दृष्टि जाती थी तो मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि पद्मिनी मेरे सम्मुख कुछ भी नहीं थी।

**शब्दार्थ:**—अतिरञ्जित=बढ़ी चढ़ी। तूलिका=चित्रकार की कूँची। चितेरी=चित्र बनाने वाली। इतराज=आना कानी।

**व्याख्या:**—वह अतिरञ्जित सी········करने महत्व की।

बन्दिनी कमला कहती है कि:—इसमें सन्देह नहीं कि वह पद्मिनी रानी सफल चित्रकार की सुन्दर कूँची से निर्मित एक अत्यन्त सुन्दर चित्र की प्रतीक थी फिर भी मेरे सौन्दर्य की तुलना में वह मुझसे बहुत पीछे थी (तुच्छ थी) पर जब मैंने उसके हृदय की तुलना अपने हृदय से की तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके हृदय के सम्मुख मेरा हृदय बहुत ही छोटा था। मैं अपने इस अभाव पर स्वयं लज्जित हो उठी। मैंने अनुभव किया कि मेरे हृदय की लघुता पद्मिनी के महत्व की व्यर्थ में माप कर रही थी। भाव यह है कि मैं व्यर्थ ही पद्मिनी की समता अपने से कर रही थी वास्तव में मैं उसके सम्मुख कुछ भी न थी।

**शब्दार्थ:**—अभिनय=नाटक=प्रदर्शन। अनहिलवाड़ा=अन्हलवाड़ नगर।

त्रिगुणात्मक=राजस, तामस तथा सात्विक भाव। सन्निपात=संयोग=युद्ध=आकस्मिक पतन।

**व्याख्या:**—"अभिनय आरम्भ हुआ·······ये नहीं हरते।

यवन सेना के आक्रमण की चर्चा करती हुई बन्दिनी कमला कहती है कि—देश के दुर्भाग्य का नाटक प्रारंभ हुआ अर्थात् मुसलमानी सेना का आक्रमण प्रारंभ हो गया। अन्हलवाड़ में अग्नि चक्र घूमने लगा। उत्पात प्रारंभ हो गई। मेरे प्रियतम (कर्णसिंह) चिर परिचित मेरे अत्यन्त मधुर सौन्दर्य के सम्मानित प्रेम के संकेत पर युद्ध कार्य में तत्पर हो गये। वास्तव में राजसी, तामसी और सात्विक गुणों के मिलन स्वरूप नारी के चपल नेत्र भला किसको प्रमत्त नहीं कर देते तथा किसका धैर्य नहीं हर लेते अर्थात् सभीको मुग्ध कर लेते तथा सबके हृदय में हलचल मचा देते है।

(पृष्ठ—७७)

**शब्दार्थ:**—गुर्जर=गुजरात। आर्त वाणी=कातर वाणी।

**व्याख्या:**—यही अस्त्र मेरा था·······होने लगा गुर्जर में।

मुसलमानी आक्रमण की चर्चा करती हुई बन्दिनी कमला कहती है कि:—नारी होने के नाते मेरे पास भी वही नेत्र शस्त्र था और उसके प्रभाव से प्रभावित होकर जब मेरे पति राजा कर्णसिंह यवन सेना का मुकाबला करने लगे तो एकही प्रहार में यवनसेना परास्त हो गई और गुजरात में सजीव शान्ति स्थापित हो गई। गुजरात की शांति से दिल्ली सुल्तान अलाउद्दीन व्याकुल हो उठा और उसका क्रोध दावानल बनकर उसे जलाने लगा फिर क्या था उसने इस देश पर आक्रमण कर दिया। फलस्वरूप गुजरात के हरे भरे बागों में शत्रुओं का उत्पात आरंभ हो गया, बालक चीख उठे, वृद्धों की कातर वाणी से आकाश गूँज उठा और स्त्रियों का करुण क्रन्दन शंकरजी के ताण्डव नृत्य का भैरव संगीत बन गया अर्थात् गुजरात में कारुणिक दृश्य उपस्थित हो गया।

**शब्दार्थ:**—चिर सङ्गिनी=जीवन संगिनी। रणाङ्गण=रण के मैदान में।

**व्याख्या:**—"अट्टहास करती ........स्मित् करती ।

बन्दिनी कमला कहती है कि:—मैं भी रणचंडी के युद्ध के उल्लास में समान अट्टहास करके अपने देश का संकट टालने के लिए युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ी । मैं वही युद्ध क्षेत्र की कमला अब भी हूँ । अहा ! मेरे वीर स्वामी मुझे रण में अपना हाथ बँटाते हुए देखकर कितने प्रसन्न होते थे ! हम दोनों ( पति पत्नी ) के सहयोग से आने वाली सभी विपत्तियाँ विघ्न बाधायें अपनी तुच्छ प्रवृत्ति के कारण स्वयं ही दूर हो जाती थीं । उस समय मेरे पति मेरी ओर दृष्टि डालकर हँस देते थे और प्रत्युत्तरमें मैं मुस्करा उठती थी ।

**शब्दार्थ:**— कृत्रिमता=बनावट । संबल=साधन=सहारा=सामान ।

**व्याख्या:**—किन्तु शक्ति कितनी थी.........करने में आगे था ।

बन्दिनी कमला कहती है कि:—किन्तु अलाउद्दीन की बादशाही सेना की शक्ति के मुकाबले में हमारी शक्ति बहुत कम थी । इस प्रकार थोड़ी शक्ति से शाही सेना का मुकाबला करते करते जब हमारे पास युद्ध का कुछ भी साधन न रह गया तो हम दोनों को विवश होकर अपना देश छोड़ देना पड़ा, इस प्रकार हम दोनों अपने देश से निर्वासित होकर आश्रय की खोज में निकल पड़े पर मेरा दुर्भाग्य मेरा साथ नहीं छोड़ता था वह मेरे आगे आगे चल रहा था ।

**शब्दार्थ:**—तरु-छाया=वृक्ष की छाँह । तुर्कों का=मुसलमानों का । झंझा-वात=आँधी ।

**व्याख्या:**—"वह दुपहरी थी........आया झंझावात सा ।

बन्दिनी कमला कहती है कि:—एक दिन की बात है । दोपहर का समय था और शरीर को झुलसाने वाली तथा प्यास से तड़पाने वाली ग्रीष्म काल की लू चल रही थी । हम दोनों ( रानी कमला देवी तथा राजा कर्ण सिंह ) थकावट से चूर होकर एक वृक्ष की छाया में सो गये थे कि इतने में प्रलय की आँधी के समान तुर्कों का एक दल ( खिलजी सेना की एक टुकड़ी ) वहाँ सहसा आ पहुँचा ।

( पृष्ठ-७८ )

**शब्दार्थ:**—गुर्जरेश=राजा कर्णसिंह। खड्गलीला=तलवार चलाने की क्रिया। गत=जाना। प्रत्यागत=लौटना। प्रत्यावर्तन=प्रतिनिवृत्ति=पुनरागमन।

**व्याख्या:**—मेरे गुर्जरेश·········हुई वन्दी मैं।

वन्दिनी कमला अपने पति राजा कर्णसिंह के तलवार चलाने की कला की प्रशंसा करती हुई कहती है कि:—मैं अपने पति राजा कर्णसिंह की किस मुख से प्रशंसा करूँ। वास्तव में वे एक सच्चे राजपूत थे। जब खिलजी सेना की टुकड़ी ने उनपर आक्रमण किया तो उनके तलवार की करामात देखने योग्य थी। मैं खड़ी-खड़ी उनकी तलवार के चमत्कार को देखती रही और वे अपनी तलवार को घुमा-घुमा कर आगे पीछे इधर उधर दौड़कर शत्रुओं का सर काट रहे थे। इस प्रकार अपनी तलवार के आगे पीछे पुनरागमन आदि का कौशल दिखाते हुए वे मेरी आँखों से ओझल हो गये ( बहुत दूर चले गये ) और मैं अकेली रह जाने से यवन सेना द्वारा वन्दिनी बना ली गई।

**शब्दार्थ**—नियति=भाग्य। प्रतिकृति=छाया=प्रतिमूर्ति।

**व्याख्या:**—वाहरी नियति !·········समझ सकी न मैं।

वन्दिनी कमला पश्चात्ताप प्रकट करती हुई कहती है कि:—वाह रे मेरा भाग्य ! उस स्वच्छ आकाश में चन्द्र की किरणों के बहाने पद्मावती की छाया मुझपर व्यंग्य हास्य कर रही थी। आज भी भ्रमपूर्ण विचारों में एक क्षण तक डालकर वह मुझे वैसे ही नचा रही है। आज मैं यह अनुभव कर रही हूँ कि जैसे वह पद्मिनी की छाया अपने मार्ग ( जौहर ) का अनुकरण करने के लिए आदेश दे रही थी पर मैं उस समय पद्मिनी के इस पावन संदेश और आदेश को न समझ सकी।

**शब्दार्थ:**—दप्त=दिव्य=चमकीली।

**व्याख्या:**—पद्मिनी की भूल·········ध्यान निज रूप का।

वन्दिनी कमला अपनी भूल स्वीकार करती हुई कहती है कि—मैंने पद्मिनी के जौहर को उसकी भूल समझ कर जौहर करने की अपेक्षा शत्रु को

मारने का प्रयत्न करना उत्तम समझा था अतएव पद्मिनी के जौहर को उसकी भूल सिद्ध करने के हेतु मैंने गर्जन करती हुई चमकीली सिंहिनी के समान सुल्तान अलाउद्दीन के सम्मुख उपस्थित होकर उसे मार डालने या स्वयं मर जाने की अटल प्रतिज्ञा करली और उसी गर्व में आकर मैंने उनसे छाती ऊँची करके कहा था कि मैं गुजरात की रानी कमला हूँ। मुझे वन्दी बनाकर चाहे जहाँ ले चलो। वाहरी मेरी उस समय की विचित्र मनोभावना! तेरा कैसा वह व्यंग्य हास्यास्पद था! कि उस महान आपत्ति काल में मुझे अपने रूप रंग और सौन्दर्य का अभिमान हो आया।

**शब्दार्थः**—तुरुष्क पति=तुर्क राजा=अलाउद्दीन से तात्पर्य है।

## (पृष्ठ—७६)

**व्याख्याः**—"रूप यह।.........विभव-विलासिनी।"

वन्दिनी कमला कहती है कि:—मेरे मन में यह भावना उठी कि मेरे इस सौन्दर्य रूप का भी अलाउद्दीन दर्शन करले। इस प्रकार मेरे सौन्दर्य और मेरी मृत्यु इन दोनों का वह अवकोकन करले इस प्रकार अपने को कितनी महान और अभूतपूर्व समझती हुई मैं वन्दिनी के रूप में शाही महल में बैठी बैठी दिल्ली की ऐयाश पूर्ण झाँकी देख रही थी।

**शब्दार्थः**—छलना=प्रवंचना। दशनपंक्ति=दाँतों की पंक्तियाँ।

**व्याख्याः**—यह ऐश्वर्य की दुलारी.........कोलाहल में।

दिल्ली के वैभव के भयानक रूप का चित्र खींचती हुई वन्दिनी कमला कहती है कि:—यह ऐश्वर्य की प्यारी अर्थात् वैभव सम्पन्न दिल्ली क्रूरता की एक प्रवंचना के समान संध्या काल में शोभित हो रही थी अर्थात् वाहर से तो यह देखने में सुन्दर थी पर इसके शासन के अन्दर अत्याचार और क्रूरतापूर्ण कार्यों का विष भरा हुआ था। अन्धकार लेकर रात्रि भी आ गई मानो वह रात्रि तारों रूपी दाँतों की पंक्तियाँ दिखा दिखाकर दूर आकाश में विकराल (भयानक) हँसी हँस रही थी पर मैं उस हास्य को न सुन सकी क्योंकि मेरे हृदय में जो अन्तर्द्वन्द्व का शोर गुल हो रहा था उसके कारण मुझे प्रकृति का हास्य नहीं सुनाई

पड़ा। भाव यह है कि दिल्ली की जगमगाहट और प्रकृति की चमक दोनों ही मुझे मेरी भूल पर व्यंग्य करते हुए चेतावनी दे रहे थे पर मेरे मन में जो सौन्दर्य का अभिमान भरा था तथा जो मैंने इसके द्वारा सुल्तान की हत्या करने की कल्पना करने लगी थी उसके कारण प्रकृति के पावन संदेश की ओर मेरी दृष्टि न जा सकी।

**शब्दार्थ:**—प्रतिशोध=बदला। निर्मम=कठोर=निर्दयता पूर्ण। अबला=असहाया। प्रमदा=मनोहारिणी स्त्री=सुन्दरी युवती।

**व्याख्या:**—कभी सोचती थी‥ ‥‥प्रमदा थी रूप की।

वन्दिनी कमला अपने मन के भावों को व्यक्त करती हुई कहती है कि:—मैं उस समय कभी अलाउद्दीन से अपने पति का बदला लेने के विषय में सोचती थी और कभी अपने शरीर की सुन्दरता की अनुभूति को सुल्तान के कठोर हृदय में क्षण भर के लिए जाग्रत करना चाहती थी। आखिर वासना की मूर्ति जो मैं नारी थी। वास्तव में मैं वन्दिनी उस समय असहाया और सौन्दर्य की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दरी युवती थी।

**शब्दार्थ:**—ओघ=वेग=जलप्रवाह=राशि। अवहेलना=उपेक्षा=तिरस्कार।

**व्याख्या:**—साहस उमड़ता था‥‥‥इस मेरे रूप की।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—मेरे हृदय रूपी समुद्र में उत्साह रूपी जल की लहरें तीव्रता के साथ उठती अवश्य थीं पर मुझमें आत्म बल की इतनी कमी थी, मेरे विचार इतने हल्के थे कि मैं तिनके के समान अपने विचारों में ही बहती फिरती थी और कुछ भी दृढ़ निश्चय नहीं कर पाती थी। इस प्रकार शत्रुता और सौन्दर्य के साथ मेरी कितनी उपेक्षा हो रही थी ( कितना तिरस्कार हो रहा था )।

**शब्दार्थ:**—साक्षात=सामना। लहरी=तरंग। द्रुत=चमकती। गरिमा=गौरव। सौन्दर्य मयी=सुन्दरता से परिपूर्ण।

**व्याख्या:**—आज साक्षात होगा‥‥‥समीप सुलतान के।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—कितने महीनों के बाद आज दिल्ली सुल्तान का सामना होगा अतएव लहरों के समान कभी ऊपर और कभी नीचे

उठती और गिरती हुई अर्थात् कभी बदला लेने के भाव और कभी प्रेम के भाव का चिन्तन करती हुई इस प्रकार आश्चर्य और चमत्कार पूर्ण अपने अनुपम गौरव में लीन मैं सौन्दर्यपूर्ण वासना की आँधी के समान सुलतान अलाउद्दीन के पास पहुँची।

( पृष्ठ—८० )

**शब्दार्थः**—तातारी=अफगानी जाति की=तातार जाति की। अविचल=अटल=दृढ़। मणि-मेखला=कमर में बँधी करधनी। कृपाणी=तलवार=कटार। वक्ष=छाती।

**व्याख्याः**—तातारी दासियों ने·······रुधिर पान करने को।

वन्दिनी कमला अपने आत्म-घात के प्रयत्न के विषय में कहती है कि:—सुल्तान अलाउद्दीन की तातारी परिचारिकाओं ने मुझे उसकी प्रेयसी बनाकर मुझको मेरे ही घुटनों पर झुकाने का प्रयत्न किया पर वे असफल रहीं। मैं अपने धर्म पर अडिग बनी रही। उसी समय अपने हृदय के रुधिर का पान करने के लिए ( आत्म हत्या करने के भाव से ) मैंने अपनी कमर की करधनी में लटकती हुई कृपाणी को निकाला।

**शब्दार्थः**—निरुपाय=उपाय रहित=असहाय। महागर्त=विशाल गड्ढा। अलभ्य=अप्राप्य=दुर्लभ।

**व्याख्याः**—किन्तु छिन गई वह·········जीवन अलभ्य है।

जीवन की अलभ्यता के विषय में सोचती हुई बन्दिनी कमला कहती है कि:—मैंने अपनी कटार से अपनी हत्या करने का प्रयत्न अवश्य किया पर खेद है कि वह कटार मुझसे छीन ली गई और इस प्रकार मैं असहाय होकर डोरी के समान ऐंठकर रह गई अर्थात् हताश होकर घबड़ा उठी तथा तिरस्कार ( पश्चात्ताप ) की ज्वाला में जलने लगी। अतएव सुल्तान अलाउद्दीन का अन्त करके स्वयं अपना जीवन समाप्त कर लेने के विषय में मेरा उत्साह मन्द हो गया। उस समय मृत्यु के भयानक गड्ढे से बचकर मैं सोचने लगी कि यह मानव जीवन बड़े भाग्य से मिलता है अतएव यह दुर्लभ है।

**शब्दार्थः**—स्पृहणीय=जिसके लिए कामना की जाय। विश्लेषण=पृथक्करण=अकिञ्चन=दीन।

**व्याख्याः**—"चारों ओर लालसा........छाती में छिपाये रही।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—मेरी लालसा ( अभिलाषा ) भिखारिणी के समान दयनीय और स्पृहणीय जीवन के कण को चारों ओर माँगती फिरती थी पर वे प्राण के कणदीन भाव से इस जीवन से अपना पृथक्करण करने के विचार से रो पड़े। वास्तव में यह जीवन अनन्त है और इसे नष्ट करने का किसी को अधिकार नहीं है। भाव यह है कि यह जीवन सीमा रहित है। इसे अन्त करने का केवल एक मात्र ईश्वर को ही अधिकार है। अहा! इस जीवन की सीमामयी मूर्ति कितनी सुन्दर है जिसे मैं विश्व भर की दृष्टि से बचाती हुई, प्यार करती हुई अपने छाती में छिपाये थी।

**शब्दार्थः**—दल=पत्ते। वनराजी=वन समूह=वनस्पति समूह। जरठ=भूखा=पेट की अग्नि से पीड़ित=वृद्ध।

**व्याख्याः**—जितनी मधुर........मीठी सरिताओं से।

जीवन की महत्ता की चर्चा करती हुई वन्दिनी कमला कहती है कि—इस जीवन के कण की याचना पशु पक्षी, वृक्ष, सागर सब को करनी पड़ती है यथा:—वनके समूह अपने पत्ते रूपी अंचल को पसारकर ओस के रूप में जीवन की बूँद बूँद माँगते हैं, समुद्र भी वृद्ध और क्षुधा पीड़ित भिखारी के समान प्रतिदिन क्रन्दन करता हुआ नदियों से जीवन रूपी मधुर जल की धारा को माँगता रहता है।

( पृष्ठ–८१ )

**शब्दार्थः**—अन्ध तम=अन्धकार से युक्त। स्वर्णमयी=सुनहली। प्रभाभरी=प्रकाश पूर्ण।

**व्याख्याः**—व्याकुल हो विश्व,........और मैं हूँ वन्दिनी।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—अन्धकार से पीड़ित होकर संसार भी प्रातः

काल होने से पूर्व तड़के ही सुनहली प्रकाशमय सूर्य की किरणों की भीख माँगने लगता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन एक प्रिय वस्तु है और इसी का नाम सौभाग्य है। क्रोध से तमतमाकर मैं रो उठी और रोकर सुल्तान से कहने लगी कि तुम मुझे अपने ही हाथों से मारकर क्या मरने नहीं दोगे अर्थात् क्या मुझे आत्महत्या भी करने नहीं दोगे। ठीक है! तुम शक्ति शाली दिल्ली सम्राट हो और मैं निः सहाय वन्दिनी एक नारी हूँ।

**शब्दार्थः**—रिक्त=खाली=शेष। शक्ति प्रतिनिधि=शक्तिशाली। अनुनय-भरी=विनय युक्त।

**व्याख्याः**—राज्य है क्या नहीं..................गूँज उठी कान में।

वन्दिनी कमला अलाउद्दीन से कहती है कि मेरे पास राज्य नहीं रह गया किन्तु क्या मुझ में मनुष्यता का भाव भी नहीं रह गया है! क्या मैं इतनी खाली हो गई हूँ अर्थात् क्या मेरा सब कुछ नष्ट हो गया है। इस प्रकार क्रोध से मेरा गला भर गया और मैं मौन हो गई। इसके बाद उस शक्तिशाली देदीप्यमान सुल्तान अलाउद्दीन के विनय पूर्ण शब्द मेरे (कमला के) कान में सुनाई पड़े।

**शब्दार्थः**—गीतभार=दर्द पूर्ण गीत। मानस=हृदय।

**व्याख्याः**—देखता हूँ मरना.......................मानस की माधुरी से।

अलाउद्दीन वन्दिनी कमला से कहता है किः—हे रानी कमला! मैं भारतीय स्त्रियों को आत्मघात (आत्म हत्या) करते ही देखता हूँ। वास्तव में यह कितना करुणा जनक गीत अथवा प्रथा है। हे रानी! अब तुम मेरे निवेदन के अन्दर वन्दिनी हो। मैं पद्मिनी को खो चुका हूँ पर अब तुम्हें मैं नहीं खो सकता। अब तुम मेरी इन क्रूर प्रवृत्तियों पर अपने हृदय के कोमल और मधुर प्यार से ही शासन कर सकोगी। भाव यह है कि यदि तुम चाहती हो कि मैं अत्याचार पूर्ण तथा क्रूरता भरी अपनी नीति का त्याग कर दूँ तो तुम्हें मुझे अपनाकर मुझसे प्यार करना ही होगा।

**शब्दार्थः**—अति द्रुत=अत्यन्त तीव्र। रंग महल=क्रीड़ा स्थल=आनन्द भवन।

**व्याख्या:**—आज इस तीव्र..................सुवर्ण पींजरा।

अलाउद्दीन वन्दिनी कमला से कहता है कि:—आज तुम तीव्र उत्तेजना की आँधी में वह रही हो अर्थात् आज तुम वहुत उद्विग्न हो अतएव तुम मेरी वातें न तो सुन सकोगी और न तो ध्यानपूर्वक उस पर विचार ही करोगी अतएव आज तुम रुको और विश्राम करो। इसके वाद अत्यन्त शीघ्र तीव्र गति से सुलतान अलाउद्दीन वहाँ से कव चले गये मुझे (कमला देवी को) मालूम ही न पड़ा और तभी से यह आनन्द भवन सुनहला पिंजरा वन गया।

( पृष्ठ-८२ )

**शब्दार्थ:**—मलिन=खिन्न। दिगन्त=दिशायें।

**व्याख्या:**—"एक दिन सन्ध्या थी.............तरल अवसाद सी।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—एक दिन सन्ध्याकाल का समय था। मेरे खिन्न और उदास हृदयरूपी वस्त्र के समान दिशायें अपने क्रोध (क्षोभ )के कारण लाल पीली ( खिन्न भाव ) हो रही थीं। यमुना नदी भी इस पृथ्वी के तरल दुःख में द्रवित होकर करुणा की विपाद मयी धारा प्रवाहित कर रही थी। भाव यह है कि—मेरे (कमला देवी के) दुःख विपाद और क्षोभ से दिशायें और यमुना नदी भी प्रभावित हो गई थीं।

**शब्दार्थ:**—चित्रपटी=चित्रित वस्त्र=चित्राधार=चित्र कला। द्रुत=शीघ्र=तेज। पद-शब्द=चरण के शब्द।

**व्याख्या:**—"वैठी हुई कालिमा..............मानिक युवक अव।"

वन्दिनी कमला कहती है कि:—एक समय मैं एकांत में वैठी हुई रात्रि को कालिमा की चित्रकला देख रही थी कि उसी समय किसी के तीव्र पैरों की ध्वनि से मैं सहसा चौंक पड़ी और देखा कि मेरे सामने मानिक नामक युवक खड़ा था। यह वही मानिक था जो शैशव काल से हमारे यहाँ पलता था और अव वह सेवक के रूप में पूर्ण युवक हो गया था।

**शब्दार्थ:**—सुरम्य=सुन्दर=रंगीन। अँखड़ियों=आँखों।

**व्याख्याः**—खिंचगया सहसा.........कह वह चुप था।

वन्दिनी कमला कहती है कि:-मेरे इन दुखी नेत्रों के सम्मुख पश्चिमी समुद्र तट (गुजरात देश) का वह सुन्दर चित्र उपस्थित हो गया। यह वह चित्र था जिसका निर्माण मेरे उस बचपन काल ने आश्चर्यमय कौतूहल और हँसी की कहानी से किया था। मैंने (कमला ने) मानिक से कहा कि अरे अभागे! तू यहाँ मरने के लिए किस प्रकार आ गया? इस पर उसने कहा कि-हे रानी! मैं मरने के लिए नहीं वल्कि जीवन की आशा लेकर यहाँ आ पहुँचा हूँ। भला मैं यहाँ कैसे न आता? अर्थात् जब आप यहाँ वन्दिनी रूप में हैं तो फिर भला मेरा यहाँ आना क्यों न होता? इस प्रकार कहकर मानिक चुप हो गया।

**शब्दार्थः**—प्रस्तुत=उपस्थित=तैयार। इन्द्रजाल=धोखा=प्रवंचना।

**व्याख्याः**—छुरे एक हाथ में.........इन्द्रजाल।

वन्दिनी कमला कहती है कि मानिक का दोनों हाथ अलाउद्दीन सुल्तान की तातारी दासियाँ एक हाथ से पकड़े थीं और दूसरे हाथ में छुरा लिए हुए वहाँ आ पहुँची। उसी समय वहाँ अचानक सुल्तान भी आते हुए दिखाई पड़े और मैं अपने अहंकार की प्रवंचना में मौन और स्तब्ध थी।

(पृष्ठ-८३)

**शब्दार्थः**—निर्घोष=ध्वनि। भीषणतम=सबसे अधिक भयानक।

**व्याख्याः**—'मृत्युदण्ड'.........उठी एक गर्व सी।

वन्दिनी कमला कहती है कि:-'मृत्युदण्ड' (मौत की सजा) ऐसा व्रज के समान महान भीषण शब्द मुझे सुनाई पड़ा और मानिक मरता है यह ध्वनि मेरे कानों में गूँज उठी। इसके बाद मेरे (कमला देवी के) मन में एक गर्व की भावना उठ खड़ी हुई कि यह जीवन दुर्लभ है, जीवन का ही नाम सौभाग्य है।

**शब्दार्थः**—अप्रतिभ=अद्वितीय=अपूर्व=अनुपम=उदास।

**व्याख्याः**—किन्तु झुक गई...........उपाय अब कौन था!

वन्दिनी कमला कहती है कि:-सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा मानिक के प्राण

दंड की आज्ञा को सुनकर पहले तो मैं इस आज्ञा के विरुद्ध गर्व के साथ अवश्य उठी पर प्रार्थना के स्वरों में दूसरे ही क्षण नत हो गई और मेरे मुख से निकल पड़ा कि-"इसे छोड़ दीजिये।" मेरी प्रार्थना को सुनकर सुलतान हँस पड़े पर मैं अपनी ही लज्जा की जंजीर में उदास होकर जकड़ गई। अब प्रार्थना वापस लेने का कोई दूसरा उपाय भी नहीं रह गया था।

**शब्दार्थः**—मणिकोष=अमूल्य निधि=मणि भंडार=सतीत्व से तात्पर्य है। अतल=अथाह गहराई=गर्त।

**व्याख्याः**—अपने अनुग्रह के·········अतल में।

वन्दिनी कमला कहती है कि-अपनी कृपा के भार से मुझे दबाते हुए सुल्तान ने कहा कि "मानिक को छोड़ दो" क्योंकि रानी की यह पहली आज्ञा है। हाय रे पापी हृदय! तूने अपनी अमूल्य निधि (सतीत्व) को सस्ते भाव में, कौड़ी के मूल्य में बेंच दिया। इस प्रकार माणिक की प्राण रक्षा के लिए आकाश पकड़ने के प्रयत्न में हाथ ऊपर किए हुए सबको अथाह गहराई में डाल दिया। भाव यह है कि एक भृत्य की प्राण-रक्षा के बदले सुल्तान की कामवासना का शिकार बनकर अपना धर्म और गौरव खो दिया।

**शब्दार्थः**—अन्तर्निहित=छिपी=समाई। प्रतिशोध=बदला।

**व्याख्याः**—"अन्तर्निहित थीं·········फिर प्रतिशोध की।

वन्दिनी कमला कहती है कि-अपने पति कर्णसिंह के अभाव में जीवन के उस विषाद और परतंत्रता के कारण मेरे हृदय में लालसा और वासना की जितनी भावनायें छिपी हुई थीं वे चेतना की अज्ञानता में पोषित होने लगीं। जिस प्रकार अज्ञानावस्था में मादकता धीरे धीरे जीवन की ललाई ( यौवनावस्था ) में छिपी रहती है उसी प्रकार जीवन में वासना की चेतना स्थान बना रही थी और बदला लेने की भावना दूर जा पड़ी थी।

**शब्दार्थः**—संवेदनों = विषादों=कष्टों। पिच्छिल = फिसलाऊ = स्निग्ध= चिकना=आदि।

**व्याख्याः**—किन्तु किस युग से·········पिच्छिल सी भूमि पर।

बन्दिनी कमला कहती है कि:-पता नहीं किस युग से ( कब से ) मेरे दुखों

को वासना के विन्दु सींचकर हरा भरा बना रहे थे जो कि अचानक रात्रि ( विषाद) के गहरे अन्धकार (छाया) में तारा (आशा) के समान जग गये ( उभर पड़े ) इस प्रकार मैं अपनी मानसिक दुर्बलता को अपना सहारा समझकर जीवन की फिसलने वाली भूमिपर खड़ी हो गई। भाव यह है कि–पति के अभाव में मन में वासना की भावना इतनी बढ़ गई कि मेरे जीवन का पतन होना अनिवार्य होगया।

## ( पृष्ठ–८४ )

**शब्दार्थः**—बिखरे=यत्र तत्र पड़े=छितराये। प्रलोभनों=लालचों=भोग विलास की सामग्रियों का लोभ। अजित=अजेय।

**व्याख्याः**—"बिखरे प्रलोभनों········जीवनकी लीला।"

बन्दिनी कमला कहती है कि:–मेरे सम्मुख सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा प्रदत्त विलासपूर्ण जो सामग्रियाँ यत्र तत्र पड़ी थीं तथा उसके प्रलोभनपूर्ण शब्द जो मेरे कान में पड़े थे मैं उन्हें सत्य समझ बैठी और इस प्रकार इस जाल में फँसकर सुल्तान के ऊपर शासन करने की अभिलाषा से मस्त होकर ( मतवाली बनकर ) झूमने लगी। परन्तु भावना के परिवर्तन का वह एक क्षण कितना अजेय था जब कि मेरे पास यह सन्देश पहुँचा कि–गुजरात के राजा मेरे पतिदेव कर्णसिंह जीवित हैं और मुझे आत्महत्या कर जीवन समाप्त कर देने का उन्होंने सन्देश भेजा है।

**शब्दार्थः**—अर्ध कृति-सी=अपूर्ण सी। प्रत्यावर्तन=प्रतिनिवृत्ति=पुनरागमन= संघर्ष।

**व्याख्याः**—लालसा की·········फिर क्यों बचा सका?

बन्दिनी कमला कहती है कि:—जब मेरे पतिदेव कर्णसिंह लालसा की अपूर्णता में उस युद्ध में प्राण त्याग न कर सके और अबतक स्वयं प्राण धारण किये हुए हैं तब सब लोग अपनी अपनी आशा में जीवित रहें अर्थात् जब राजा कर्णसिंह ने स्वयं प्राण नहीं त्यागा, उन्हें प्राण का मोह बना ही रहा तो उन्हें मुझे आत्महत्या करने का सुझाव भेजना उचित नहीं है। जिस प्रकार उनके मन में जीने

की आशा बनी हुई है उसी प्रकार मेरे मन में भी जीने की अपूर्व आशा है। फिर मैं तो असहाया और वन्दिनी होने के कारण अपने प्राणों का त्याग न कर सकी ( आत्महत्या न कर सकी ) पर प्राणों के लोभ से वे क्यों जीवित हैं और कायरों की भाँति इधर उधर मारे मारे फिर रहे हैं। भाव यह है कि यदि पुरुष अपने प्राणों की आहुति नहीं दे सकता तो उसे नारी को अपने प्राणों की आहुति देने का आदेश देने का कोई अधिकार नहीं है।

**शब्दार्थः**—प्रेरित करता=प्रेरणा देता=उत्साहित करता। भारतेश्वरी=भारत की साम्राज्ञी। पदतल=पैरों के नीचे।

**व्याख्याः**—प्रेम कहाँ मेरा था ?·········सुल्तान पदतल में।

बन्दिनी कमला कहती है कि:—मेरे पति कर्णसिंह के हृदय में क्या मेरे प्रति प्रेम था ? और मैं अपने लिए भी भला कैसे कह सकती हूँ कि मेरे हृदय में उनके प्रति शुद्ध प्रेम का भाव था। आह ! मानिक मेरे पास प्राण त्याग कर देने का सन्देश लेकर आया हुआ है पर मेरे इसी सौन्दर्य ने मुझे गुजरात की रानी वनाया था और वही सौन्दर्य आज भारत की साम्राज्ञी का पद प्राप्त करने की प्रेरणा दे रहा है। सुल्तान से वदला लेने की भावना अव भारतेश्वरी वनने की लालसा ( कामना ) में वदल गई है और मैं सोचने लगी हूँ कि सुल्तान सदैव के लिए पराजित होकर मेरे पैरों के नीचे आगया है।

**शब्दार्थः**—कृष्णा=अग्नि देव की एक जीभ। वर्तिका=दीप शिखा=शलाका। कृष्णा गुरु वर्तिका=अग्नि की सी चमकवाले जीवनरूपी दीपक की वत्ती। स्वर्ण पात्र =सौन्दर्य। निस्पन्द=गति रहित। रङ्गमन्दिर=रंग महल। निरवलम्ब=निराश्रित।

**व्याख्याः**—कृष्णा गुरुवर्तिका··········मेरी रूप माधुरी का।

अपने जीवन के पतन की चर्चा करती हुई वन्दिनी कमला कहती है कि:—चमकीले जीवन रूपी दीपक की वत्ती अपने ही सौन्दर्य के गर्व में जल कर भस्म हो चुकी थी अव केवल इसमें धूएँ की रेखा मात्र वच गई थी। उस गति रहित ( निस्तब्ध ) विलास मन्दिर के आकाश में गन्ध हीन तथा निराश्रित के रूप में मैं पड़ी हुई थी। पर मैं यही समझ रही थी कि यही मेरा जीवन है और मेरे इस रूप माधुर्य का यही शृंगार है यही उसका पुरस्कार है। भाव यह है कि:—जिस सतीत्व

की रक्षा में भारतीय क्षत्राणियाँ अपना जीवन अर्पण कर जौहर कर दिखलाती थीं। उसी अमूल्य निधि को कमला अपने सौन्दर्य के झूठे अभिमान में तथा दिल्ली सुल्तान अलाउद्दीन के विलास पूर्ण साधनों के प्रलोभन में गँवा बैठी। उसने अपना सतीत्व बेचकर अपने चरित्र रूपी जीवन के दीपक की बत्ती को जला कर राख कर दिया। उसके उज्ज्वल चरित्र रूपी दीपक के प्रकाश के स्थान पर अब कलंकरूपी धूम्र की क्षीण रेखा मात्र शेष रह गई। उसका गौरव, स्वाभिमान सब कुछ नष्ट होकर चूर चूर हो गया।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने नारी के रूप माधुर्य पर आरोप लगाते हुए उसके पतन के लिए स्वयं उसी को ही दोषी ठहराया है। साथ ही जीवन की महत्ता को चरित्र की महानता की दृष्टि से देखा है।

( पृष्ठ-८५ )

**शब्दार्थ:**—नृशंस=हिंसक=अत्याचारी। कृपा कोर=कृपा दृष्टि। मदोद्धत=मद से उद्धत=मदोन्मत्त।

**व्याख्या:**—मणि-नूपुरों की·················अनुराग पर।

बन्दिनी कमला कहती है कि:—जब रत्नजड़ित नूपुर रूपी वीणा बजने लगी तब उसकी झनकार से यह सौन्दर्य रूपी रंगशाला गूँज उठी अर्थात् नूपुरों की मधुर ध्वनि ने सौन्दर्य में वृद्धि कर दी। अब तक संपूर्ण विश्व अभिमान का उत्सव मनाता रहा है पर आज इस अभिमान से सौन्दर्य विजयी हो उठा था और आज हिंसापूर्ण क्रूरताओं का साम्राज्य मेरे सौन्दर्य की कृपा दृष्टि का अवलोकन कर रहा था अर्थात् आज अत्याचारी और क्रूर सुल्तान अलाउद्दीन मेरे प्रेम के वशीभूत होकर मुझसे दया की भीख माँग रहा था। यह मेरा सौन्दर्य ऐसा था जिसमें मदोन्मत्त भ्रू-विलास की लालिमा संसार भर के प्रेम पर व्यंग कर रही थी। भाव यह है कि बन्दिनी कमला के नेत्रों के कटाक्ष के सम्मुख प्रेम के सभी प्रतीक तुच्छ थे।

**शब्दार्थ:**—भवें=भौहें=भृकुटियाँ। बल खातीं=चढ़तीं उतरतीं।

**व्याख्या:**—अवहेलना से.....................सोता मन्द मन्द।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—मेरी अवहेलना से सुल्तान अलाउद्दीन की प्रार्थनायें बिखर जाती थीं अर्थात् मैं उनके अनुरोध को ठुकरा देती थी। जब मैं अपनी भ्रू भंगिमा को सीधी और तिर्छी करती तब सुल्तान के वासनापूर्ण स्वप्न क्षण भर में आनन्द विभोर हो जाते या उदास हो जाते थे अर्थात् मेरी भौहों के ही संकेत पर उनका सुख-दुख निर्भर करता था अर्थात् मैं अपने सौन्दर्य और कटीले नेत्रों से उन्हें अपनी इच्छानुसार नचाती रहती थी। वे मेरे प्रेम के हाथों बिक चुके थे। मेरे नेत्र उन्हें किंकर्तव्यविमूढ़ बना देते थे। मेरी मुस्कराहट के सौन्दर्य के कमलवत् पराग रूपी उद्गम से सुगन्ध के अमृत का धीमा धीमा सोता प्रवाहित होता रहता था अर्थात् मेरी मुस्कराहट से आनन्द की धारा बह उठती थी।

**शब्दार्थ:**—मरन्द=मकरन्द=पराग। कुमारिका=कन्या कुमारी द्वीप से तात्पर्य है।

**व्याख्या:**—रत्न राजि सींची जाती.....................चलता था।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—मेरे सौन्दर्य रूपी पुष्प पराग से वैभव समूह की वाटिका सींची जाती थी। कितने ही नेत्रों के प्रसन्न नीले नक्षत्र मेरे सौन्दर्य का दर्पण बनने के लिए स्थिर और शांत होकर प्रतीक्षा करते रहते थे। मेरे इन्हीं मछली के समान चमकीले नेत्रों के चंचल संकेत पर कन्याकुमारी से लेकर हिमालय की चोटी तक का संपूर्ण साम्राज्य तीव्र बादलों की विद्युत के समान लगातार शासित होता रहता था! भाव यह है कि—वन्दिनी कमला के सौन्दर्य पर सभी लोग लालायित रहते थे और स्वयं सुल्तान अलाउद्दीन उसके नेत्रों के संकेत पर अपने साम्राज्य का शासन करता था।

**शब्दार्थ:**—मीन केतन=कामदेव। अनङ्ग=कामदेव। हरमें=बेगमें=पटरानियाँ। सशंक=भयभीत=आशंकित।

**व्याख्या:**—हुआ होगा बनना सफल.....................आत्म सम्मान को।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—मेरे अनुपम सौन्दर्य और तिर्छे नेत्रों को ही देखकर कामदेव का सुन्दर मीनकेतन नाम सार्थक हुआ होगा। मेरे सौन्दर्य की

विजय के प्रभाव से कभी कोई राजा मुकुट धारण करता था और कभी किसी के सिर रक्तमय जलती पृथ्वी में लोटते थे। भाव यह है कि मैं अपने सौन्दर्य के प्रताप से सुल्तान को वशीभूत कर चुकी थी और अपने सौन्दर्य बल पर उनसे जो चाहती थी करा लेती थी। सुल्तान की रानियाँ अपने सशंकित नेत्रों से अपने अपमान का अनुभव करती थीं अर्थात् मेरे सौन्दर्य को देखकर उन्हें यह स्मरण हो आता था कि इसी नारी के सौन्दर्य से प्रभावित होकर सुल्तान ने अपने प्रेम से हमें वंचित कर दिया। मानवता के जिस आत्मसम्मान को विश्व में सत्य की संज्ञा दी जाती है उसी को मैंने प्रेम की प्रवंचना में विक्रय कर दिया।

(पृष्ठ-८६)

**शब्दार्थः**—परखने का=जाँचने का=परीक्षा का। मुमूर्षु=मरणासन्न।

**व्याख्याः**—जीवन में आता है................रक्तमय सन्ध्या थी।

वन्दिनी कमला कहती है किः—प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक ऐसी घड़ी अवश्य आती है जिसमें उसकी परीक्षा हो जाती है पर लोभ, लालसा, भय, क्रोध और प्रतिशोध की भावना के तीव्र शोर गुल में मनुष्य को परीक्षा काल की पुकार सुनाई ही नहीं पड़ती। मैंने सोचा था कि सेवक मानिक के आने का समय ही मेरा परीक्षा काल था जब कि उसको सुल्तान से प्रार्थना करके मैंने मृत्युदंड से बचाया था और जिस दिन पदलोलुप उस दास ने काफूर के नाम से मरणासन्न सुल्तान अलाउद्दीन के जीवन का अन्त किया उस दिन यह विचार सत्य प्रतीत हुआ। मेरे इसी सौन्दर्य के कारण युद्ध की आँधी में रक्त की वर्षा होने लगी और प्यार से पले हुए तथा रूपवान और शीलवान राजवंश के लोग मारे गये। वास्तव में वह युद्ध काल रक्तमय सन्ध्या काल था।

**शब्दार्थः**—प्रतिघात=टक्कर=घात के बदले में आघात। सबल=जोरदार। छलना=प्रवंचना।

**व्याख्याः**—शक्तिशाली होना........राज्य का मुकुट।

वन्दिनी कमला कहती है किः—शक्तिमान होना बड़े भाग्य की बात है और

फिर आपदाओं, विघ्न-बाधाओं के तीव्र टक्कर का जोरदार विरोध करना बड़ा ही सुखकर होता है। मुझे इस सबल विरोध के सुख का भी अनुभव हुआ था परन्तु वह मिथ्या अधिकार की प्रवंचना मात्र थी। जिस दिन मैंने यह सुना कि तुच्छ कुटुम्बी आजीवन सेवक ने रक्त से रँगे हुए राज्य का मुकुट अपने ही हाथों से धारण किया था।

**शब्दार्थः**—सदर्प=गर्व के साथ। तल=सतह। वृश्चिकों=बिच्छुओं।

**व्याख्याः**—अन्तकर दास राजवंश का........किया मानिक ने।

वन्दिनी कमला कहती है किः—दासराजवंश का अन्त करके तथा अपने स्वामी राजा कर्णसिंह का प्रचण्ड बदला लेकर गर्व के साथ मानिक ने खुसरू के नाम से शासन का भार सँभाला। उसी दिन मुझे अपनी वास्तविक स्थिति का पता चल सका कि मैं किस सतह पर हूँ अर्थात् मैं कितनी गहराई में हूँ। इस परिस्थिति का आभास पाकर मेरे हृदय में इतना महान कष्ट हुआ मानों सैकड़ों बिच्छुओं ने मुझे एक साथ डंक प्रहार किया हो। मैं तो सुल्तान से बदला लेने आई थी पर अपने ध्येय को भूलकर पतन के गर्त में चली गई पर उसी कार्य को मानिक ने पूरा किया।

## (पृष्ठ–८७)

**शब्दार्थः**—वात्याचक्र=आँधी=तूफान। अभिशाप=कलंक।

**व्याख्याः**—खुसरू ने !...........छाया भी पड़ी नहीं।

वन्दिनी कमला कहती है किः—बदला लेने की भावना रूपी दावाग्नि में अद्भुत पराक्रम का तूफान उठाकर खुसरू अर्थात नीच कुटुम्बी अभी अभी कह गया किः—छिः नारी कमला तेरा यह सौन्दर्य जीवन का कलंक है जिसमें पवित्रता नाम मात्र को भी नहीं है।

**शब्दार्थः**—उत्पीड़न=कष्ट=दर्द=व्यथा। प्रतिहिंसा=बदला लेने की भावना।

**व्याख्याः**—जितने उत्पीड़न थे........प्रतिध्वनि हैं चाहते।

वन्दिनी कमला कहती है किः—मेरे हृदय में संवेदना और विषाद की जितनी भावनाएं चूर चूर होकर दबी पड़ी थीं अब वे जाग्रत होकर अपना अस्तित्व प्रकट

करने लगी हैं और वे इस नाशवान संसार में शत्रु से बदला लेने की आवाज़ लगाने लगी हैं।

**शब्दार्थः**—माया स्तूप=माया मोह का ऊँचा दूहा। लोप हो रहा है=विलीन हो रहा है।

**व्याख्याः**—'लूटा था इस अधिकार ने········ आँखों के सामने।

वन्दिनी कमला कहती है कि:—इस वासना के अधिकार ( प्रभुत्व ) ने ऐश्वर्य, रूप, शील और गौरव की जो लूट की थी अब वे स्वतन्त्र होकर विचरण करने लगे हैं और इन आँखों के सामने एक माया का ऊँचा टीला सा विलीन होता जा रहा है। भाव है कि सौन्दर्य के गर्व में कमला ने जिन मानवीय गुणों को तिलांजलि देकर वासना और पाप के मार्ग को अपनाकर अपने को पतन के गर्त में डाल दिया था अब वे सब गुण एक एक करके उसके मस्तिष्क में उठकर उसे धिक्कारने लगे हैं।

**शब्दार्थः**—हिम विन्दु=ओस की बूँद। छलना=ठगिनी।

**व्याख्याः**—देख कमलावती!·········व्यङ्गय उपहास में।

वन्दिनी कमला स्वगत कहती है कि:—अरी कमला देवी तू देख! सौन्दर्य की सत्ता का चंचल आवरण ओस की बूँदों के समान ढुलक कर विलीन हुआ जा रहा है। वासना की प्रवंचना [पिशाचिनी के समान तेरे ऊपर हँस रही है और छिपे रूप से विलास की अँगुलियों का संकेत करके तुम्हारे ऊपर व्यंग्य और कटाक्ष कर रही है।

**शब्दार्थः**—अन्तक=यम=नाश करने वाला। शरभ=टिड्डी=ऊँट=एक प्रकार का बड़ा पक्षी=हाथी का बच्चा।

**व्याख्याः**—ले चली बहाती हुई·········प्रलय की छाया में।

बन्दिनी कमला स्वगत कहती है कि अरे दुर्भाग्य! तीव्र वेग से युक्त वासना मुझे अन्धकार के समुद्र में बहा ले चली अर्थात् वासना ने मेरा अस्तित्व (सतीत्व) नष्ट कर दिया। कालरूपी टिड्डी के काले काले पंख अन्धकार रूपी पाप वासना से मेरे गौरव को उसी प्रकार से ढँकते जा रहे हैं जिस प्रकार पुण्य के प्रकाश से हीन कलंकित सौन्दर्य का नक्षत्र कालिमा की धारा के समान नीचे गिरता है।

इस प्रकार मेरे प्रतिशोध की भावना रूपी सृष्टि प्रलय की छाया में असफल हो गई। भाव यह है कि जिस प्रकार पुण्य का क्षय होने से आकाश से टूट कर तारे पृथ्वी पर आजाते हैं उसी प्रकार काम वासना की चेरी बनकर कमला ने अपना अपनी जाति और अपने देश का गौरव नष्ट कर दिया।

## प्रश्नोत्तर

**प्रश्न (१):**—'आत्म कथा' अथवा 'प्रलय की छाया' कविता के भाव अच्छी शैली में व्यक्त कीजिये।

( बी० ए० परीक्षा १९५० का० वि० वि० )

**उत्तर:**—देखिये संदर्भ तथा व्याख्या पृष्ठ २६४ से २६७ तथा २७३ से ३००

**प्रश्न (२) (क):**—निम्नांकित पद्यों की सहृदयता पूर्ण व्याख्या कीजिये:—

उज्ज्वल वरदान चेतना का, सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।
जिसमेंअनंत अभिलाषा के, सपने सब जगते रहते हैं।
मैं उसी चपल की धात्री हूँ गौरव-महिमा हूँ सिखलाती।
ठोकर जो लगने वाली है, उसको धीरे से समझाती।

( बी० ए० परीक्षा १९४५ का० वि० वि०)

**उत्तर:**—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ १

**(ख)** नीचे लिखे काव्य-खण्डों का अर्थ सरल भाषा में समझाइये। भाव को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक टिप्पणी भी दीजिये:—

श्यामा-सृष्टि युवती थी,..........बहाती लावण्य धारा।

( बी० ए० परीक्षा १९४६ का० वि० वि० )

**उत्तर:**—देखिए व्याख्या तथा विशेषटिप्पणी पृष्ठ–२७७, २७८।

**( ग )** नीचे लिखे अवतरणों की प्रसंग-सहित व्याख्या कीजिए तथा उनका भाव-सौन्दर्य दिखाइए:—

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ.........जो बनती कानों की लाली।

( बी० ए० परीक्षा १९४७ का० वि० वि० )

उत्तर:—देखिये व्याख्या तथा विशेषटिप्पणी पृष्ठ २४७, २४८।

(घ) नीचे लिखे उद्धरणों की व्याख्या प्रसग निर्देश पूर्वक कीजिए तथा उनका काव्य-सौन्दर्य समझाइये:—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो.........जीवन के सुन्दर समतल में।
आँसू से भीगे अंचलपर.........यह संधि पत्र लिखना होगा।

(बी० ए० परीक्षा १९४९ का० वि० वि०)

उत्तर:—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ २५३, २५४।

(ङ) नीचे लिखे अवतरणों की व्याख्या कीजिये:—

नयनों की नीलम की घाटी.........शीतलता ठंढक पाती हो।
अम्बर चुम्बी हिम शृङ्गों से.........बहती जिसमें उन्माद लिये।
हो चकित निकल आई सहसा.........जो मानस की लहरों परसे।
छाया पथ में तारक द्युति सी.........कोमल निरीहता श्रमशीला।

(बी० ए० परीक्षा १९५० का० वि० वि०)

उत्तर:—देखिये व्याख्या तथा विशेषटिप्पणी पृष्ठ २४३, २४१, २४४, २५०

(च) प्रसंग निर्देश पूर्वक व्याख्या कीजिए:—

कृष्णा गुरु वर्तिका.........मेरी रूप माधुरीका।

(बी० ए० परीक्षा १९५४ का० वि० वि०)

उत्तर:—देखियेपृष्ठ २६४।

# ४—निराला

**परिचयः**—कविवर पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म माघ शुक्ल ११ संवत् १९५३ वि० को महिषादल राज्य जिला मेदिनीपुर बंगाल में हुआ था इनके पिता का नाम पं० राम सहाय त्रिपाठी है। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। यों तो इनका पैत्रिक निवासस्थान उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में गढ़कोला ग्राम है पर इनके पिता पं० रामसहाय त्रिपाठी महिषादल-राज्य के कर्मचारी थे अतः इनका बाल्यकाल वहीं बीता। इनकी शिक्षा दीक्षा भी वहीं हुई। 'निराला' जी बाल्यकाल से ही स्वतन्त्र प्रकृति के थे अतः विद्यालय की शिक्षा की ओर इनकी विशेष रुचि न रही। इनका ध्यान विभिन्न कलाओं की ओर आकर्षित हुआ और इन्होंने व्यायाम, घुड़सवारी तथा संगीत कला आदि में विशेष रुचि लगाकर इसमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। इन्होंने संस्कृत और बंगला भाषा का भी विशेष अध्ययन किया। इनका विवाह १३ वर्ष की आयु में हो चुका था और इनकी पत्नी मनोहरा देवी को संगीत और साहित्य से विशेष रुचि थी अतएव इनके द्वारा निराला जी को संगीत और साहित्य की विशेष प्रेरणा मिली। सन् १९१९ ई० में इनकी पत्नी का देहान्त हो गया तथा विपत्तियों के पहाड़ इन पर टूट पड़े पर निराला जी ने इनका सामना करने में बड़ी ही निर्भीकता और साहस का परिचय दिया। कुछ समय तक महिषादल राज्य में नौकरी करने के बाद ये आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रयत्न से सं० १९७८में श्री राम कृष्ण मिशन के प्रमुख शैक्षणिक केन्द्र बैजूर में 'समन्वय' के सम्पादक हो गये। यहाँ इन्हें परमहंस रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के जीवन दर्शन तथा मूल सिद्धान्तों के अध्ययन करने का अच्छा अवसर मिला। इस प्रकार इनके विचारों में प्रौढ़ता और परिपक्वता के साथ साथ दार्शनिकता की पूर्ण छाप पड़ गई। इसके बाद स्वर्गीय सेठमहादेव प्रसाद जी के आग्रह से इन्होंने कुछ समय तक 'मतवाला' का सम्पादन किया तत्पश्चात ये लखनऊ चले आये और वहाँ बहुत दिनों तक

रहे । इस बीच कुछ दिनों तक ये अपने गाँव पर भी रहे । सम्वत् २००३ बि० में काशी में इनकी जयन्ती मनायी गई जिसमें देश भर के साहित्यिकों ने भाग लिया था । आज कल 'निराला' जी का स्थायी वास प्रयाग में हो रहा है । जीवन के संघर्षों, शारीरिक, मानसिक और आर्थिक चिन्ताओं के कारण 'निराला' जी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया है । ये रुग्ण और विक्षिप्तावस्था में प्रयाग में कालयापन कर रहे हैं पर हिन्दी साहित्यिकों तथा सरकार की ओर से इनकी चिकित्सा पर पूर्ण ध्यान दिया जा रहा है देखें हिन्दी के भाग्य से यह हिन्दी माँ का लाल कब पुनः स्वस्थ्य होकर अपनी प्रतिभा का नवीन प्रसाद हिन्दी साहित्य को भेंट करता है । ईश्वर निराला जी को स्वस्थ और दीर्घजीवी बनाकर हिन्दी के मुख की लाली रखले यही उससे प्रार्थना है ।

'निराला' जी बाल्यकाल से ही कविता प्रेमी थे । इनकी कविताएँ सर्व प्रथम बँगला भाषा में प्रकाशित हुईं । अपनी पत्नी मनोहरा देवी की प्रेरणा से इन्हें हिन्दी खड़ी बोली में काव्य रचना करने का अवसर मिला और खड़ी बोली की इनकी प्रथम रचना 'जुही की कली' प्रकाश में आई । इसके बाद तो एक एक करके इनकी अन्य रचनायें हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अवतरित होती गईं ।

**धर्म-स्वभाव तथा व्यक्तित्व:**—'निराला' जी विशाल शरीर और विशाल बुद्धिवाले व्यक्ति हैं । इनके स्वभाव में कोमलता अक्खड़पन, हास और व्यंग्य की पूरी झलक मिलती है । ईश्वर के प्रति इनकी प्रबल आस्था है तथा भारतीय संस्कृति और सभ्यता से इन्हें विशेष अनुराग है । ये आदर-सम्मान में अत्यन्त उदार तथा महत्वाकांक्षी पुरुष हैं ।

**रचनायें:**—'निराला' जी की रचनाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

**१-काव्य:**—परिमल, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते, अपरा ।

**२-उपन्यास:**—अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, उच्छृंखलता, चोटी की पकड़, काले कार नामें, चमेली ।

**३-कहानी संग्रह:**—लिली, सखी, चतुरी चमार, सुकुल की बीबी ।

**४-रेखा-चित्र:**—कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा ।

**५-जीवनियाँ:**—राणा प्रताप, भीम, प्रह्लाद, ध्रुव, शकुन्तला।

**६-आलोचनात्मक निबन्ध-संग्रह**—प्रबन्ध पद्म, प्रबन्ध प्रतिमा, प्रबन्ध-परिचय, रवीन्द्र कविता-कानन।

**७-अनुवाद**—महाभारत, श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, स्वामी विवेकानन्द के भाषण, देवी चौधरानी, आनन्द मठ, चन्द्र शेखर, कृष्ण कान्त का विल, दुर्गेश नन्दिनी, रजनी, युगलांगुलीय, राधारानी, तुलसीकृत रामायण की टीका, वात्स्यायन कृत कामसूत्र।

**भाषा:**—'निराला' जी की भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त खड़ी बोली है तथा इसपर बँगला भाषा की भी छाप पड़ी है। इसके अतिरिक्त इनकी रचना में उर्दू तथा फारसी के भी शब्द पाये जाते हैं। इनके वाक्यविन्यास पर बंग शैली का स्पष्ट प्रभाव है। भाषा को समर्थ बनाने में इन्हें अपूर्व सफलता मिली है। इन्होंने भाषा द्वारा भावों को सजीव कर दिया है। इनकी रचनायें संगीत की लहर पर सजाई हुई कोमलता तथा मधुरता से ओत प्रोत हैं। कहीं कहीं बौद्धिक तत्व की अधिकता के कारण भाषा में जटिलता तथा दुरूहता भी आ गई है।

**शैली:**—'निराला' जी की शैली पर बंगशैली की स्पष्ट छाया पड़ी है। समास युक्त लंबी पदावलियों का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है। क्रिया पदों का अवसान तो इनकी शैली का विशिष्ट गुण है। ये अपनी शैली के स्वयं स्रष्टा हैं। इन्होंने वर्णनात्मक, विचारात्मक और उद्बोधात्मक तीन प्रकार की शैलियों को अपनाया है। इनकी शैली पर देश काल का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है।

**छन्द:**—निराला जी ने सर्व प्रथम निखरे हुए मुक्तक छन्द का सफल प्रयोग करके दिखाया और छन्द शास्त्र में क्रान्ति उत्पन्न करदी। स्वतंत्र छन्दों की प्रयोगात्मक शैली इनकी अपनी देन है। इन्होंने अतुकान्त और तुकान्त दो प्रकार के मुक्तक छन्दों का सृजन किया है। इनके तुकान्तछन्द संगीतात्मक तथा अतुकान्त छन्द पठनीय हैं।

**रस:**—रस-योजना में भी 'निराला' जी ने अपनी कुशलता का अनुपम प्रमाण दिया है। इनका शृंगाररस संयम शील है तथा वीर, रौद्र, और शृंगार रस के भी सुन्दर प्रयोग इनकी रचना में पाये जाते हैं। इनकी अधिकांश रचनायें वीर रस प्रधान हैं।

**अलंकारः**—अलंकार की दृष्टि से 'निराला' जी की रचनाओं में अनुप्रास का संगीतात्मक सफल प्रयोग अधिकता से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त संदेहालंकार और विपर्यय अलंकार तथा रूपक अलंकार का भी प्रयोग मिलता है।

**काव्यगत विशेषतायें:**—निराला जी के काव्य में निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती हैं:—

( १ ) ये छायावादी कवि हैं और छायावाद की परंपरा को आगे बढ़ाने का श्रेय इन्हें प्राप्त है।

( २ ) इन्होंने प्रगतिशील कविताओं की रचना की है।

( ३ ) ये सौन्दर्योपासक कवि हैं तथा सौन्दर्य के चित्रण में इन्होंने अनुपम सफलता प्राप्त की है।

( ४ ) इनकी कविताओं में कल्पना, भावुकता, सरलता तथा मधुरता का अद्भुत सम्मिश्रण पाया जाता है।

( ५ ) इन्होंने प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन मानवीकरण के रूप में किया है।

( ६ ) इन्होंने अपनी कविता को छन्दों के बन्धन से मुक्त रखा है तथा छन्दों के प्रयोग में ये क्रान्तिजनक हैं।

( ७ ) क्लिष्ट तथा सरल दोनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग इन्होंने अपनी रचना में सफलता के साथ किया है।

( ८ ) इन पर ब्रह्मवाद का प्रभाव पड़ा है पर ये ब्रह्म के पीछे व्यक्तित्व को न भुलाकर उसके साथ चन्द्र और चकोर का सा संबंध बनाये रखना उचित समझते हैं।

( ९ ) इनकी भाषा कोमल, सरस, प्रवाहमयी तथा भावानानुगामिनी है तथा इसमें मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है।

( १० ) इनकी छन्द, रस, अलंकार योजना उत्तम बन पड़ी है।

( ११ ) इनकी शैली संगीतात्मक है तथा इसमें प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों गुण पाये जाते हैं।

( १२ ) ये कवि के साथ-साथ दार्शनिक भी हैं।

( १३ ) इनके हृदय में करुणा तथा सहानुभूति का स्रोत प्रवाहित होता रहता है।

( १४ ) इनका नारी सौन्दर्य वर्णन बड़ा ही मार्मिक हुआ है।

( १५ ) कवि के अतिरिक्त ये उपन्यासकार, कहानीकार और समीक्षक भी हैं।

**समीक्षा:**—'निराला' जी की प्रारंभिक रचनायें इस बात की संकेत-सूचिका हैं कि इन्होंने काव्य को छन्द बंधन से मुक्ति की बात आरंभ में ही सोच ली थी और अपनी प्रतिभा के बल पर हिन्दी कविता में स्वच्छन्दतावा[illegible] में दृढ़ संकल्प थे। इनकी कल्पना कह उठी—

माँ,

जिस तरह चाहो बजाओ इस वीणा को,
यन्त्र है,
सुनो तुम्हीं अपनी सुमधुर तान,
बिगड़ेगी वीणा तो सुधारोगी बाध्य हो।

'प्रगल्भ प्रेम' शीर्षक कविता में कवि अपनी कविता प्रेयसी से 'बन्धनमय छन्दों की छोटी राह' छोड़कर नये भावों के प्रशस्त राजपथ पर आने के लिए आग्रह करता है—

आज नहीं है मुझे और कुछ चाह,
अर्ध विकच, इस हृदय-कमल में आ तू,
प्रिये, छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह ?
गज गामिनि, यह पथ तेरा संकीर्ण,
कंटका कीर्ण,
कैसे होगी पार ?

रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक सिद्धान्तों से प्रभावित कवि 'निराला' रहस्यवादी अवश्य हो गये पर इनका रहस्यवाद कोरा शुष्कवाद नहीं है बल्कि इसमें आनंदप्रद मूर्त विधान भी है यथा:—

"यौवन के तीर पर प्रथम था आया
जब स्रोत सौंदर्य का,
वीचियों में कलरव सुख-चुंबित प्रणय का
था मधुर आकर्षण मय
मज्जना वेदन मृदु फूटता सागर में"

निराला जी की आस्तिकता एवं आशावादिता की झलक इन पंक्तियों में मिलती है—

'डोलती नाव, प्रखर है धार, सँभालो जीवन खेवनहार।

कवि निराला का 'कुकुरमुत्ता' सामाजिक अव्यवस्था पर एक चुभता हुआ करारा व्यंग्य है। कुकुरमुत्ता कहता है।

अबे ! सुन बे गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगो आब।

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से 'जुही की कली' और 'शेफालिका' का बड़ा महत्व है। प्रमाणस्वरूप निम्न पंक्तियाँ पर्याप्त हैं—

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से।
यौवन उभार ने,
पल्लव-पर्यंङ्क पर सोती शेफालिके ॥

'सन्ध्या' के वर्णन में कवि की कोमल कल्पना देखते ही बनती है—

अस्ताचल ढले रवि, शशि-छवि विभावरी में ।
चित्रित हुई है देख, यामिनी-गंधा जगी ॥

'निराला' जी की वीररस प्रधान कविताओं में भाव एवं भाषा का अच्छा रूप मिलता है "जागो फिर एक बार" इनकी ऐसी ही उत्कृष्ट रचना है। कवि देश को जगाता हुआ कहता है—

"जागो फिर एक बार,
सिंहनी की गोद में छीनता रे शिशु, कौन ?
मौन भी क्या रहती वह, रहते प्राण ? रे अजान।"

'राम की शक्ति पूजा' कवि 'निराला' की एक उत्कृष्ट रचना है। इसमें कल्पना का चरम विकास और भावना का परम उत्कर्ष दोनों ही एक साथ पिरोये गये हैं। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ पर्याप्त हैं—

ऐसे क्षण अन्धकार में जैसे विद्युत,
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत।

देखते ही निष्पलक याद आया उपवन;
विदेह का प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन॥

आर्थिक विषमता और वर्गवादी मनोवृत्ति का सफल चित्रण कवि की इन पंक्तियों में मिलता है—

"वह तोड़ती पत्थर,
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर।"

इसी प्रकार का मार्मिक चित्रण 'भिखारी' कविता में भी मिलता है—

"दो टूक कलेजे के करता, पछताता आता।
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक।"

कवि के काव्य में संगीत का प्रवाह निम्न पंक्तियों में स्पष्ट देखा जा सकता है—

"कौन तम के पार ? ( रे कह )
अखिल पल के स्रोत जल-जग,
गगन घन घन धार ( रे कह )
गंध-व्याकुल-कूल—उर—सर

"दिल्ली" शीर्षक कविता में निराला जी अतीत के चित्र के साथ-साथ करुणा की धारा बहा देते हैं—

"नारियों की महिमा उस सती संयोगिता ने
किया आहूत जहाँ विजित स्वजातियों को
आत्म बलिदान से—
पढ़ो रे, पढ़ो रे पाठ।"

शृंगारिक रचनाओं में भी कवि 'निराला' ने पवित्र भावना को स्थान दिया है—यथा—

हेर प्यारे को सेज पास, नम्र मुखी हँसी-खिली
खेल रंग, प्यारे सङ्ग।

कवि 'निराला' की अतुकांत शैली का नमूना यह है—

चढ़ रही थी धूप,<br>
गर्मियों के दिन,<br>
दिवा का तमतमाता रूप,<br>
उठी झुलसाती हुई लू।

सतुकान्त शैली का नमूना यह है—

भारत के नभ का प्रभा पूर्य,<br>
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य ।<br>
अस्तमित आज रे-तमस्तूर्य दिङ् मंडल ॥

**संक्षेप में:**—'निराला' जी एक प्रौढ़ क्रांतिकारी कलाकार हैं और इन्होंने काव्य-क्षेत्र में नवीन पद्धति को जन्म देकर खड़ी बोली काव्य को उपयुक्त प्रौढ़ता प्रदान की है।

## आमन्त्रण

**संदर्भ:**—प्रस्तुत गीत 'आमन्त्रण' कविवर सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'गीतिका' नामक गीति-संग्रह से उद्धृत है। इसमें कवि 'निराला' ने प्रकृति-सुन्दरी को 'कल्पना के कानन की रानी' की संज्ञा देकर अपने प्रकृति संबंधी भावों को बड़े ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। इसके अन्तर्गत लौकिक सौन्दर्य को अलौकिक स्तर पर पहुँचाकर मानवोचित धारा में रहस्यात्मक दृष्टिकोण का समन्वय करने में कवि पूर्ण सफल हुआ है।

**( पृष्ठ—८८ )**

**शब्दार्थ:**—मानस=हृदय। कुसुमित=पुष्पित=मधुर। सुप्त=सुषुप्त=सोई हुई। परिमल=गमक=सुगन्ध। अमन्द=तीव्र गति से। वसन=वस्त्र=साड़ी=परिधान। धानी=हल्का हरा रंग।

**व्याख्या:**—कल्पना के कानन की रानी..........वसन तुम्हारा धानी।

प्रकृति सुन्दरी का आवाहन करते हुए कवि 'निराला' कहते हैं कि ऐ मेरी कल्पना रूपी वन की रानी! मेरे हृदय की पुष्पित वाणी! प्रकृति सुन्दरी! तुम अपने मधुर चरणों को रखते हुए पधारो। तुम्हारे नवीन शरीर के भाग स्वरूप वृक्षों के नवीन पत्ते कंपित होकर हिलने लगें और सुषुप्त सुगन्ध की मधुर लहर बहने लगे जिससे जीवन की नई ज्योति तीव्र गति से जाग उठे और वसन्त ऋतु के वायु स्पर्श से तुम्हारा हल्के हरे रंग का वस्त्र हिलने लगे। भाव यह है कि–प्रकृति के जितने उपादान यथा वृक्षों के नवीन पत्ते, सुगन्धित पवन और वनस्पति वर्ग की हरीतिमा आदि हैं सबमें उमंग और प्रसन्नता व्याप्त हो जाये।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि 'निराला' ने शृंगार की मधुर और क्षीण रेखा की झलक प्रकृति प्रिया के रूप सौन्दर्य में बिखेर दिया है।

**शब्दार्थ:**—रूँधा=रुका=बन्द। मल=दैहिक, दैविक और भौतिक त्रय ताप अथवा कलुषित भाव। ज्ञानी=दार्शनिकों से तात्पर्य है।

**व्याख्या:**—मार्ग मनोहर हो............रहें ताकते ज्ञानी।

कवि प्रकृति सुन्दरी को लक्ष्य करके कहता है कि–हे प्रकृति सुन्दरी! तुम्हारे सुन्दर रूप को देखकर मेरे जीवन पथ में मनोहरता और सरलता व्याप्त हो जाये तथा यह जीवन मार्ग जो दुःख-विषाद आदि कंटकों से पूर्ण वन से आच्छादित होकर अवरुद्ध हो गया है खुल जाये और मेरे शरीर तथा मनमें जो दैहिक-दैविक और भौतिक ताप अथवा कलुषित भावनायें हैं वे सब नष्ट हो जायें जिससे मेरा हृदय स्वच्छ और पवित्र हो जाये तथा अन्य दार्शनिक ज्ञानी पुरुष तुम्हारे सुन्दर रूप और उससे प्रभावित मेरे पाप रहित शरीर को देखकर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर एकटक देखते ही रह जायें।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में 'रहें ताकते ज्ञानी' के द्वारा कवि ने अपनी भक्ति भावना का अच्छा परिचय दिया है।

**शब्दार्थ:**—मादक=मादकतापूर्ण=उन्मत्त। अखिल=संपूर्ण। पुरातन प्रियता=पुरानेपन का प्यार।

**व्याख्या:**—मेरे प्राणों के प्याले को.........जिसकी हठ ठानी।

कवि प्रकृति सुन्दरी से आग्रह करते हुए कहता है कि:—हे प्रकृति सुन्दरी! तुम अपने सौन्दर्य से मेरे हृदय रूपी प्याले को लबालब भरदो और अपने नेत्रों की मादकता से मुझे उन्मत्त बना दो और संपूर्ण प्राचीनता पूर्ण प्यार का निवारण करदो और आज मैं जिस हठ पर अड़ा हुआ हूँ उसे वरदान सदृश अमर करदो अर्थात् अपने सौन्दर्य से मुझे ऐसा उन्मत्त बना दो कि मैं कल्पना के संसार में विचरण करते हुए मस्त होकर प्रकृति और परमात्मा के प्रेम में अपने को निछावर कर दूँ।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में वैषम्य-प्रधान प्रेम-सौन्दर्य का अनुपम चित्र अंकित किया गया है।

## कृतज्ञता

**संदर्भ:**—'कृतज्ञता' शीर्षक प्रगीत कविवर निराला रचित 'गीतिका' काव्य संग्रह से उद्धृत है। इसमें कवि नें प्रकृति और उसके स्रष्टा के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए प्रकृति के प्रात:कालीन मनोहर रूप का सरस वर्णन किया है साथ ही जड़ और चेतन के रहस्य का उद्घाटन किया है।

**शब्दार्थ:**—भावना=विचार=कल्पना=इच्छा=स्मरण=चित्तवृत्ति। प्राण=जीवात्मा=ब्रह्म=जीवन = वायु। आह्वान=पुकार। सहस्र दश=एकप्रकार का कल्पित कमल जिसमें एक हजार पंखड़ियाँ होती हैं। अचपल=स्थिर=अटल। प्रतिपल=क्षण क्षण पर। सौरभ ज्ञान=सुगन्ध रूपी ज्ञान=सत्याभास।

**व्याख्या:**—भावना रँग दी तुमने प्राण,...........प्रतिपल सौरभ ज्ञान!

कवि प्रकृति को लक्ष्य करके कहता है कि:—हे ईश्वर की देन प्रकृति! तुमने जीवमात्र के प्राण में चित्तवृत्ति का आभास प्रकट कर दिया है। प्रत्येक वाणी में, प्रत्येक रचना में, तुम्हारी पुकार आ रही है। दिशाओं के एक सहस्र पंखड़ियों वाले कमल के नये नये कोमल पत्ते खुल गये हैं। इन दृश्यों के बीच में स्थिर रूप से तुम्हारा वास रहता है और उससे क्षण क्षण पर सुगंध रूपी ज्ञान

प्रवाहित होता रहता है अर्थात् सत्य का आभास मिलता रहता हैं । भाव यह है कि उस पारब्रह्म परमेश्वर की सत्ता का आभास प्रकृति के कण कण में व्याप्त है और प्रकृति के सौन्दर्य से उस सत्ता की झलक मिलती रहती है जिससे प्राणी मात्र को एक अद्‌भुत प्रेरणा प्राप्त होती है ।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में कोमल आकर्षण और सौहार्द्र समाहार देखते ही बनता है ।

(पृष्ठ-८८)

**शब्दार्थः**—नवगात=नवीन शरीर । प्रात=प्रातः काल । वात=वायु । पलक पात=पलकों का गिरना । कर-दान=किरण-दान ।

**व्याख्याः**—ओस आँसुओं.....................पलक-पात कर-दान ।

प्रकृति को लक्ष्य करके प्रातःकालीन सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है किः—ओसरूपी आँसुओं से तुम्हारा नवीन शरीर धुलकर स्वच्छ हो गया है और तुम्हारे नेत्रों में नवीन प्रातःकाल स्पष्ट रूप से झलक रहा है और चंचल वायु तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर रही है । सूर्य अपनी किरणों का दान करके दृष्टिपात कर रहा है । भाव यह है कि प्रातः काल में सूर्य की किरणें चारों ओर फैल रही हैं, पत्तों और घासों पर ओस की बूँदे पड़ी हैं तथा ठंढी ठंढी हवा बह रही है ।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में शब्दों ने भावों का अनुगमन किया है ।

**शब्दार्थः**—चतुर्दिक=चारों ओर । प्रमा=यथार्थ ज्ञान । प्रभा=चमक=प्रकाश । जड़=जड़वत्=जड़ पदार्थ । निशि=रात्रि । कृश=क्षीण=सूक्ष्म ।

**व्याख्याः**—बैठ जीवन उपवन में.........कृश अज्ञान ।

प्रकृति को रहस्य-लोक की ओर उन्मुख करते हुए कवि कहता है किः—हे प्रकृति ! तू मनुष्य के जीवन वाटिका में प्रवेश करके उसे मन्द मन्द रूप से नवीन छन्दों के निर्माण की प्रेरणा प्रदान करती है । इस प्रकार तुम्हारे द्वारा चारों ओर यथार्थ ज्ञान प्रकाश और आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती रहती है और जड़वत्

रात्रि रूपी क्षीण अज्ञान नष्ट हो जाता है। भाव यह है कि प्रकृति परमात्मा की सत्ता का एक उज्ज्वल रूप है और इस रूप का दर्शन करने से मनुष्य के हृदय का अज्ञान दूर होकर उसे यथार्थ ज्ञान का अनुभव होता है और वह असत्य मार्ग का त्याग करके सत्य मार्ग का अवलंबन करता है। काव्य रचना की प्रेरणा भी प्रकृति से ही प्राप्त होती है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में शब्दों की सुघड़ता और भावों की सूक्ष्म व्यंजना देखते ही बनती है।

## साक्षात्कार

**संदर्भ:**—प्रस्तुत प्रगीत 'साक्षात्कार' कविवर सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' रचित 'गीतिका' काव्य संग्रह से उद्धृत है। इसमें कवि ने ज्योतिर्मयी प्रकृति माँ के साक्षात्कार का अनुपम दृश्य चित्रित किया है और उनसे अपने मार्ग के सभी विघ्न बाधाओं को दूर करने के लिए आग्रह पूर्वक निवेदन किया है।

**शब्दार्थ:**—जननि=माँ=ज्योतिर्मयी माँ, प्रकृति माँ से तात्पर्य है। नैश=निशा का=रात का। अन्ध पथ=अन्धकार पूर्ण मार्ग। उपल=पत्थर=ओला। उत्पल=नीला कमल। कण्टक=काँटा=विघ्न बाधा। जागरण=जागृत होना। अवदात=श्वेत रंग=स्वच्छ=सुन्दर। अवसन्न=अप्रसन्न=विनाशोन्मुख=अपने कार्य साधन में क्षमता रहित।

**व्याख्या:**—प्रात तव द्वार पर..................प्रसन्न मैं प्राप्त वर।

ज्योतिर्मयी प्रकृति माँ को संबोधन करके कवि 'निराला' कहते हैं कि—हे माँ! रात्रि के अन्धकारमय मार्ग को पार करता हुआ अब आज प्रातःकाल तुम्हारे द्वार पर पहुँच गया हूँ। हे माँ! तुम्हारी अद्भुत कृपा और तेज के प्रभाव से मेरे पैर में जो पत्थर सदृश कठिन विपत्तियाँ और बाधाएँ पड़ी थीं अब वे कमल के समान सुगम और कोमल हो गई हैं और इन पैरों में काँटे सदृश जो विषाद आदि इसका वेधन करके कष्ट दे रहे थे अब वे स्वच्छ और सुन्दर हो गये हैं। सारी रात मैंने तुम्हारे स्मरण (ध्यान) में ही व्यतीत कर दी है और

अब प्रातः काल होने पर तुम्हारे दर्शन के लिए यहाँ आया हूँ। तुम्हारे द्वार पर आने के पूर्व मैं अप्रसन्न, मलिन और उदास था पर अब तुम्हारे दर्शन से मेरी सारी चिन्तायें और विषाद-रेखायें नष्ट हो गई हैं तथा अब मैं तुम्हारा दर्शन प्राप्त करके पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न हूँ। भाव यह है कि ज्योतिर्मयी माँ के दर्शन से कवि के सारे पाप, दोष, दुःख, व्याधायें गल गल कर नष्ट हो गईं और वह प्रसन्नता तथा सुख का अनुभव करने लगा है ।

**शब्दार्थः**—भीरु=डरपोक=कायर=चुप्पा। मलिन=कान्तिहीन=उदास=दुखी=फीका। निशाचर=राक्षस = चोर। तेजहत=कान्तिहीन=प्रकाश रहित। वन्य जन=वन के लोग। प्राभात=प्रातः कालीन। गहें=पकड़ें। तव=तुम्हारे।

**व्याख्याः**—प्राततव द्वार पर.......................प्राततव द्वार पर।

प्रकृति जननी को संबोधन करके कविवर 'निराला' जी कहते हैं कि:—हे माँ! जो खिन्न, कान्तिहीन और शुष्क मन वाले हैं वे भला तुम्हारे द्वार पर आकर तुम्हारे दर्शन का मूल्य क्या समझ सकेंगे? राक्षसी प्रवृत्ति वाले कान्तिरहित भला वन के निवासियों के समान अपने जीवन को धन्य कैसे बना पावेंगे, भला उनके भाग्य में यह कहाँ बदा है कि वे प्रातःकालीन अमूल्य धनकी प्राप्ति के लिए तुम्हारे अमर चरण का स्पर्श करने के लिए आगे बढ़ें। भाव यह है कि जिनके हृदय में सरसता नहीं है और जिन्हें प्रकृति से प्रेम नहीं है तथा जो शुष्क और हिंसावादी हैं वे प्रकृति माता के सौन्दर्य से कभी भी लाभ नहीं उठा सकते; उन्हें प्रकृति माँ से कोई भी प्रेरणा नहीं प्राप्त हो सकती है। प्रकृति के सच्चे उपासक ही प्रकृति से सच्चे सुख शान्ति की प्राप्ति कर सकते हैं।

## सन्ध्या सुन्दरी

**संदर्भः**—प्रस्तुत प्रगीत 'सन्ध्या सुन्दरी' कविवर सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' रचित 'परिमल' नामक काव्य संग्रह से उद्धृत है। इसमें कवि ने सन्ध्या को सुन्दरी परी का रूप देकर उसके आगमन को सुन्दरी परी के आसमान से इस पृथ्वी पर अवतरण के रूप में चित्रित किया है। इस प्रकृति चित्रण में प्रकृति के स्वस्थ नैसर्गिक

रूप के साथ साथ रूपक के आधार पर रहस्यमयी आदिशक्ति की भी झलक प्राप्त होती है। इस कविता में 'सन्ध्या' का जैसा भव्य चित्रण किया गया है वैसा भव्य चित्रण अन्य कवि की रचना में दुर्लभ है।

**शब्दार्थः**—दिवसावसान=दिन का अन्त=सन्ध्या काल। मेघमय=बादल युक्त आसमान=आकाश। सुन्दरी=सुन्दर रमणी। तिमिराञ्चल=अन्धकार से आच्छादित। दोनों उसके अधर=दोनों ओठ=प्रकाश और अन्धकार से तात्पर्य है। हास विलास=हास्य और क्रीड़ा।

**व्याख्याः**—दिवसावसान का समय ........उनमें हास विलास।

कविवर निराला 'सन्ध्या' को एक सुन्दरी परी की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि—दिन का अन्त होने जा रहा है और बादलों से आच्छादित आकाश से सन्ध्या रूपवती परी के समान धीरे धीरे इस पृथ्वी पर उतर रही है अर्थात् दिन का अन्त होकर संध्या काल का आगमन हो रहा है। चारों ओर शान्तिपूर्ण अन्धकार फैल रहा है इसमें चांचल्य का कहीं नाम भी नहीं है। प्रकाश और अन्धकार संध्या रूपी परी के दो सुन्दर ओठ हैं जिनमें हास्य और क्रीड़ा का नाम भी नहीं है बल्कि गंभीरता भरी हुई है। भाव यह है कि जिस प्रकार दो ओठों के समन्वय से मुख की शोभा बढ़ती है उसी प्रकार दिन के प्रकाश के अन्त और रात्रि के अंधकार के प्रारंभ इन दोनों के ही मध्य में संध्यारूपी परी का मुख (सन्ध्या वेला) है जो प्रकृति के सौन्दर्य को बढ़ा रहा है।

(पृष्ठ-६०)

**शब्दार्थः**—अभिषेक=टीका=अभिनन्दन। अलसता=आलस्य=सुस्ती=मादकता। नीरवता=शांति। छाँह=छाया। अम्बर=आकाश। अनुराग-राग-आलाप=प्रेम राग का गान। अव्यक्त=विष्णु=कामदेव=शिव।

**व्याख्याः**—हँसता है तो केवल........गूँज रहा सब कहीं।

कविवर 'निराला' संध्या सुन्दरी के सौन्दर्य पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि सुन्दरी परी के समान संध्या सुन्दरी के काले केशों में केवल एकमात्र एक नक्षत्र

गुँथा हुआ चमक रहा है और हृदय-साम्राज्ञी सन्ध्या रानी का अभिषेक ( अभिनंदन ) कर रहा है। सन्ध्या सुन्दरी आलस्य अथवा मादकता की लता के समान है पर उसमें कोमलता की कलिका लगी हुई है। सुखमय शान्ति के कंधों पर अपनी बाहों ( भुजाओं ) को डालकर छाया के समान वह आकाश मार्ग से पृथ्वी की ओर चली आ रही है। उसके हाथों में बजती हुई वीणा भी नहीं है और न तो किसी प्रेम राग की तान ही छिड़ रही है। उसके पग के नूपुरों ( घूँघुरों ) से भी रुन झुन रुन झुन ध्वनि नहीं निकल रही है केवल एक स्पष्ट शब्द चुप, चुप, चुप चारों ओर सुनाई पड़ रहा है। भाव यह है कि सन्ध्या काल के आगमन पर प्रकृति में अपूर्व नीरवता व्याप्त हो गई है और जगत के सारे कार्य-कलाप बन्द से हो चले हैं। दिन के कठिन परिश्रम और घोर अशांति के बाद संसार विश्राम की आवश्यकता का अनुभव करने लगा है।

**विशेषटिप्पणी:**—( १ ) उक्त पद में कवि ने प्रकृति को नारी सौन्दर्य के साँचे में ढालने का सफल प्रयत्न किया है साथ ही मौन संकेत की अभिव्यंजना को भी कौशल के साथ चित्रित किया है।

( २ ) 'चुप चुप चुप' इन शब्दों के द्वारा कवि की भाषा और शब्द चयन की कला पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

**शब्दार्थ:**—व्योम मंडल=आकाश मंडल। जगतीतल=संपूर्ण पृथ्वी अथवा संपूर्ण संसार। अमल=स्वच्छ। सरिता=नदी। विस्तृत=चौड़ी। वक्षस्थल=हृदय। शिखर=चोटी। हिमगिरि=हिमालय पहाड़। उत्ताल=भयानक=ऊँची। जलधि=समुद्र। क्षिति=क्षितिज=अंतरिक्ष। नभ=आकाश। अनिल=हवा। अनल=अग्नि।

**व्याख्या:**—व्योममंडल में.......................गूँज रहा सब कहीं।

संध्याकालीन शांति के विस्तृत क्षेत्र और विस्तार की चर्चा करते हुए कविवर निराला कहते हैं कि:—सन्ध्या सुन्दरी आकाश में, पृथ्वी में, शांत तालाब के स्वच्छ कमलिनी के पत्तों में, सौन्दर्य के गर्व से उमड़ती हुई नदी के विस्तृत हृदय स्थल में, धैर्यवान साहसी गंभीर हिमालय पहाड़ की चोटी और उसकी

निश्चल कन्दरा में, समुद्र की उठती हुई ऊँची ऊँची तीक्ष्ण लहरों में तथा प्रलय-कालीन बादलों के समान उसके गंभीर घोष ( गर्जन ) में, क्षितिज में, जल में, आकाश में, हवा, में अग्नि में चारों ओर शांतिपूर्वक शयन कर रही है और केवल एक अस्पष्ट ध्वनि चुप, चुप, चुप मात्र ही चारों ओर गूँज रही है। भाव यह है कि जब सन्ध्या सुन्दरी का सुन्दर परी के समान आकाश से इस पृथ्वी पर अवतरण होता है तो प्रकृति के कण कण में एक अपूर्व शान्ति विराजने लगती है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने सन्ध्या कालीन अन्धकार का चित्रण करने के लिए अपने भावों को उच्चता की चरम सीमा पर पहुँचा दिया है तथा इससे रमणीयता की एक अद्भुत छटा झलकती है।

**शब्दार्थ:**—मदिरा=मादकता=आसव। जीवों=प्राणियों। सस्नेह=प्रेमपूर्वक। अंक=गोद। विस्मृति=विस्मरण=अतीत के=भूले हुए। मीठे सपने=मधुर साधें= =मधुर कल्पनायें। निश्चलता=शांति=अटलता। अनुराग=प्रेम। विरहाकुल= विरह से व्याकुल। कमनीय=सुन्दर। विहाग=एक राग जो अर्द्ध रात्रि को गाया जाता है।

**व्याख्या:**—और क्या है ? ..............पड़ता तब एक विहाग।

कवि सन्ध्या सुन्दरी के रूप सौन्दर्य की चर्चा करने के बाद उसकी मानवो-चित सेवा और दया भाव का चित्रण करते हुए कहता है कि:—संध्या काल में संध्या सुन्दरी के एकछत्र अटल राज्य और नीरवता के अतिरिक्त इस संसार में अन्य कुछ भी नहीं है। सुन्दर परी के समान आकाश मार्ग से इस पृथ्वी पर पधार कर संध्या सुन्दरी मादकता की वह सरिता प्रवाहित कर देती है जिसे पान कर के इस सृष्टि के संपूर्ण जीव उन्मत्त हो जाते हैं। इस प्रकार संध्या सुन्दरी विश्रांति की मादकता का एक एक प्याला आसव सभी श्रांत क्लांत प्राणियों को पिला देती है और इसके बाद उन्हें अपनी गोद में सुला देती हैं फिर वह उन्हें अतीत काल के भूले हुए मधुर स्वप्नों का दर्शन कराती हुई आधी रात की शांति में विलीन हो जाती है। संध्या सुन्दरी के इस रूप और कार्य को देखकर कवि के मन में प्रेम की भावना प्रस्फुटित हो जाती है और उसके

विरह से व्याकुल गले से विहाग राग के स्वर अपने आप निकल पड़ते हैं। भाव यह है कि दिन भर के थके प्राणी संध्या की गोद में ही पूर्ण शान्ति का लाभ करते हैं और अपने काव्य की प्रेरणा भी कवि को संध्यावेला से ही प्राप्त होती है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने संध्या पक्ष का उद्घाटन बड़े ही अनुपम ढंग से किया है।

## जागो फिर एक बार

**संदर्भ:**—प्रस्तुत प्रगीत 'जागो फिर एक बार' कविवर सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' रचित 'परिमल' काव्य संग्रह से उद्धृत है। इस प्रगीत की रचना की प्रेरणा कवि को ऐतिहासिक तथ्यों तथा महात्मा गांधी के 'सत्याग्रह' आन्दोलन से प्राप्त हुई है। कवि ने देश को जागरण का संदेश हिंसा के आधार पर दिया है गांधीवादी अहिंसा के आधार पर नहीं। एक ओर कवि ने गुरु गोविन्द सिंह आदि की चर्चा करके इतिहास की पुनरावृत्ति की ओर संकेत किया है, तो दूसरी ओर गीता के कर्मवाद का उल्लेख करके पाश्चात्य दर्शन को प्राच्य दर्शन की ओर से एक चुनौती भी दे दी है। कवि ने अपनी इस रचना में वीरत्व की उदात्त और सर्वोत्कृष्ट अभिव्यंजना तो की ही है साथ ही आर्यों के जय जयकारी उद्घोष को अपनी कल्पना के स्वरों में गुंजरित कर दिया है जो भारतीय नवयुवकों की नस नस में व्याप्त होकर उन्हें मातृ-भूमि की बलि वेदी की ओर अग्रसर करने के लिए पर्याप्त है।

( पृष्ठ-६१ )

**शब्दार्थ:**—समर=युद्ध। महासिन्धु=महासमुद्र। सिंधु-नद-तीर-वासी=सिन्धु नदी के किनारे रहने वाला। सैन्धव=सेंधा नमक=सिंध का घोड़ा=सिंध का निवासी=समुद्र संबंधी। चतुरंग=चतुरंगिणी सेना। चमू=सेना। तुरंगों=घोड़ों। दुर्जय=अजेय। माँद=गुफा=खोह=कन्दरा। स्यार=गीदड़=कायर शत्रु।

**व्याख्या:**—जागो फिर एक बार !..........जागो फिर एक बार !

देश को जागरण का सन्देश देते हुए कविवर 'निराला' जी कहते हैं कि ऐ देश-वासियो ! तुम आलस्य की नींद में क्यों सो रहे हो ? एक बार साहस करके चैतन्य हो जाओ और अपनी वीरता का प्रदर्शन करके देश की परतंत्रता की बेड़ियों को चूर चूर कर डालो। तुम उन वीरों की सन्तान हो जिन्होंने युद्ध क्षेत्र में अपना प्राण विसर्जन करके अपने नाम को अमर कर लिया था। तुम्हारे पूर्वजों का जय-घोष महासिंधु से उठा था और सिन्धु नदी के तट पर बसनेवाले आर्यों ने सिन्धी घोड़ों पर सवार होकर चतुरंगिणी सेना सहित शत्रु का सामना किया था। सिक्खों के गुरु गोविन्द सिंह ने अपने यवन शत्रु को ललकार कर कहा था कि मैं अपने दोनों पुत्रों के बलिदान का बदला लेने के लिए शत्रु सेना के सवा सवा लाख सैनिकों की (दो पुत्रों के लिए ढाई लाख) बलि न देलूँ तब तक मैं अपना गोविन्दसिंह नाम भी न रखूँगा अर्थात् जब तक मैं अपने पुत्रों का बदला एक एक के बदले सवा सवा लाख शत्रु के सैनिकों के संहार से न लेलूँ तब तक मेरा नाम गोविन्द सिंह नहीं। अब कवि इस ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत करके देशवासियों से कहता है कि ज़रा सोचो तो यह वीरता उत्पन्न करने वाली तथा वीरों को मुग्ध करने वाली वाणी कहाँ से आई थी ? और किसने सुनाई थी ? अर्थात् हम जिनकी सन्तान हैं उन्हींके मुखों से ऐसी उत्साह वर्द्धक वाणी सुनाई पड़ी थी। उन्होंने ही अजेय संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए यह स्वर लहरी गुंजरित की थी और बारहों महीने युद्ध रूपी होली का फ़ाग खेला था। आज उन्हीं शेरों की कन्दरा ( वीरों के देश में ) गीदड़ ( क़ायर शत्रु ) प्रवेश कर गया है अतएव ऐ आर्य शेरों की सन्तान भारतीयो ! एक बार पुनः जागकर इस शत्रु को अपने देश से निकाल बाहर करो।

**विशेषटिप्पणी:**—(१) उक्त पद में समर, सिंधु, सैन्धव, चमू आदि शब्दों का प्रयोग शौर्य तथा साहस प्रदर्शन करने के लिए बहुत उपयुक्त है।

(२) "सवा सवा लाख..........जब कमाऊँगा" का तात्पर्य गुरु गोविन्द सिंह के दोनों बालकों जोरावर सिंह ( ६ वर्षीय ) तथा फतहसिंह ( ७ वर्षीय ) को यवन धर्म न स्वीकार करने पर औरंगजेब द्वारा दीवाल में जिन्दा चिनवा देने पर शत्रु से बदला लेने की उनकी प्रतिज्ञा से है।

**शब्दार्थ:**—भाल=ललाट=मस्तक। अनल=अग्नि। तीनों गुण=सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। तापत्रय=दैहिक दैविक और भौतिक। मृत्युञ्जय=मृत्यु को जीतनेवाला=शंकर जी का एक मंत्र। व्योमकेश=शंकर जी। सप्तावरण=सात आवरण=सात लोकों से तात्पर्य है। सहस्रार=इन्द्र=विष्णु।

**व्याख्या:**—सत् श्री अकाल.........जहाँ आसन है सहस्रार।

सिक्खों के अपूर्व साहस और उनकी वीरता की ओर संकेत करके देश को नव जागरण का सन्देश देते हुए कविवर 'निराला' कहते हैं कि—

सत् श्री अकाल अथवा 'वाहगुरु जी की फतह' इन शब्दों के जय-घोष के साथ ही तुम्हारे मस्तक अग्नि के तेज के समान जल उठे थे और उस तुम्हारी क्रोधाग्नि में तीनों गुण और तीनों ताप के समय काल स्वयं भस्म हो गया था और इस प्रकार शंकर के समान मृत्यु पर विजय पाने वाले तुम शत्रु का संहार करके अभय हो गये थे। देव सन्तान के सदृश तुम सातो लोक और मृत्यु लोक के पर्दे को फाड़कर शोक को नष्ट करने वाले उस लोक में पहुँच गये थे जहाँ इन्द्र या विष्णु का सिंहासन है। भाव यह है कि आर्य सन्तानों ने अपने साहस और वीरता तथा मातृभूमि के अनुपम वलिदान द्वारा मृत्युलोक तो क्या स्वर्ग लोक पर भी विजय प्राप्त कर ली थी। उनकी हुंकार सभी लोकों में से गूँजती हुई स्वर्ग लोक में भी पहुँच गई थी।

**विशेषटिप्पणी:**—(१) उक्त पद में कवि ने अपनी कल्पना को आध्यात्मिकता, दार्शनिकता और रहस्यवादिता से ओत प्रोत कर दिया है।

( २) 'सत् श्री अकाल' 'धक धक' 'अमृत सन्तान' आदि शब्दों का प्रयोग शौर्य प्रदर्शन का भाव व्यक्त करने के लिए किया गया है।

**( पृष्ठ—६२ )**

**शब्दार्थ:**—मेष-माता=भेड़ी। निर्निमेष=एक टक। अभिशप्त=शाप पाया हुआ=दुखी। तप्त=गर्म। पश्चिम=पश्चिमी सभ्यता अथवा पाश्चात्य दर्शन। गीता=हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थ गीता से तात्पर्य है।

**व्याख्या:**—जागो फिर एक बार·········स्मरण करो एक बार ।

कविवर 'निराला' आर्य सन्तान को सिंह की सन्तान बतलाते हुए तथा कर्मवाद में गीता का अनुकरण करने का आदेश देते हुए कहते हैं कि:—अरीआर्य सन्तान ! भला तू सोच तो सही कि सिंहिनी की गोद से उसके बच्चे को छीन लेने का साहस कौन कर सकता है । भला अपने शरीर में प्राणों के रहते हुए वह मौन कैसे रह सकती है । अपने शिशु की रक्षा के लिए वह अपना सर्वस्व निछावर करदे सकती है । केवल मेमने की माँ भेड़ ही वह निराश्रित असहाय और अभिशप्त जीव है जो देखती रह जाती है और उसकी आँखों के सामने से उसके बच्चे को जो चाहे छीन ले जा सकता है और वह चुपचाप अपने शिशु के वियोग में आजन्म आँसू बहाती रह जाती है । इस प्रकार कायर माता की सन्तान ही शत्रु का शिकार बन सकती है सिंह या सिंहनी की संतान नहीं तो फिर भारत जैसे सिंह देश तथा भारत माता जैसी सिंहनी की संतानें हम भारतवासी परतंत्रता की बेड़ियों में क्यों जकड़े रहें हमारा कर्तव्य है कि हम एक बार साहस करके शत्रु को ललकार दें और उसे अपने देश के बाहर निकाल फेंके । अब कवि पुनः कर्म के मार्ग में अपने देश वासियों को पाश्चात्य प्रणाली अथवा पाश्चात्य दर्शन से विरत होकर ही देश और दर्शन का अनुकरण करने की सलाह देता हुआ कहता है कि संसार में वही व्यक्ति जीवित रह सकता है जो अपने कर्तव्य का उचित पालन कर सके । पर कर्मवाद में पाश्चात्य प्रणाली या पाश्चात्य दर्शन का अनुकरण करने की हमें आवश्यकता नहीं है । हमारी आध्यात्मिक पुस्तक श्रीमद् भगवद्गीता का कर्मयोग ही हमारे लिए उत्तम प्रकाश देने वाला है । अतएव हमें उसी के बताये हुए आदेश का पालन करना चाहिये । भाव यह है कि बार बार गीता के कर्मयोग का स्मरण करना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है ।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने सिंह तुल्य पुरुषत्व, भेड़ी सदृश कापुरुषता और कर्मयोग का उचित आदेश आदि का बड़ा ही सजीव, भव्य और मार्मिक चित्रण किया है ।

**शब्दार्थ:**—समर-शूर=रण बाँकुरा । कालचक्र=समय का फेर=भाग्य चक्र । सच्चिदानन्द=सत्, चित्, आनंद=परमानंद । अणु=परमाणु से छोटा कण=छोटा

टुकड़ा=अत्यन्त छोटा=अति सूक्ष्म । जीव या आत्मा । परमाणु=लघु=कण=ऐटम कामपरता=कामुकता ।

**व्याख्या:**—जागो फिर एक बार•••••••••जागो फिर एक बार !

क्रांति का मंत्र फूँकने वाली इस कविता में कविवर निराला जी निष्कर्ष पर पहुँचते हुए कहते हैं कि:—ऐ भारत संतान ! तू पशु नहीं है बल्कि वीर मानव है । तू रण बाँकुरा है पर क्रूर, अत्याचारी, आततायी नहीं है । तुम समय के चक्र से आज पददलित हो गये हो अतएव ऐ राजपुत्र तुम अब जागकर युद्ध का मुकुट अपने सर पर धारण करके युद्ध शिरोमणि बन जाओ । क्या कहते हो ! यह संसार माया से आच्छादित है और तुम माया के बंधन में लीन हो ! पर तुम्हें ऐसा सोचना उचित नहीं है । मात्राओं आदि के बंधन से रहित जिस प्रकार छंद की रचना हो सकती है उसी प्रकार तुम माया मोह के बंधन से अपने को मुक्त करके सच्चिदानंद स्वरूप परमानंद का आनंद प्राप्त कर सकते हो । साथ ही तुम्हें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि तुम्हारे शरीर के कण कण में तुम्हारे महर्षियों का मंत्र फूँका हुआ है कि तुम महान हो । सदैव महान हो । फिर तुम अपने को नश्वर समझकर दीनता क्यों प्रदर्शित करते हो और अपने हृदय में कायरता तथा कामुकता को आश्रय क्यों देते हो । तुम्हें सदैव सोचना चाहिये कि तुम साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हो और इस संसार का संपूर्ण बोझ तुम्हारे पैर की धूलि के भी बराबर नहीं है । भाव यह है कि जब आध्यात्मिक बल के द्वारा भारतीयों ने ईश्वर तक को प्राप्त कर लिया है तब साधारण सांसारिक सफलता उनके लिए असंभव कदापि नहीं है ।

**विशेषटिप्पणी:**—उपरोक्त पद में कवि ने माया, मुक्त, और सच्चिदानंद शब्दों का प्रयोग बड़ी सार्थकता के साथ किया है तथा पुरुषत्व की उपासना के लिए स्पष्ट संकेत कर दिया है । मानव मात्र को ब्रह्मांश- बताकर विराट् सत्ता का चित्रांकन करने में कवि की अद्भुत सफलता मिली है तथा उसके व्यक्तित्व की अप्रतिम झाँकी उसकी रचना में स्पष्ट मुखरित हो उठी है ।

# राम की शक्ति-पूजा

**संदर्भः**—प्रस्तुत कविता 'राम की शक्ति-पूजा' कविवर 'निराला' रचित 'अनामिका' काव्य संग्रह से उद्धृत है। इस कविता का कथानक 'देवी भागवत और 'शिव महिम्न स्तोत्र' के कथानकों के कुछ अंश को लेकर जोड़ा सा प्रतीत होता है। पर जैसा कि 'निराला' जी पर बंगला भाषा का अधिक प्रभाव पड़ा है उसी प्रकार उनकी यह रचना भी उससे प्रभावित है। वास्तव में इस कविता में 'निराला' जी ने बंगाल में प्रसिद्ध राम संबंधी एक कथा को चित्रित कर दिखाया है। राम रावण का भयानक युद्ध छिड़ा हुआ था। पूर्ण बल लगाने पर भी राम रावण को पराजित नहीं कर पा रहे थे अतएव उन्हें इसका कारण ढूँढ़ने की चिन्ता उत्पन्न हुई। आत्मबल से उन्हें ज्ञात हुआ कि महाशक्ति रावण की सहायता कर रही है अतएव उन्होंने शक्ति की आराधना करना प्रारंभ किया। १०८ नील कमल देवी को चढ़ाने के लिये आये थे जिसमें से एक पुष्प राम की परीक्षा करने के लिये शक्ति ने स्वयं चुरा लिया था। जब अन्तिम पुष्प चढ़ाने का समय आया और राम ने उसे नहीं पाया तो भक्ति के आवेश में उन्होंने अपने कमलवत् नेत्र निकाल कर देवी को चढ़ाने के लिए बाण उठा लिया। राम की भक्ति से प्रसन्न होकर देवी ने स्वयं प्रकट होकर दर्शन दिया और 'हे राम तुम्हारी जय होगी' 'जय होगी' ऐसा कहकर उनके शरीर में लीन हो गईं। वास्तव में 'राम शक्ति-पूजा' निराला जी की उत्कृष्ट कविताओं में से एक है। इसमें शब्द योजना, भाव व्यंजना, भाषा और कला का सारा बल अपने पूरे चमत्कार में झलक पड़ता है।

(पृष्ठ—९३)

**शब्दार्थः**—ज्योति=प्रकाश। अपराजेय=अविजित। विधृत=धारण किया हुआ। क्षिप्र=शीघ्र। शत=सौ। शेल=भाला=बरछा। संवरण=हटाना=मिटाना।

**व्याख्याः**—रवि हुआ अस्त·········नील नभ-गर्जित स्वर।

राम रावण के युद्ध में युद्धस्थल का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि:—

प्रकाश के पन्नों में अपना नाम अमर करके सूर्य डूब गया। राम और रावण का युद्ध अविजित रह गया। आज दिन तेज बाणों का तीव्र गति धारण करना, उनका तीक्ष्ण प्रहार, सैकड़ों बर्छों का हटना बढ़ना और नीले आकाश में सेना के गर्जन का शब्द होना आदि युद्ध की विशेषता रही।

**शब्दार्थः**—व्यूह=सैन्य रचना प्रणाली। प्रत्यूह=बाधा=विघ्न। वह्नि=अग्नि राम की सेना का एक सेनापति वानर।

**व्याख्याः**—प्रतिपल परिवर्तित व्यूह.........महीयान।

क्षण क्षण पर सैन्य संचालन प्रणाली में परिवर्तन करना और उनका कौशल पूर्वक भेदन कर देना, राक्षसों के विरुद्ध विघ्न उपस्थित करके क्रोधित वानरोंका भयानक हूह शब्द करना, श्री रामचन्द्र जी के तरकस से अग्नि के समान बाणों का अलग होकर छूटना और लक्ष्य का खाली होना तथा लाल नेत्रवाले रावण के गर्व को नष्ट करनेवाले इन बाणों का विमान से पृथ्वी पर गिरना।

**शब्दार्थः**—लाघव=लघु=छोटा। वारण=हाथी=कवच। युग्म=दो। उद्धत=प्रचंड। विस्तर=विस्तार। अनिमेष=स्थिर दृष्टि। विद्धांग=घायल शरीर। कोदण्ड=धनुष।

**व्याख्याः**—राघव-लाघव.........रुधिर-स्राव।

लघु शरीर वाले राम और भीमकाय वाले रावण का दो प्रहर तक युद्ध होता रहा। प्रचंड रावण वानरों के सूमूह के बल का मर्दन कर रहा था। राम एक टक भाव से अपने बाणों का प्रहार कर रहे थे। घायल शरीर तथा धनुष से बँधी मुट्ठी से खून बह रहा था।

**शब्दार्थः**—दुर्वार=कठोर। गवाक्ष=खिड़की=झरोखा=एक सैनिक का नाम। गय=आकाश=घर=राम का एक सैनिक। वारित=रोका गया। सौमित्रि=लक्ष्मण। भल्लपति=जाम्बवान। मल्ल=पहलवान। रोध=दमन=रुकावट। प्रलयाब्धि=प्रलयरूपी सागर। क्षुब्ध=दुखी=क्रोधित। प्रबोध=सजग।

**व्याख्याः**—रावण प्रहार.....................केवल प्रबोध।

रावण के कठोर प्रहार से वानर समूह व्याकुल हो उठा। सुग्रीव; अंगद, गवाक्ष, गय, नल आदि उस प्रहार से मूर्छित हो गये। लक्ष्मण तथा जाम्बवान

आदि असंख्य वीरों ने इस प्रहार को रोक लिया। केवल वीर पवन सुत हनुमान पर रावण के इस प्रहार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे चैतन्य होकर प्रलय के समान भीषण गर्जन करते रहे।

**शब्दार्थ:**—उद्गीरित=उद्दीप्त=प्रज्ज्वलित। सम्वर=आकांक्षा=चाह। महोल्लास=महान प्रसन्नता।

**व्याख्या:**—उद्गीरित-वह्नि.........................आकाश विकल।

विशाल रावण ने पर्वत के समान वानरों की सेना पर चार पहर तक घन घोर अग्नि प्रज्वलित सी करदी। उधर जानकी जी का हृदय राम की पराजय की आशंका से भयभीत हो उठा और इधर रावण के मन में अपनी सफलता के लिए आकांक्षा उत्पन्न हो गई। राम और रावण दोनों ही पक्ष के लोग अपने अपने शिविर को लौट पड़े। राक्षसों के पैर के नीचे की भूमि टल मला उठी। उनकी महान प्रसन्नता के जय जयकारों से बिंधा हुआ आकाश व्याकुल हो गया।

**शब्दार्थ:**—वाहिनी=सेना। निज पति=अपने स्वामी=राम। स्थविर=वयो वृद्ध=वृद्ध। प्रशमित=शांत। नमित=झुकाहुआ।

**व्याख्या:**—वानर-वाहिनी खिन्न.....................वानर-वीर सकल।

वानर सेना बहुत ही उदास मन से अपने स्वामी श्री रामचंद्र जी के पद चिन्ह को देख कर उसी के पीछे पीछे शिविर की ओर चल रही थी इस प्रकार सब लोग अपने बड़ों का पदानुसरण कर रहे थे। संपूर्ण वातावरण शांत था और संध्या रूपी कमल का मुख झुका हुआ था। लक्ष्मण जी चिंता में लीन थे और सब वीर वानर उनके पीछे पीछे चल रहे थे।

(पृष्ठ—९४)

**शब्दार्थ:**—श्लथ=ढीला। स्रस्त=टपका=गिरा। तूणीर=तरकस। विपर्यस्त=परिवर्तित। पृष्ठ=पीठ। वक्ष=छाती।

**व्याख्या:**—रघुनायक आगे..........................वक्ष पर विपुल।

श्री रामचंद्र जी आगे आगे मक्खन के समान कोमल अपने चरणों को पृथ्वी

पर रखते हुए चल रहे थे। उनके कन्धे पर ढीला ढाला धनुष बाण और कमर में लटकता हुआ तरकस था। उनका दृढ़ जटा समूह ढीला होकर परिवर्तित हो गया था तथा बालों की लटें खुलकर पीठ, बाँह और छाती पर फैल गयी थीं।

**शब्दार्थः**—दुर्गम=कठिन=अपार। नैशांधकार=रात्रि का अंधकार। सानु=पर्वत की चोटी। मंथर=धीरे।

**व्याख्याः**—उतरा ज्यों दुर्गम..................आदिक वानर।

कठोर पहाड़ों के ऊपर रात्रि का अन्धकार उतर कर छा गया। तारिकायें उसके पार दूर आसमान में चमक उठीं। धीरे धीरे सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान आदि वानर पर्वत की चोटी पर अपने शिविर में आये।

**शब्दार्थः**—समाधान = शंकानिवारण। श्वेत=स्वच्छ।

**व्याख्याः**—सेनापति दलविशेष के..............निर्मल जल।

दल विशेष के सेनापति, अंगद, हनुमान, नल नील, गवाक्ष आदि के साथ दूसरे दिन के प्रातः काल के युद्ध की व्यवस्था आदि के विषय में विचार विमर्श करने के लिए वानर समूह को उनके निवासस्थानों को भेज कर श्री राम चन्द्र जी स्वच्छ शिला पर बैठ गये और—

**शब्दार्थः**—क्षालनार्थ=धोने के लिए। पटु=कुशल। सत्वर=शीघ्र।

**व्याख्याः**—ले आये..............................आज्ञा को तत्पर।

निपुण हनुमान श्री रामचन्द्र जी का हाथ पैर धोने के लिए स्वच्छ जल ले आये। अन्य वीर संध्या वन्दन आदि करने के लिए तालाब के निकट गये। वे शीघ्र ही ईश्वर की वन्दना करने के लिए लौट आये और राम की आज्ञा प्राप्त करने के लिए एक साथ उनको घेरकर बैठ गये।

**शब्दार्थः**—भल्लधीर=जाम्बवान। प्रान्त=स्थल=पास। पाद पद्म्=कमलवत् चरण। यूथपति=सेनानायक। निर्निमेष=एक टक। जित-सरोज-मुख-श्याम देश=कमल से भी अधिक सुन्दर मुखांग।

**व्याख्याः**—पीछे लक्ष्मण.......................मुख-श्याम-देश।

श्री रामचन्द्र जी के पीछे लक्ष्मण, सम्मुख विभीषण, जाम्बवान सुग्रीव और

उनके कमलवंत चरणों के पास हनुमान तथा अन्य सेनापति उचित स्थान पर बैठकर एक टक उनके ( राम के ) कमलवत् मुख की शोभा देखने लगे।

**शब्दार्थः**—अमानिशा=अमावस्या की रात्रि। अप्रतिहत=अबाध=अरोक। अंबुधि=समुद्र। भूधर=पहाड़।

**व्याख्याः**—है अमानिशा……………………जलती मसाल।

अमावस्या की रात्रि थी। आकाश घना अन्धकार उगल रहा था। दिशाओं का ज्ञान भी नहीं हो रहा था। हवा भी स्तब्ध हो गई थी। पीछे अथाह समुद्र अबाध गति से गर्जन कर रहा था। पर्वत ध्यानमग्न होकर शांत खड़े थे। केवल मशाल जल रही थी।

**शब्दार्थः**—राघवेन्द्र=राम। दम्य=दमनीय। श्रांत=थकित। अयुत=दस हजार की संख्या=संयोग रहित=न मिला हुआ। दुराक्रांत=बुरी तरह पराजित=पद दलित।

**व्याख्याः**—स्थिर राघवेन्द्र……………………जो दुराक्रांत।

अटल रामचन्द्र जी को रह रहकर एक शंका व्यथित कर देती थी। उनके इस सांसारिक जीवन में रावण की विजय की आशंका ( भय ) हो उठती थी। जो हृदय आज तक कभी भी दमनीय शत्रुओं के कारण थकान का अनुभव नहीं कर सका और दस हजार में एक भी लक्ष्य में ऐसा कोई शत्रु नहीं था जो बुरी तरह पराजित न हो सका हो।

( पृष्ठ—९५ )

**शब्दार्थः**—उद्यत=तत्पर। विद्युत=बिजली। पृथ्वी तनया=पृथ्वी की पुत्री=जानकी जी। अच्युत=अभिन्न।

**व्याख्याः**—कल लड़ने को……………………कुमारिका छवि, अच्युत।

वह शत्रु कल युद्ध करने के लिए बार बार व्याकुल हो रहा है पर आज बार बार उद्यत होकर भी मन हारकर असमर्थ होता जा रहा है इसी। समय घने

अंधकार में बिजली के समान जानकी जी का अभिन्न ( अनुपम ) सौंदर्य उनके ( राम के ) हृदय में जाग उठा ( चमकने लगा ) ।

**शब्दार्थः**—निष्पलक=पलक गिरे बिना=एक टक । विदेह=जनक जी । लतान्तराल=लताओं के झुरमुट में । गोपन=मिलन=छिपाव ।

**व्याख्याः**—देखते हुए निष्पलक..........प्रथमोत्थान-पतन ।

इस प्रकार ध्यानावस्थित होकर श्री रामचन्द्र जी जानकी जी के सौंदर्य का स्मरण कर रहे थे तो उन्हें उस समय जानकी जी की वाटिका में, लताओं के झुरमुट जानकी जी से प्रथम भेंट, नेत्रों का नेत्रों से मिलाप, मधुर वार्तालाप, पलकों का नवीन पलकों पर प्रथम उत्थान पतन आदि एक एक करके स्मरण हो आये ।

**शब्दार्थः**—समुदय=समुदाय=समूह । वलय=कंकण=घेरा=मंडप । स्वीय= अपना । तुरीय=घोड़ा=वेगवान ।

**व्याख्याः**—काँपते हुए किसलय..............कम्पन तुरीय ।

वृक्षों के हिलते हुए नवीन पत्रों से पराग समूह का झरना, नवीन जीवन का परिचय पाकर पक्षियों का कलरव करना, वृक्षों का मलयाचल की वायु से घिर जाना,स्वर्गीय सूर्य की किरणों का गिरना ( फैलना ) और प्रथम बार अपने स्वजन के सौंदर्य का अनुभव करके जानकी जी के सुन्दर नेत्रों का वेगपूर्वक कंपित हो जाना ।

**शब्दार्थः**—हर=शिवजी । हस्त=हाथ । स्मिति=मुस्कराहट । अधर=होंठ ।

**व्याख्याः**—सिहरा तन,....................हृदय में आई भर ।

शरीर काँप उठा । क्षण भर के लिए मन अपने को भूल सा गया । सारा तन लहरा उठा । मानो पुनः शिव जी का धनुष तोड़ने के लिए हाथ ऊपर उठा हो । जानकी जी के ध्यान में लीन राम के होंठों पर हास्य की रेखा दौड़ गई ( मुस्कराहट आ गई ) इसके बाद संपूर्ण विश्व को विजय करने की भावना हृदय में भर गई ।

**शब्दार्थः**—शलभ=पतिंगे । रजनीचर=राक्षस ।

**व्याख्याः**—वे आये याद·····················दूषण, खर।

इसके बाद श्री रामचन्द्र जी को पवित्र मंत्र से शोधित वे असंख्य बाण याद आ गये जो कि देवदूत के समान अपने पंखों को फड़काकर आकाश में उड़ जाते थे। राम के सम्मुख पतिंगों के समान जलते हुए ताड़का, सुबाहु, विराध, शिरस्त्रय, दूषण और खर आदि राक्षस दिखाई पड़े।

**शब्दार्थः**—भीमा=दुर्गा=विशाल शरीर वाली। समग्र=समस्त। महानिलय=प्रचण्ड वायु।

**व्याख्याः**—फिर देखी भीमा··················क्षण में हुए लीन।

इसके बाद श्री रामचन्द्र जी ने देखा कि विशाल काया वाली रणचंडी सारे आकाश को ढके हुए है और सारे चमकीले प्रकाशमय अस्त्र बुझ बुझ कर (ठंढा हो हो कर) नष्ट होते जा रहे हैं और प्रचंड वायु के झोंके से उसी रण चंडी के शरीर में लीन होते जा रहे हैं।

**शब्दार्थः**—शेष-शयन=शेष-शायी=विष्णु=राम। भावित=भावनामय। मुक्ताफल=आँसू।

**व्याख्याः**—लख शङ्काकुल·······दो मुक्ताफल।

रणचंडी की विशाल मूर्ति को देखकर अपार बल वाले, शेषशायी विष्णु के अवतार श्रीराम चंद्र जी का हृदय शंका से आकुल हो उठा और उनके नेत्रों में जो जानकी जी की मधुर मूर्ति थी वह भी गायब हो गई। इसके बाद आकाश में खिलखिलाकर ठहाका मारकर हँसता हुआ रावण दिखाई पड़ा। अतएव भावों में लीन राम के नेत्रों से दो बूँद आँसू गिर पड़े।

(पृष्ठ—८६)

**शब्दार्थः**—मारुति=हनुमान। अस्ति=अस्तित्व। नास्ति=नश्वर। अनिन्द्य=जो निन्दा के योग्य न हो=प्रशंसनीय।

**व्याख्याः**—बैठे मारुति·······कपिवर गद्गद।

श्री रामचंद्र जी के कमलवत चरण को देखते हुए हनुमान जी बैठे थे।

उनके वे चरण गुणों के समूह प्रशंसनीय और अस्तित्व और नश्वरता ( हाँ और नहीं ) के एक रूप थे। अपनी इस दर्शन साधना में भी हनुमान जी शांत भाव से अपने बायें हाथ से राम के दक्षिण पैर को और अपने दाहिने हाथ पर उनका वायाँ पैर धारण करके गद गद हो उठे थे।

**शब्दार्थ:**—अजपा=एक मंत्र=न जपने योग्य=जिसका उच्चारण न किया जा सके।

**व्याख्या:**—पा सत्य, सच्चिदानंद.........ज्यों तारा दल।

सच्चे सच्चिदानंद रूप तथा शांति के धाम राम के चरणों को पाकर हनुमान जी भक्ति पूर्वक मौन भाव से जब राम के नाम का जप ( ध्यान ) कर रहे थे तब राम के नेत्रों से टपके हुए अश्रु उनके ( राम के ) दोनों चरणों पर आकर गिर पड़े। उन अश्रु बूँदों पर जब हनुमान जी की दृष्टि पड़ी तो वे उन्हें उसी प्रकार प्रकाशमय दिखाई पड़े। जिस प्रकार आकाश में तारे चमकते हैं।

**शब्दार्थ:**—हीरक=हीरे के समान। कौस्तुभ=मणि विशेष।

**व्याख्या:**—ये नहीं राम के चरण.........देखा अविकल।

श्री रामचंद्र जी के पैर स्वच्छ रात्रि के समान थे और उनके बीच में ये अश्रु विन्दु हीरे या कौस्तुभ मणि के समान शोभायमान लग रहे थे। इनको देखकर हनुमान जी के ध्यान का तार ( क्रम ) भंग हो गया। शांत मन चंचल हो उठा। उनके मन में संदेह का भाव उत्पन्न हो गया और उन्होंने तुरत देखा कि:—

**शब्दार्थ:**—कमललोचन=कमल के से नेत्र वाले रामचंद्र जी।

**व्याख्या:**—बैठे थे वहीं........सागर अपार।

कमल के से नेत्रवाले श्री रामचंद्र जी वहीं बैठे थे पर उनके आँखों में आँसू थे, वे कुछ चिंतित, कुछ प्रसन्न और निश्चेष्ट से थे। 'अरे ये राम के आँसू! ऐसा विचार मन में उठते ही अपार समुद्र के समान शक्ति शाली हनुमान जी का शक्ति और साहस का सागर उद्वेलित हो उठा।

**शब्दार्थ:**—श्वसित=उच्छ्वासित=सांस लेने का भाव। तुमुल=सैनिक हलचल। घूर्णावर्त=घूमने का चक्कर।

**व्याख्या:**—हो श्वसित पवन·························खाता पछाड़ ।

पिता पक्ष से सैनिक कोलाहल के समान उन्चास वायु उच्छ्वासित होकर हृदय पर एकत्र होकर अतुल वाष्प को प्रवाहित करके वह उड़ चला । सैकड़ों चक्करदार लहरों को भंग करके पहाड़ उठने लगे, समुद्र की लहरें एक पर एक आक्रमण करती हुई आगे बढ़ती हुई पछाड़ खाने लगीं ।

**शब्दार्थ:**—प्रति सन्धि=जोड़ । स्फीत=वर्द्धित । समक्ष=सामने ।

**व्याख्या:**—तोड़ता बंध·········में महाराव ।

प्रत्येक बन्धन और जोड़ को तोड़ता हुआ और हृदय को बढ़ाता हुआ दिग्विजय करने के लिए प्रतिक्षण शक्ति संपन्न होकर सामने बढ़ता हुआ सैकड़ों वायु के बल के समान गति धारण करके अथाह भाव में डूबा हुआ, अपार-जल समूह का मंथन करके वायु में महान तेज धारण करके ।

**शब्दार्थ:**—वज्रांग=दृढ़ अंग । अट्टहास=ठहाका मारकर

**व्याख्या:**—वज्रांङ्ग तेजघन·········अट्टहास ।

वज्र के समान अपने अंगों को तेज बादलों के समान पवन पूरित करके महान ऊँचाई प्राप्त किया और क्षुब्ध होकर अट्टहास करता हुआ एकादश रुद्र के पास पहुँचा ।

## ( पृठ–६७ )

**शब्दार्थ:**—विभावरी=रात्रि ।रुद्र=शंकर । दशस्कंध=रावण ।

**व्याख्या:**—रावण-महिमा··············रघुनन्दन-कूजित ।

रावण की महिमा काली रात्रि के अंधकार के समान थी और यह रुद्र राम की पूजा के प्रताप के प्रकाश के समान था । उस ओर रावण द्वारा पूजित शिव की शक्ति विराजमान थी और इधर राम की ध्वनि सदृश रुद्र का बन्धन था ।

**शब्दार्थ:**—श्यामा=एक देवी=कोयल पक्षी । मंद्र=मृदुल=धीमे । सम्वरो=प्रदान करो ।

**व्याख्याः**—करने को ग्रस्त.......................नहीं वानर ।

संपूर्ण आकाश को लील जाने के अभिप्राय से अटल भाव से हनुमान जी आगे बढ़े । इस महानाशलीला को देखकर अटल शिव जी क्षण भर के लिए चलायमान हो गये और उन्होंने देवी के पास जाकर साधारण रूप धारण करके कोयल के समान मंदस्वर में कहा कि:—हे देवी ! अपना तेज प्रदान करो अन्यथा यह वानर—

**शब्दार्थः**—युग्म=जोड़ा=द्वंद्व=मिथुन राशि । अर्चना=पूजा ।

**व्याख्याः**—यह—नहीं हुआ...............अनन्य ।

साधारण भद्दे रूप का महावीर कपि मात्र नहीं है बल्कि राम की आराधना ही स्वयं अविनाशी शरीर धारण करके प्रकट हो गई है । यह आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला है। इसका एकादश रुद्र रूप धन्य है यह मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र जी के अनन्य भक्तों में से एक है ।

**शब्दार्थः**—विषम=कठोर । प्रबोध=प्रबोधन=सांत्वना ।

**व्याख्याः**—लीला सहचर..................होगा दूर रोध ।

लीला से युक्त पवित्र भाव धारण करके इनपर प्रहार करने से हे देवी ! तुम्हारी कठिन हार होगी अतएव तुम ज्ञान का सहारा लेकर इनके मन को प्रबोधन दो तो यह वन्दर (हनुमान ) अवश्य ही झुक जायेगा और इसके मन का क्रोध निश्चय ही दूर हो जायेगा ।

**शब्दार्थः**—पवन-तनय=हनुमान । निगल लिया=लील लिया ।

**व्याख्याः**—कह हुए मौन शिव...................बालक केवल ।

ऐसा कहकर हनुमान जी के अन्दर विस्मय का भाव भर के शिव जी मौन हो गये और उसी समय आकाश में सहसा अञ्जना का उदय हुआ । अंजना माता हनुमान से बोली कि जब तुमने सूर्य को लील लिया था तब तुम निरे बालक थे और उचित अनुचित का तुम्हें कुछ भी ज्ञान नहीं था ।

**शब्दार्थः**—व्याकुल=क्षुब्ध । वास=स्थान ।

**व्याख्याः**—यह वही भाव.....................ग्रसने को चल ।

यही तुम्हारे लड़कपन का भाव तुम्हें रह रहकर क्षुब्ध कर दे रहा है । यह

बड़े शर्म की बात है और माँ होने के नाते मुझे रह रह कर सहना पड़रहा है। यह महाकाश वह स्थल है जहाँ सुन्दर शिवजी का निवास स्थान है और जिस शिव जी को श्री रामचन्द्र जी पूजते हैं, आज तुम उन्हीं को लीलने जा रहे हो।

**शब्दार्थ:**—असम्भाव्य=गुरुतर=असंभव। धार्य=रुचिकर=स्वीकार।

**व्याख्या:**—क्या नहीं कर रहे............लिए धार्य ?"

तुम जरा अपने मन में विचार करो कि क्या तुम यह अनुचित कार्य नहीं कर रहे हो ? क्या इस अनुचित कार्य के लिए तुम्हें श्री रामचन्द्र जी ने अपनी अनुमति प्रदान कर दी है ? तुम सेवक हो कर अपने सेवा कर्म के धर्म का त्याग कर रहे हो। यह जो तुम गुरुतर कार्य करने जा रहे हो क्या यह श्री रामचन्द्र जी को भी पसंद है ?

( पृष्ठ-६८ )

**शब्दार्थ:**—माता छवि=माता की मूर्ति। विषण्णानन=दुखी मुख।

**व्याख्या.**—कपि हुए नम्र............................आज प्रसन्न वदन।

क्षण मात्र में माता अंजना की मूर्ति गायब हो गई और हनुमान जी नम्र होकर धीरे धीरे आकाश से नीचे उतर आये तथा श्री रामचन्द्र जी का चरण पकड़ कर खिन्न मन हो गये। कुछ क्षण तक श्री रामचन्द्र जी के उदास और दुखी मुख की आकृति को देखकर विभीषण ने कहा कि हे मित्र! आज आपके चेहरे पर वह प्रसन्नता का भाव नहीं है। जिसे:—

**शब्दार्थ:**—समग्र=सब। भल्लूक=भालू।

**व्याख्या:**—वह नहीं देख कर............................बल वही अमित।

देख कर सब वीर वानर और भालु अपनी थकावट और वृद्धता को दूर करके नया जीवन पाते थे। हे रामचन्द्र जी! आपके तरकस में वही सब बाण रक्षित हैं, आपका वही वक्षस्थल है, रण की कुशलता दिखलाने वाला वही हाथ है और शरीर में वही अपार शक्ति भी है।

**शब्दार्थ:**—सुमित्रानन्दन=लक्ष्मण। प्रमन=प्रसन्न मुख। तारा-कुमार=

अंगद। अप्रतिभट=अद्वितीय वीर। अर्बुद=दस करोड़ की संख्या=महान शक्ति शाली।

**व्याख्या:**—हैं वही सुमित्रानन्दन··············अर्बुद-सम, महावीर।

मेघनाद को रण में पराजित करने वाले वही लक्ष्मण हैं। जाम्बवान और वानरों में श्रेष्ठ तथा प्रसन्न सुग्रीव भी वही हैं, महाबलशाली सुन्दर धैर्य वाले अंगद भी वही हैं, दस करोड़ वीरों में केवल एक अकेले अद्वितीय वीर हनुमान जी भी वही हैं।

**शब्दार्थ:**—दक्ष=निपुण=पारंगत। असमय=कुसमय।

**व्याख्या:**—हैं वही दक्ष················यह भाव प्रहर ?

वही निपुण और योग्य आपके सेनापति हैं और यह युद्ध भी रोज का परिचित वही युद्ध है फिर आज असमय में आपके मन में यह उदासी और निराशा का भाव क्यों उत्पन्न हो गया है ?

**शब्दार्थ:**—लघु=छोटे=अधीर। श्रम=परिश्रम।

**व्याख्या:**—रघुकुल गौरव·············जानकी से निर्दय।

हे रघुवंशियों में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी! इस समय तुम अपना दिल बहुत छोटा करते जा रहे हो और जब युद्ध में तुम्हारी सफलता की पूरी आशा हो चली है तब तुम रण से पीठ दिखाने जा रहे हो। जरा सोचो तो सही कि इस युद्ध में कितना कठोर परिश्रम करना पड़ा है और जब युद्ध में सफलता प्राप्त करके जानकी जी से मिलने का समय निकट आ गया है तब तुम कठोर और निर्दय बन कर मधुर मिलन के उस हाथ को पीछे घसीट ( खींच ) रहे हो।

**शब्दार्थ:**—लम्पट=दुराचारी। कल्मष=पाप। गताचार=आदत।

**व्याख्या:**—रावण, रावण लम्पट,··········पारिषद दल से घिर।

रावण! वह दुराचारी, दुष्ट पाप करने वाला रावण! जिसने कल्याणकारी बात कहने पर मुझे पैर से मारा वह अपनी सभा में लोगों से घिरा हुआ बैठकर युद्ध की विजयगाथा सबको सुनायेगा और अहंकार में फूला हुआ जानकी जी को फिर कष्ट देगा।

**शब्दार्थ:**—निःस्तब्ध:=शान्त:=मौन=शांत । विमन=विना मन के=अनमना=खिन्न ।

**व्याख्या:**—सुनता वसन्त में............देखते विमन।

वसन्त ऋतु में वागीचों में कोयल की सुमधुर वाणी सुनाई पड़ती है पर मैं व्यर्थ में ही लंका का राजा घोषित किया गया। इस घोषणा के लिए हे राम! धिक्कार है! धिक्कार है!! धिक्कार है! विभीषण के इन शब्दों को सुनकर सारी सभा मौन वनी रही पर राम के नेत्र उसी प्रकार नम्र वने हुए थे और अन्यमनस्क भाव से शांत प्रकाश छोड़ रहे थे।

**शब्दार्थ:**—ओजस्वी=ओजपूर्ण। दुराव=छिपाव।

**व्याख्या:**—जैसे ओजस्वी............कोई दुराव।

ऐसा प्रतीत होता था मानो विभीषण के ओजस्वी भाषण का जो कुछ भी प्रभाव था उससे न तो उनका कोइ आकर्षण था और न तो उससे कोई विरोध ही था।

(पृष्ठ–६६)

**शब्दार्थ:**—समनुरक्ति=समान अनुरक्ति=समान भाव=समान प्रेम। गहन=गंभीर।

**व्याख्या:**—ज्यों हों वे शब्द............की नहीं शक्ति।

मानो वे मित्रता के समान भाव के शब्द मात्र थे और उनमें गंभीर भाव धारण करने की शक्ति ही नहीं रह गई थी।

**शब्दार्थ:**—सहज=स्वाभाविक। महा शक्ति=महा देवी=दुर्गा।

**व्याख्या:**—कुछ क्षण तक............रावण से आमंत्रण।

कुछ क्षण तक चुप रह कर इसके वाद अपने स्वाभाविक कोमल स्वर में श्री रामचंद्र जी वोले कि हे मित्र विभीषण! इस युद्ध में विजय होगी पर यह युद्ध मनुष्य वंदर और राक्षस के वीच नहीं हो रहा है वल्कि रावण का आमंत्रण पाकर उसकी ओर से स्वयं महाशक्ति उतर पड़ी है।

**शब्दार्थ:**—दृग जल=अश्रु। गह=मूठ=हत्था। मसक=पुर=चमड़े का जल पात्र। दण्ड=समय=दमन=सैन्य।

**व्याख्या:**—अन्याय जिधर है..........मसक दण्ड।

जिधर अन्याय है उधर महान शक्ति है ऐसा कह कर श्री रामचन्द्र जी के नेत्र छल छला आये और उनमें से आँसुओं की कुछ बूँदें ढलक पड़ीं। इसके आगे वे और कुछ भी नहीं कहसके, उनका गला अवरुद्ध हो गया। इस स्थिति को देखकर लक्ष्मण का प्रचण्ड तेज चमक पड़ा और वन्दर समूह मसक रूपी समय का दंड धारण करके मानो पृथ्वी में गड़ गया।

**शब्दार्थ:**—विषम=कठिन। स्पन्दित=स्फुरित=कंपित।

**व्याख्या:**—स्थिर जाम्बवान,.........वातावरण विषम।

सब भाव समझ कर जाम्बवान स्थिर रहे, सुग्रीव इस प्रकार व्याकुल हो गये मानो उनके हृदय में भयानक घाव हो गया हो। विभीषण आगे का कार्य क्रम निश्चित करते से प्रतीत हुये। इस प्रकार संपूर्ण वातावरण खिन्न और भयभीत बना रहा।

**शब्दार्थ:**—जानकी प्राण=रामचन्द्र जी। विधान=व्यवस्था। अपर=गैर=दूसरा।

**व्याख्या:**—निज सहज रूप में...........शङ्कर, शङ्कर

इसके बाद अपने स्वाभाविक रूप में संयमित और गंभीर होकर श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि—यह ईश्वरीय विधान मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि रावण पाप में लीन है वह शक्ति की सहानुभूति प्राप्त कर लिया और मैं महाशक्ति के लिए वेगाना हो गया इस प्रकार यह युद्ध महा शक्ति की क्रीड़ा का रूप धारण कर चुका। हे शंकर! हे शंकर! ( आश्चर्य और खेद की बात है )।

**शब्दार्थ:**—योजित=नियोजित=एकत्रित। निकर=समूह। निशित=तेज=पैना=तीक्ष्ण। संसृति=संसार। संस्कृति=सभ्यता।

**व्याख्या:**—करता मैं योजित...........संस्कृति अपार।

मैं बार बार तीक्ष्ण बाण समूह की व्यवस्था करता हूँ जिनमें इतनी शक्ति है कि यह संपूर्ण सृष्टि जीती जा सकती है; जो कि तेज के समूह हैं, जिनमें संसार

की रक्षा की भावना भरी हुई है, जिनमें सभ्यता के विनाश को गर्त से बचाने की अपार शक्ति है।

**शब्दार्थः**—क्षात्र धर्म=क्षत्रित्व। धृत=पकड़ा हुआ। प्रजापति=ब्रह्मा=यहाँ दस प्रजापति से तात्पर्य है। श्रीहत=निष्तेज।

**व्याख्याः**—शत-शुद्धि-बोध············श्रीहत, खण्डित।

जिनमें शत प्रतिशत पवित्रता की भावना है, जिनके मन का विवेक अत्यन्त सूक्ष्म है, जिनमें क्षत्रित्व की पूर्णाभिव्यक्ति है, जो दस प्रजापतियों द्वारा संयम के साथ रक्षित हैं वे ही वाण आज युद्ध में तेज रहित और नष्ट हो गये।

**शब्दार्थः**—अंक=गोद। लान्छन=कलंक। शशाङ्क=चन्द्रमा।

**व्याख्याः**—देखा है महाशक्ति········नभ में अशङ्क।

मैंने ( राम ने ) देखा है कि महा शक्ति रावण को उसी प्रकार अपने गोद में लिये हुए है जिस प्रकार आकाश में चन्द्रमा निर्भय होकर कलंक को धारण किये हुए है।

( पृष्ठ-१०० )

**शब्दार्थः**—मन्त्र पूत=मन्त्र से परोरे हुए। संवृत=घिरा हुआ। क्षिप्र=शीघ्र।

**व्याख्याः**—हत मन्त्र पूत········वार पर वार!

पवित्र मन्त्र से युक्त हमारे वाणों के घेरे से वार वार रावण को महा शक्ति बचा लेती हैं अतएव जितने भी हमारे प्रहार शत्रु पर होते हैं सब निष्फल हो जाते हैं।

**शब्दार्थः**—वह्नि=अग्नि। वामा=स्त्री=महाशक्ति से तात्पर्य है। त्रस्त=भय भीत।

**व्याख्याः**—विचलित लख··············मैं हुआ त्रस्त।

श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि:—कपि समूह को युद्ध से विचलित होते देख कर युद्ध के प्रति मेरे मन में ज्यों ज्यों क्रोध की मात्रा बढ़ती जाती थी त्यों त्यों महा शक्ति के नेत्रों में अग्नि का तेज झक झक ( लप लप ) करके झलकता

था। इसके बाद महा शक्ति मुझे अपने नेत्रों से देखने लगी। फलस्वरूप मेरे हाथ धनुष में ही बँधे रह गये फिर मैं धनुष पर बाण को छोड़ ही नहीं पाया और भयभीत हो उठा।

**शब्दार्थः**—भानुकुल-भूषण=श्री रामचन्द्र जी। विश्वस्त=विश्वास पूर्ण।

**व्याख्याः**—कह हुए भानुकुल-भूषण..........शक्ति करो धारण।

इस प्रकार कह कर श्री रामचन्द्र जी क्षण भर के लिए चुप हो गये तब विश्वास पूर्ण शब्दों से जाम्बवान जी बोले कि—हे श्री रामचन्द्र जी! मैं युद्ध मार्ग से विरत होने या घबड़ाने का कोई कारण नहीं देखता। हे वीर पुरुष राम चन्द्र जी आप भी महा शक्ति की इस शक्ति को धारण करें।

**शब्दार्थः**—आराधन=उपासना। ध्वस्त=नष्ट।

**व्याख्याः**—आराधन का..............उसे ध्वस्त।

जाम्बवान् ने श्री रामचन्द्र जी से कहा कि:—आराधना का उत्तर कठोर आराधना से दें और अपने प्राणों की भी बाजी लगाकर विजय को प्राप्त करें। यदि रावण अपने पापमय कलुषित जीवन के साथ त्रस्त कर सका तो आप तो सिद्ध पुरुष हैं उसे अवश्य नष्ट कर देंगे।

**शब्दार्थः**—मौलिक=मूल रूप में। महा वाहिनी=विशाल सेना।

**व्याख्याः**—शक्ति की करो..............श्वेत सहायक।

जम्बवान् जी श्री रामचन्द्र जी से कहते हैं कि:—आप महा शक्ति की मौलिक कल्पना करके उनका पूजन करें और जब तक इस कार्य की सिद्धि न हो जाये तब तक आप युद्ध का भार त्याग दें तब तक इस महा सेना के सेनापति लक्ष्मण जी रहेंगे और मध्य भाग में अंगद तथा दक्षिण भाग में श्वेत सहायक रहेंगे।

**शब्दार्थः**—भल्ल सैन्य=भालू सेना। वाम पार्श्व=बाँये पक्ष में।

**व्याख्याः**—मैं भल्ल सैन्य........जहाँ भी होगा भय।

मैं ( जाम्बवान ) भालुओं की सेना का संचालन करूँगा और बाँये पक्ष में हनुमान जी सँभालेंगे, नल नील और छोटे कपि समूह जो हैं उनके प्रधान सुग्रीव

विभीषण आदि रहेंगे तथा अन्य सेनापति जहाँ कहीं भी शत्रु से भय उत्पन्न होगा यथा समय रक्षा का कार्य करेंगे।

**शब्दार्थः**—खिल गई=प्रफुल्लित हो गई। भल्लनाथ=जाम्बवान्।

**व्याख्याः**—खिल गई सभा............होता बार बार।

जाम्बवान् के विचारों को सुनकर संपूर्ण सभा प्रफुल्लित हो गई और उन्हें वृद्ध तथा अनुभवी मानकर उन्हें सर झुका कर श्री रामचन्द्र जी को वर बस कह ही देना पड़ा कि—हे भल्ल नाथ (जाम्बवान)! आप का निर्णय बहुत ही श्रेष्ठ है। इसके बाद सोचते सोचते श्री रामचन्द्र जी पुनः ध्यान मग्न हो गये और उन्होंने देखा कि उनका शरीर बराबर पुलकाय मान हो रहा है।

**शब्दार्थः**—इन्दीवर=नीला कमल। मज्जित=डूबा हुआ।

**व्याख्याः**—कुछ समय अनन्तर............मज्जित मन।

इसके कुछ समय बाद नीले कमल को भी लजाने वाले श्री रामचन्द्र जी के नेत्र खुल गये और उनका मन भावों में एक टक लीन हो गया।

(पृष्ठ-१०१)

**शब्दार्थः**— विद्ध=विंधा हुआ। रञ्जन=प्रसन्न करने वाले।

**व्याख्याः**—बोले आवेग-रहित............सिंह गर्जित!

विश्वास पूर्वक गंभीर स्वरों में श्री रामचन्द्र जी बोले कि ऐ दस भुजाओं वाली, संसार की ज्योति स्वरूप माँ महा शक्ति! मैं आज तुम्हारी शरण में हूँ। तुम महिषा सुर दैत्य को घायल करके नष्ट करने वाली हो। सब के मन को प्रसन्न करने वाले तुम्हारे कमलवत चरणों के नीचे गर्जन करता हुआ सिंह धन्य है।

**शब्दार्थः**—प्रतीक=चिन्ह। इङ्गित=संकेत=इशारा।

**व्याख्याः**—यह, यह मेरा प्रतीक...............अभिनन्दित।

हे माता! मेरा यही चिह्न है मैं इसी सिंह के संकेत को स्पष्ट करना चाहता हूँ। मैं भी सिंह हूँ अतएव मैं इसी भाव से तुम्हारा अभिवादन करूँगा।

**शब्दार्थः**—निमग्न=डूबे हुए। वीरासन=वीरों की बैठकी।

**व्याख्याः**—कुछ समय स्तब्ध.........स्मित आनन ।

महा शक्ति के सौन्दर्य में डूबे हुए कुछ समय तक श्री रामचन्द्र जी स्तब्ध होकर मौन रहे इसके बाद प्रकाश पुंज देवी के ध्यान में लीन उन्होंने अपने कमलवत नेत्रों के पलक खोल दिये। उनकी सेना के सेनापति और मंत्री उनके वीरता पूर्ण आसन को देख रहे थे और उनके बैठे हुए भावों में तल्लीन मुख की मुस्कराहट भी झलक रही थी।

**शब्दार्थः**—भावस्थ=भावों में लीन। मेघ मन्द्र=बादल के से घोष वाला। भूधर=पहाड़। गुल्म=वृक्ष ।

**व्याख्याः**—बोले भावस्थ.........श्यामल सुन्दर ।

चन्द्रमा के भी मुख को लजाने वाले सुन्दर मुख वाले श्री रामचन्द्र जी भावों में मग्न होकर प्राणों में पवित्र कंपन भर कर तथा स्वरों में बादल के से घोष भर कर बोले कि हे बन्धुवर! देखो सामने यह जो पहाड़ विराजमान है और जो सैकड़ों हरे वृक्षों तथा लता घास वनस्पति आदि से शोभित हरा भरा और सुन्दर दिखाई पड़ रहा है।

**शब्दार्थः**—मकरन्द=पराग। दश दिक=दसों दिशायें । शशि शेखर= शंकर।

**व्याख्याः**—पार्वती कल्पना है.........अर्चित शशि-शेखर।

इसका पराग विन्दु ही पार्वती की कल्पना अथवा प्रतीक है और इसके चरण ( तल ) के पास जो सिंह गर्जन की ध्वनि आ रही है वह समुद्र है। दसों दिशायें इसके सब हाथ हैं और ऊपर आकाश में दिगम्बर शिव जी विराज मान हैं।

**शब्दार्थः**—प्रियतर=उससे भी अधिक प्रिय। अन्तर=हृदय।

**व्याख्याः**—लखे महा भाव-मंगल.........सोचते हुए।

महान उच्च और मंगल सूचक भाव के कारण पैरों के नीचे अहंकार धँसता जा रहा है और मनुष्य के अन्दर जो आसुरी भाव है वह नष्ट हो जाता रहा है

इसके वाद श्री रामचन्द्र जी अपने मधुर नेत्र से अपने प्रिय कपि ( वन्दर ) को अपनी ओर आकर्षित करते हुए अपने हृदय को सन्तोष देते हुए उससे भी अधिक प्रिय शब्द में बोले।

**शब्दार्थः**—इन्दीवर=नीले कमल। सत्वर=शीघ्र।

**व्याख्याः**—"चाहिए हमें..............लौट कर लड़ो समर।

श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि:—मुझे कम से कम एक सौ आठ नीले कमल चाहिये यदि इससे अधिक और हो जायें तो अति उत्तम। अतएव प्रातः काल होते ही शीघ्रता पूर्वक देवीदह में चले जाओ और उन कमलों को तोड़ कर ले आओ, इसके वाद जाकर संग्राम में लड़ो।

**शब्दार्थः**—अवगत हो=जानकर। दूरत्व=दूरी।

**व्याख्याः**—अवगत हो..................भर हनूमान।

जाम्बवान द्वारा मार्ग, स्थान की दूरी आदि के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करके श्री रामचन्द्र जी के चरणों की धूलि मस्तक पर धारण करके प्रसन्नता पूर्वक हनुमान जी १०८ नीले कमल लाने चल पड़े।

( पृष्ठ–१०२ )

**शब्दार्थः**—राघव=रामचन्द्र जी। सदय=दयार्द्र।

**व्याख्याः**—राघव ने..............हुए विजय।

उपर्युक्त समय जानकर श्री रामचन्द्र जी ने सब को विदा किया और सब लोग दयार्द्र होकर उनके विजय की कामना करते हुए चल पड़े।

**शब्दार्थः**—निशि=रात्रि। विगत=बीती। निविड़=घना।

**व्याख्याः**—निशि हुई विगत.................दृढ़ मुकुट बन्ध।

रात्रि व्यतीत हो गई। आकाश के मस्तक पर सूर्य की प्रथम किरण चमक पड़ी। श्री रामचन्द्र जी के नेत्रों में अपूर्व प्रकाश का समूह छा गया। आज उनके हाथ में धनुष वाण नहीं है और न तो कन्धे पर तरकस है। आज घनी जटाओं का समूह और उसमें बँधा हुआ मुकुट भी नहीं शोभायमान लग रहा है।

**शब्दार्थ:**—स्तब्ध=शान्त । सुधी=विद्वान्=ज्ञानी । धार=धारण करके ।

**व्याख्या:**—सुन पड़ता सिंहनाद.........नामों के गुण ग्राम ।

चारों ओर युद्ध का अपार कोलाहल और सिंह गर्जन सुनाई पड़ता था पर श्री रामचन्द्र जी का मन रंच मात्र भी चंचल या उद्विग्न नहीं होता था वे महा शक्ति का ध्यान धारण करके शान्त मन से बैठे थे । पूजा करने के बाद वे दुर्गा को दस भुजाओं का नाम जपते थे और उनके नामों के गुण समूह का अपने मन में मनन करते जाते थे ।

**शब्दार्थ:**—समराधन=स्तुति=आराधना । ऊर्ध्व=ऊपर । निरलस=आलस्य रहित=शीघ्रता से । पुरश्चरण=अनुष्ठान ।

**व्याख्या:**—बीता वह दिवस.........रहे हैं पूरा कर ।

वह दिन नाम का जाप करने में व्यतीत होगया । इसके बाद श्री रामचन्द्र जी का मन अपनी इष्ट देवी ( महाशक्ति ) के चरण में स्थिर हो गया । अब एक से एक बढ़कर गंभीर स्तुति होने लगी । इस प्रकार एक एक करके रामचन्द्र जी के पाँच दिन व्यतीत हो गये और उनका मन शीघ्रता से एक के बाद एक सोपान पर ऊँचा चढ़ता गया । एक जप पूरा करके तब एक नीला कमल रामचन्द्र जी महा शक्ति को चढ़ाते जाते थे इस प्रकार वे अपना अनुष्ठान पूरा कर रहे थे ।

**शब्दार्थ:**—समाहित=समाधिस्थ=स्थिर । त्रिकुटी=दोनों भौंहों के बीच का स्थान ।

**व्याख्या:**—वह षष्ठ दिवस.........थर थर अम्बर ।

छठेंदिन रामचन्द्र जी का मन समाधिस्थ हो चला । एक एक जप से खिंच खिंच कर वह महान आकर्षण के साथ ऊपर चढ़ने लगा । उनका ध्यान एकत्र होकर त्रिकुटी पर एकत्र हो गया और दोनों नेत्र देवी के चरणों पर टिके हुए थे । उन्होंने जब जप करना प्रारंभ किया तो उस स्वर से आकाश थर थर काँपने लगा ।

**शब्दार्थ:**—निस्पन्द=शांत । अतिक्रम=अति क्रमण=सीमोल्लंघन । स्तर=पद=सीढ़ी ।

**व्याख्याः**—दो दिन निस्पन्द·········हरि शङ्कर का स्तर।

नाम का जप करके, नीला कमल अर्पित करके दो दिन तक शांत भाव से श्री रामचन्द्र जी एक आसन पर स्थित रह गये। आठवें दिन उनका मन ध्यान के आवेश में ऊपर चढ़ता हुआ ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी के भी स्थान की सीमा का उल्लंघन कर गया अर्थात् उनके भी पद से ऊपर उठ गया।

**शब्दार्थः**—समारब्ध=अंग। सहस्रार=पूर्णाहुति।

**व्याख्याः**—हो गया विजित·······जो सहस्रार।

राम के अनुष्ठान से संपूर्ण ब्रह्माण्ड विजित हो गया और देवता लोग भी इस तप को देखकर स्तब्ध रह गये। जीवन की तपस्या के सभी अंग तप कर शुद्ध हो गये इस प्रकार तपस्या की पुर्णाहुति के लिए केवल नील कमल चढ़ाना बाकी रह गया।

( पृष्ठ—१०३ )

**शब्दार्थः**—द्विपहर=दो प्रहर। साकार=प्रत्यक्ष प्रकट।

**व्याख्याः**—द्विपहर रात्रि·········प्रिय इन्दीवर

दो पहर रात बीत जानेपर गुप्तरूप से दुर्गा वहाँ स्वयं आईं और हँसकर पूजा का वह नीला कमल उठा ले गईं।

**शब्दार्थः**—युगल=दोनों। असिद्धि=सिद्धि हीनता=असफलता।

**व्याख्याः**—यह अन्तिम जप·········भर गये नयनद्वय।

अन्तिम जप के समय ध्यान में दुर्गा के दोनों चरणों को देखकर उनपर नील कमल चढ़ाने के अभिप्राय से नील कमल लेने के लिए राम ने हाथ बढ़ाया पर उनके हाथ कुछ भी न आया इससे उनका स्थिर मन सहसा चंचल हो उठा। अब वे ध्यान के स्थान से नीचे उतर पड़े और अपने स्वच्छ नेत्रों को खोल दिया। उन्होंने देखा कि वह स्थान खाली था वहाँ कोई भी नील कमल नहीं था। जप के पूर्ण होने का समय जानकर तथा वहाँ से आसन छोड़कर उठ जाने से तप की

असिद्धि ( असफलता ) का ध्यान ( विचार ) करके उनके दोनों नेत्र आँसुओं से भर आये।

**शब्दार्थ:**—विरोध=रुकावट=विघ्न। शोध=शोधकार्य=ढूँढ़ना।

**व्याख्या:**—"धिक जीवन को·········जो न थका।

श्री रामचन्द्र जी पश्चात्ताप प्रकट करते हुए कहने लगे कि मेरे जीवन को धिक्कार है जिसे बराबर विरोध का ही सामना करना पड़ा है। उस साधन को धिक्कार है जिसके लिए सदैव शोधन करना पड़ा है। मुझे दुःख है कि मैं जानकी जी का उद्धार न कर सका और इस प्रकार मेरे मन की भावना मन में ही रह गई और इस भावना से मैं कभी नहीं थका।

**शब्दार्थ:**—दैन्य=दीनता। मायावरण=माया का जाल। हत चेतन=चेतना रहित। प्रमन=प्रसन्न मुख।

**व्याख्या:**—जो नहीं जानता·········भाव प्रमन।

जो दीनता और विनय के भाव नहीं जानता था वह माया के जाल का भेदन करके जयी हुआ और बुद्धि के गढ़ के पास बिजली के समान गति से पहुँचकर चेतना रहित हो गया। इस प्रकार राम की स्मृति जग गई और वे प्रसन्न भाव से चैतन्य हो उठे।

**शब्दार्थ:**—मन्द्रित=शनैः शनैः गंभीर। राजीव नयन=कमल के से नेत्र वाले।

**व्याख्या:**—'यह है उपाय'·········'मातः एक नयन।'

गंभीर बादल के समान घोष करके श्री रामचन्द्र जी कह उठे कि:—'यह उपाय है।' मुझे मेरी माँ सदैव राजीवनयन कहा करती थीं अतएव मेरे पास पूर्णाहुति के लिए अभी दो नीले कमल ( नीले नेत्र ) बचे हैं अतएव हे माता दुर्गा! मैं अपना एक नेत्र देकर अभी इस तपकी पूर्णाहुति कर रहा हूँ।

**शब्दार्थ:**—महा फलक=बाण=गाँसी। लोचन=नेत्र।

**व्याख्या:**—कह कर देखा·········उद्यत हो गये सुमन।

ऐसा कहकर श्री रामचन्द्र जी ने अपने तरकश की ओर देखा तो उसमें ब्रह्म शर झलक रहा था। फिर क्या था? लक लेक करते हुए उस महा फलक को

उन्होंने हाथ में लेलिया और वाएं हाथ में अस्त्र लेकर तथा दाहिने हाथ से दाहिनी आँख पकड़ कर उसे लेकर इस प्रकार सुमन स्वरूप दुर्गा के चरणों में अर्पित करने के लिए वे तत्पर हो गये।

**शब्दार्थ:**—त्वरित=तत्क्षण=उसी समय=शीघ्र।

**व्याख्या:**—जिस क्षण बँधगया·········राघव का हस्तथाम।

जब श्री रामचन्द्र जी ने अपने नेत्र वेधने के लिए अपने को दृढ़ निश्चय कर लिया उस समय सारा ब्रह्माण्ड कंपित हो गया और देवी को उसी समय प्रकट हो जाना पड़ा। हे राम! तुम धर्म को धारण करने वाले धैर्यवान्, सच्चे साधक हो और साधु पुरुष हो ऐसा कहकर भगवती दुर्गा ने राम का हाथ पकड़ लिया।

( पृष्ठ–१०४ )

**शब्दार्थ:**—भास्वर=दीप्तिमान=सूर्य की भांति तेजस्वी। स्कन्ध=कंधा। हरि=सिंह। मंदस्मित=मंद मंद मुस्कराहट। श्री=लक्ष्मी।

**व्याख्या:**—देखा राम ने·········श्री लज्जित।

श्री रामचन्द्र जी ने देखा कि उनके सम्मुख देदीप्यमान साक्षात दुर्गा जी विराजमान हैं। उनका बायाँ पैर राक्षस के कंधेपर और दाहिना पैर सिंह के ऊपर है। उनका प्रकाशमय अद्भुतरूप है और दसों हाथों में भिन्न भिन्न प्रकार के अस्त्र सजे हुए हैं। मंद मुस्कराहट से युक्त उनके मुख को देखकर संसार की लक्ष्मी भी लज्जित हो जा रही थी।

**शब्दार्थ:**—कार्तिक=महादेव जी के ज्येष्ठ पुत्र, कार्तिकेय जी। प्रणत=नम्र=दीन।

**व्याख्या:**—हैं दक्षिण में·········वंदन कर।

उनके ( दुर्गा जी के ) दक्षिण में लक्ष्मी, वायें पक्ष में सरस्वती, दक्षिण पक्ष में गणेश और वाएं कार्तिकेय जी तथा मस्तक पर शंकर जी विराज रहे थे।

श्री रामचंद्र जी उनके कमलवत चरणों पर श्रद्धा युक्त होकर मंद स्वर में वंदना करते हुए लौट गये।

**शब्दार्थः**—पुरुषोत्तम नवीन=श्री रामचंद्र जी। वदन=शरीर।

**व्याख्याः**—'होगी जय,...... वदन में हुई लीन।

महा शक्ति हे नवीन पुरुषोत्तम ( रामचंद्र जी ) तुम्हारी 'जय होगी' 'जय होगी' कहती हुई उनके शरीर में लीन हो गई।

## प्रश्नोत्तरः—

**प्रश्नः**—( १ ) 'राम की शक्ति पूजा' में राम की धीरता का निरूपण काव्य दृष्टि से कैसा बन पड़ा है।

( बी० ए० परीक्षा १९४५ का० वि० वि० )

**प्रश्नः**—( २ ) 'राम की शक्ति-पूजा' में निराला जी ने अपनी काव्य निर्माण शक्ति का जैसा परिचय दिया हो उसकी मीमांसा कीजियेः—

( बी० ए० परीक्षा १९४६ का० वि० वि० )

**उत्तरः**—'राम की शक्ति-पूजा' निराला' जी की सर्वोत्कृष्ट कविताओं में से है। इसमें कवि ने बंगाल में प्रसिद्ध राम-संबंधी एक कथा को बड़े ही ओज के साथ काव्य की भूमि पर उतारा है। राम-रावण-युद्ध की भयानकता का वर्णन करने के लिए कवि ने अपनी भाषा और कला की सारी शक्ति लगादी है। प्रारंभ में कवि कहता है—

रवि हुआ अस्त, ज्योति के पत्र में लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का, तीक्ष्णशर विधृत-क्षिप्र कर, वेग-प्रखर
शत शेल सम्वरण शील, नील नभ-गर्जित स्वर।

× × ×

उद्गीरित-वह्नि-भीम पर्वत-कपि-चतुःप्रहर,
जानकी-भीरु-उर-आशाभर-रावण-सम्वर।

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि 'निराला' जी के काव्य का एक बड़ा भाग

संस्कृत तत्सम शब्दों और लक्षणाव्यंजना के नये प्रयोगों के कारण कुछ अस्पष्ट सा है पर इसके लिए कवि को दोष नहीं दिया जा सकता। कुछ छन्द की आवश्यकता और कुछ विषय में गंभीरता और प्रभाव लाने के उद्देश्य से कवि को ऐसा करना पड़ा है। साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि 'निराला' जितने कवि हैं उतने ही कलाकार और भाषा के प्रयोग में समर्थ भी हैं। अतएव 'राम की शक्ति-पूजा' की तत्सम शैली के लिए कवि को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

युद्ध के बाद दोनों दल अपने-अपने शिविर में लौट आते हैं। कवि ने इस अवसर पर रामलक्ष्मण का बड़ा सुन्दर और सजीव चित्रण किया है—

× × ×

प्रशमित है वातावरण, नमित-मुख सान्ध्य कमल
लक्ष्मण चिन्ता पल पीछे वानर वीर सकल,
रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत-चरण,
श्लथ धनु-गुण है, कटि-बंध स्रस्त-तूणीर धरण,
दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल,
फैलापृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल।

शंकाकुल राम का चित्रण कवि इस प्रकार करता है—

स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय,
रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय'

रावण के पराक्रम का स्मरण होते ही नेत्रों से दो बूँद आँसू टपक पड़ते हैं:—

फिर सुना-हँस रहा अट्टहास रावण खल खल,
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता फल।

इन आँसुओं की अनुभूति रामचन्द्र जी के चरण सेवक हनुमान जी को उस समय हुई जब ये आँसू नेत्रों से गिरकर उनके चरणों पर आपड़े—

युग चरणों पर आपड़े अस्तु वे अश्रु युगल,
देखा कपि ने चमके नभ में ज्यों तारादल—

फिर क्या था हनुमान जी ने अपना विकराल रूप धारण करके प्रलय कालीन स्थिति उत्पन्न करदी और अन्त में उन्हें शांत करने के लिए शिव जी को अंजना सेनिवेदन करते हुए कहना पड़ा कि—

विद्या का ले आश्रय इस मनको दो प्रबोध,
झुक जायेगा कपि निश्चय होगा दूर रोध।

यह तो भक्त की स्थिति थी उधर भगवान रामचन्द्र जी ने महा शक्ति की आराधना में अपनी तपस्या और तत्परता का अपूर्व परिचय दिया और जब दुर्गा ने उनके अन्तिम नील कमल चुरा लिये तो उन्होंने अपने कमलवत नेत्र को ही निकाल कर महाशक्ति के चरणों में अर्पित कर देने के उद्देश्य से अपना बाण उठालिया इससे सारा ब्रह्मांड कांप उठा और स्वयं दुर्गा को प्रकट होकर रहस्योद्‌घाटन करते हुए श्री रामचन्द्र जी को वरदान देते हुए कहना पड़ा कि—

'होगी जय, होगी, जय, हे पुरुषोत्तम नवीन !'
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

संक्षेप में 'राम शक्ति-पूजा में कवि ने राम की धीरता का निरूपण अनूठे काव्यात्मक ढंग से किया है तथा अपनी काव्य-निर्माण शक्ति का अद्‌भुत परिचय दिया है।

**प्रश्नः**—( ३ ) 'संध्या-सुन्दरी' के काव्य-सौन्दर्य का विस्तृत विश्लेषण कीजिये और यह बतलाइये कि छायावाद की कौन सी कलात्मक विशेषता इसमें विशेष प्रस्फुट हुई है। ( बी० ए० परीक्षा १९५४ का० वि० वि० )

**उत्तरः**—'निराला' रचित 'परिमल' काव्य संग्रह में प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र मिलते हैं जिनमें 'संध्या सुन्दरी' भी एक है। इसमें हमें प्रकृति का स्वस्थ नैसर्गिक रूप भी मिलता है और रूपकों के पीछे एक रहस्यमयी आदि शक्ति की भी सूचना मिलती है। वास्तव में 'सन्ध्या सुंदरी' कविता में संध्या का चित्रण सारी भारतीय भाषाओं की रचना में वेजोड़ है। इसमें भाव विस्तार और चित्रण की व्यापकता देखते ही बनती है। इसमें कवि 'निराला' ने कल्पना विलास या सहज सौन्दर्य चित्रण को ही कला की इति श्री नहीं समझा है बल्कि अपने दार्शनिक मतवाद से इसमें अनुपम दृढ़ता भर दी है। प्रकृति के प्रति

निराला का एक अपना अलग दृष्टिकोण है। जब वे प्रकृति में परमात्मा तत्त्व का अनुभव करने लगते हैं तब प्रकृति का अपरोक्ष रूप अधिक स्पष्ट होकर निखरने लगता है और एक सुन्दर स्त्री रूप में उसकी कल्पना मूर्ति सामने आती है। यही उनका शुद्ध वेदांती दृष्टिकोण है जिसके अनुसार प्रकृति और पुरुष में कोई भेद नहीं रह जाता और प्रकृति में अव्यक्त के सौन्दर्य की सुंदर व्यंजना बन पड़ती है। 'संध्या सुंदरी' में भी कवि ने प्रकृति का प्रेयसी रूप खड़ा किया है और इसे एक सुंदरपरी का रूप देकर आकाश से पृथ्वी पर पदार्पण करते हुये दिखाया है यथाः—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतरही है
वह संध्या सुंदरी परी सी।
धीरे धीरे धीरे,
तिमिराञ्चल में चञ्चलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर—
किंतु गंभीर नहीं है उनमें हास विलास।

इसके बाद कवि प्रकृति सुंदरी को नारी सौन्दर्य के साँचे में ढालने का प्रयत्न करते हुए कहता है कि—

हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले बालों से,
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की सी लता
किंतु कोमलता की वह कली,
सुखी नीरवता के कंधेपर डाले बाँह
छाँह सी अम्बर-पथ से चली।

प्रकृति सुंदरी के विराट रूप, उसके एकछत्र राज्य के साथ साथ कवि मौन अभिव्यंजना का संकेत इस प्रकार करता है—

व्योम मण्डल में—जगतीतल में—

× × ×

क्षिति में, जल में, नभ में, अनिल-अनल में,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा 'चुप चुप चुप'
है गूँज रहा सब कहीं—

प्रकृति के सौन्दर्यानुभूति का कवि के हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है इसे भी वह स्पष्ट कर देता है—

× × × ×

कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहा कुल कमनीय कंठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग।

इस प्रकार उक्त कविता में कवि के प्रकृति चित्रण का व्यापक सुन्दर रूप मिलता है।

**प्रश्न**( ४ ):—( क )—नीचे लिखे काव्य खंडों का अर्थ सरल भाषा में समझाइये। भाव को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक टिप्पणी भी दीजिए:—

अलसता की सी लता............है गूँज रहा सब कहीं।
व्योम मंडल में जग तीतल में......है गूँजरहा सब कहीं।

( बी० ए० परीक्षा १९४६ का० वि० वि० )

**उत्तर**:—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ ३१५, ३१६।

( ख ) नीचे लिखे अवतरणों की प्रसंग-सहित व्याख्या कीजिये। तथा उनका भाव-सौन्दर्य दिखाइये:—

सत् श्री अकाल............जहाँ आसन है सहस्रार।

( बी० ए० परीक्षा १९४७ का० वि० वि० )

**उत्तर**—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ ३२०।

# ६—पन्त

**परिचय:**—कविवर सुमित्रा नन्दन पंत का जन्म सन् १९०० ई० के मई मास में अल्मोड़ा जिले के कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गंगादत्त पन्त तथा माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। इनके पिता कौसानी टी इस्टेट के एकाउन्टेट थे तथा व्यक्तिगत रूप से लकड़ी का व्यापार करते थे। इनकी माता का देहान्त इनके जन्म के छः घंटे पश्चात् ही हो गया था अतएव इनका लाल पालन इनके पिता और इनकी फूफी द्वारा हुआ था। इनके तीन भाई और चार बहने हैं जिनमें ये भाइयों में सबसे छोटे हैं। पंत जी का विद्यारम्भ अपने ग्राम कौसानी की प्राइमरी पाठशाला में हुआ। तत्पश्चात ये अल्मोड़ा के गवर्नमेन्ट हाई स्कूल में प्रविष्ट हुए। इन्होंने सन् १९१७ ई० में काशी के जयनारायण हाईस्कूल से स्कूल लीविंग की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद इन्होंने प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में नाम लिखाया पर सन् १९२१ के सत्याग्रह आन्दोलन में गांधी जी के भाषण से प्रभावित होकर इन्होंने कालेज का त्याग कर दिया।

गांधी जी के भाषण से प्रभावित होकर पंत जी ने कालेज तो छोड़ दिया पर इन्होंने राजनीति में भाग नहीं लिया स्यात् संघर्ष नाम की कोई वस्तु इनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है इसीसे इन्होंने राजनीतिक संघर्ष से भी अपने को दूर ही रखा।

सन् १९२८ ई० में इनके पिता जी का देहान्त हो गया तथा अनेक पारिवारिक, मानसिक तथा शारीरिक व्यथाओं ने इन्हें कष्ट पहुँचाया। इन कष्टों से प्रभावित होकर इन्होंने मानव जीवन पर तात्विक चिन्तन करना प्रारंभ किया। इस प्रकार प्रकृति का कवि मानव की ओर आकर्षित हो गया।

सन् १९३१ से १९३४ तक पंत जी कालाकांकर के उदारमना कुँवर सुरेश सिंह के साथ काला कांकर में रहे और कुँवर साहब ने आप को पूर्ण सुविधा देकर अध्ययन तथा साहित्य की ओर प्रेरित किया।

'पंत' जी के ऊपर उस समय के काव्य मर्मज्ञ तथा लेखक पं० शिवाधार पाण्डेय का विशेष प्रभाव पड़ा है। उनके प्रोत्साहन से इन्होंने साहित्य के विविध अंगों का गहन अध्ययन किया है। कालेज जीवन समाप्त कर देने के बाद इन्होंने अंग्रेजी तथा विदेशी साहित्य के ठोस अध्ययन से अपनी प्रतिभा बढ़ा ली और कवीन्द्र रवीन्द्र के साहित्य का भी अध्ययन और मनन इन्होंने भली भाँति किया है। संगीत से इन्हें विशेष प्रेम है। कुछ समय तक इन्होंने 'रूपाभ' मासिक पत्रिका का संपादन भी किया है। प्रसिद्ध नर्तक श्री उदय शंकर के साथ उनके प्रसिद्ध चित्र कल्पना में भी काम करने का इन्हें अवसर मिला है। आजकल ये 'आल इण्डिया रेडियो' में काम कर रहे हैं।

**धर्म-स्वभाव तथा व्यक्तित्व:**—पन्त जी, एक अत्यन्त सुन्दर, सुकुमार गौर वर्ण, लम्बे-सुनहरे केशों वाले व्यक्ति हैं। यद्यपि आज इनकी अवस्था ५५ साल के लगभग है और इनके बालों में पहले का सा सुनहला पन नहीं रहा, वे भूरे और सफेद हो चले हैं पर अब भी उनके घुँघरालेपन में विशिष्ट आकर्षण है। पन्त की वेश-भूषा अपने ढंग की होती है। पैन्ट तो साधारण किन्तु कुर्ता और कोट की काँट-छाँट मौलिक। इनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभाव शाली है जो दूसरों पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाता है। संकीर्णता या बन्धन इन्हें पसन्द नहीं है। मौलिकता का आग्रह इनके व्यक्तित्व की एक विशेषता है। ईश्वर पर इनका पूर्ण विश्वास है।

**रचनायें:**—'पंत' जी की रचनाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

**१—काव्य**—उच्छ्वास, पल्लव, पल्लविनी, वीणा, ग्रन्थि, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण-किरण, स्वर्ण धूलि, मधुज्वाल।

**२—नाटक**—परी, क्रीड़ा, रानी, ज्योत्स्ना।

**३—उपन्यास**—हार।

**४—कहानी संग्रह**—पाँच कहानियाँ।

**५—अनुवाद**—उमर खैयाम की रुबाइयों का हिन्दी में अनुवाद।

**भाषा:**—पंत जी की भाषा खड़ी बोली है। ये भाषा कला के उत्तम कलाकार हैं तथा इन्होंने संस्कृत के तत्सम् शब्दों का प्रयोग अधिक किया है।

इनकी भाषा चित्र भाषा है इन्होंने शब्दों का चयन अपने ढंग से किया है तथा नये शब्दों का निर्माण भी किया है। भाषा में व्याकरण के नियमों का कहीं कहीं इन्होंने उल्लंघन भी किया है।

**शैली:**—पंत जी की शैली कालिदास, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, और रवीन्द्र की शैली से पूर्ण प्रभावित है। अंग्रेजी साहित्य की लाक्षणिक पद योजना इनकी कृतियों में विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। वार्तालाप के आधार पर साधारण बोल चाल के अन्दर मुहावरों और कहावतों का भी इन्होंने थोड़ा बहुत प्रयोग किया है। इनकी शैली पर भौतिक और साहित्यिक दोनों प्रकार के वातावरण की छाप पड़ी है तथा प्राकृतिक-सौन्दर्य, प्रेम-सृष्टि, दार्शनिकता और नवीन जीवन दर्शन की दिव्यानुभूति भी इसमें दिखाई पड़ती है। इनकी शैली में सौंदर्यानुभूति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है।

**छन्द:**—पंत जी के छन्द संगीतमय हैं। इन्होंने मात्रिक और मुक्तक छन्दों में अपनी काव्य रचना की है। मुक्त छन्द में भी इनका काव्य मिलता है। इनके छन्द-आंग्ल-साहित्य से प्रेरित हैं। भावों के अनुकूल छन्दों का निर्माण इनकी विशेषता है।

**रस:**—यों तो पंत जी मूलतः करुण और शृंगार के कवि हैं पर अन्य रसो को भी यत्र तत्र इन्होंने अपनाया है।

**अलंकार:**—पंत जी के काव्य में प्रमुख तौर से शब्दालंकार और अर्थालंकार का समीचीन निर्वाह हुआ है तथा अनुप्रास ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है।

**काव्यगत विशेषतायें:**—पंत जी के काव्य में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं—

(१) इनकी भाषा कोमल तथा परिमार्जित खड़ी बोली है और इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। आवश्यकतानुसार अंग्रेजी उर्दू तथा फारसी का भी प्रयोग किया गया है।

(२) इनकी शब्द-चयन प्रणाली बड़ी ही उत्तम है।

(३) ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग सर्व प्रथम इन्होंने ही किया है।

(४) इनकी भाषा भावानुकूल होती है।

(५) इनकी अलंकार योजना बड़ी ही सुन्दर बन पड़ी है।

(६) इन्होंने अपनी कविता में नवों रसों का सफल प्रयोग कियाहै।

(७) इनका प्रकृति चित्रण बड़ा ही भव्य और आकर्षक हुआ है और 'परिवर्तन' के प्रयोग को छोड़ कर अन्यंत्र सभी जगह इन्होंने प्रकृति के कोमल एवं सुन्दर रूप का ही प्रयोग किया है।

(८) इनकी रचनाओं में संसार के दुःख और सुख दोनों का रूप देखने को मिलता है।

(९) ये प्रमुख छायावादी कवि हैं तथा रहस्यवाद और प्रगतिवाद पर भी इन्होंने काव्य सृजन किया है।

(१०) ईश्वर की सत्ता और आस्था पर इनका पूर्ण विश्वास है।

(११) किसान, मजदूर तथा समाज के निम्न वर्ग के साथ इनकी पूर्ण सहानुभूति है।

( १२ ) ये एक चिन्तन शील दार्शनिक हैं और अरविन्दघोष तथा गांधी जी के विचारों से अधिक प्रभावित हैं।

(१३) इनका भाव जगत बड़ा ही विस्तृत् है। इनकी कल्पना शक्ति अद्भुत है। भाव व्यंजनायें बड़ी ही मनोरम हैं।

(१४) इनका भाव-पक्ष कला पक्ष से भी अधिक प्रबल है तथा इनकी रचनाओं में विश्व कल्याण की भावना अभिव्यंजित है।

(१५) ये मुक्तक काव्य के कुशल रचयिता हैं।

**समीक्षाः**—सुमित्रा नन्दन 'पंत' की प्रथम काव्य पुस्तक 'वीणा' है यद्यपि इसका प्रकाशन 'पल्लव' के बाद हुआ था। 'वीणा' के पूर्व की भी इनकी कुछ रचनायें उपलब्ध हैं यथा 'तम्बाकू का धुआँ', 'कागज-कुसुम' आदि। कवि के शब्दों में 'वीणा' उसका दुध मुहाँ प्रयास है। ये प्रारम्भिक कवितायें गीताञ्जलि से प्रभावित होने के कारण अधिकांशतः प्रार्थनापरक हैं। विश्वात्मा माता से ज्ञान बल और भाव प्रदान करने की विनय करता हुआ कवि कहता है—

मेरे चञ्चल मानस पर—<br>
पादपद्म विकसा सुन्दर,

जा मधुर वीणा-निज मात ?
एक गान कर मम अन्तर।

इसके अतिरिक्त वहुत सी कविताओं में आत्मोत्सर्ग की कामना करते हुए कवि कहता है कि—

कुमुद-कला वन कल हासिनि,
अमृत प्रकाशिनि नभ-वासिनि।
तेरी आभा को पाकर माँ!
जग का तिमिर-त्रास हर दूँ।

गहन अन्धकार में भी उड़ते हुए जुगनू को देखकर कवि उससे पूछता है—

इस पीपल के तरु के नीचे,
किसे खोजते हो खद्योत ?

कहीं कहीं दार्शनिक भावनाओं से ओत-प्रोत होकर कवि कह उठता है—

तब तो यह भारी अन्तर
एक मेल में मिला हुआ था
एक ज्योति वन कर सुन्दर
तू उमंग थी मैं उत्पात ?

× × × ×

माया का विशद वर्णन करते हुए कवि कहता है—

उस छवि के मञ्जुल उपवन को
इस मरु से पथ जाता है
पर मरीचिका से मोहित हो
मृग मन में दुःख पाता है!

'वीणा' की प्रमुख कविताओं—छाया, अन्धकार, किरण सरिता, प्रथम रश्मि का आना, चातक, माँ आदि में कवि की भावना का एक कोमल तार गुम्फित है। इनसे कवि की सूक्ष्म दृष्टि का आभास प्राप्त होने लगता है। 'प्रथम रश्मि का आना' में तो कवि की अनुभूति, कल्पना, सूक्ष्म दर्शिता और सङ्गीतमय प्रवाह का सुन्दर संयोग मिलता है। ब्राह्म मुहूर्त्त का एक भव्य चित्र खींचते हुए कवि कहता है—

शशि किरणों से उतर उतर कर,
भू पर काम रूप नभ-चर,
चूम नवल कलियों का मृदुमुख
सिखा रहे थे मुसकाना !

'वीणा' में कवि ने अपनी भावी प्रौढ़ता की आशा और विश्वास को स्पष्ट कर दिया है—

मैं इतनों की सुख सामग्री
हूँगी जगती के मग में
शोक-मुक्त होंगे द्रुत इतने
कोक मुझे कर अवलोकन।

'ग्रन्थि', 'वीणा' की समकालीन कवि पंत की प्रारंभिक कृतियों में से है। इसमें विप्रलंभ शृंगार की कविता है। प्रारंभ में कवि अपनी कल्पना का आह्वान करता है और विश्व के गंभीर गीत को भुलाकर प्रणय की सजल-सुधि में मग्न हो जाना चाहता है। प्रथम परिचय का भाव प्रवण चित्र इन पंक्तियों में देखने को मिलता है—

शीश रख मेरा सुकोमल जाँघ पर,
शशि-कला सी एक बाला व्यग्र हो।
देखती थी म्लान-मुख मेरा, अचल,
सदय भीरु अधीर चिन्तित दृष्टि से॥

सूक्ष्म भावुकता के साथ मधुर कल्पना का संयोग तथा कृतज्ञ नायक की मिन्नतें और शीघ्र ही उसका आश्वस्त हो जाना तथा प्रेम विषयक कवि की मर्मज्ञता पूर्ण उक्ति तो 'ग्रन्थि' में मिलती ही है साथ ही अलंकार चमत्कार, उक्ति वैचित्र्य और शब्द-सौन्दर्य का भी भव्य रूप देखने को मिलता है यथा:—

निज पलक मेरी विकलता साथ ही
अवनि से, उर से, मृगेक्षणि ने उठा,
एक निज स्नेह-श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध करदी दृष्टि मेरी दीप-सी

वीणा और ग्रन्थि के उपरान्त 'पल्लव' में कवि पंत की प्रतिमा पल्लवित

हुई है। इसमें कवि एक प्रौढ़ और मनन शील कलाकार के रूप में दिखाई पड़ता है। पल्लव की प्रथम दो कविताएँ 'उच्छ्वास' और 'आँसू' कवि की प्रेम-विषयक रचनायें हैं—'आँसू' कविता में कवि नवीन कल्पना को जन्म देते हुए कहता है—

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुप चाप,
बही होगी कविता अनजान॥

पंत की कल्पना प्रधान रचनाओं में वीचि-विलास, विश्व वेणु, निर्झर गान, निर्झरी, नक्षत्र, स्याही की बूँद आदि की गणना की जा सकती है। भाव प्रधान कविताओं में मोह, विनय, याचना, विसर्जन, मधुकरी, मुसकान, स्मृति, सोने का गान आदि का नाम उल्लेखनीय है। कल्पना और भावों का उचित सम्मिश्रण-मौन निमंत्रण, बालापन, छाया, बादल, अनङ्ग स्वप्न आदि में मिलता है। 'जीवन यान' में कवि जीवन की पहेली को देखकर एक साथ कह उठता है—

अहे विश्व! ऐ विश्व-व्यथित-मन!
किधर बह रहा है यह जीवन?
यह लघु पोत, पात, तृण, रजकण,
अस्थिर-भीरु-वितान,
किधर?-किस ओर?-अछोर-अजान
डोलता है यह दुर्बल-यान?

'पल्लव' की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता का हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। यह लम्बी आवेशपूर्ण और रसमय कविता है।

'पल्लव' के बाद कवि पंत की रचना 'गुंजन' आती है। इसमें कवि का क्षेत्र हृदय से हटकर आत्मा तक पहुँच गया है इसी कारण इसमें आवेश की न्यूनता और चिन्तन तथा मनन का प्राधान्य हो गया है। जिज्ञासा प्रकट करते हुए कवि कहता है—

मैं चिर उत्कण्ठातुर
जगती के अखिल चराचर,

यों मौन मुग्ध किसके बल !

अनुभव करते हुए कवि कहता है—

सागर-संगम में है सुख,
जीवन की गति में भी लय ।

अन्त में कवि को विश्वास हो जाता है कि:—

सुन्दर से अति सुन्दर तर
सुन्दरतर से सुन्दतम
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर सुन्दर जग-जीवन !

इस प्रकार इन कविताओं में एक दार्शनिक शृंखला मिलती है जिसको कवि ने अपने चिन्तन की अग्नि में गलाकर बड़े ही सुन्दर ढंग से ढाला है ।

'युगान्त' में कवि पंत ने सांसारिक तथ्यों से प्रभावित होकर उनकी अभिव्यक्ति की है । इसकी अधिकांश रचनायें चिन्तन प्रधान हैं तथा इसमें दार्शनिक गांभीर्य का सुन्दर पुट है । 'मानव' कविता में 'पन्त' जी को मानव-पूजा मुखरित हो उठी है और 'बापू के प्रति' आध्यात्मिक गीत-माला का सुमेरु है । इसमें गांधी जी के असहयोग आन्दोलन, अहिंसा, दार्शनिक विज्ञान आदि का बड़ा ही कवित्व पूर्ण वर्णन हुआ है । बापू के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करते हुए कवि कहता है—

आये, तुम मुक्त पुरुष कहने—
मिथ्या जड़-बन्धन सत्य राम,
नान्ृतं जयति, सत्यं मा भैः
जय ज्ञान-ज्योति तुम को प्रणाम !

'युगवाणी' में मार्क्स तथा गांधी, मार्क्सवाद, साम्राज्यवाद, समाजवाद, गांधीवाद तथा भौतिकवाद पर विचार प्रकट किये गये हैं और धनिक, मध्यम, कृषक तथा श्रमजीवी वर्गों को संबोधित किया गया है ।

'ग्राम्या' में कवि की दृष्टि गांवों की ओर गई है और उसने उनके प्रति सहानुभूति के भाव प्रकट किये हैं ।

# प्रार्थना

**संदर्भ:**—प्रस्तुत कविता 'प्रार्थना' श्री सुमित्रा नन्दन 'पंत' रचित 'पल्लविनी' काव्य संग्रह से उद्धृत है। इसमें कवि ने पर ब्रह्म परमात्मा की स्तुति बादल के रूपक द्वारा की है इस प्रकार उसकी लोक मंगल भावना प्रार्थना के स्वरों में फूट निकली है।

(पृष्ठ–१०५)

**शब्दार्थ:**—उर्वर=उपजाऊ। ज्योतिर्मय=तेजोमय। अव्यय=कभी न घटने वाला।

**व्याख्या:**—जग के उर्वर ······ चिर नूतन !

कवि परब्रह्म परमात्मा को बादल की संज्ञा देकर उससे प्रार्थना करते हुए कहता है कि:—हे तेजोमय (प्रकाशमय) चित् (ब्रह्म) स्वरूप परमात्मा! इस विश्व के उर्वर (उपजाऊ) आँगन (क्षेत्र) में जीवन रूपी जल की वर्षा करो। हे चिर अव्यय! और चिर नवीन ईश्वर! इस संसार में जितने तुच्छ तृण और वृक्ष स्वरूप प्राणी मात्र हैं उनपर जीवन रूपी जल की वर्षा करो। भाव यह है कि वह परमपिता परमात्मा इस संसार को जीवन प्रदान करने वाला है। वही विश्व में जीवन की वर्षा करता है। वह चिर अव्यय (कभी न घटने वाला) और चिर नवीन है। संसार में जितने छोटे बड़े जीव हैं वे सब परमात्मा रूपी बादल के द्वारा जीवन रूपी जल से सिंचित होते रहते हैं अर्थात् उसी की कृपा पर जीवित रहते हैं।

**विशेष टिप्पणी:**—(१) उक्त पद में 'उर्वर' शब्द का प्रयोग कवि ने इस अभिप्राय से किया है कि ईश्वर की जीवन वर्षा इस संसार में व्यर्थ नहीं जाती क्योंकि यह संसार एक उपजाऊ क्षेत्र है।

(२) 'लघु लघु तृण तरु,' के द्वारा विश्व के छोटे बड़े सभी प्राणियों की ओर संकेत किया गया है।

(३) 'चिर अव्यय' और 'चिर नूतन' बादल के विशेष गुण के द्योतक हैं।

**शब्दार्थ:** – स्मिति=मुस्कान=हर्ष। प्रणय=प्रेम।

**व्याख्याः**—बरसो कुसुमों में·········सुख यौवन ।

हे बादल रूपी ईश्वर ! आप फूलों में मधु ( पराग ) बनकर बरसें और प्राणों में अमर प्रेम बनकर बरसा करें । मानव मात्र के ओठों में सदैव मुस्कान भर दें । हृदयों में सुख की वर्षा करें और अंग अंग में यौवन भर दें । भाव यह है कि हे ईश्वर ! आप कोमल नारियों में सौन्दर्य एवं माधुर्य की वृष्टि कर दें तथा प्राणीमात्र के प्राणों में अमर प्रेम भर दें । इतनाही नहीं मानव मात्र के ओठों में ऐसी मुस्कराहट भर दें जिससे वे सदैव प्रसन्नता से हँसते रहें और उनकी पलकों में आप ऐसे स्वप्न भाव ला दें जिससे वे सदैव निश्चिन्त और कष्ट रहित होकर सुख रूपी निद्रा का आनन्द लेते रहें । प्राणिमात्र के हृदय में सुख की वर्षा करके आप उनके अंग अंग में यौवन की वह बहार ला दें कि वे सदैव आनन्द की क्रीड़ा करते रहें । वृद्धावस्था का कष्ट उनके पास कभी भी न आये ।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में "स्मिति स्वप्न अधर पलकों में" तथा "उर अंगों में सुख यौवन" का प्रयोग कवि ने सांख्य रूप में किया है अतएव स्मिति का अधर से, स्वप्न का पलकों से, उर का सुख से और अंगों का यौवन से क्रमशः सम्बन्ध है ।

**शब्दार्थः**—मृन्मरण=मिट्टी रूपी मृत्यु ।

**व्याख्याः**—छू छू जग के·········आलिङ्गन ।

हे बादल रूपी ईश्वर ! आप इस पृथ्वी पर अचेत पड़े हुए धूलि कणों को स्पर्श करके उनमें चेतना ( जीवन ) का संचार कर दें तथा उनको पेड़ पौधों के रूप में सजीव बना दें । हे प्रभु ! आप मिट्टी रूपी मृत्यु को बाँध करके ( दूर करके ) मिट्टी के अचेतन भौतिक शरीरों में प्राणों का आलिङ्गन प्रदान करके ( प्राणों का संचार करके ) उन्हें प्राणवान बना दें ।

**शब्दार्थः**—सुखमा=शोभा=सौन्दर्य । संसृति के सावन=सृष्टि रूपी कृषि के लिए सावन की भाँति मूल्यवान् ।

**व्याख्याः**—बरसो सुख बन·········के सावन ।

हे ईश्वर ! आप इस संसार पर सुख और सौन्दर्य का रूप धारण करके वर्षा करें अर्थात् इस संसार को सुख और सौन्दर्य से सम्पन्न बना दें । हे ईश्वर !

आप इस संसार के जीवन के बादल हैं अर्थात् आप जीवन की वर्षा करने वाले हैं अतएव विश्व के दिशा दिशा में क्षण क्षण पर चेतनारूपी जीवन की वर्षा करते रहें इतनाही नहीं आप इस सृष्टि रूपो प्रकृति के लिए सावन के समान सरस और प्राण युक्त बनकर प्रतिक्षण बरसते रहें। भाव यह है कि इस सृष्टि के निर्माण और विकास का सारा श्रेय ईश्वर को ही है।

## घंटा

**संदर्भः**—प्रस्तुत कविता'घंटा' में कवि 'पंत' ने घंटे के माध्यम से शिक्षात्मक प्रणाली द्वारा प्रेरणा तथा कर्म शीलता का उपदेश देने का प्रयत्न किया है।

**शब्दार्थः**—चुप्पी=मौन=शांत। रोर=ध्वनि।

**व्याख्याः**—नभ की·········गईरात।

कवि घंटे को लक्ष्य करके इसके द्वारा प्रभात के जागरण का सन्देश देते हुए कहता है किः—शांत और नीले आकाश में एक सुन्दर घन्टा टँगा हुआ है जो घड़ी घड़ी बजकर मन के अन्दर जैसे कुछ कहता रहता हैं। उसके स्वर परियों के बच्चों के समान सुन्दर हैं तथा वे अपनी ध्वनि रूपी परों को फैलाकर हमारे कानों में प्रवेश कर करके मानो अपना घोंसला बनाते रहते हैं। वे हमारे कानों में मधुर शब्द प्रवेश करा करके कहते हैं कि—ऐ आलसी, काम चोर, जागो, उठो। अब प्रभात काल हो गया है। चारों दिशायें प्रकाश से भर गई हैं। इस नवीन प्रभात में सोने के समान प्रकाश बिखर रहा है अतएव कुछ नया काम करो, कुछ नई चर्चा छेड़ो। तुम अपने शरीर और मन को पवित्र कर डालो। निद्रा छोड़कर जाग पड़ो अब रात बीत गई है।

## प्रथम रश्मि

**संदर्भः**—प्रस्तुत कविता 'प्रथम रश्मि' श्री सुमित्रानन्दन 'पंत' रचित 'वीणा' काव्य संग्रह से उद्धृत है। यह एक संयोग शृंगार-रस प्रधान कविता है इसमें कवि ने भाव सौन्दर्य का चित्रण नवीन कल्पना के आधार पर किया है।

कवि ने प्रकृति के भिन्न भिन्न अवयवों की चैतन्य सत्ता एवं उनके अलौकिक व्यापारों का कुतूहल पूर्ण वर्णन काल विहंगिनी को प्रतीक बनाकर किया है जिससे उसकी कल्पना और काव्य शक्ति निखर कर और भी चमत्कृत हो उठी है।

( पृष्ठ—१०६ )

**शब्दार्थः**—प्रथम रश्मि=प्रकाश की प्रथम किरण। रंगिणी=रंगमंच की नटी।

**व्याख्याः**—प्रथम रश्मि का.........यह गाना।

कवि बाल विहंगिनी को लक्ष्य करके कहता है कि:—हे विहंगिनि! रात्रि के समाप्त होने तथा सूर्य के प्रकाश की प्रथम किरणों के आगमन (फूटने) का आभास तथा उसकी पहचान का पता तुझे कैसे लगा? साथ ही मुझे आश्चर्य है कि संगीत का सुमधुर कण्ठ तूने किससे प्राप्त किया है? भाव यह है कि तू मानव जगत् के प्राणियों से भी अधिक चैतन्य और जागृति मयी है तथा तूने किसी रहस्यमय कलाकार से ही ऐसे अलौकिक संगीत का अध्ययन किया है।

**विशेष टिप्पणीः**—(१) उक्त पद में कवि ने सांकेतिक तथा लाक्षणिक शब्दों द्वारा अलग अलग सुन्दर चित्र उपस्थित करके छायावाद की प्रतीकात्मक शैली की विशिष्टता प्रकट कर दी है।

(२) 'रंगिणी' विशेषण और विहंगिनी के संगीत द्वारा कवि ने विश्व रंग मंच के अभिनय की कल्पना की है।

(३) नटी के रूप में विहंगिनी को बाल शब्द से सुशोभित करके कवि ने अपने आश्चर्य का उपादान एकत्र कर दिया है।

(४) 'तू' शब्द का प्रयोग करके कवि ने बाल नटी विहंगिनी को अपनी चिर परिचिता तथा समयवस्का सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

(५) "कहाँ कहाँ" के प्रयोग द्वारा कवि का अभिप्राय यह है कि किन स्थानों या विद्यालयों में संगीत की शिक्षा प्राप्त की है।

**शब्दार्थः**—स्वप्न नीड़=शयन करने का घोंसला=शयन का कमरा। पंखों=पक्षियों के पर=हवा करने के पंखे। प्रहरी=पहरेदार।

**व्याख्याः**—सोई थी·······जुगनू नाना।

वाल विहंगिनी की पूर्व अवस्था की ओर संकेत करके कवि कहता है कि—हे वाल विहंगिनि ! तू अपने पंखों से अपने शरीर को ढक कर अपने घोंसले में सुख की नींद सो रही थी और पहरेदार के रूप में असंख्य जुगनू तेरे घोंसले के बाहर ( तेरे द्वार पर ) घूम घूम कर झूम रहे थे। भाव यह है कि प्रातः काल होने के पूर्व तू अपने घोंसले में गाढ़ी निद्रा का आनन्द ले रही थी और घोंसले के बाहर जुगनू इस बात की चौकसी कर रहे थे कि तेरी सुख निद्रा में खलल न पड़ने पावे।

**विशेषटिप्पणीः**—( १ ) उक्त पद में कवि ने प्रकृति की वस्तुओं का मानवीकरण किया है।

( २ ) 'पंखों के सुख में' का पक्षिणी के पक्ष में उसके डैनों से शरीर ढकने का तथा नटी के पक्ष में शयनागार में लगे बिजली के पंखों का अर्थ होगा

( ३ ) 'छिपकर' शब्द के प्रयोग से कवि ने बहुत सुरक्षित और एकान्त स्थान की ओर संकेत किया है।

( ४ ) 'झूम रहे थे' के द्वारा पहरेदारों के ऊँघने का भाव परिलक्षित होता है।

( ५ ) 'नाना' शब्द के द्वारा कवि ने नटी के वैभव शालिनी होने का भाव व्यक्त किया है।

**शब्दार्थः**—शशि=चन्द्रमा। कामरूप=इच्छानुसार रूप बदलने वाला और काम वासना से पूर्ण। नभचर=आकाशचारी।

**व्याख्याः**—शशि-किरणों से···········मुसकाना।

हे रंगिणि ! जब तू इस प्रकार अपने घोंसले में सुख की निद्रा में स्वप्न देख रही थी तब आकाश से चन्द्र की किरणों के सहारे नभ चारी पवन के झोंके पृथ्वी पर उतर उतर कर नूतन और कोमल कलियों को हिला रहे थे जिसके

प्रभाव से कलिकायें धीरे धीरे खिल रही थीं। भाव यह है कि आकाश से पृथ्वीपर चन्द्रमा का प्रकाश पड़ रहा था। हवा के झोंके चल रहे थे और पुष्पों की कलियाँ विकसित हो रही थीं।

**विशेषटिप्पणी:**—( १ ) 'उतर उतर कर' का भाव यह है कि उतरने की क्रिया अनवरत हो रही है।

( २ ) 'शशिकिरणों' के प्रयोग से कवि का आशय यह है कि प्रेमी और प्रेमिका ( नमचर और कलिका ) दोनों में कोमलता और सुकुमारिता समान भाव में है।

( ३ ) 'कामरूप' के प्रयोग द्वारा कवि ने इस ओर संकेत किया है कि प्रेमी मानो कामदेव के स्वरूप या अत्यन्त कामुक हैं।

( ४ ) 'नवल और मृदु' द्वारा यौवन के प्रेम भाव के अविकसित और अत्यन्त सुकुमार रूप का चित्रण किया गया है

( ५ ) 'सिखा रहे थे मुसकाना' का अभिप्राय यह है कि नवेलियाँ प्रेम क्रिया में लज्जा शील हैं। उनकी लज्जा अभी खुली नहीं है अतएव कामरूप प्रेमी उनकी शरम और झिझक का निवारण कर उन्हें प्रेम-व्यापार का ढंग सिखा रहे हैं।

**शब्दार्थ:**—स्नेह हीन=तेल से रहित। शून्य=विहीन। अवनि=पृथ्वी। तम=अन्धकार। मण्डप=पंडाल।

**व्याख्या**—स्नेह हीन‥‥ ‥‥ मण्डप ताना।

आकाश में तारों के दीपक विना तेल के टिमटिमा रहे थे और वृक्षों के पत्ते भी श्वास (हवा) हीन होकर हिल नहीं रहे थे। सब स्वप्न पृथ्वी पर विचर रहे थे और अन्धकार का मंडप तना हुआ था। भाव यह है कि—समस्त संसार निद्रा में डूबा हुआ था और सर्वत्र जड़ चेतन में नीरवता छाई हुई थी। इस प्रकार अंधकार के मंडप के नीचे स्वप्न और नीरवता के कार्य कलाप चल रहे थे।

**विशेषटिप्पणी:**—( १ ) उक्त पद में 'तरु के पातों' का प्रयोग मानवीकरण के रूप में हुआ है।

( २ ) 'शून्य' शब्द का अर्थ यहाँ अभाव से न होकर अत्यन्त अल्प से होना ठीक है।

( ३ ) उक्त पद में 'तम' को मानव के रूप में व्यक्त किया गया है।

**शब्दार्थ:**—तरुवासिनि=वृक्षों पर निवास करने वाली। अंतर्यामिनि=रहस्य मय बातों को जाननेवाली।

**व्याख्या:**—कूक उठी…………उसका आना?

हे वृक्षों पर निवास करनेवाली! तू सहसा कूक उठी और प्रथम-रश्मि के स्वागत के उपलक्ष्य में मंगल गान करने लगी। हे रहस्यमय बातों को जानने वाली उस प्रथम रश्मि के आगमन की सूचना तुमको किसने दिया है?

**विशेषटिप्पणी:**—(१) उक्त पद में 'कूक उठी' क्रिया का भाव बहुत चौकन्नेपन का द्योतक है।

(२) 'अन्तर्यामिनि' संबोधन के अन्दर कवि के प्रश्न का उत्तर निहित है।

(पृष्ठ-१०७)

**शब्दार्थ:**—निशिचर=राक्षस। गर्भ=पेट=अन्दर=कन्दरा।

**व्याख्या:**—निकल सृष्टि के………टोना माना।

प्रकृति के अंधकार मय गर्भ से निकल कर स्थूलता रहित तथा छाया के समान शरीर धारण करके बहुत से दुष्ट राक्षस कुहुक और टोना माना चलाकर अपने इन्द्रजाल अथवा छल प्रपंच का चक्र चला रहे थे।

**विशेषटिप्पणी:**—(१) उक्त पद में 'निशिचर' शब्द का भाव 'बादल' अथवा हिंसक पशु या चोर डाकू व्यभिचारी किसी पर भी घटाकर संपूर्ण पद का अर्थ विश्लेषण किया जा सकता है क्योंकि रात्रि के अंधकार में इन सबों के कार्य व्यापार चलते रहते हैं।

(२) 'छायातन' और 'छाया हीन' तथा 'खल' इन विशेषणों का प्रयोग अपने अपने प्रतीक के लिए अपने अपने स्थल पर बिल्कुल उपयुक्त है।

(३) 'चक्र रचना' का मुहावरे के रूप में प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ यह है कि छल प्रपंच के चक्र में फँसकर फिर बाहर निकल पाना दुष्कर अथवा कठिन है।

**शब्दार्थ:**—शशिबाला=चन्द्रमा रूपी बालिका । श्री-हीन=कांति रहित । क्रोड=गर्भ=संकोच अथवा बन्द कोठरी । कोक=चक्रवाक ।

**व्याख्या:**—छिपा रही थी········शोक से दीवाना ।

रात्रि के परिश्रम से कांति रहित होकर चन्द्र रूपी बालिका अपना मुख छिपा रही थी। भौंरा कमल के गर्भ में कैद हो गया था और चक्रवाक अपनी प्रिया के विछोह में पागल हो रहा था। भाव यह है कि रात भर आकाश के प्रांगण में निरन्तर चलते रहने से चन्द्र रूपी बालिका थक कर चूर चूर हो गई थी, उसका मुख विवर्ण और पीला हो गया था अतएव वह रात्रि में अपना मुख ढँककर सोना चाहती थी अर्थात् चन्द्र अस्त हो रहा था। उधर भौंरा कमल के संकुचित होते ही उसके अन्दर बन्द हो गया था और चक्रवाक अपने प्रिय के वियोग में दुखी होकर दीवाना हो रहा था।

**विशेषटिप्पणी:**—( १ ) उक्त पद में 'बाला' विशेषण के द्वारा एक तो चन्द्रमा का मानवीकरण किया गया है दूसरे उसकी कोमलता और मधुरता की अधिक अभिव्यक्ति हुई है।

( २ ) 'क्रोड' शब्द का प्रयोग करके कवि ने कैदी की तंग कोठरी का चित्र खड़ा किया है जिसमें उसके हिलने डुलने की भी गुंजाइश नहीं रह जाती।

( ३ ) 'कोक शोक' का अनुप्रास स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हुआ है।

( ४ ) 'दीवाना' शब्द चक्रवाक के तीव्र विरह-शोक की अभिव्यक्ति करता है।

**शब्दार्थ:**—मूर्छित=ज्ञानरहित=चेतना हीन । स्तब्ध=मौन=शान्त । जड़-चेतन=जड़ पदार्थ तथा चेतन पदार्थ ।

**व्याख्या:**—मूर्छित थीं·······आना जाना ।

रात्रि के शान्त वातावरण का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—जगत के सब प्राणियों की सब इन्द्रियाँ उस समय ( रात्रि में ) मूर्छित अवस्था में थीं और संपूर्ण संसार स्तब्ध एवं मौन पड़ा था। जड़ चेतन सभी एकाकार प्रतीत हो रहे थे। संपूर्ण विश्व में शून्यता तथा नीरवता व्याप्त थी केवल एक मात्र साँसों (हवा)

के आने जाने का आभास प्राप्त हो रहा था। भाव यह है कि रात्रि के शान्त वातावरण में सारा संसार सुषुप्तावस्था में पड़ा हुआ था और इन्द्रियों के कार्य व्यापार बंद थे। चारों ओर स्तब्धता एवं मौनता व्याप्त थी, तथा जड़ चेतन सब एकाकार हो गये थे। इस प्रकार जब चारों ओर नीरवता व्याप्त थी तब केवल एक मात्र वायु साँय साँय करके चल रही थी।

**विशेषटिप्पणी:**—(१) उक्त पद में कवि ने 'मूर्छित' शब्द का प्रयोग जगत के प्राणियों की चैतन्यता के लोप और इन्द्रियों के मानवीकरण के भाव को व्यक्त करने के अभिप्राय से किया है।

(२) 'एकाकार' द्वारा अन्धकार की प्रगाढ़ता और उसके आधिक्य का आभास प्राप्त होता है।

(३) 'उर में श्वासों का आना जाना' अचेतन विश्व के मानवीकरण की ओर संकेत कर रहा है।

**शब्दार्थ:**—बहुदर्शिनि=बहुत दूर तक देखने वाली=अधिक परोक्ष द्रष्टा तथा अधिक अर्न्तदृष्टि रखने वाली।

**व्याख्या:**—तूने ही..........ताना बाना।

हे बहु दर्शिनि! रात्रि के इस शांत वातावरण में सर्व प्रथम संसार में तुमने ही जागृति का गाना गाया है। हे नभ चारिणि (आकाश में स्वच्छंद विचरने वाली)! तूने अपने संगीत के प्रभाव से प्रकृति की सभी वस्तुओं में सुख और शांति का ताना बाना गूँथ दिया है भाव यह है कि:—हे मानवों की अपेक्षा अधिक ज्ञान रखने वाली बाल विहंगिनि! विश्व के जागरण के पूर्व जागरण का मंगल गान तूने ही आरम्भ किया है तथा हे आकाश में स्वच्छन्द विचरण करने वाली! तेरे संगीत के प्रभाव से सभी वृक्ष लता पुष्प आदि का उद्बोधन हो गया है। अर्थात् चारों ओर सुख, सुगन्धि और सौन्दर्य का विस्तार हो गया है।

**विशेष टिप्पणी:**—(१) उक्त पद में 'बहुदर्शिनि' शब्द का प्रयोग करके कवि ने बाल विहंगिनी को मानव की अपेक्षा अधिक परोक्षद्रष्टा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

( २ ) 'नभ चारिणि' शब्द सूक्ष्म और परोक्ष ज्ञान की विशद अनुभूति का द्योतक है ।

( ३ ) 'ताना बाना गूँथना' मुहावरे का बड़ा ही सटीक प्रयोग हुआ है जिससे अतिशयता की अभिव्यक्ति सहज ही हो जाती है ।

**शब्दार्थः**—निराकार=शून्य तथा अव्यक्त । ज्योति पुञ्ज=प्रकाश-समूह । द्रुत=शीघ्रता से ।

**व्याख्याः**—निराकार तम·················नाम रूप नाना ।

मानो निराकार रूपी अन्धकार ने सहसा प्रकाश समूह में परिणित होकर साकार रूप धारण कर लिया और संसार के माया जाल में भिन्न भिन्न नाम तथा भिन्न भिन्न रूप धारण करके तेजी से अपने को परिवर्तित कर लिया । भाव यह है कि जब संपूर्ण संसार जग गया और चारों ओर प्रकाश फैल गया तो सब पदार्थ प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगे । इस प्रकार सब वस्तुओं का भिन्न भिन्न आकार स्पष्ट हो गयीं और उनके नाम तथा रूप ठीक ठीक पहिचाने जाने लगे ।

**विशेष टिप्पणीः**—(१) उक्त पद का भाव समझने के लिए भारतीय दर्शन के व्यक्त और अव्यक्त सिद्धान्त को सम्मुख रखना आवश्यक है यथा—पर ब्रह्म परमात्मा की दो प्रकृतियाँ हैं एक अव्यक्त प्रकृति और दूसरी व्यक्त प्रकृति । ब्रह्म जब अपने अव्यक्त रूप में होता है तब वह अभाव रूप में होता है जो कि प्रलय काल में अन्धकार स्वरूप है । पुनः जब सृष्टि की उत्पत्ति होने लगती है तब वह अव्यक्त ब्रह्म ही अपना व्यक्त रूप धारण कर लेता है और यह सब दृश्यमान जगत उस ब्रह्म की व्यक्त प्रकृति का रूप हो जाता है ।

( २ ) उक्त पद की रचना में कवि पर गीता के निम्न श्लोक का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है यथा—

"अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभावन्त्य हरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रै वा व्यक्त संज्ञ के ।"

**शब्दार्थः**—सिहर उठे=हिल उठे=कंपित हो गये । द्रुमदल=वृक्षों के पत्ते । सुप्त=सोता हुआ । समीरण=हवा । अधीर=चंचल होकर बहने से तात्पर्य है ।

**व्याख्या:**—सिहर उठे·····························का सा दाना।

जैसे ही रात्रि व्यतीत हुई और इस पृथ्वी पर प्रकाश फैला तैसा ही वृक्षों के पत्ते पुलकायमान होकर सिहर उठे ( कंपित होकर हिलने लगे )। पवन जो अब तक शांत सो रहा था चंचल होकर वहने लगा। पुष्पों के होठों पर हास्य झलकने लगा अर्थात् पुष्प विकसित हो गये और उनके पत्तों पर जो ओस की बूँदें पड़ी हुई थीं वे सूर्य के प्रकाश में मोती के दाना के समान चमकने लगीं। भाव यह है कि प्रकृति के सब अवयव अपनी सुषुप्तावस्था का त्याग करके जाग्रति अवस्था में आ गये इस प्रकार शोक का वातावरण नष्ट होकर चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी।

**विशेष टिप्पणी:**—( १ ) उक्त पद में "पुलकित और सिहर उठे" के प्रयोग द्वारा द्रुम दलों का मानवीकरण हुआ है।

( २ ) "सुप्त और अधीर" शब्दों के द्वारा समीकरण का मानवीकरण हुआ है।

( ३ ) "अधरों पर" के द्वारा कुसुमों का मानवीकरण हुआ है।

( ४ ) 'झलका' शब्द के अन्तर्गत विद्युत तरंग और जल तरंग दोनों की ही विशेषता प्रकट होती है।

( ५ ) "मोती का सा दाना" में हँसी की उपमा मोती के दाने से देकर कवि ने अपने काव्य कौशल और मार्मिकता का अनुपम परिचय दिया है।

**शब्दार्थ:**—सुरभि=सुगंध। मधु बाल=भौंरे।

**व्याख्या:**—खुलेपलक·················ने अपनाना।

प्रातः कालीन सूर्य की प्रथम किरण के आगमन के साथ ही संपूर्ण विश्व की आँखें खुल गईं ( संपूर्ण विश्व जाग्रत हो गया ) और चारों ओर सोने के समान सौन्दर्य व्याप्त हो गया। फूलों की सुगंध सर्वत्र फैल गई और भौंरे पुष्प-गन्ध से मत्त होकर डोलने लगे। इस संसार ने स्पन्दन, कंपन और नव जीवन को अपनाना ( ग्रहण करना ) सीख लिया अर्थात् संसार के चर और अचर सब प्राणियों तथा वस्तुओं में एक प्रकार की गति शीलता व्याप्त हो गई, लता

वृक्ष आदि वनस्पतियों में कम्पन होने लगा और सर्वत्र नव जीवन की बहार आ गई तथा जगत के प्राणी अपने अपने कार्यों में जुटने लगे।

**विशेष टिप्पणी:**—( १ ) 'पलक' शब्द का यहाँ पुल्लिङ्ग के रूप में प्रयोग हुआ है।

( २ ) 'जगी सुरभि' द्वारा सुरभि का मानवीकरण हुआ है।

( ३ ) "मधुबाल" शब्द के द्वारा भौंरों का यथार्थ चित्रण हुआ है।

( ४ ) भौंरों की मँडराती मंडली के लिए 'डोले' क्रिया उपयुक्त प्रयोग हुआ है।

( ५ ) "स्पन्दन, कम्पन, नवजीवन" ये तीनों शब्द जगत की संपूर्ण वस्तुओं की गतिशीलता के द्योतक हैं।

( पृष्ठ-१०८ )

**शब्दार्थ:**—स्वर्गिक=अलौकिक=स्वर्गीय।

**व्याख्या:**—प्रथम रश्मि..................स्वर्गिक गाना।

हे बाल नदी! बाल विहंगिनि सूर्य के प्रकाश की प्रथम किरण के आगमन का तुझे कैसे आभास मिला? और तूने इस अलौकिक गाने को कहाँ से प्राप्त किया है?

## मुसकान

**संदर्भ:**—प्रस्तुत कविता 'मुसकान' श्री सुमित्रानन्दन 'पंत' रचित 'पल्लविनी' काव्य संग्रह से उद्धृत है। यह कवि की रहस्यवादी कविता है। इसमें कवि ने अपने को एक प्रेमिका नारी तथा असीम चिरन्तन सत्ता ( ब्रह्म ) को अपने प्रियतम के रूप में चित्रित करके प्रकृति के उपादानों द्वारा अपने मनोगत भावों को सुन्दरता के साथ व्यक्त किया है।

**शब्दार्थ:**—सब लोग=संसार के व्यक्ति। मुसकान=मुस्कराहट।

**व्याख्याः**—कहेंगे क्या·································यह मुसकान।

प्रेमिका अपनी सखी से कहती है कि—हे सखी! अपने प्रियतम के संकेतों को देखकर मैं आत्म विभोर होकर अपनी सुध बुध खोकर मुस्करा देती हूँ पर सहसा मुझे यह ध्यान हो आता है कि मेरी इस दशा (निर्लज्जता) पर सब लोग क्या कहेंगे? पर हाय मैं क्या करूँ? मेरी परवशता है। मैं मुस्कान को रोकने का लाख प्रयत्न करती हूँ पर रोकने में असमर्थ रहती हूँ। यह मुस्कान रोके नहीं रुकती और सहसा फूट ही तो पड़ती है।

**शब्दार्थः**—विपिन=वन। पावस=वर्षाऋतु। दीप=जुगनू से तात्पर्य है। सजग=जाग्रत=चैतन्य। दुराव=छिपाव। नादान=भोले भाले।

**व्याख्याः**—विपिन में·········································मुझे निदान।

जिस प्रकार वन प्रान्त में वर्षा ऋतु के दीपक (जुगनू) टिमटिमाया करते हैं उसी प्रकार मेरे हृदय में सहसा सैकड़ों कोमल भाव उठते रहते हैं। जिस प्रकार जुगनुओं का अपने को छिपा सकना कठिन है उसी प्रकार मेरे भाव भी छिपे नहीं रह सकते, प्रकट हो ही जाते हैं। कल्पना के ये भोले भाले शिशु अंततः मुझे हँसा ही देते हैं। भाव यह है कि:—प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य को देखकर मेरे मानस में भोली भाली कल्पनायें उठती हैं जिनके कारण मुझे बरबस हँस ही देना पड़ता है।

**शब्दार्थः**—हिम जल=ओस। अपनाव=अपनत्व=आत्मीयता।

**व्याख्याः**—तारकों से·············तब यह मुसकान।

ये नवीन भाव कभी मेरी पलकों में कूद कर मेरी नींद का अपहरण कर लेते हैं और कभी ओस की छोटी छोटी बूँदें बनकर मेरे साथ अपनी चिर आत्मीयता बढ़ाया करते हैं। जब ये नवीन भाव मेरे तन मन और प्राण में गुद-गुदी उत्पन्न करते हैं तब मेरी मुसकान रुक ही नहीं पाती है।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में कवि ने प्रकृति के साथ आत्मीयता का संबंध स्थापित करके अपने को प्रकृतिमय बना लिया है। प्रकृति की मुसकान उसकी मुसकान और प्रकृति का जागरण उसका निजी जागरण है। जब कवि ने स्वयं

अपने को प्रकृतिमय बना लिया है तो फिर प्रकृति के तारे, ओस आदि उपादानों को अपने भाव के रूप में व्यक्त करना उसके लिए उपयुक्त ही है। यही कारण है कि प्रकृति के साथ तादात्म्य और तल्लीनता का संबंध स्थिर करके कवि प्रकृति की मुसकान को अपनी मुसकान अनुभव करने लगता है।

**शब्दार्थः**—मेरे सुकुमार=मेरे प्रियतम।

**व्याख्याः**—कभी उड़ते............यह मुसकान।

मेरे सुकोमल प्रियतम कभी मुझे उड़ते हुए पत्तों के साथ मिला करते हैं और लहरों के समान अपने हाथों को बढ़ाकर मुझे उसपार बुलाते हैं अर्थात् उस पार चलने का संकेत करते हैं। उस समय मुझे संसार का ज्ञान नहीं रह जाता और मैं अपनी सुध बुध खोकर हँस पड़ती हूँ। मुझे स्वयं भी ज्ञान नहीं होता कि मैं हँस रही हूँ। हाय सखी! मैं क्या बतलाऊँ लाख रोकने पर भी तो यह मुसकान नहीं रुक पाती है

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में कवि ने प्रकृति की गति, उसके स्पन्दन और अन्य व्यापारों द्वारा सर्वत्र ब्रह्म की ही अनुभूति का अनुभव किया है।

## उर की डाली

**संदर्भः**—प्रस्तुत कविता 'उर की डाली' श्री सुमित्रा नन्दन 'पंत' रचित 'पल्लविनी' काव्य संग्रह से उद्धृत है। इसमें हर्ष विषाद, उत्थान पतन, वियोग संयोग, फूल शूल, चाव और दुराव का चित्रण कवि ने अपने ढंग से किया है। वह मानव जगत् के व्यक्ति व्यक्ति के हृदय के अन्दर प्रवेश करके यह जानने की जिज्ञासा करता है कि किसके अन्दर क्या क्या भरे पड़े हैं। इस कविता में कवि का आशावादी दृष्टिकोण स्पष्ट झलकता है।

( पृष्ठ-१०६ )

**शब्दार्थः**—कलि=कलिका। उपवन=उद्यान। अकुल=व्याप्त। किसलय=कोमल पत्ते। शूल=काँटे।

**व्याख्याः**—देखूँ सबके उर...... ...कुसुम शूल !

कवि कामना करते हुए कहता है कि मैं सबके हृदय की डाली को देखकर यह जानना चाहता हूँ कि किसने कौन कौन से फूल चुने हैं अर्थात मैं सबके हृदय के अन्दर झाँक कर देखना चाहता हूँ कि किसमें कौन कौन से सुख हैं। जगत रूपी पुष्प वाटिका में सभी प्रकार के पेड़ पौधे होते हैं जिनमें काँटे, पत्ते पुष्प और कलियां लगी रहती हैं इसी प्रकार यह संसार विविध प्रकार के सुख दुख का एक मेला है।

**शब्दार्थः**—छवि=सौन्दर्य। दुराव=भेद=छिपाव।

**व्याख्याः**—किस छवि............क्या दुराव ?

कवि मानव मात्र के हृदय के अन्दर झाँक कर उनके सुखों को देखकर उनका श्रेणी विभाजन करना चाहता है और कहता है कि–किस सौन्दर्य के वे पुष्प हैं अथवा वे शहद की भांति मीठे भाव हैं ? वे सुख रूपी पुष्प किस रूप, रंग और सुगन्धित वाले हैं ? उनका किसके प्रति आकर्षण है ? आदि कवि से छिपे नहीं रह सकते। कवि की पैनी दृष्टि और अनुपम कल्पना उसे ढूँढ़ही लेंगे। भाव यह है कि कवि अपनी प्रतिभा कल्पना, तथा अनुभूति के द्वारा मानव के हृदयगत् भावों को जान ही लेता है।

**शब्दार्थः**—विरहतान=विरहवाला संगीत। मधुकर=भौंरा। मुकुल=कलिका म्लान=मुरझाया हुआ।

**व्याख्याः**—किसने ली.........मुकुल म्लान ?

कवि मानव के हृदय की अनुभूति के बल पर प्रश्न करके कहता है कि:—मानव जीवन में कोकिल के विरह गान के सदृश कौन सा व्यक्ति विरह से व्याकुल रहता है ? जिस प्रकार उद्यान में भौंरा पुष्प के मिलन के आनन्द में मधुर संगीत गाता है उसी प्रकार कौन सा मानव अपने जीवन में मिलन सुख का अनुभव करता है ? पेड़ पौधों में विकसित पुष्प की भाँति कौन सा व्यक्ति अपने जीवन की सफलता पर फूला नहीं समाता ? और मुरझाये हुए पुष्पों के समान कौन सा व्यक्ति निराशा युक्त होकर उदास और खिन्न रहता है ? इन सबकी

अनुभूति कवि को अपनी काव्य शक्ति के बल द्वारा हो जाती है वह सबके हृदय के तथ्य की थाह लगा लेता है।

**शब्दार्थः**—तरुण फूल=नये पुष्प=सुख के भाव। करुण शूल=करुणामय काँटे या कष्ट।

**व्याख्याः**—देखूँ सबके········कोई सका भूल !

मानव के हृदय की परख कर लेने पर कवि इस निष्कर्ष पर पहुँच कर कहता है कि मैंने मानव मात्र के हृदय में प्रवेश करके तथा उसकी झांकी लेकर यह अनुभव किया है कि सभी व्यक्तियों के हृदयों में कुछ न कुछ सुख रूपी पुष्प विद्यमान रहा करते हैं साथ ही उन हृदयों में करुणा उत्पन्न करने वाले दुखों के काँटे भी रहा करते हैं। संसार में सुख और दुःख इन दोनों भावों को कोई भी व्यक्ति नहीं भूल सकता है। भाव यह है कि इस संसार में सुख और दुःख अनिवार्य हैं इनसे बच सकना किसी के लिए भी संभव नहीं है।

## पर्वत-प्रदेश में पावस

**संदर्भः**—प्रस्तुत कविता 'पर्वत-प्रदेश में पावस' श्री सुमित्रा नन्दन पंत के प्रकृति चित्रण का एक भव्य रूप है इसमें कवि ने पर्वत प्रदेश की वर्षाऋतु का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है तथा अपनी बाल सहचरी की स्मृति को प्रकृति के विविध व्यापारों के आधार पर जगाया है।

**शब्दार्थः**—पावस=वर्षाऋतु। प्रकृति वेश=प्रकृति की वेश भूषा। मेखलाकार=चारों ओर गोलाकार रूप में फैला हुआ। दृग सुमन=फूल रूपी आंखें अवलोक=देखना। महाकार=बड़े आकार।

**व्याख्याः**—पावसऋतु········फैला है विशाल !

कवि पर्वतीय वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए कहता है कि—वर्षाऋतु का समय था। पहाड़ी प्रान्त ( प्रदेश ) था। पहाड़ी प्रदेश की प्रकृति क्षण क्षण में अपना स्वरूप बदलती जा रही थी। चारों ओर गोलाकार रूप में फैला हुआ विशाल पर्वत अपने ऊपर लदे पुष्पों रूपी सहस्रों नेत्रों को फाड़ फाड़ कर ( खोल खोलकर ) तलहटी की ओर तालाब के जल में अपने विशालकाय प्रतिबिम्ब

को देख रहा था। उस पर्वत के तले एक विस्तृत सरोवर पला हुआ था जो दर्पण की भांति विशाल रूप में दिखाई पड़ता था।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने पर्वत का मानवीकरण किया है तथा इसी हेतु पर्वत के दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखने की कल्पना की गई है।

**शब्दार्थ:**—गिरि=पर्वत। गौरव=महिमा। मद=नशा या उन्मत्तता = झाग=फेन।

**व्याख्या:**—गिरिका गौरव..........झाग भरे निर्झर।

पहाड़ से झरते हुए झरनों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—पहाड़ की महिमा का झर झर ध्वनि में गान करते हुए तथा अपने मद से नस नस में उत्तेजना भरते हुए और मोतियों की लड़ियों के समान सुन्दर प्रतीत होते हुए झाग से परिपूर्ण झरने झर रहे हैं।

**विशेषटिप्पणी:**—(१) उक्त पद में 'झर झर निर्झर' के प्रयोग द्वारा कवि ने उत्तम ध्वनिचित्र उपस्थित किया है।

(२) "झाग भरे" शब्द के द्वारा कवि ने नशे की वास्तविक स्थिति का आभास दिलाया है।

(पृष्ठ-११०)

**शब्दार्थ:**—उच्चाकांक्षा=बड़ी बड़ी इच्छायें। तरुवर=बड़े बड़े वृक्ष। नभ= आकाश। अनिमेष=अपलक। अटल=स्थिर। चिन्तापर=किसी चिंता में डूबा हुआ। नीरव=शब्द हीन=शांत।

**व्याख्या:**—गिरिवर के उर........कुछ चिंता पर।

पर्वत पर उगे वृक्षों की चर्चा करते हुए कवि कहता है कि महान अभिलाषाओं के समान पर्वत के बीच से बड़े बड़े वृक्ष खड़े हो होकर शांत आकाश की ओर अपलक, स्थिर और चिन्ता मग्न होकर झांक रहे हैं।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में पर्वत का मानवीकरण तथा उच्च आकांक्षाओं का मूर्त विधान किया गया है।

**शब्दार्थः**—भूधर=पर्वत। पारद=पारा। रव=ध्वनि। अम्बर=आकाश।

**व्याख्याः**—उड़ गया अचानक.........पर अम्बर।

घनघोर वर्षा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—देखो! पर्वत अचानक पारे के समान चमकीले अपने पंखों को फड़काता हुआ उड़ गया। अब केवल झरनों की ध्वनि ही ध्वनि सुनाई पड़ रही है और पृथ्वी पर सारा आकाश टूट कर गिर रहा है। भाव यह है कि पर्वतों के ऊपर आकाश में जो बादल समूह छाये हुए थे वे बिजली की कड़कड़ाहट के साथ जोरों की वर्षा करने लगे हैं।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में 'भूधर' शब्द में साध्यवसाना लक्षणा है क्योंकि उपमेय भूत बादल का सर्वथा लोप होता हुआ दिखाया गया है।

**शब्दार्थ**—धरा=पृथ्वी। समय=डर कर। शाल=भवन। जलद यान=बादल रूपी विमान। इन्द्रजाल=जादू=माया।

**व्याख्याः**—धँस गये धरा में.........इन्द्रजाल!

आसमान के टूट पड़ने की आशंका से भूमि के सब मकान भूमि के अन्दर धँस गये अर्थात घन घोर वर्षा के कारण सब मकान आदि छिप गये। वृष्टि के बाद पहाड़ में कुहरा छा गया जो कि धुएं के समान प्रतीत हो रहा है। कुहरा सरोवर के ऊपर भी उठ रहा है मानो तालाब में आग लग रही है। इस प्रकार वर्षाऋतु में इन्द्र अपने बादल के यान ( विमान ) पर बैठकर जादू के खेल दिखा रहा है अर्थात् कभी पानी गिराता है तो कभी आग लगा देता है।

**विशेषटिप्पणीः**—( १ ) 'धुआँ' में रूपकातिशयोक्ति या साध्यवसाना लक्षणा है क्योंकि उपमेय भूत कुहरे का सर्वथा लोप है।

( २ ) 'धँस गये धरा में समय शाल' में हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा दोनों हैं।

**शब्दार्थः**—चितेरा=भावुक। वाह्य=बाहरी। चमत्कृत=चमत्कारपूर्ण। सुधि सी=स्मृति की झांकी। मनोरम=सुन्दर।

**व्याख्याः**—वह सरला.........मनोरम मित्र थी।

वर्षाऋतु के वातावरण में कवि अपनी बाल सहचरी को स्मरण करके कहता है कि—वह सरल स्वभाव की बालिका उस पर्वत को बादल घर कहा करती थी। इस प्रकार विश्व की बाहरी प्रकृति मेरे लिए चमत्कार पूर्ण चित्र बन जाती थी।

बचपन की स्मृति की भांति वह बालिका भी बहुत सरल और सुखद थी जो शैशव में मेरी सुन्दर मित्र थी।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में कवि ने प्रकृति की प्रधानता के साथ साथ विरह वर्णन किया है अतएव इसमें प्रकृति प्रधान है और बालिका की स्मृति का उदय उसका अंग भूत।

## कलरव

**संदर्भः**—प्रस्तुत कविता 'कलरव' श्री सुमित्रा नन्दन पंत रचित 'पल्लविनी' काव्य संग्रह से उद्धृत है। इसमें कवि की प्रगतिवादी मनोवृत्ति स्पष्ट लक्षित है तथा दुखी मानव के प्रति उसकी सहानुभूति मुखरित हो उठी है। इस कविता में श्रांत क्लांत श्रमिकों की थकान एवं परिश्रांति का भव्य चित्र देखने को मिलता है।

**शब्दार्थः**—झुरमुट=झाड़ी। झुटपुट=धुँधलापन। जर्जर=पुराना=वृद्ध। विधुर=व्याकुल दुःखी=रँडुवा।

**व्याख्याः**—बाँसों का झुरमुट..........डगमग डग।

सन्ध्या कालीन झुटपुट अन्धेरा है। बांसों के झुरमुट में चिड़ियां टी-वी-टी-टुट टुट के स्वर में चहक रही हैं। मानों वे अपने हृदय में मीठे मीठे स्वप्न ढाल-ढाल कर बरसा रही हैं। ये चिड़ियाँ श्रम जर्जर विधुर चराचर को अपने मधुर संगीत से सराबोर कर रही हैं अर्थात विश्व का मानव समाज दिन भरके परिश्रम से जर्जर हो रहा था अतएव पक्षी उन दुखी प्राणियों के प्रति मानो वेदना भरे गीत गा गा कर अपनी सहानुभूति बरसा रहे हैं। ये मज़दूर थके हुए डगमगाते पैरों से अपने घर को लौट रहे हैं।

### ( पृष्ठ-१११ )

**शब्दार्थः**—सुभग=सुन्दर। व्यंजन=वायु।

**व्याख्याः**—भारी है जीवन.......साथ पला।

थके हुए मज़दूरों के लिए जीवन मानों भार स्वरूप हो रहा है अतएव उनके

पैर तक खड़ा रहे हैं, उनके दुःख से दुखी होकर ये पक्षी सहृदयता के गीत गा रहे हैं। इन मज़दूरों की नस नस ढीली पड़ गई है अतएव समवेदना में प्रकृति उनकी थकान मिटाने का प्रयत्न कर रही है। सन्ध्या अपना सुन्दर सोना इन पर बिखेर रही है और मन्द मन्द पवन इनपर पंखा झल रहा है? इस प्रकार इनमें एक नयी स्फूर्ति और नई चेतना का संचार हो रहा है। लोक और प्रकृति का ऐसा पारस्परिक सहृदयता का सम्बन्ध सदा से चला आ रहा है और सृष्टि के साथ ही साथ प्रकृति और प्राणी जगत की पारस्परिक सहानुभूति के काव्य का विकास उत्तरोत्तर होता चला आता है।

**शब्दार्थः**—विश्री=शोभा हीन=सौन्दर्य रहित=धूमिल एवं निराशा मय।

**व्याख्याः**—गा सकें खगों सा.........आवे रवि।

कवि प्रकृति से अपने जीवन में प्रेरणा प्राप्त करने की प्रार्थना करते हुए कहता है कि ऐ प्रकृति तू ऐसा करदे कि मेरे अन्दर का कवि भी इन्हीं पक्षियों की भांति मानव के दुखी जीवन के सहानुभूति मय गीत गा सके अर्थात् मेरे हृदय में काव्य कल्पना की ऐसी शक्ति उठे कि मैं इनकी सहानुभूति में अपनी काव्य रचना कर सकूँ। सन्ध्या का वातावरण बहुत धूमिल एवं निराशामयी उदासी से भरा रहता है अतएव मेरे हृदय का कवि पक्षियों के समान ऐसी सुन्दर राग अलापे कि मानव जीवन में पुनः प्रभात का आगमन हो और सूर्य का सुखमय प्रकाश संपूर्ण विश्व में फैलजाये।

## भारत माता

**संदर्भः**—प्रस्तुत कविता 'भारत माता' में इसके रचयिता श्री सुमित्रा नंदन पंत ने भारतवर्ष का मानवीकरण मातृ-रूप में किया है तथा भारतीय ग्रामीण संस्कृति की विशेषताओं का चित्रण बड़े ही निराले ढंग से किया है। इस कविता में आदि से अन्त तक भारत के विभिन्न अवयवों में एक नारी के अवयव चेष्टा दशा आदि का वर्णन रूपक के द्वारा किया गया है।

**शब्दार्थः**—ग्राम्य वासिनी=गांवों में निवास करने वाली। श्यामल=सांवला=हरा। प्रतिमा=मूर्ति।

**व्याख्याः**—भारत माता............उदासिनी।

भारत माता का निवास ग्रामों में है। उसका धूल धूसरित आंचल हरे भरे खेतों में फैला है। गंगा यमुना की धारा उसके आंसुओं का प्रवाह है और वह स्वयं मिट्टी की निर्जीव मूर्ति के समान उदास बनी हुई है।

**शब्दार्थः**—दैन्य-जड़ित=दीनता से पूर्ण। नत=झुके। विषण्ण=दुखी=खिन्न=उदास। प्रवासिनी=प्रवास करने वाली=निर्वासिनी।

**व्याख्याः**—दैन्य जड़ित..........प्रवासिनी।

वह ( भारत माता ) दीनता से जड़ हो गई है। उसकी झुकी हुई चितवन निर्निमेष है। उसके अधरों ( होठों ) में चिर काल से मौन रोदन हो रहा है। युग-युग के अन्धकार से उसका मन विषाद पूर्ण है। वह अपने ही घर पर प्रवासिनी बनी हुई है।

(पृष्ठ-११२)

**शब्दार्थः**—कोटि=करोड़। अर्ध-क्षुधित=अध भूखे।

**व्याख्याः**—तीस कोटि..........तरुतल-निवासिनी।

उसकी ( भारत माता की ) तीस करोड़ सन्तान वस्त्र हीन हैं, अधभूखे हैं, शोषित हैं, वस्त्र हीन हैं, मूर्ख हैं, असभ्य हैं, अशिक्षित हैं, निर्धन हैं। अतएव वह ( भारत माता ) सिर नीचा करके वृक्ष के नीचे बैठी हुई है।

**शब्दार्थः**—शस्य=फसल=उपज। लुण्ठित=लोटती हुई। सहिष्णु=सहन शील। शरदिन्दु=शरद कालीन चन्द्रमा।

**व्याख्याः**—स्वर्ण शस्य..................शरदिन्दु-हासिनी।

सुनहली खेती ( पकी उपज ) पर उसके ( भारतमाता के ) पैर लुण्ठित हो रहे हैं। धरती की भाँति सहिष्णु उसका मन कुण्ठित है। क्रन्दन से काँपते हुए उसके होठों में मुस्कान मौन पड़ी है। राहु ग्रस्त शरद कालीन चन्द्रमा की भाँति उसका मुस्कान है।

**शब्दार्थः**—भृकुटि=भौंहें। तिमिराङ्कित=अन्धकार से पूर्ण। नमित=झुका

हुआ। वाष्पाच्छादित=भाप से ढका हुआ=बादलों से घिरा हुआ। उपमित=जिसकी उपमा दी गई हो। गीता-प्रकाशिनी=गीता का ज्ञान देने वाली।

**व्याख्या:**—चिन्तित भृकुटि··············गीता प्रकाशिनी।

अन्धकार से आच्छादित क्षितिज मानो उसकी चिन्ता भरी भौंहें हैं। तुषार से भरा आकाश मानो उसके झुके हुए अश्रुपूर्ण नेत्र हैं। उसके मुख की शोभा मानो छाया पूर्ण चन्द्र है। गीता का प्रकाश करने वाली होकर भी वह ज्ञान मूढ़ है।

**शब्दार्थ:**—स्तन्य=दूध। सुधोपम=अमृत तुल्य।

**व्याख्या:**—सफल आज···········जीवन विकासिनी।

आज उसकी ( भारत माता की ) तपस्या और उसका संयम दोनों सफल हो गये हैं। उसने आज अहिंसा का सुधामय अनुपम स्तन्य-दुग्ध पिलाया है जिससे इसके पुत्रों के मन का भय रोग और भ्रम हट गया है। वह जीवन का विकास करने वाली जगजननी है।

## बापू के प्रति

**संदर्भ:**—प्रस्तुत कविता 'बापू के प्रति' श्री सुमित्रा नन्दन 'पंत' रचित 'युगान्त' काव्य संग्रह से उद्धृत है। इस कविता में कवि ने महात्मा गांधी की चर्खा योजना, उनका असहयोग आन्दोलन, अहिंसा मत और उनके दर्शन आदि का समावेश करके अपने काव्य कौशल का अच्छा परिचय दिया है।

**शब्दार्थ:**—मांस हीन=मांस से रहित। रक्त हीन=रक्त से रहित। अस्थिशेष =हड्डी का ढाँचा मात्र। अस्थि हीन=हड्डी रहित। चिर पुराण=विशेष प्राचीन। चिर नवीन=विशेष नवीन।

**व्याख्या:**—तुम मांस हीन···········हे चिर नवीन।

कवि महात्मा गांधी के प्रति अपने भाव व्यक्त करते हुए कहता है कि—हे बापू! तुम मांस रहित हो, तुम रक्त रहित हो तुम अस्थि रहित केवल अस्थि

शेष मात्र हो। तुम शुद्ध बुद्ध केवल आत्म स्वरूप हो। तुम जितने ही पुराने हो उतने ही नवीन भी हो।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में कवि ने महात्मा गांधी को लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा मानव आत्मा के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है।

**शब्दार्थः**—जीवन की पूर्ण इकाई=अनन्त का एक में अवसान। एक रस=अद्वैत। शून्य=आकाश। संस्कृति=शुद्धि=सभ्यता। भावी=आगामी पीढ़ी। समासीन=संस्थापित।

**व्याख्याः**—तुम पूर्ण इकाई············समासीन!

हे बापू! तुम जीवन की पूर्ण इकाई (अद्वैत स्वरूप) हो जिसमें तत्व रहित यह संसार और आकाश लीन है। तुम वह आधार अथवा स्तंम्भ हो जिसपर आगामी पीढ़ी की संस्कृति संस्थापित होकर अमर हो जायेगी।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में कवि ने 'पूर्ण इकाई जीवन की' कहकर इस पद को रहस्यात्मक अनुभूति से ओत प्रोत कर दिया है।

## (पृष्ठ-११३)

**शब्दार्थः**—निर्मित=बना हुआ। निःस्व=निःस्वार्थ।

**व्याख्याः**—तुम मांस················वर साधन।

हे बापू! तुम्हीं वह मांस, रक्त और अस्थि हो जिससे नये युग के शरीर का निर्माण हुआ है। तुम धन्य पुरुष हो और तुम्हारा निःस्वार्थ त्याग ही सांसारिक भोग का श्रेष्ठ साधन है।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में कवि ने गांधी जी के लिए 'विश्व भोगवर साधन' का प्रयोग करके विश्व भोगों के लिए श्रेष्ठ साधन-मूर्तिमान स्वरूप उनके विराट रूप की मंगल भावना व्यक्त की है।

**शब्दार्थः**—भस्म काम=भस्म (राख) रूपी सदेच्छा=भस्मवत=भस्मित देह। पूर्ण काम=पूर्णेच्छा।

**व्याख्या:**—इस भस्म काम············से मानवपन !

हे वापू ! तुम्हारे इस भस्मवत् शरीर के रज से संसार अपनी इच्छा की पूर्ति करेगा तथा उसे नवीन जीवन प्राप्त होगा । इतना ही नहीं वह तुम्हारे सत्य और अहिंसा के ताने वाने से मानवता का निर्माण करेगा ।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने गांधी जी के सत्य और अहिंसा सिद्धान्त का अच्छा ताना वाना खड़ा किया है ।

**शब्दार्थ:**—तमिस्र=अन्धकार । तून=रुई के रेशे=रुई । संस्कृत=परिमार्जित । पूत=पवित्र ।

**व्याख्या:**—सदियों का दैन्य············मनुजत्व पूत ।

हे नग्न वापू ! सदियों से चली आ रही दैन्यता के अन्धकारमय रुई को धुन कर तुमने प्रकाश रूपी सूत कात कर उससे पवित्र मानवता की नवीन संस्कृत का निर्माण करके उसके द्वारा नंगी पशुता ( नग्न क्रूरता ) को ढँक दिया ।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में हे नग्न ! का विचित्र प्रयोग सात्विक प्रवाह में भाग युक्त प्रवाहित हो चला है ।

**शब्दार्थ:**—प्रभूत=उत्पन्न । संस्कृतियों=सभ्यताओं=शुद्धियों । भूत=रूप=शरीर ।

**व्याख्या:**—जग पीड़ित············विकृत भूत !

हे अछूत वापू ! तुमने छूत की भावना से उत्पन्न संसार कष्ट को अपने अमृत स्पर्श से मिटाकर मृतक सभ्यताओं के विगड़े रूप को अपने पवित्र हाथों से मुक्त कर दिया ।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने अस्पृश्यता निवारण के स्वरूप के साथ साथ मृत सभ्यता के भयानक रूप को मुक्त करने वाले गांधी जी की सदाशयता और उदात्त भावना का अनुपम चित्रण किया है ।

**शब्दार्थ:**—पुतले=निर्जीव मूर्ति । मनोज=मन का शरीर=रूढ़ार्थ की दृष्टि से कामदेव ।

**व्याख्या:**—सुख भोग·········मन के मनोज ।

हे वापू ! इस संसार में सव प्राणी सुख का भोग खोजने के लिए आते हैं

पर तुम सत्य का अन्वेषण करने के लिए यहाँ आये थे अर्थात् यह संसार सुख के साधन और खोज में ही जीता और मरता है पर तुमने सत्य के पीछे अपना जीवन अर्पण कर दिया। संसार के सब प्राणी मिट्टी से निर्मित पुतले मात्र हैं पर तुम्हारा निर्माण आत्मा और मन के शरीर से हुआ है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने गांधी जी को मानव सत्य के अन्वेषक के रूप में चित्रित किया है।

**शब्दार्थ:**—जड़ता=अज्ञता=अज्ञानता। स्पर्द्धा=साहस=होड़=संघर्ष। ओज=बल=वीर्य=पराक्रम=तेज=प्रकाश।

**व्याख्या:**—जड़ता हिंसा..........का सरोज।

हे बापू! तुमने जड़ता (अज्ञानता), हिंसा और स्पर्द्धा में चेतना रूपी अहिंसा का नम्र ओज (शक्ति) भर करके पशुता (क्रूरता) के पंकज (कमल) को मानवता (मनुष्यता) के कमल के रूप में परिणित कर दिया।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में संसार के क्रूरतावाद और गांधी जी के अहिंसा वाद पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

**शब्दार्थ:**—पशुबलाक्रांत=पशुता रूपी बल से पीसा गया। शृंखला=जंजीर=बेड़ी। भ्रांत=चकित=व्याकुल।

**व्याख्या:**—साम्राज्यवाद................पद शक्ति भ्रांत।

साम्राज्यवाद रूपी कंस मानवता को वन्दिनी बनाकर पशुता रूपी बल प्रयोग से दबाये हुए था। दासता को शृंखला रूपी बहुत से पहरेदार उसे घेरे हुए थे। कठोर शासन की पद शक्ति उसे (मानवता को) व्याकुल कर रही थी।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में साम्राज्यवाद की पाशविक मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है।

**(पृष्ठ-११४)**

**शब्दार्थ:**—कारागृह=बन्दी खाना=जेल। कांत=सुन्दर।

**व्याख्या:**—कारागृह में....................प्रणत शांत।

हे बापू! तुमने जेल की चाहारदीवारी के अन्दर उस पवित्र आत्म शक्ति

(२) जब "तम श्यामल" शब्द है ही तब "नव नील नील" विशेषण की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

( पृष्ठ-११५ )

**शब्दार्थः**—ज्योतित विवेक=उज्ज्वल ज्ञान। टेक=लगन। स्वर्ण कांक्षा= सुनहली उच्च आकांक्षा। मुक्ता लोकित=मोती की चमक से प्रकाशित। रजत सीप=चाँदी के समान शुभ्र सीपी। चिर-धन=असीम सनातन चैतन्य (चिद्‌घन)।

**व्याख्याः**—पश्चिम नभ में.........इच्छा से निर्धन।

कवि कहता है कि:—जब संध्याकाल का ऐसा वातावरण और दृश्य उपस्थित है तब मैं पश्चिम आकाश में अकेले और निरन्तर टिमटिमाते हुए एक स्वच्छ नक्षत्र ( तारा ) को देख रहा हूँ। वह नक्षत्र ( तारा ) ऐसा स्वच्छ और अनिन्द्य है मानो उज्ज्वल विवेक की साकार प्रतिमा हो। वह नक्षत्र ऐसा स्थिर है जिस प्रकार हृदय में जमी हुई अमर लगन अथवा दृढ़ संकल्प स्थिर रहता है। वह विश्वात्मा के हृदय की मानो कोई अमर टेक दीप्त हो रही है। अब कवि नक्षत्र के प्रति जिज्ञासा प्रकट करके अपने मन में प्रश्न करके पूछता है कि—यह नक्षत्र किस सुनहली कामना रूपी दीपक को लिए हुए है? और यह दीपक किसकी पूजा के लिए किसके समीप में बैठा है? वह किससे क्या चाह रहा है जब कि उसके अतिरिक्त किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है? वह ऐसा सुन्दर लगता है मानो मोती की आभा से चमकीली चाँदी की सीप हो। क्या उसकी आत्मा की चैतन्य पलकों को स्थिर खोलकर कुछ गंभीर चिन्तन में लीन है? और कहीं अपने अपनेपन को ढूँढ़ रहा है? क्या वह यह चिन्तन कर रहा है कि अपना आत्मीय कहा जाने वाला भी मेरा कोई कहीं है? वह नक्षत्र ब्रह्म की भाँति एकाकी है। अपनापन तो उसके लिए दुर्लभ है क्योंकि यह संपूर्ण विश्व उसे सुनसान प्रतीत हो रहा है। किसी अन्य का अस्तित्व ही नहीं है। अपनत्व की प्राप्ति की उसकी अभिलाषा निष्फल हो रही है अतएव वह अपने को निर्धन समझ रहा है और इस प्रकार वह किसी अभाव का अनुभव कर रहा है।

**शब्दार्थः**—उच्छ्वसित=उमड़ता हुआ। उद्वेलित=विक्षुब्ध। अहरह=नित्य

प्रति। अबाध=बे रोक टोक। दुस्तर=कठिन। निसंग=उदासीन=प्रेम हीन। मूक भार=वह बोझ जो किसी से कहा नहीं जा सकता है=मौन होकर कष्ट भार को चुप चाप सहन करना। विषाद=दुःख।

**व्याख्या:**—आकांक्षा का·········रे न पार!

आकांक्षा के महत्व और उसके प्रबल वेग आदि की चर्चा करते हुए कवि कहता है कि:—जब मनुष्य के हृदय में आकांक्षा उठती है तब उसका इतना प्रबल वेग रहता है कि सारे विवेक और बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। विश्व प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ आकांक्षा से ही गति शील है। चिर आकांक्षा के ही कारण समुद्र सदैव थर थर काँपता रहता है और आलोड़ित होता रहता है। किसी आकांक्षा के ही कारण लहरें हहर हहर कर नाचा करती हैं। चिर आकांक्षा में ही सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र समूह अबाध गति से चक्कर लगाते रहते हैं। वास्तव में आकांक्षा का बन्धन बड़ा ही कठिन हैं। अब कवि तारे को लक्ष्य करके उससे प्रश्न करके पूछता है कि:—हे नक्षत्र! क्या तुम्हारे प्राण भी किसी आकांक्षा के मारे जलकर विकल हो रहे हैं? तुम्हारी मौन आँखें क्या इसी चिन्ता और शोक के कारण अश्रुपूर्ण हो रही हैं? हे नक्षत्र! निःसंग या उदासीन जीवन तो व्यर्थ और विफल (असफल) है। एकाकीपन अथवा अकेलापन अन्धकार के समान होता है। इसका मौन भार बड़ा ही कठिन है अर्थात् मौन होकर इस भार का वहन करना असह्य है। तुम भी अकेले हो और इस अकेलेपन के विषाद का कहीं अन्त नहीं है। वह अनन्त है उसका कहीं पार नहीं है।

**शब्दार्थ:**—छन्द बन्ध=कविता। असङ्ग=तटस्थ=विरक्ति। निष्कम्प शिखा=दीपक की निश्चल लौ। प्रबुद्ध=चैतन्य। मीन=मछली।

**व्याख्या**—चिर अविचल पर·········शुक्र वह सम।

उस चिर एकाकी नक्षत्र के विषय में कवि कहता है कि—वह नक्षत्र चिर काल से निश्चल बैठा हुआ है और अपने तेज (प्रकाश) से चमक रहा है। उसे छन्द बद्ध काव्य रचना करने नहीं आता अन्यथा वह अपने शोक का वर्णन अवश्य कर पाता। वह अनन्त आकाश रूपी समुद्र का मीन (मछली) है और अपने नीराग तथा अनासक्त भाव में ही सुखी रहता है वह अपने ही स्वरूप

में स्थिर रहता हुआ नित्य नवीन बना रहता है। निष्कम्प दीपक की लौ के समान वह अनुपम तथा अद्वितीय है और विश्व के अज्ञान रूपी अन्धकार का भेदन करता रहता है। वह ब्रह्म की भाँति सदैव शुद्ध, प्रबुद्ध स्वच्छ और सम रस रहता है।

**शब्दार्थः**—अलि=भौंरा। मधुमय=मधु से भरा=सुन्दर। जग दर्शन= दृश्यमान जगत्।

**व्याख्याः**—गुंजित अलि सा········यह जगदर्शन।

कवि सांध्यतारा ( नक्षत्र ) विषय अपने काव्य के निष्कर्ष पर पहुँचता हुआ, कहता है कि:—यह घना अन्धकार गूँजते हुए भ्रमर की भाँति मधुमय अथवा सुन्दर लग रहा है तथा ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो अकेला भौंरा एकांत में मधु संचय करते हुए गूँज रहा हो। अब यह नक्षत्र अपनी व्यथा के भार को कुछ कुछ हल्का समझ रहा है क्योंकि सहसा आसमान का प्रांङ्गण ( आँगन ) प्रचुर मात्रा में सुन्दर कलियों के समान असंख्य तारों से लद गया है। इस अनुपम दृश्य से ऐसा प्रतीत होता है मानो वह तारा व्यापक आत्म तत्व है और असंख्य नक्षत्रों का समूह दृश्यमान् जगत् का विस्तार है।

## नौका विहार

**संदर्भः**—प्रस्तुत कविता "नौका विहार" श्री सुमित्रा नन्दन पंत रचित 'गुञ्जन' काव्य संग्रह से उद्धृत है। इसके अन्दर कवि ने चाँदनी रात में गंगापर नौका विहार का बहुत मनोहर तथा सजीव चित्र उपस्थित किया है इसमें चित्र की महानता तथा कल्पना की मधुरता के साथ साथ कवि के शब्द भी अत्यन्त कोमल हैं। वास्तव में यह एक उत्तम कविता है जिसमें दृश्य चित्रण की शक्ति का चरम विकास दिखाई देता है तथा कवि की कला अपनी पूरी ऊँचाई पर पहुँच कर चमक उठी है।

(पृष्ठ-११६)

**शब्दार्थः**—स्निग्ध=तरल या प्रेम मयी। अपलक=एक टक या तारों से

पूर्ण। अनन्त=आकाश। सैकत शय्या=रेतीले तट की सेज। दुग्ध धवल=दूध की भाँति स्वच्छ। तन्वङ्गी=कृश शरीर वाली या पतली धार वाली। ग्रीष्म विरल=गर्मी के कारण सिकुड़ी हुई या गर्मी के कारण शिथिल पड़ी हुई। श्रान्त=थकी माँदी। क्लान्त=पसीने से भरी। तापस बाला=तपस्विनी बालिका। कुन्तल=बाल। वर्तुल=गोलाकार।

**व्याख्या:**—शान्त, स्निग्ध,..................मृदुल लहर।

कवि प्रकृति की नीरवता का वर्णन करने के लिए शब्द चित्र की सुन्दर और महान पृष्ठ भूमि प्रस्तुत करते हुए कहता है कि:—चारों ओर शांति दायिनी मधुर तथा प्रकाश पूर्ण चाँदनी फैली हुई है। आकाश स्वच्छ तथा स्थिर (अपलक) है और पृथ्वी शब्द हीन-शान्त है। दूध के समान श्वेत बालू के पर्यंक पर थकी हुई (श्रांत) तथा बेचैन (क्लांत) स्थिर एवं क्षीण अंग वाली तथा ग्रीष्म द्वारा बलहीन की हुई गंगा तापस-बाला के समान लेटी हुई है। लहरों के ऊपर चन्द्रमा का जो प्रतिबिंब पड़ता है वह मानो उस तापस-बाला गंगा का शशि-मुख है जिसे वह अपनी कोमल (लहर रूपी) हथेली पर रखे हुए है उसके हृदय पर कोमल बाल (सेवार आदि जल के पौधे) बिखरे हुए हैं। उस गंगा रूपी तापस-बाला के गोरे अंगों पर तारों से जगमगाते हुए-आकाश का प्रतिबिंब रूपी नीला वस्त्र काँपता हुआ लहरा रहा है। चन्द्र किरणों से चमकती हुई जो गोल गोल तथा सुन्दर लहरें उठती हैं वह मानो इस हिलती हुई नीली साड़ी की सिकुड़ने हैं।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने गंगा का मानवीकरण किया है तथा ग्रीष्मऋतु की गंगा धारा का तापस बाला के साथ बड़ा ही सुन्दर सांगरूपक प्रस्तुत किया है।

**शब्दार्थ:**—सत्वर=शीघ्र। सस्मित=मुसकाती हुई। मन्थर=काँपती हुई। तरणि=नाव। शुचि=स्वच्छ। रजत पुलिन=चाँदी के समान चमकीले तट।

**व्याख्या:**—चाँदनी रात का.........ओर छोर।

चाँदनी रात के पहले पहर में हम जल्दी से नाव लेकर चल दिए। उस समय रेत पर पड़ी चांदनी ऐसी प्रतीत होती थी मानों सीपी के अन्दर मोती का

प्रकाश जगमगा रहा हो। बस कुछ ही देर में नाव की पालें चढ़ गईं और लंगर खुल गया। हमारी छोटी सी नाव मन्द मन्द गति से कांपती हुई चल पड़ी। उसकी पालें खुली थीं। ऐसा प्रतीत होता था मानों सुन्दर हंसिनी अपने पंख खोलकर जल में तैर रही हो। चांदी के समान चमकीले गंगा के तट उसके निश्चल और स्वच्छ जल के दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर कुछ क्षण के लिए दुहरे ऊँचे प्रतीत होते थे। उस गंगा के जल में तट पर स्थित कालाकांकर के राज भवन का जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा था वह ऐसा प्रतीत होता था मानों राज भवन अपनी पलकों में अपने वैभव की स्वप्न राशि को बन्द किए हुए प्रसन्न और निश्चिन्त होकर जल में सो रहा हो। नाव के चलने के कारण जल में जो हिलोर उठ रही थी उससे ऐसा प्रतीत होता था मानों आकाश के ओर छोर हिल रहे हैं।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने राज भवन का मानवीकरण किया है तथा इसको सार्थकता के ही लिए 'सोया जल में' और 'स्वप्न सघन' शब्दों का प्रयोग किया है।

**शब्दार्थ:**—विस्फारित=आंखें फाड़ फाड़कर। अन्तस्तल=हृदय। अविरल=घने घने। तिर्यक=तिर्छी=टेढ़ा।

**व्याख्या:**—विस्फारित नयनों से········रुक रुक।

चंचल तारों के समूह जल के हृदय में ( अन्दर ) प्रकाश डाल कर निश्चल आँखें फाड़कर कुछ ढूँढ़ते से प्रतीत हो रहे थे। लहरों में तारों का प्रतिबिंब झलमला रहा था जो ऐसा प्रतीत होता था मानों लहर रूपी बालाएँ तारों के दीपकों को अपने आंचल में लुका छिपाकर क्षण क्षण में फिर रही हों। सामने आकाश में शुक्र तारे की छवि झलमला रही थी जल में परी के समान तैरती थी और सुन्दर बालों की आड़ में फिर छिप जाया करती थी। दशमी तिथि के चन्द्रमा का प्रतिबिंब भी चंचल लहरों पर पड़ रहा था जो ऐसा प्रतीत हो रहा मानों घूँघट की ओट से मुग्धा का मुख बार बार दिखाई पड़ रहा हो।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने कई चित्रों का सृजन किया है। नक्षत्रों का मानवी करण किया हैं। लहरों को युवतियों के रूप में तथा शुक्र की छवि को परी के रूप में चित्रित किया हैं। इतना ही नहीं घूँघट में छिपे मुख के लिए दशमी के चन्द्र का बहुत सुन्दर और उपयुक्त उपमान भी प्रस्तुत किया है

(पृष्ठ–११७)

**शब्दार्थः**—चपला=चंचल । कगार=किनारा । विटप माल=वृक्षों की पंक्ति । भ्रू रेखा=भौंहों की रेखा । अराल=टेढ़ी । उर्मिल=लहरों से भरा । प्रतीप=उलटा । कोक=चक्रवाक । कोकी=चक्रवाकी ।

**व्याख्याः**—अब पहुँची ········ कोकी को विलोक ।

अब हमारी चपल नौका धारा के बीच में पहुँच गई और चाँदनी के समान चमकता हुआ ऊँचा किनारा छिप गया । दूर पर दिखाई देने वाले दोनों किनारे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों वे दो भुजायें हैं जो धारा के कृश तथा कोमल शरीर का आलिंगन करने को अधीर हैं । बहुत दूर क्षितिज पर वृक्षों की पंक्ति टेढ़ी भौं की रेखा सी प्रतीत होती है औरविशाल नीला आकाश नीली आँख के समान दिखाई पड़ता है । गंगा की धारा के बीच में एक छोटा सा द्वीप दिखाई देता है जिसे लहरों से पूर्ण जल का प्रवाह टकरा टकरा कर उलट पड़ता है । जल के बीच में वह द्वीप ऐसा प्रतीत होता है मानों माता की छाती से चिपका हुआ शिशु सो रहा हो । ( इसी समय एक पक्षी बोलता हुआ उड़ा । उसे देखकर कवि कहता है कि ) अरे वह उड़ने वाला कौन पक्षी है ? क्या वह वियोगी चक्रवाक पक्षी है जो अपनी छाया को ही अपनी प्रेयसी ( कोकी ) समझकर अपनी विरह-व्यथा मिटाने के लिये उसके पीछे उड़ पड़ा है ?

**विशेषटिप्पणीः**—( १ ) उक्त पद में शृंगार और वात्सल्य का अनुपम द्वन्द प्रस्तुत किया गया है ( २ ) धारा का मानवीकरण किया गया है । वह युवती और माँ के रूप में चित्रित की गई है तथा उसमें मातृत्व और शृंगार दोनों का पुट है । ( ३ ) 'उर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप' की अभिव्यक्ति बड़ी सुंदर बन पड़ी है ।

**शब्दार्थः**—प्रतनु=हल्का । फेनाकार=बड़े बड़े बुलबुलों वाले झाग । सहोत्साह=उत्साह पूर्वक ।

**व्याख्याः**—पतवार घुमा ········ को सहोत्साह ।

पतवार घुमा दी गई और वह हल्के भार वाली नौका धारा के विपरीत चलने

लगी। वह नौका अपने डांड़रूपी गतिशील हाथों को फैलाकर तथा उनमें फेन के बुदबुद रूपी मोतियों को भर भर कर जल में ताराओं के हार ( जल में पड़ने वाले ताराओं के प्रतिबिम्ब ) को बखेरने लगी अर्थात् डांड़ों के लगने से नक्षत्रों की छाया विलोड़ित होने लगी। चन्द्रमा की चंचल किरणें पानीपर इस प्रकार चमकती हैं मानों चांदी के चमकीले सांप द्रुत गति से पानी पर नांच रहे हों। लहरों की चंचल लताओं में सौ-सौ चन्द्रमा और सौसौ नक्षत्र झिलमिलाते हुए मोती के गुच्छोंवाले फूलों की भांति फैले हुए थे। अब नदी का प्रवाह कुछ उथला हो गया। डण्डे से स्वभावतः जल की गहराई नापी जाने लगी। हम उत्साह पूर्वक घाट की ओर बढ़ने लगे।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में कवि ने शब्द चित्रों की मनोहर छटा प्रस्तुत करदी है।

**शब्दार्थः**—शाश्वत=सदाजारी रहने वाला=सनातन। उद्गम=उत्पत्ति। रजतहास=चांदी की भांति शुभ्र हँसी। विलास=खेल। कर्णधार=नाव चलानेवाला नाविक। प्रमाण=परिमित=सीमा। अस्तित्व=सत्ता=जीवन। अमरत्व दान=अमरता की प्राप्ति।

**व्याख्याः**—ज्यों ज्यों लगती.......अमरत्व दान।

जब नौका किनारे की ओर लौटने लगी तो कवि विचार मग्न हो गया और उसके हृदय में दार्शनिक भाव उठने लगे उसी की झांकी उसने यहां प्रस्तुत की है। वह कहता है कि—नाव ज्यों-ज्योंपार लगती जाती थी त्यों-त्यों हृदय में सैकड़ों विचार उत्पन्न होते जाते थे। इस संसार का क्रम भी इसी धारा की भांति है। इस धारा की भाँति ही निरन्तर गतिशील जीवन की उत्पत्ति होते जाना है। इसकी गति भी अप्रतिहत है और नदी में जिस प्रकार अनेकों संगम आ जाया करते हैं उसी प्रकार जीवन में भी कितने ही अन्य प्राणियों से एक प्राणी का पारस्परिक सम्पर्क होता रहता है। आकाश की नीलिमा का विकास भी शाश्वत है। चन्द्र की शुभ्र हँसी भी शाश्वत है। छोटी छोटी लहरों की क्रीड़ा की शाश्वत है। भाव यह है कि यह संपूर्ण प्रकृति सुंदर और अनादि है। अब कवि परमात्मा को संबोधित करके कहता है कि हे संसार की सृष्टि रूपी नौका को चलाने वाले! जन्म के भी पूर्व और मृत्यु के भी पश्चात अर्थात् आवागमन की परंपरा में सतत चलने

वाला यह नौका विहार भी नित्य है। जैसे प्रस्तुत नौका विहार के आनन्द में विभोर होकर मैं ( कवि ) अपने अस्तित्व ज्ञान को भूल गया हूँ उसी प्रकार इस जीवन में भी हम लोग अपने आत्मा के यथार्थ ज्ञान को भूलकर सांसारिक बातों में मग्न रह जाया करते हैं। ज्यों ही आत्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाता है त्यों ही जीवन का अन्त या मुक्ति हो जाती है। भाव यह है कि आत्म ज्ञान के पश्चात अमरत्व की प्राप्ति हो जाती है।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में कवि ने पूरी कविता का निचोड़ रखदिया है और मानव जीवन की नौका विहार से तथा ईश्वर की कर्णधार से तुलना करके अपनी दार्शनिकता का अच्छा परिचय दिया है।

## प्रश्नोत्तर

**प्रश्न ( १ ):**—पंत की बहिर्वृत्ति और प्रसाद की अंतर्वृत्ति की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए.

( बी० ए० परीक्षा १६४५ का० वि० वि० )

**उत्तर:**—श्री सुमित्रा नन्दन 'पंत' और स्वर्गीय श्री जय शंकर प्रसाद जी ये दोनों ही कवि सम कालीन हैं। दोनों ही कवियों की गणना द्विवेदी युग के तृतीय उत्थान के कलाकारों में की जाती हैं। दोनों ही खड़ी बोली के तथा संस्कृत गर्भित भाषा के समर्थक हैं। दोनों ही का काव्य प्रकृति सौन्दर्य से प्रेरित है। दोनों ही कवि दार्शनिक, शृंगारी और रहस्यवादी हैं तथा दोनों ही ईश्वर की आस्तिकता पर विश्वास करते हैं। दोनों ही विश्व प्रेमी हैं। दोनों ही उदार, सरस और भावना प्रधान हैं। तुलनात्मक दृष्टि से इन समानताओं के अतिरिक्त इन दोनों कवियों में कुछ विषमता भी है। प्रसाद जी आशावादी तथा संघर्षों का सामना करने वाले कवि हैं परन्तु पंत पलायन वादी कवि है। उनमें संघर्षों से लड़ने की शक्ति नहीं है। वे मानव जीवन की कठोरता से भय खाते हैं यही कारण है कि मानव जीवन की आन्तरिक अनुभूतियों के चित्रण में उन्हें उतनी सफलता नहीं मिल सकी जितनी सफलता कि प्रसाद जी पा सके हैं। अपनी इस कमी की ओर संकेत करके पन्त जी ने स्वयं कहा है कि:—

मैं सृष्टि एक रच रहा नवल-भावी मानव के हित भीतर।
सौंदर्य, स्नेह उल्लास, मुझे मिल सका नहीं जग के बाहर

परन्तु प्रसाद जी अपनी शक्ति और साहस का अपूर्व परिचय देते हुए कहते हैं कि:—

पड़ रहे पावन प्रेम फुहार, जलन कुछ कुछ है मीठीपीर।
सँभाले चल कितनी है दूर, प्रलय तक व्याकुल हो न अधीर।

प्रसाद जी सांसारिक वातावरण से अधिक प्रभावित होकर कहते हैं कि—

चेतना लहर न उठेगी, जीवन समुद्र थिर होगा।
संध्या हो सर्ग प्रलय की, विच्छेद मिलन फिर होगा।

'पंत' की भावना सदैव सुकुमार और कोमल रही है इसी से भावुकता की सीमा पार करके वे कहते हैं

सुंदर हैं विहंग, सुमन सुन्दर मानव तुम सबसे सुन्दरतम्।
निर्मित सबकी तिल सुषमा से तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम।

प्रकृति चित्रण में पंत की वहिर्वृत्ति और प्रसाद की अंतर्वृत्ति की विषमता का अनुमान निम्न अवतरणों से लगाया जा सकता है—प्रकृति चित्र को मनुष्य सापेक्ष चित्र के रूप में प्रभात का वर्णन करते हुए कवि प्रसाद कहते हैं—

बीती विभावरी जागरी
अंबर पन घट में डुबा रही तारा घट ऊषा-नागरी
खग कुल कल कल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो, यह लतिका भी भर लाई
मधु- मुकुल नवल-रस-गागरी

पंत जी प्रकृति के क्षण क्षण परिवर्तित रूप को इस प्रकार प्रकट करते हैं—

मेखला कार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़
अवलोक रहा है बार -बार
नीचे जल में निज महा कार

कवि प्रसाद प्रकृति में पात्र के हृदय का स्पंदन सुनते हैं। मनु चले गये हैं। वह रात श्रद्धा के लिए सुंदर होने पर भी कितनी भयावह है, कितनी धूमिल, और कितनी निस्तब्ध है।

उजले तारक झलमल
प्रतिबिंबित सरिता वक्षस्थल

× × ×

धूमिल छाया में रही घूम
लहरी पैरों को रही चूम

संक्षेप में पन्त की चित्रण शक्ति बड़ी प्रबल है। प्रत्येक दृश्य या गति का चित्र वे बड़ी कुशलता से खींचते हैं। उन्होंने सूक्ष्म से सूक्ष्म और गतिवान से गतिवान भाव या दृश्य को चित्रित किया है। प्रकृति का चेतनीकरण और मानवीकरण पन्त के प्रकृति के मानव तत्व का प्रतीक है। छायावाद में उन्होंने दो देन दी है। पहली है कल्पना का उत्कर्ष और दूसरी है नूतन लाक्षणिक भंगिमा। 'प्रसाद' की भंगिमायें विदग्ध हृदय की हैं उनमें अनुभूति हैं। परंतु पन्त में कल्पना अधिक है। प्रकृति उनकी कल्पना का प्रसार क्षेत्र है। प्रकृति पंत के लिए एक रहस्यमयी दैवी सत्ता है किन्तु मानव हृदय की अनुभूति से नितान्त अभिन्न।

**प्रश्नः**—( २ ) निराला और पंत के काव्य-गुणों पर एक तुलनात्मक टिप्पणी लिखिये और बताइये कि इनमें कौन सा कवि आपको अधिक प्रिय है और क्यों ?

( बी० ए० परीक्षा १९४७ का वि० वि० )

**उत्तरः**—तुलनात्मक समीक्षा में समानता और असमानता दोनों ही पक्षों पर विचार करना अनिवार्य होता है अतएव उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में 'निराला' और 'पंत' के काव्य गुणों की तुलनात्मक समीक्षा में पहले हम दोनों कवियों की समानता पर विचार करेंगे इसके बाद असमानता पर—

**समानताः**—( १ ) निराला और पंत दोनों ही नवीन युग के उदीयमान कलाकार हैं।

( २ ) दोनों ने लगभग साथ ही साथ साहित्य-सृजन आरंभ किया है।

( ३ ) दोनों की रचनायें नवीन युग की सन्देश दात्री हैं।

( ४ ) दोनों ही ने अपनी रचनाओं में स्वतंत्र दिशा की ओर चलना श्रेयस्कर समझा है।

( ५ ) दोनों ही करुणा और संवेदना के भावुक गीतकार हैं।

( ६ ) दोनों ही कवियों की रचनाओं में मानवीय जगत की कोमल उदात्त और सुख दुख मयी परिस्थितियों का चित्रण मिलता है।

( ७ ) निराला कृत 'विधवा' और पंत कृत 'विधवा नव वधू' का विषाद एक सा है।

( ८ ) दोनों ही विश्व प्रेम की ओर उन्मुख हैं।

( ९ ) दोनों ही की भाषा संस्कृत गर्भित खड़ी बोली है।

( १० ) दोनों ही प्रगति वादी कवि हैं।

( ११ ) दोनों ही का भाव तथा कला पक्ष पर समान रूप से अधिकार है।

( १२ ) दोनों ही की रचनाओं में रस योजना बड़ी ही सुन्दर हुई है।

( १३ ) रंगों के वर्णन में दोनों ही कुशल हैं।

( १४ ) दोनों ही ने सुन्दर प्रकृति चित्रण किया है।

( १५ ) दोनों की ही रचना क्लिष्ट तथा दुरूह है।

**असमानता:**—( १ ) 'निराला' ओज प्रधान कवि हैं पर 'पंत'—मार्दव प्रधान।

( २ ) 'निराला' ने जीवन और जगत दोनों से संघर्ष किया है परन्तु पंत सुकुमार भावों पर पले हैं।

( ३ ) 'निराला' क्रांति कारी तथा युग-परिवर्तन कारी हैं। उनका अन्तर्द्वन्द्व बड़ा ही भयंकर तथा सुदृढ़ है पर 'पंत' के जीवन में कोई घोर परिवर्तन नहीं हुआ बल्कि विपरीत इसके उनके जीवन में निराशा ही आई है।

( ४ ) निराला जी शुद्ध रहस्यवादी तथा पंत जी छायावादी कवि हैं।

( ५ ) 'निराला' जी का प्रकृति चित्रण रहस्यवादी तथा अद्वैत वादी दृष्टि कोण से हुआ है पर पंत जी ने प्रकृति को नारी सौन्दर्य के विभिन्न-रूपों में देखा है।

( ६ ) छन्द रचना में निराला जी पंत से अधिक स्वतंत्र हैं।

( ७ ) 'निराला' जी के काव्य में पौरुष तथा ओज है परन्तु पंत में माधुर्य और सौन्दर्य है।

( ८ ) रंग वर्णन में निराला को श्याम रंग प्रिय है और पंत को श्वेत।

( ९ ) काव्य कला की दृष्टि से निराला पंत से बहुत आगे हैं।

( १० ) निराला जी की रचनायें कला प्रधान और कल्पना प्रधान हैं पर पन्त भाव सौन्दर्य के प्रेमी हैं।

( ११ ) छन्द नियोजन में निराला जी पंत के बहुत आगे हैं।

( १२ ) पन्त के काव्य-स्वर निराला के स्वरों से अधिक मधुर हैं।

( १३ ) निराला की भाषा अधिक संस्कृत गर्भित और क्लिष्ट है। पर पंत की भाषा कोमल तथा ललित है।

( १४ ) निराला सांगोपांग रूपक वादी हैं पर पन्त उपमाओं का आलेखन अच्छा करते हैं।

( १५ ) निराला का शब्द-चयन ओजमय है पर पन्त का शब्द चयन कोमल है।

**काव्य-प्रियता:**—'निराला, और 'पन्त' के काव्य में किसी एक के प्रति अपनी प्रियता को प्राधान्य देना कठिन है क्योंकि दोनों ही हिन्दी साहित्य के उदीयमान कलाकार हैं और दोनों ही ने अपनी साहित्य सेवा से हिन्दी का मस्तक ऊँचा किया है। हिन्दी साहित्य के नवयुग को समझने के लिए दोनों का ही अध्ययन आवश्यक है। हाँ लोक प्रियता की दृष्टि से पंत निराला से आगे हैं अतएव इस भाव से उन्हें प्राधान्य दिया जासकता है।

**प्रश्न (३):**—प्राकृतिक सौन्दर्य का सूक्ष्म निरीक्षण, अचेतन में चेतन की भावना तथा उप संहार में दार्शनिक दृष्टि का प्रसार ये पन्त जी की कुछ विशेष प्रवृत्तियाँ हैं। स्वपठित पन्त जी की कविता से उदाहरण देकर इसे सिद्ध कीजिए।

(बी० ए० परीक्षा १९५० का० वि० वि०)

**उत्तर:—प्राकृतिक सौन्दर्य का सूक्ष्म निरीक्षण:**—कवि 'पंत' की अन्तर्दृष्टि प्रकृति के गूढ़ तत्वों पर बराबर रही है। इन तत्वों का चित्रण इन्होंने

बड़ी सूक्ष्मता के साथ किया है। इनके काव्य में पक्षियों का कलरव, झरनों का कल कल निनाद, कुसुमों के सौरभ का अनुभव तो मिलता ही है साथ ही प्राकृतिक वस्तुओं के रूप रंग, ध्वनि गंध और गति का भी ज्ञान हो जाता है। इस के प्रमाण में निम्नलिखित उद्धरण पर्याप्त है—

कभी अचानक भूतों का सा
प्रकटा विकट महा आकार।
कड़क-कड़क जब हँसते हम सब
थर्रा उठता है संसार ॥
रुपहले सुनहले आम्र बौर,
वन के विटपों की डाल डाल,
कोमल कलियों से लाल लाल।

'संध्या तारा' शीर्षक कविता में सायंकाल की अनुपम झाँकी प्रस्तुत करते हुए कवि 'पंत' कहते हैं—

नीरव सन्ध्या में प्रशांत
डूबा है सारा ग्राम प्रांत
पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर
ज्यों वीणा के तारों में स्वर
खग कूजन भी हो रहा लीन, निर्जन गो पथ अब धूलि हीन
धूसर भुजङ्ग सा जिह्म क्षीण

× × × ×

गङ्गा के चल जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूँद चुका अपने मृदु दल

× × × ×

मृदु मृदु स्वप्नों से भर अञ्चल, नव नील नील कोमल कोमल
छाया तरुवन में तम श्यामल।

"नौका-विहार" शीर्षक कविता में कवि पंत ने शब्द चित्र की सुन्दर तथा

महान पृष्ठ भूमि प्रस्तुत करते हुए नौका-विहार का बड़ा ही मनोहर तथा सजीव चित्र उपस्थित किया है रात्रि के प्रथम पहर का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

शांत, स्निग्ध, ज्योत्सना उज्ज्वल !
अपलक अनन्त नीरव भूतल !
सैकत शैय्या पर दुग्ध धवल, तन्वङ्गी गङ्गा, ग्रीष्म विरल,
लेटी हैं श्रांत, क्लांत, निश्चल !

शुक्र की छवि का अनुपम दृश्य उपस्थित करते हुए कवि कहता है—

सामने शुक्र की छवि झलमल, पैरती परी सी जल में कल,
रुपहरे कचों में हो ओझल।

लहरों में चन्द्र और नक्षत्रों के प्रतिबिंब की सुन्दर झाँकी को कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है—

चाँदी के साँपों सी रलमल नाँचती रश्मियाँ जल में चल,
रेखाओं सी खिंच तरलसरल।
लहरों की लतिकाओं में खिल, सौ सौ शशि सौ सौ उडुझिलमिल
फैले फूले जल में फेनिल ।

यहाँ पर 'पन्त' के प्रकृति चित्रण में प्राकृतिक सौन्दर्य के सूक्ष्म निरीक्षण की केवल सूक्ष्म झाँकी दी गई है इसी प्रकार उनकी अन्य प्रकृति संबंधी कविताओं की समीक्षा करके यहनिष्कर्ष निकाला जा सकता है कि—'पन्त के काव्य में प्रकृति का अप्रतिम स्थान है। उनके काव्य में प्रकृति के विविध और मन मोहक स्वरूप अंकित हुए हैं। इन्होंने प्रकृति के सूक्ष्म और गतिवान से गतिवान् भाव या दृश्य को सफलता के साथ चित्रित किया है ।

**अचेतन में चेतन की भावना:**—'पन्त' ने प्रकृति सम्बन्धी जितनी कविता लिखी है उन सब में अचेतन में चेतन की भावना अनूठे ढंग से भर दी हैं। इस मत की पुष्टि के लिए यहाँ हम कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। 'प्रथम रश्मि' शीर्षक कविता में कवि प्रकृति के नाना अवयवों की चैतन्य सत्ता एवं उनके अलौकिक व्यापारों का कौतूहल पूर्ण वर्णन बाल विहंगिनी को

साक्षात सम्बोधन करते हुए करता है। चन्द्र की किरणों तथा कलियों का मानवीकरण करके कवि कहता है—

शशि किरणों से उतर उतर कर
भू पर काम रूप नभ चर
चूम नवल कलियों का मृदु मुख,
सिखा रहे थे मुसकाना।

'संध्या तारा' शीर्षक कविता में कवि "अधर सो गया" का प्रयोग कर के वृक्षों और मर्मर ध्वनि का मानवीकरण करते हुए कहता है—

पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वनका मर्मर
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।

'नौका विहार' शीर्षक कविता में गंगा का मानवीकरण बिल्कुल स्पष्ट है। कवि ने उसे तापस बाला का रूप प्रदान करके उसके विश्राम, परिचर्या आदि की कल्पना द्वारा व्यवस्था भी कर दी है—कवि कहता है कि—

सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वङ्गी गङ्गा, ग्रीष्म विरल,
लेटी हैं श्रान्त, क्लान्त निश्चल!
तापस बाला गङ्गा निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुन्तल।
गोरे अंगों पर सिहर सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर
चंचल अंचल सा नीलाम्बर।

कवि 'पंत' के प्रकृति चित्रण विषयक अचेतन में चेतन के जो उदाहरण प्रस्तुत किए गये हैं उनसे यह सहज ही सिद्ध हो जाता है कि—प्रकृति का चेतनी करण और मानवीकरण पन्त के प्रकृति मानव तत्व का प्रतीक है। उन्होंने जितने मानवीय रूप व्यापार और भावनानुभूति का दान किया है उतना इस काल में किसी दूसरे कवि ने नहीं।

**दार्शनिक दृष्टि का प्रसार:**—कवि पन्त की प्रायः सभी विशेषतः प्रकृति सम्बन्धी कविताओं का निष्कर्ष दार्शनिक दृष्टि का प्रसार है। कविता के उपसंहार में पहुँच कर कवि अपने दार्शनिक भावों को रोक नहीं पाता और वे बरबस कवि

की दार्शनिकता की छाप काव्य के अंत में छोड़ जाते हैं। इस मत की पुष्टि के लिए यहाँ हम दो कविताओं 'सन्ध्या तारा' और 'नौका-विहार के उपसंहार की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। 'संध्या तारा' के उपसंहार में कवि कहता है—

जगमग जगमग नभ का आँगन लद गया कुन्द कलियों से धन।
वह आत्म और यह जगदर्शन।

'नौका-विहार' शीर्षक कविता का उपसंहार कवि इस रूप में करता है—

मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान।

इसी प्रकार की दार्शनिक झाँकी कवि की अन्य कविताओं में भी मिलती है।

**प्रश्न** (४)—(क)—नीचे लिखे काव्य खंडों का अर्थ सरल भाषा में समझाइये। भाव को स्पष्ट करने लिए आवश्यक टिप्पणी भी दीजिये।

पश्चिम नभ में हूँ रहा देख.........वह निष्फल इच्छा से निर्धन।

(बी० ए० परीक्षा १९४६ का० वि० वि०)

**उत्तर**—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ ३८६

(ख) नीचे लिखे अवतरणों की प्रसंग-सहित व्याख्या कीजिए तथा उनका-भाव सौन्दर्य दिखाइये:—

छिपा रही थी मुख शशि बाला.........गूँथ दिया ताना बाना।

(बी० ए० परीक्षा १९४७ का० वि० वि०)

**उत्तर:**—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ ३६६, ३६७।

(ग) नीचे लिखे उद्धरणों की व्याख्या प्रसंग निर्देश पूर्वक कीजिये तथा उनका काव्य सौन्दर्य समझाइये:—

किस-छवि किस मधु के.........मुकुल म्लान?

(बी० ए० परीक्षा १९४९ का० वि० वि०)

**उत्तर:**—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ ३७३।

(घ) प्रसंग निर्देश पूर्वक व्याख्या कीजिए:—

तुम मांस हीन.........संस्कृति समासीन।

(बी० ए० परीक्षा १९५४ का० वि० वि०)

**उत्तर:**—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ ३८०, ३८१।

# ६—महादेवी

**परिचयः**—श्री महादेवी वर्मा का जन्म संवत् १९६४ में फर्रुखाबाद में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गोविन्द प्रसाद वर्मा तथा माता का नाम श्रीमती हेमरानी देवी था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा इन्दौर में पूर्ण हुई। घर पर इन्हें संगीत और चित्रकला की शिक्षा दी गई। सं० १९७३ में इनका विवाह डा० स्वरूप नारायण वर्मा के साथ हुआ। श्वसुर के देहान्त के बाद इन्होंने पुनः अध्ययन प्रारंभ किया तथा सं० १९८५ में क्रास्थ वेस्टगर्ल्स कालेज प्रयाग से बी० ए० की परीक्षा पास की और बाद में प्रयाग में ही एम० ए० की भी परीक्षा पास की। साहित्य रचना की ओर इनकी रुचि बचपन से ही थी। इनकी प्रारंभिक रचनायें 'चाँद' में प्रकाशित हुईं और बाद में तो शनैः शनैः इन्होंने अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्य के भंडार को भरने में अपनी साहित्य साधना का अच्छा परिचय दिया। कुछ दिनों तक इन्होंने चाँद का संपादन भी किया था। इधर कुछ दिनों से इन्होंने 'साहित्य-संसद' नाम की एक संस्था भी स्थापित की है। आज कल आप प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका हैं।

**सम्मानः**—'नीरजा' पर महादेवी जी को ५००) सेक सरिया पुरस्कार तथा 'यामा' पर १२००) रु० मंगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त हो चुका है।

**रचनायें:**—महादेवी जी ने पद्य और गद्य दोनों लिखा है। इन की रचनाओं का वर्गीकरण निम्नप्रकार से किया जा सकता है।

**काव्यः**—नीहार, नीरजा, सान्ध्य गीत और दीपशिखा। यामा में नीहार, रश्मि और नीरजा की कविताओं का संग्रह है।

**निबंधः**—अतीत के चल चित्र, शृङ्खला की कड़ियाँ।

**आलोचनाः**—हिन्दी का विवेचनात्मक गद्य।

**भाषाः**—महादेवी जी की भाषा, संस्कृत गर्भित खड़ी बोली है। प्रारंभ में इन्होंने ब्रज भाषा को अपनाया था पर बाद में इन्होंने खड़ी बोली को ग्रहण

किया। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है। इनकी भाषा कोमल मधुर प्राञ्जल, और सौष्ठव प्रधान है तथा इसमें शुष्कता, नीरसता और कर्कशता नहीं आने पाई है। इनकी भाषा में दुर्लभ पीड़ा है।

**शैली:**—श्री महादेवी जी की शैली उत्तरोत्तर विकासोन्मुख रही है। 'नीहार' इनकी प्रारंभिक शैली का प्रमाण है जो कि शब्द प्रधान है भाव प्रधान नहीं। किन्तु 'नीरजा' में भाव और भाषा दोनों साहचर्य भाव से प्राप्त होते हैं तथा 'दीपशिखा' इनकी प्रौढ़ शैली का सुन्दर नमूना है। इनके गीतों में लाक्षणिक प्रयोग मनोहर हैं। इनकी शैली और भाषा को समझने के लिए इनके प्रतीकों को समझना आवश्यक है। इनकी शैली में अमूर्त भावों के लिए मूर्त भाविनी नियोजना अत्यधिक मिलती है। इनकी शैली आत्मा और मन की सूक्ष्मता से निर्मित है।

**काव्यगत विशेषताएँ:**—श्री महादेवी जी वर्मा की रचनाओं में निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती हैं—

(१) ये आत्मपक्ष की कवियित्री हैं अतएव अन्य कवियों की अपेक्षा इनमें आत्म निरीक्षण की मात्रा का आधिक्य है।

(२) इनके काव्य में रहस्यवाद की अनुपम झाँकी मिलती है तथा उसमें संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सफल चित्रण है।

(३) इनका प्रकृति चित्रण बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है तथा इन्हें प्रकृति के अन्दर भगवान के सौन्दर्य की झलक प्राप्त होती है।

(४) इनकी रचनाओं में मानव-हृदय की सूक्ष्मतम प्रवृत्तियों और अनुभूतियों का सुन्दर समावेश मिलता है।

(५) इनकी कविताओं में भावनाओं तथा कल्पनाओं की बहुलता है।

(६) इनकी रचनाओं में लोकपक्ष का अभाव है।

(७) इनकी रचनाएँ निराशावाद से ओत प्रोत हैं।

(८) छायावाद के प्रभाव के कारण इनकी रचनायें दुरूह हो गई हैं।

(९) इनका साहित्य भारतीय दर्शन पर आश्रित है।

(१०) अचेतन प्रकृति में मानवीय चेष्टाओं को चित्रित करने में इन्हें अद्वितीय सफलता मिली है।

(११) इनकी आलोचना शैली चिन्तन प्रधान है जिसमें विचारों तथा अनुभवों का समावेश है।

(१२) गद्य तथा पद्य दोनों में ही इन्हें समान रूप से सफलता मिली है।

(१३) इनका भाव-पक्ष तथा कला पक्ष दोनों ही उत्तम हैं।

(१४) इनके प्रत्येक स्वर में विरह की वेदना सुनाई पड़ती है।

(१५) इनकी कविताओं में एक पीड़ा है, एक व्यथा है, एक कसक है जो आँसू बनकर गिरती है।

**समीक्षा:**—श्री महादेवी जी वर्मा की विचार धारा दार्शनिक है। इनमें अद्वैतवाद का विशेष प्रभाव पड़ा है। इन की काव्य-साधना एक साधिका की अपने साध्य के प्रति आत्म समर्पण का परिणाम है। इनका एक निश्चित लक्ष्य है और उसी ओर ये निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। इन्होंने अपने एकाकीपन को दूर करने के लिए प्रकृति को अपनी सहचरी बना लिया है। इनकी साधना में परम-तत्व, आत्म तत्व और प्रकृति तत्व का प्राधान्य है। ये उच्च कोटि की रहस्यवादी कवियित्री हैं। इनकी रचनाओं में प्रिय रूपी परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय-निवेदन है। ये कहती हैं कि—

मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है।

× + +

वीणा भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।

ये प्रकृति के द्वारा अपने प्रेम-व्यापारों का सौदा करती हुई पीड़ा को आमंत्रित करके कहती है—

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की पीड़ा।
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा, तुम में ढूँढ़ूँगी पीड़ा॥

जीवन की निराशा में कवियित्री प्रिय-मिलन की उत्कंठा को सुख का प्रतीक मान कर कहती है—

मेरे छोटे जीवन में, देना न तृप्ति का कण भर।
रहने दो प्यासी आँखें, भरतीं आँसू के सागर॥

कवियित्री की कविता में अद्वैत का स्वर फूट कर इस प्रकार निकल पड़ा है—

"तुम सो जाओ मैं गाऊँ।
मुझको सोते युग बीते तुमको यो लोरी गाते।
अब आओ मैं पलकों में, स्वप्नों के सेज बिछाऊँ॥

विरह की वास्तविक स्थिति में मन की विकलता का भाव व्यक्त करती हुई कवियित्री अपनी रचना 'दीप शिखा' में कहती है—

"मैं कण-कण में डाल रही अलि!
आँसू के मिस प्यार किसी का।
मैं पलकों में पाल रही हूँ,
यह सपना सुकुमार किसी का॥"

कहीं कहीं कवियित्री का दुःखवाद प्रबल होकर कह उठा है—

"चिन्ता क्या है हे निर्मम, बुझ जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरा ही, पीड़ा का राज्य अँधेरा॥"

कवियित्री की पीड़ा अज्ञात है, विरह असीम है—

"अलि! विरह के पंथ में,
मैं तो न इति अथ मानती री।"

कवियित्री का मन स्वयं कल्पना कर लेता है कि जिस प्रिय की इन्हें खोज है वह इनके हृदय में ही स्थित है—

"गूँजता है उर में न जाने,
दूर से संगीत सा क्या?
आज खो निज को मुझे,
खो या मिला विपरीत सा क्या?'

कवियित्री महादेवी जी के काव्य में रहस्यात्मक भावनाएँ प्रकृति के माध्यम से ही व्यक्त होती हैं इसी कारण इनके गीतों में संकेतात्मकता अधिक है और प्रकृति का भव्य रूप ही इनके गान का विषय बन गया है। ये कहती हैं—

सौरभ का फैला केश जाल,
करतीं समीर परियाँ विहार !
गीली केशर मद झूम झूम,
पीते तितली के नव कुमार ?
मर्मर का मधु संगीत छेड़,
देते हैं हिल पल्लव अजान !

प्रकृति को नारी के रूप में देखती हुई, पावस, वसन्त, रात्रि तथा शरद के अनेक रूपों में उसकी अवतारणा करती हुई कवियित्री कहती है कि—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से,
आ वसन्त रजनी
तारक तव नव वेणी बन्धन,
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि वलय सित घन अवगुंठन,
मुक्ता हल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपने
पुलकती आ वसन्त रजनी ।

तुलनात्मक दृष्टि से महादेवी जी वर्मा प्रसाद और निराला के बीच की कड़ी हैं। इनके गीतों में प्रसाद की भाव प्रवणता और निराला के गीतों का चिंतन दोनों का समावेश हो गया है। वास्तव में इनके गीतों में भाषा, भाव शैली और छंद संगीत की जो पूर्णता है वह अपने अन्दर अपना ही इतिहास छिपाए हुए है।

## यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो !

**संदर्भः**—यह श्री महादेवी वर्मारचित रहस्य प्रधान संगीतमय गीत है। इसमें कवियित्री ने आत्मपरितोष की भावना को बड़े ही सुंदर ढंग से व्यक्त किया है

( पृष्ठ-११८ )

**शब्दार्थः**—दीप=आत्मा। जलने दो=जीवित रहने दो। रजत=चांदी।

आरती-वेला=आरती के समय। कल-कंठों=सुंदर कंठों। उपल=पत्थर। अजिर = वायु=आंगन।

**व्याख्याः**—यह मन्दिर का दीप········गलाने को गलने दो।

कवियित्री श्री महादेवी वर्मा अपने मन के भाव को व्यक्त करती हुई कहती हैं कि—मेरे प्राणरूपी दीपक को चुपचाप जलने दो। चाँदी के समान श्वेत रंग वाले शंख और घड़ियाल तथा सोने के से रंगवाले बाँसुरी तथा सितार के स्वर आरती के समय शत शत ध्वनियों से पूर्ण हो गये। जब कल कंठों ( सुन्दर गलों ) का मेला लगा था अर्थात् आरती वेला के समय जब सुन्दर रागनियाँ प्रतिध्वनित हो रही थीं तो पत्थर की प्रतिमा हँस रही थी और अंधकार खेल रहा था। इष्ट ( देवता ) अब मन्दिर में अकेला ही है। आंगन का शून्य स्थान गलाने के लिए ही है, इसलिए इसे घुलता रहने दो।

**विशेषटिप्पणीः**—गीत की उक्त पंक्तियों में आत्मा को मन्दिर का दीपक सिद्धकिया गया है।

**शब्दार्थः**—अलिन्द=भ्रमर। प्रणत=विनम्र। अंक=चिन्ह। दहली=देहरी। अक्षत=चावल। अपरिमित=अधिक। अंतर्हित=विलीन। अर्चित=अर्चना की गई।

**व्याख्याः**—चरणों से चिन्हित ·······लौ में पलने दो।

कवियित्री कहती है कि भौंरों के चरणों से स्पर्श की गई भूमि सोने के समान चमकीली दिखाई पड़ती है। चन्दन के देहरी पर प्रणाम करने वालों के सिरों के अंक (चिन्ह) बने हुए हैं। फूल झड़े पड़े हैं। श्वेत अक्षत, धूप, अर्घ्य और नैवेद्य काफी मात्रा में बिखरा पड़ा है। किन्तु ये सब तो अंधकार में विलीन हो जायेंगे अतएव दीपक की लौ में ही सबकी अर्चित कथा व्याप्त रहने दो।

**विशेषटिप्पणीः**—गीत की उक्त पंक्तियों में दीपक की लौ को आत्मा का प्रतीक माना गया है।

**शब्दार्थः**—मनके=मणियां। प्रतिध्वनि=गूँज। प्रस्तरों=पत्थरों। मसि सागर= स्याही का समुद्र। मुखर=शब्द।

**व्याख्याः**—पल के मन के········फिर से ढलने दो।

कवियित्री कहती हैं कि पलरूपी मणियों की माला को फेर कर विश्व का

पुजारी सो गया। उसकी प्रतिध्वनि का इतिहास पाषाणों के बीच में खो गया है यह संपूर्ण जीवन सांसों की समाधि के सदृश प्रतीत होता है और इस जीवन का मार्ग अब स्याही के सागर के सदृश ज्ञात होता है जिसके कारण संसार के कण कण का मुखरित स्पन्दन रुक गया है अतएव इस प्राण रूपी स्पन्दन को दीपक की ज्वाला में जलने दो।

**विशेषटिप्पणी:**—गीत की उक्त पंक्तियों में कवियित्री ने निरंतर साधना के मार्ग पर बढ़ते रहने के अपने भाव को व्यक्त किया है।

**शब्दार्थ:**—झंझा=वर्षा सहित वायु के झोंके। दिग्भ्रान्त=दिशा भ्रम। मूर्च्छा=अचेतावस्था। प्रहरी=पहरेदार। प्रभाती=प्रातः काल।

**व्याख्या:**—झंझा है दिग्भ्रान्त........प्रभाती तक चलने दो।

कवियित्री कहती है कि वर्षा सहित तीव्र वायु के झोंके दिशाओं का ज्ञान नष्ट कर रहे हैं। रात्रि गहरी मूर्छा में बेसुध सोई पड़ी है अतएव आज प्रकाश का यह छोटा पहरेदार दीपक मन्दिर का पुजारी बन जावे। जब तक दिन की हलचल न लौट आवे अर्थात् जब तक प्रभात की लालिमा आसमान में न छा जावे तब तक (सारी रात) यह दीपक प्रतिक्षण अपने प्रकाश से युक्त होकर जागता रहेगा अर्थात् जलता रहेगा। मंदिर का यह दीपक सायंकाल का दूत है अतएव इसे प्रभात काल तक अपना प्रकाश बिखेरने दो।

**विशेषटिप्पणी:**—गीत की उक्त पंक्तियों में दीपक को संध्या का दूत सिद्ध करने का सफल प्रयास किया गया है।

## निःश्वासों का नीड़ निशा का, बन जाता जब शयनागार

**संदर्भ:**—श्री महादेवी वर्मा रचित क्लिष्ट कल्पना से परिपूर्ण यह एक सुन्दर गीत है। इसमें कवियित्री ने संसार की मूढ़ता, नश्वरता तथा चिर सत्यता पर अच्छा प्रकाश डाला है।

(पृष्ठ-११९)

**शब्दार्थ:**—निःश्वासों=बाहर जाने वाली साँसें। नीड़=घोंसला=शरीर=

प्रकृति। निशा=विषाद=रात्रि। शयनागार=सोने का कमरा=आत्मपरितोष=निःश्वास का शयनागार। मुक्तावलियों के वन्दन वार=तारिका पंक्ति।

**व्याख्या**—निःश्वासों का·········अस्थिर है संसार।

कवियित्री महादेवी वर्मा कहती हैं कि:—जब रात्रि सांसों के बने घोंसले में विश्राम करती है। वन्दन वार में गुँथी हुई मुक्तावलियाँ टूट जाती हैं। उस समय बुझते हुये तारों के शांत नेत्रों में हाहाकार व्याप्त हो जाता है और आँसू के रूप में वे कहते हैं कि यह संसार कितना अस्थिर है। भाव यह है कि—अंधकार पूर्ण रात्रि में तारे निकल आते हैं और अन्धकार के घनेपन के बढ़ाव के साथ साथ उनकी भी संख्या बढ़ती जाती है। किन्तु अन्त में उन्हें भी लुप्त हो ही जाना पड़ता है। ओस के रूप में उनके अश्रु नीचे आही गिरते हैं इससे सिद्ध होता है कि यह संसार अस्थिर है।

**शब्दार्थः**—पल्लव=नवीन पत्ते=किसलय। मादक=मनोहर=मोहक=मुग्ध करने वाला।

**व्याख्याः**—हँस देता जब···············मादक है संसार।

प्रभात काल में जब पूर्व दिशा में सूर्योदय के कारण लालिमा छा जाती है उस समय ऊषा अपने सुनहले अंचल में रोली बिखेर कर हँसती हुई मालूम पड़ती है। जल की लहरों पर सूर्य की किरणें पड़ कर ऐसी प्रतीत होती हैं मानो मचल रही हों। उस समय कलियाँ मानों पत्तों के कोमल घूँघट को हटा देती हैं अर्थात् पत्तों के भीतर से खिल पड़ती हैं। वे वृन्तों पर झूलती हुई अधखिली कलियाँ कह पड़ती हैं कि यह संसार कितना मोहक जान पड़ता है।

**विशेषटिप्पणीः**—गीत की उक्त पंक्तियों में प्रातः काल के सौन्दर्य के साथ साथ संसार की मोहकता का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है।

**शब्दार्थः**—सौरभ=सुगंधि=पराग। सार=तत्व=रस।

**व्याख्याः**—देकर सौरभ···········निष्ठुर है संसार।

वायु के द्वारा अपनी सुगंधि का दान देकर जब कुम्हिलाये हुये पुष्प कहते हैं कि जिस वायु के मार्ग में गिर कर हम बिछ पड़े वही हमारी आँखों में धूल भर देती है और जो भ्रमर हमारे खिले रहने पर हमारा रस पान करते हैं वे ही मुझे कुम्हिलाये हुए देख कर अब गाने लगे हैं कि इनमें (मुझ में) क्या सार

भरा है। इतना ही नहीं पत्तियों का मर्मर शब्द भी रुदन करते हुए कहता है कि यह संसार कितना निष्ठुर है।

**विशेष टिप्पणी:**—गीत की उपरोक्त पंक्तियों में कवियित्री ने संसार की निष्ठुरता का सप्रमाण चित्रण किया है।

**शब्दार्थ:**—स्वर्ण वर्ण=स्वर्णाक्षर=सुनहली किरणें। गोधूलि=सन्ध्या वेला।

**व्याख्या:**—स्वर्ण वर्ण से.......... मतवाला संसार।

दिन जब अपने जीवन की हार ( पतन ) को स्वर्णाक्षरों से लिख जाता है और गोधूलि वेला आकाश रूपी आँगन में असंख्य दीपक जला जाती है अर्थात् जब सूर्यास्त हो जाता है और आकाश में तारे निकल आते हैं। तब उस पार का अन्धकार अपनी गहराई को बढ़ाता हुआ हँस कर कहता है कि:—अनेक युग बीत गये पर संसार अब तक मतवाला बना हुआ है अर्थात् अपनी धुन में मस्त है।

**विशेष टिप्पणी:**—गीत की उक्त पंक्तियों में संसार की मत्तता ( मतवालापन) का चित्रण सूर्य और नक्षत्र आदि के उदाहरण द्वारा किया गया है।

**शब्दार्थ:**—अमर=जिसका कभी नाश न हो। अज्ञात=अनजान=अपरिचित।

**व्याख्या:**—स्वप्न लोक के..............................पागल है संसार।

स्वप्न लोक के पुष्पों से अपने जीवन का निर्माण करके जब मेरे पागल प्राण अपने राज्य या जीवन को अमर सोचने लगते हैं तब किसी अपरिचित देश से किसी की मधुर झंकार करुणा के स्वरों में गान कर जाती है कि यह संसार कितना पागल है। भाव यह है कि मनुष्य अपनी ऊँची कल्पना में व्यर्थ ही सांसारिक सुख पर भरोसा करता है। यह मानव जीवन और सांसारिक सुख सभी नाशवान हैं।

**विशेष टिप्पणी:**—गीत की उक्त पंक्तियों में आत्मा परमात्मा और प्रकृति के सामंजस्य के साथ साथ अद्वैतवाद के अनहद नाद की ओर भी संकेत किया गया है।

## रजनी ओढ़े जाती थी झिलमिल तारों की जाली

**संदर्भ:**—प्रस्तुत गीत की रचयित्री श्री महादेवी वर्मा हैं। इसमें कल्पनाशील

सौंदर्य और प्रभात के दृश्य का चित्र उपस्थित करने में कवियित्री को आशातीत सफलता मिली है।

## ( पृष्ठ–१२० )

**शब्दार्थः**—रजनी=रात्रि। वैभव=ऐश्वर्य। तटनी=नदी।

**व्याख्याः**—रजनी ओढ़े जाती थी·········तटिनी करती आलिङ्गन।

रात्रिरूपी नारी झिलमिलाते ( जगमगाते ) तारों की जाली लगी हुई साड़ी पहने हुए जारही थी किन्तु उसे इस प्रकार वैभवशाली और ऐश्वर्य युक्त देखकर उससे स्पर्द्धा करने वाली उजियाली अश्रु बहा रही थी। यह उजियाली (प्रकाश) लहरों का चुम्बन कर करके चन्द्र को छूने के लिए मचल सी रही थी। उधर नदी बेसुध होकर अन्धकार मय छाया का आलिङ्गन स्पर्श ) कर रही थी। भाव यह है कि प्रकाश पूर्ण रात्रि थी। तारे झिलमिला रहे थे। चारों ओर शांति और नीरवता व्याप्त थी।

**शब्दार्थः**—मलयानिल=मलयाचल की वायु। अवनी=पृथ्वी।

**व्याख्याः**—अपनी जब करुण कहानी·········मधु से सींचा गलियों में

मलयाचल की वायु जब अपनी करुण गाथा सुना जाती है और इस पृथ्वी का सूखा अंचल आंसुओं से भर जाता है ( तर हो जाता है )। सुगन्धि पल्लव रूपी हिंडोले डालकर कलियों में छिपी रहती है। जब मधु से सींचे हुए मार्गों में किरणें छिप छिप कर आती हैं

**विशेषटिप्पणीः**—गीत की उक्त पंक्तियों में कवियित्री ने पृथ्वी पर पड़ी ओस को मलयवायु से उपमा दी है और पत्तों को हिंडोला बनाया है तथा कलियों में सुगंधि व्याप्त रहने के कारण उसे निद्रित अवस्था में दिखाया है।

**शब्दार्थः**—विधु=चन्द्रमा। पीला मुख फेरा=कांतिहीन होकर अस्त हो गया। प्राची=पूर्व। प्रात चितेरा=सूर्य।

**व्याख्याः**—आँखों में रात बिता·········भर कर डाली।

चन्द्रमा रात्रिभर जागरण करता रहा। उसने आंखों ही आँखों (देखते ही देखते)

रात्रि व्यतीत करदी। जागरण के कारण उसका मुख पीला हो गया। जैसे ही चन्द्रमा ने विदाली कि पूर्वदिशा में प्रभात का चित्र बनाने वाला चित्रकार ( सूर्य ) उपस्थित हुआ। इस प्रकार जब विश्व के कण कण में नव यौवन की लालिमा ( नव जीवन की उमंग ) व्याप्त थी तब मुझ निर्धन को सुनहले स्वप्न दिखाई पड़े। भाव यह है कि रात के बाद दिन का आगमन हुआ। पूर्व दिशा में सूर्य उगा। सारा संसार नव जीवन और नई चेतना से भर उठा। मुझ निर्धन प्रेमिका को उस समय प्रियतम के साथ सारी रात बिताकर जागते हुए उनसे मिलने के स्वप्न दिखाई दिये।

**विशेषटिप्पणी:**—गीत की उक्त पंक्तियों में 'सपनों से भरकर डाली' का प्रयोग करके कवियित्री ने अतीत आशाओं की राशिही उड़ेल दी है।

**शब्दार्थ:**—नख ज्योती=नख का प्रकाश। हीरक जाल=हीरों का समूह। व्रीड़ा=लज्जा।

**व्याख्या:**—जिन चरणों की·······चितवन ने पीड़ा का।

जिन इष्टदेव के चरणों के नाखूनों के प्रकाश मात्र से चमकते हुए हीरों का समूह भी लज्जित हो जाता था। उनपर मैंने धुँधले से दो चार आंसू मात्र चढ़ा दिये। उस समय मेरी पलकें ललचाई हुई थीं और उनपर लज्जा का पहरा पड़ा हुआ था पर प्रिय की छिपी चितवन ने मुझे पीड़ा का साम्राज्य दे डाला अर्थात् प्रिय को स्मरण करके मैं कष्ट का अनुभव करने लगी हूँ।

**विशेषटिप्पणी:**—गीत की उक्त पंक्तियों में भावों का समूह लहलहा उठा है और कवियित्री महादेवी के आराध्य की महानता स्पष्ट हो गई है।

**शब्दार्थ:**—कोष=भंडार। मोती=आंसू से तात्पर्य है।

**व्याख्या:**—उस सोने के सपने को·········करती रहती दीवाली।

प्रियतम के दर्शन के उस सुनहले स्वप्न को देखे कितने युग व्यतीत हो गये। मेरे नेत्र मोती रूपी आंसू बरसा बरसा कर रिक्त हो गये हैं। मुझे अपना सूनापन इतना अधिक प्रिय है कि मैं इस सूनेपन के राज्य की मतवाली रानी बन गई हूँ और अपने प्राण रूपी दीपक को जलाकर दीवाली मना रही हूँ अर्थात् मेरे प्राण इस प्रियतम के विरह में निरन्तर जलते रहते हैं।

**विशेष टिप्पणी:**—गीत की उक्त पंक्तियों में सूनेपन के साथ विरह की अभिव्यक्ति का अच्छा रूप खड़ा किया गया है।

**शब्दार्थ:**—निर्मम=ईश्वर=प्रियतम=कठोर=निष्ठुर। दीपक=प्राण।

**व्याख्या:**—मेरी आँहें सोती हैं..........पीड़ा का राज्य अँधेरा।

इन ओठों की आड़ में वन्दी वनकर मेरी आँहें सोती रहती हैं। इन मतवाली आँहों और उसासों में मेरा सर्वस्व छिपा है। हे निर्मोही प्रियम! यदि तुम्हारे विरह में मेरे प्राण रूपी दीपक बुझ भी जायें तो मुझे कोई चिंता नहीं है क्योंकि इससे निश्चय ही तेरे पीड़ा के राज्य में अन्धकार छा जायगा।

**विशेष टिप्पणी:**—गीत की उक्त पंक्तियों में विरहिणी के आत्म गौरव आत्म त्याग और आत्म परितोष की अनुपम व्यञ्जना की गई है।

## पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।

**संदर्भ:**—प्रस्तुत गीत "पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला" कवियित्री श्री महादेवी वर्मा की प्रिय-मिलन की जिज्ञासा, प्रेरणा और प्रयत्न के भाव से ओत प्रोत एक सुन्दर रचना है। इसमें कवियित्री ने वियोग जनित उच्छ्वास और अश्रुओं के प्रवाह के बन्धन में अपने प्रियतम को वाँधने की मधुर व्यक्तित्वमय कल्पना की है।

**शब्दार्थ:**—पंथ=राह। अपरिचित=अनजान=अज्ञात। अकेला=एकाकी। चरण हारे=थके पाँव=निराश व्यक्ति या जीवन। शूल=विपाद=कष्ट। अङ्कसंसृति =गोद रूपी विश्व=संसार=संसार-सागर।

**व्याख्या:**—पंथ होने दो अपरिचित........तिमिर में स्वर्ण-वेला।

कवियित्री महादेवी वर्मा अपने प्रिय (ब्रह्म) की खोज में अपने एकाकी प्रयत्न को महत्व देकर उसके विरह में ही जलना उत्तम समझती हैं। कवियित्री अपनी भावना को व्यक्त करती हुई कहती हैं कि हे प्रियतम! मैं तुम्हारे प्रेम मार्ग में अपने एकाकी विरह के साथ ही तड़पते हुए तुम्हारे मिलन के लिये आशावान हूँ। दूसरों के पाद-प्रयत्न भले ही असफल हो जायें और दूसरे अपने संकल्प को विघ्न वाधा और विपाद को समर्पण करके तुम्हारे प्रेम मार्ग से भले

ही विरत हो जायें पर विरह की जलन और उन्माद से पूर्ण हमारे प्राण तुम्हारे मार्ग में अपने अमर चिह्न छोड़ते हुए निरन्तर तुम्हारी प्राप्ति के लिए आगे बढ़ते ही जायेंगे। हम अपने विरह की तड़पन और जलन के द्वारा इस अंधकार मय रात्रि के सदृश संसार को प्रभात कालीन प्रकाश के रूप में परिणित कर देंगे। भाव यह है कि हम विरहिणी इस दुख में भी सुख का अनुभव करेंगी।*

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में कवियित्री का भाव अपने आप को समर्पित कर के अपने प्रिय को प्राप्त करने में मिटकर अमर होने से हैं ।

## ( पृष्ठ-१२१ )

**शब्दार्थः**—शून्य=आकाश । हाट=मेला ।

**व्याख्याः**—दूसरी होगी कहानी........चिनगारियों का एक मेला ।

कवियित्री महादेवी जी कहती हैं कि हे प्रियतम तुम ! मुझे वैसी कोई साधारण विरहिणी न समझो जिसके विरह के स्वर आकाश में मिट गये हों अथवा जिसके प्रिय के मार्ग पर चलने के चिह्न मिट्टी में मिल गये हों मैं। तुम्हारे मार्ग पर अपने आँसुओं और निःश्वासों की सघनता का ऐसा मेला ( भीड़ ) लगाती चल रही हूँ जिसे देखकर प्रलय भी आश्चर्यित हो जायेगी भाव यह है कि मैं तुम्हारे विरह में इतना अश्रु बहा रही हूँ तथा ऐसी दीर्घ निःश्वास भर रही हूँ जिससे चारों ओर प्रलय कालीन हाहा कार मच जायेगा।

**विशेष टिप्पणीः**—उक्त पद में कवियित्री ने अपने विरह जनित उच्छ्वास और अश्रुओं के प्रवाह के बन्धन में अपने प्रियतम को बाँधने ( वश में करने ) की मधुर व्यक्तित्वमय कल्पना की है।

**शब्दार्थः**—रोष=क्रोध। भ्रू-भंगिमा=भौंहों का टेढ़ापन। सहेजो=सँवारो। स्वप्न-शत-दल=कमल रूपी सदेच्छा=दर्शन की पिपासा।

**व्याख्याः**—हास का मधु दूत............विरह में है दुकेला !

कवियित्री महादेवी वर्मा जी अपने भावों को सन्देश वाहकों के रूप में प्रस्फुट करती हुई कहती हैं कि—हे प्रियतम ! चाहे आप हास के मधु-दूत को

भेजें या अपने रोष की टेढ़ी भ्रूकुटियों के पतझार को सँवारे पर मेरा यह शांत हृदय अपने कमल रूपी सदेच्छा अथवा दर्शन् की पिपासा के वेदनामय जल से उसे ग्रहण करने से न चूकेगा। इस एकाकी विरह की घड़ी में वह आपका मिलन ही दुकेला होगा अर्थात् आपके मिलन और दर्शन के बिना मेरे प्रेम की तृप्ति कभी भी नहीं हो सकती है।

**विशेष टिप्पणी:**—उक्त पद में कवियित्री ने कल्पना को भावों की सहचरी के रूप में व्यक्त किया है, और अपने प्रिय के विरह को ही सुख सदृश माना है।

## सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पाला।

**संदर्भ:—**प्रस्तुत गीत में कवियित्री सुश्री महादेवी वर्मा ने ईश्वर की सर्व व्यापी सत्ता का समर्थन करते हुए आँसुओं के द्वारा विश्व को घेरने की अनुपम भावना को अनुपम ढंग से चित्रित किया है।

**शब्दार्थ:—**आँसू उजले=दुख की सत्यता। सपनों=आलोक दर्शन की लालसा। ज्वाला=वियोग। मकरन्द भरा=इच्छा की पूर्ति की। सौरभ=इच्छा। दीपखिला=आत्मा प्रसन्न हुई। फूल जला=इच्छा मरी।

**व्याख्या:**—सब आँखों के आँसू.................कब फूल जला!

संसार के दुख सुख, विरह मिलन, आशा निराशा आदि की व्यापकता, सामंजस्य और विषमता आदि के विषय में चिन्तन करती हुई कवियित्री महा देवी वर्मा कहती हैं कि संसार के प्राणिमात्र के नेत्रों में दुःख की सत्यता और स्वप्नों में आलोक के दर्शन की लालसा भरी रहती है। जिस व्यक्ति ने परब्रह्म परमात्मा को अपना वियोग समर्पित कर दिया उसने उसके द्वारा अपनी कामना की पूर्ति करा ली। प्रेमिका या भक्त वियोग में घुल घुल कर अपने आलोक को लुटा देता है इसके बदले में वह इच्छा पूर्ति रूपी सौरभ को बिखेर देता है। इस प्रकार जीव और ब्रह्म अथवा भक्त और भगवान या प्रेमिका तथा प्रेमी दोनों एक ही राह केबट्टे वट्टे (संगी या पथिक) हैं पर इन दोनों में अन्तर यही है कि एक दीपक के समान प्रकाश प्रदान करने वाला और दूसरा पुष्प के समान विकसित होकर सुगन्ध धारण करने वाला है और इनकी विषमता यह है कि

दीपक जलने का काम कर सकता है विकसित होने का नहीं और पुष्प विकसित होने का काम करता है जलने का नहीं ।

**शब्दार्थः**—शत शत निर्झर=अश्रुओं के सौ सौ जल प्रपात । उर्मिल= लहर ।

**व्याख्याः**—वह अचल धरा को..................तन बदला ?

वह पारब्रह्म परमात्मा सैकड़ों चंचल सोतों का निर्माण करके इस अचल पृथ्वी को भेंट रहा है और यह भक्त अपने अश्रुओं के सौ सौ प्रपातों के जल निर्माण द्वारा पृथ्वी को घेरे हुए है । भाव यह है कि प्रिय या परमात्मा के विरह में विरहिणी के या भक्त की आँखों से जो आँसुओं की धारा प्रवाहित हो रही है उसका इस पृथ्वी पर या संसार में प्राकृतिक जल साधनों से अधिक व्यापक प्रभाव पड़ रहा है । भला सागर का हृदय कभी पत्थर हो सकता है ? और क्या पर्वत् अपने कठोर तन को वदल सकता है ? अर्थात् नहीं । भाव यह है कि प्रिय चाहे कितनी ही कठोरता का परिचय दे पर प्रेमिका या विरहिणी के हृदय से दया और प्रेम तथा सहानुभूति पूर्ण भाव कभी नही वदल सकते । उसके नेत्र विरह के विषाद में वरावर ही द्रवित होकर अश्रुपात करते रहेंगे ।

**विशेषटिप्पणीः**—उक्त पद में कवियित्री ने आंसुओं से विश्व को घेरने की अनुपम व्यंजना की है ।

**शब्दार्थः**—क्षुर=उस्तरे की धार=आशंका । अंगारों=निःश्वासों । केशर किरणों=सुखद स्वप्न । कञ्चन=सोना । हीरक=हीरा ।

**व्याख्याः**—नभ-तारक सा............हीरक पिघला ?

आकाश के नक्षत्रों के समान खंडित और पुलकायमान यह उस्तरे की धार को चुम्बन कर रहा है और वह अंगारों के सदृश पराग का पान करके केशर कि किरणों के समान झूम रहा है । भाव यह है कि प्रेमी अपने मिलन प्रकाश के द्वारा प्रेमिका को भले ही अस्तुरे की धार के समान कष्ट दे ले या तड़पाले पर प्रेमिका अपने प्रियतम के वियोग में अपने निःश्वासों का पान करके सुखद स्वप्न की आशा में मस्त होकर झूमती ही रहेगी अर्थात् भक्त भगवान की प्राप्ति के लिए तथा प्रेमिका अपने प्रेमी के लिए अपने सभी सुखों का त्याग करके उसके

वियोग में जलना ही श्रेयस्कर समझते हैं। अपने मूल्य को बढ़ाने के लिए सोना टूटने की अपेक्षा पिघलना ही उत्तम समझता है और हीरा पिघलने की अपेक्षा टूटना ही श्रेयस्कर समझता है।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद की पंक्तियों में कवियित्री की कल्पनाएँ चिर सत्य की आस्तिकता की समर्थन कर रही हैं।

## ( पृष्ठ-१२२ )

**शब्दार्थ:**—नीलम=आत्मा=एक पक्षी। मरकत=पन्ना प्रियतम। सम्पुट=आवरण=अंजली=डब्बा। जीवन मोती=सुखद जीवन। आभा=प्रकाश। स्पन्दन स्फुरण।

**व्याख्या:**—नीलम-मरकत.........अंकुर हो निकला!

ब्रह्म और आत्मा स्वरूप नीलम और मरकत के दो ऐसे सम्पुट हैं जिनमें मोती सदृश जीवन का निर्माण होता है। इसी में सब प्रकार का रूप रंग ढलता है तथा उस सर्व व्यापी परमात्मा की सत्ता का स्फुरण होता है आकाश में जो बिजली की चमक से युक्त बादल बना हुआ है वही धूल या पृथ्वी में अंकुर बन कर फूट निकलता है। भाव यह है कि उसी ईश्वर की सत्ता चारों ओर व्याप्त है। सूर्य चन्द्र आकाश बादल बिजली, वृक्ष आदि सब उसी की देन हैं और उसी का गुणानुवाद गाते हैं।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में ईश्वर की सर्व व्यापी सत्ता का समर्थन करते हुए पृथ्वी और आकाश में ईश्वर की लीला का चित्र अंकित किया गया है।

**शब्दार्थ:**—संसृति=संसार। अंकन=अंकित होना=चिन्ह

**व्याख्या:**—संसृति के प्रति पग............सत्य ढला।

कवियित्री अपनी कल्पना और भावों के निष्कर्ष पर पहुँचती हुई कहती हैं कि हे प्रियतम! इस संसार अथवा सृष्टि के पथपर चलती हुई मुझ बिरहिणी के सांसों की गति को तुम बीनलो और मेरे निर्वाण और विनाश में अपनी

इच्छाओं के क्षण की गिनती करलो अर्थात् मैं तुम्हारे विरह में ही बराबर तड़पती और जलती रहूँ तथा मेरे निर्माण और विनाश की घड़ी का तुम्हें ध्यान रहे तथा तुम्हारी ही याद में मैं प्राणों का विसर्जन कर सकूँ। इस प्रकार जलने वाले, तथा विकसित होने वाले संसार में घुलमिल कर यह विरही एकाकी प्राण आगे बढ़ चला और स्वप्न तथा कल्पना में ही उस प्रिय का सत्य और साकार रूप ढल पड़ा अर्थात् उसके दर्शन प्राप्त हो गये।

☞ **विशेषटिप्पणी:**—उक्त पंक्तियों में 'अहं ब्रह्मास्मि' की ध्वनि समाई हुई है।

## तू धूल भरा ही आया !

**संदर्भ:**—प्रस्तुत गीत में कवियित्री सुश्री महादेवी वर्मा ने जीव और संसार के वास्तविक रूप को प्रकट करते हुए आवागमन का मनोरम और सुखमय चित्र उपस्थित किया है।

**शब्दार्थ:**—साधोंने=इच्छाओं ने। मदिरा=सांसारिक सुख। झंझा आँधी=माया। दृग मींचे=भुलावे में डाल दिया। आलोक=सुख=प्रकाश। तिमिर=विषाद दुःख। कुहुक बिछाया=धोखे का जाल फैला दिया। विषाद=दुःख। पंकिल=कीचड़ युक्त=पाप युक्त। उर का स्वर्ण=आत्मा। पाथेय हीन=निराश्रित=राह सामग्री से हीन। आख्यान=कथा। अंचल=मृत्यु रूपी माँ का अँचरा।

**व्याख्या:**—तू धूल भराही आया·· ······संकेत बुलाया।

जीव और संसार के संबंध में अपना विचार प्रकट करती हुई कवियित्री महादेवी जी कहती हैं कि—हे जीव रूपी बालक तू इस संसार में धूल धूसरित ही आया और तुझे मृत्यु रूपी माता ने अपनी गोदी में धारण कर लिया। तुम्हारे जीवन मार्ग के कणों को तुम्हारी इच्छाओं ने सांसारिक सुख से सींच दिया और माया रूपी आँधी ने तुम्हें अपने भुलावे में डालकर परमात्मा की ओर से विमुख करने के लिए बार बार तुम्हारी आँखों को बन्द कर दिया। संसार के सुख और दुख रूपी अन्धकार ने तुम्हारे मार्ग में प्रवंचना का जाल फैला दिया। इस प्रकार तुम उसमें उलझ कर परमात्मा से विमुख हो बैठे। यह मन तो निःश्वास रूपी खिलौनों से क्रीड़ा करने का इच्छुक था पर इस शरीर के रोम रोम में बर्फ के समान परवशता पड़कर इसे विवश बना बैठी। मायामोह रूपी पिपासा

की छाया लुभाती हुई अपने में भुलाये रह गई। संसार केमहान कष्ट और विपाद ने इस मानव शरीर को कीचड़दार बनाकर बोझिल कर दिया। और इन चरणों में व्यथा ( दुख ) के भारी काँटे चुभ गये। इस शरीर की साँस ने इसे जलाकर राख करके इसमें बसने वाले जीव ( आत्मा ) को इस पिंजड़े ( मानक तन ) से उड़ादिया। जब राह के सभी साधन साथ छोड़कर अलग हो गये और केवल अपनी गाथा ही शेष रह गई तो उस जन्म देनेवाले परमात्मा ने संकेत देकर बुलालिया।

( पृष्ठ-१२३ )

**शब्दार्थ:**-उन्मन=खिन्न। उसके=मृत्यु रूपी माँ अथवा निर्माणकर्ता ईश्वर। तड़ित छटा=विद्यु त की आभा। तन सजल घटासा=श्यामल शरीर।

**व्याख्या:**—जिस दिन लौटा········जननी ने अंक लगाया।

जिसदिन यह जीव अथवा ब्रह्म अपने निर्माण कर्ता ईश्वर के पास लौटा और उसने इसे उदास श्रांत, क्लांत देखा तो उसके नेत्र दया पूर्ण आँसुओं से भर भर आये और उसने अपनी चितवन की छाया में अपने नेत्रों के आँसुओं से इसे नहला दिया। जीव के पलकों पर अपने असंख्य शीतल चुम्बन का स्पर्श करके और अपनी साँसों के द्वारा उसके कष्ट और पीड़ा का हरण करके वर्फ के समान अपने चिकने हाथों से उस बेसुध प्राण को गाढ़ी निद्रा में सुला दिया। पुनः नवीन प्रभात काल में उस जीव को अक्षयगति का वरदान देकर तथा उसके शरीर को बादल की घटा के समान जल युक्त बनाकर और बिजली की चमक के समान उसके हृदय को बनाकर पुनः उसे इस संसार में हँसने खेलने के लिए भेज दिया। जब यह जीव रूपी बालक धूल धूसरित संसार में आया तो उसे मृत्युरूपी माता ने अपनी गोद में धारण कर लिया। भाव यह है कि इस जीव ( आत्मा ) का बार बार इस संसार में आवागमन होता रहता है और उसके इस आवागमन का संचालन कर्ता एक मात्र परम ब्रह्म ईश्वर ही है उसी के आदेश से जन्म मृत्यु और संसार की क्रीड़ा के नाटक खेले जाते हैं।

**विशेषटिप्पणी:**—उक्त पद में जीव और ब्रह्म के चिर संबंध को आवागमन के रूपक द्वारा बड़े ही सुंदर ढंग से व्यक्त किया गया है।

## प्रश्नोत्तर:—

**प्रश्न(१):**-पन्त जी की काव्य प्रेरणा सहज और प्राकृतिक है, महादेवी जी की काव्य प्रेरणा चिन्तना प्रधान और दार्शनिक है। इस :प्रेरणा-भेद के कारण दोनों की रचनाओं में जो अन्तर आ गए हैं, उनका उल्लेख कीजिए।

( बी० ए० परीक्षा १९४६ का० वि० वि० )

**उत्तर:**—कवि पंत का निर्माण प्रकृति की गोद में हुआ है। उनका संसार बड़ा ही सुन्दर और आकर्षक है। उनकी कविता का मुख्य आधार है कल्पना तथा उनकी कल्पना का सबसे बड़ा गुण है उसकी मूर्ति विधायिनी शक्ति। पंत की आत्मा ( प्रकृति ) अपनी व्यथा में मूक है। उनका वाह्य क्रीड़ा कलरव मूक व्यथा का मुखर भुलाव है।

महादेवी जी वर्मा की कविता ज्ञान के अनन्त आकाश के नीचे अजस्त्र प्रवाहमयी त्रिवेणी है। इसमें एक स्वाभाविक मधुरता है। इनका आराध्य महान है। उसके ऊपर ये सृष्टि के अपार सौन्दर्य और वैभव को वार देती हैं। पीड़ा इन्हें अधिक प्रिय है। निष्कर्ष यह है कि 'पन्त' जी की काव्य प्रेरणा सहज और प्राकृतिक है तथा महादेवी जी की काव्य-प्रेरणा चिन्तना प्रधान और दार्शनिक है इस प्रेरणा भेद के कारण इन दोनों की रचनाओं में निम्न अन्तर आ गये हैं:—

(१) पंत ने अपनी कविता में सौन्दर्य का अबोध कैशोर्य लिया है और महादेवी ने वेदना का दग्ध जीवन।

(२) पंत की कविता में प्रकृति एक बालिका की भाँति चित्रित हुई है और महादेवी की कविता में वही विरहिणी की भाँति निवेदन कर रही है।

(३) पन्त के काव्य में क्रीड़ा है तो महादेवी के काव्य में पीड़ा है।

(४) पन्त ने खड़ी बोली को रमणीयता प्रदान की है और महादेवी ने उसे मार्मिकता देकर प्राण प्रतिस्थापना की है।

(५) पन्त की प्रकृति में उनका सौन्दर्य अपनी व्यथा में सर्वत्र मूक है पर महादेवी की प्रकृति में मुखरित हो उठा है।

'पन्त' और 'महादेवी' विषयक काव्य का जो अन्तर यहाँ दिया गया है उसकी पुष्टि के लिए उनके काव्य का निम्न उद्धरण आवश्यक है—

'कवि' पन्त कभी विहगों की चहक और कभी तरु के नीचे सुप्त 'छाया' को देखकर विभोर हो जाते हैं—

विहग-विहग
फिर चहक उठे ये पुंज पुंज
चिर सुभग सुभग

यह तो हुई कवि पन्त के विहगों की चहक अब छाया की सुषुप्तावस्था का रंग देखिये—

कहो कौन, हो दमयन्ती सी
तुम तरु के नीचे सोई
हाय तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि नल सा निष्ठुर कोई ?

पन्त के 'नौका-विहार' का तो पूछना ही क्या है।

शांत स्निग्ध ज्योत्स्ना उज्ज्वल
अपलक अनन्त नीरव भूतल।
सैकत शैया पर दुग्ध धवल तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल,
लेटी हैं श्रांत क्लांत निश्चल।

यह तो 'पन्त' के काव्य की क्रीड़ा का चित्र था अब 'महादेवी' जी के पीड़ा का चित्र देखिये।

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की पीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा, तुम में ढूँढ़ूँगी पीड़ा।

'महादेवी के दुःखवाद की प्रबलता की प्रबल प्रमाण निम्न पंक्तियाँ हैं—

"चिन्ता क्या है हे निर्मम, बुझ जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरा ही, पीड़ा का राज्य अँधेरा॥

कवियित्री 'महादेवी' जी अपने प्रिय रूपी परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन करती हुई कहती हैं—

मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला-सा है।

× + +

वीणा भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।

उक्त उदाहरण 'पन्त' 'महादेवी' दोनों के काव्य-भेद को समझने के लिए पर्याप्त हैं।

**प्रश्नः—( २ )** महा देवी जी वर्मा के प्रगीतों की विशेषताएँ बतलाइये।

( बी० ए० परीक्षा १९४९ का वि० वि० )

**उत्तरः—**छाया वाद काव्य में गीतों की रचना में कवियित्री महादेवी जी को अद्भुत सफलता मिली है। ऐसा प्रतीत होता है मानो इनके गीतों की पूर्णता अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई है। इनके गीतों में अनुभूति की गहराई और हृदय पक्ष की प्रधानता है। उनमें संगीत और कल्पना प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। गीतों की रचना में महादेवी जी चित्र भाषा का प्रयोग करती हैं। इनकी रचना में बुद्धितत्व का आधिक्य नहीं रहता है बल्कि ये चिन्तन का सहारा लेती हैं। इनके गीतों की प्रमुख विशेषता यह है कि इन्हें बार बार चाहे जितनी बार पढ़ा जाये पर उनसे मन नहीं अघाता। कभी ऊबता नहीं। प्रमाण स्वरूप कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

क्या नई मेरी कहानी !<br>
विश्व का कण कण सुनाता<br>
प्रिय वही गाथा पुरानी !

× ×

पंथ होने दो अपरिचित<br>
प्राण रहने दो अकेला।

महादेवी जी के काव्य में रहस्यात्मक भावनाएँ प्रकृति के माध्यम से व्यक्त

होती हैं अतएव इनके गीतों में संकेतात्मकता अधिक है और प्रकृति का भव्य रूप ही इनके गान का विषय बन गया है। वे कहती हैं कि—

सौरभ का फैला केश जाल,
करतीं समीर परियाँ विहार !
गीली केशर मद झूम झूम,
पीते तितली के नव कुमार !
मर्मर का मधु संगीत छेड़,
देते हैं हिल पल्लव अजान !

महा देवी जी वर्मा का संपूर्ण गीति काव्य विरह व्यथा से अनुप्राणित है। उनका प्रियतम अलक्ष्य है इसीसे वे पीड़ा के सागर में डूबी रहती हैं। उनके वर्णन में विह्वलता की अनेक दशाएँ समाहित हैं। प्रमाण स्वरूप कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

कौन आया था न जाने
स्वप्न में मुझ को जगाने,
याद में उन उँगलियों की
है मुझे पर युग विताने ।

× ×

तुम सो जाओ मैं गाऊँ !
मुझको सोते युग बीते,
तुमकों यों लोरी गाते,
अब आओ मैं पलकों में
स्वप्नों की सेज बिछाऊँ !

× ×

तुम्हें बाँध पाती सपने में !
तो चिर जीवन प्यास बुझा

लेती उस छोटे क्षण अपने में।

महा देवी जी के गीतों में प्रिय रूपी परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन है। वे कहती हैं—

मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलवेला सा है।

× × × ×

वीणा भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।

महादेवी जी को पीड़ा से स्वाभाविक प्रेम है इससे वे उसे आमंत्रित करती हुई कहती हैं—

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की पीड़ा
तुम को पीड़ा में ढूँढ़ा, तुममें ढूँढ़ूँगी पीड़ा।

इस पीड़ा से आत्मिक सुख का अनुभव करती हुई वे कहती हैं—

बिछाती हूँ पथ में करुणेश, छलकती आँखें, हँसते होंठ।

महादेवी जी के लिए प्रिय मिलन की उत्कंठा ही सुख का प्रतीक है वे कहती हैं:—

मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण भर।
रहने दो प्यासी आँखें, भरतीं आँसू के सागर॥

संक्षेप में महादेवी जी के गीतों में संस्कृत की कोमल कांत पदावली भावना का शृंगार किये सज धज कर प्रकट होती है। इनमें दुरूहता नाम मात्र को भी नहीं रहती। इनके गीत बड़े सरल और स्पष्ट हैं। इनकी गीत शैली उत्तरोत्तर विकासोन्मुख रही है। इन्होंने भावों को अधिक स्पष्ट करने के लिए प्रतीकों, समासोक्तियों और लाक्षणिक तथा व्यञ्जक प्रयोगों को अपनाया है।

**प्रश्न (२):**—सुश्री महादेवी के काव्य पर एक छोटी-सी आलोचना लिखिए।

( बी० ए० परीक्षा १९५० का० वि० वि० )

**उत्तर:**—कवियित्री सुश्री महादेवी जी वर्मा की कविता ज्ञान के अनन्त आकाश के नीचे अजस्र प्रवाहित होने वाली त्रिवेणी के समान है जो विभिन्न

धाराओं में स्वाभाविक तरलता के साथ जीवन को स्पर्श करके बहती रहती है। वेदना महादेवी जी के काव्य का आधार है। पीड़ा उनकी चिर संगिनी है। पीड़ा के प्रति उनके निम्न विचार हैं—

तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा,
तुममें ढूँढ़ूँगी पीड़ा।

कवियित्री महादेवी का आराध्य महान है। अपने आराध्य के प्रति आत्म-निवेदन करती हुई वे कहती हैं—

स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक-मन रे!
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे!
धूप बने उड़ते रहते हैं, प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे!
प्रिय-प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे!

माधुर्य भाव में प्रिया और प्रियतम का संबंध माना गया है। मीरा के समान महादेवी जी ने भी माधुर्य भाव को अपनाया है, इसीसे उन्हें आधुनिक युग को मीरा कहा भी जाता है। महादेवी जी के काव्य में मिलन भावना विद्यमान है। उनके काव्य की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रिय से मिलन होने पर वे उस दुःख का पर्यवसान नहीं चाहतीं। महादेवी जी की कविता रहस्यवादी कल्पना और दर्शन के भार से बोझिल है। महादेवी एक विचित्र प्रेमिका हैं। अपनी विरह-साधना पर उन्हें गर्व है। उनका आत्म-समर्पण पत्नी का आत्म-समर्पण न होकर प्रेमिका का आत्मसमर्पण है। उनकी दृष्टि में मोक्ष और अमरता महत्त्वहीन तथा निस्सार वस्तुयें हैं। वे कहती हैं—

सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं
वह रहे आराध्य चिन्मय
मृग मयी अनुरागिनी मैं।

महादेवी जी का दुःखवाद आध्यात्मिक है। उनकी कविता में परम तत्व और आत्म तत्व का अन्योन्याश्रित संबंध है। उनकी सारी कविता पर दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है। परमात्मा की साधना करते हुए उन्होंने जीवन का प्रकटीकरण भी

किया है। उन्होंने जन्म और मृत्यु की सुख और दुःख की रागात्मक अनुभूतियों के-द्वारा काव्य को अमरता प्रदान की है। वे कहती हैं—

मैं ऊर्मि विरल,
तू तुङ्ग अचल वह सिंधु अतल,
बाँधे दोनों को मैं चल चल,
धो रही द्वैत के सौ कैतव।

महादेवी जी के गीतों में स्वाभाविक गति और भाव भंगिमा है जैसा कि निम्न पंक्तियों से प्रकट है।

जाने किस जीवन की सुधि ले
लहराती आती, मधु बयार।

रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुणराग
मेरे मण्डन को आज मधुर ला रजनी गन्धा का पराग।

यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सँवार !

प्रकृति-वर्णन में भी महादेवी जी को पर्याप्त सफलता मिली है। प्रमाण के लिए निम्न पंक्तियाँ पर्याप्त हैं—

फैलते हैं सांध्य-नभ में भावही मेरे रँगीले,
तिमिर की दीपावली है, रोम मेरे पुलक गीले।

कहीं कहीं महादेवी जी की भावना कलाकार की भाँति अधिक उद्दीप्त हो जाती है और उनका दुःखवाद प्रबल हो उठता है यथा—

"चिन्ता क्या है हे निर्मम, बुझ जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरा ही, पीड़ा का राज्य अँधेरा॥

प्रिय और प्रियतम के दर्शन में महादेवी जी का मिलन काव्य क्रीड़ामय हो उठा है। वे कहती हैं—

"प्रिय चिरन्तन है सजन
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं।"

प्रिय की प्रतीक्षा-रस में अपनी अटूट ममता व्यक्त करती हुई वे कहती हैं—

"तुम हो प्रभात की चितवन, मैं विधुर निशा बन जाऊँ !
काटूँ वियोग पल रीते, संयोग समय छिप जाऊँ।।"

संक्षेप में—कला पक्ष और भाव पक्ष दोनों में ही महादेवी जी का प्रखर स्वतन्त्र व्यक्तित्व और गीतात्मकता प्रकट हुई है। गद्य क्षेत्र में उनकी प्रतिभा विभिन्न रूपों में प्रस्फुटित हुई है। उनकी प्रतिभा कवि की प्रतिभा है। कवि का स्वर ही उनके समस्त विचारों में ओत प्रोत है। तुलनात्मक समीक्षा की दृष्टि से उन्हें प्रसाद और निराला के बीच की कड़ी कहा जा सकता है।

**प्रश्न (४):**—प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी इन कवियों में से किसे प्रकृति सौंदर्य का उद्घाटन करने में सर्वाधिक सफलता मिली है ? सोदाहरण विवेचना कीजिये।

(बी० ए० परीक्षा १९५४ का० वि० वि०)

**उत्तर:**—उक्त प्रश्न के उत्तर के लिए सर्व प्रथम प्रत्येक कवि के काव्य विषयक विचार और विशेषता पर अलग अलग विचार कर लेना आवश्यक है। हम सर्वप्रथम प्रसाद के प्रकृति सौंदर्य को लेते हैं—छायावादी कवियों के साथ 'प्रसाद' की दृष्टि पहले प्रकृति के सौंदर्य पूर्ण गति-विधानों पर गई और उनके 'चित्राधार' में इस प्रकार का काव्य प्रकाशित हुआ—

नील नभ में शोभित विस्तार
प्रकृति है सुंदर परम उदार
नर-हृदय परिमित, पूरित स्वार्थ
बात जँचती कुछ नहीं यथार्थ

इसके बाद उनके सारे काव्य में प्रकृति के अनेकों रूपों के शुद्ध एवं रहस्यात्मक चित्र प्राप्त हुए। उन्होंने अपने इस प्रकृति प्रेम को दर्शन की दृढ़ भित्ति देने की चेष्टा की। 'कामायिनी' में प्रकृति के विराट एवं रहस्यमय रूप का अंकन है। प्रारंभ में प्रकति का एक प्रलय चित्र है

नीचे जल था, ऊपर हिम था
एक तरल था, एक सघन

एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन
दूर दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान
नीरवता-सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान

प्रसाद की प्रकृति की रहस्यमयी सत्ता का आभास इन पंक्तियों में मिलता है

महानील इस परम व्योम में अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह नक्षत्र और विद्युत कण करते हैं किसका संधान
छिपजाते हैं और निकलते आकर्षण में खिंचे हुए,
तृण-वीरुध लहलहे हो रहे किसके रस में सिंचे हुए,

संक्षेप में प्राकृतिक सौंदर्य ने प्रसाद की काव्य कला को वाणी दी है तथा सौंदर्य को उन्होंने रहस्यात्मक ढंग से देखा है।

निराला ने प्रकृति को रहस्यवादी और अद्वैतवादी कवि के दृष्टि कोण से देखा है। उन्होंने आत्मा और परमात्मा के रूप में प्रकृति के क्रीड़ा विलास का सुन्दर चित्रण किया है। इस दृष्टि कोण का सुन्दर प्रमाण उनकी 'जुही की कली' की निम्नपंक्तियाँ हैं—

देख प्यारे को सेज पास
नम्र मुखी हँसी-खिली
खेल रंग प्यारे संग

प्रकृति के प्रति निराला का एक और दृष्टि कोण भी है। जब वे प्रकृति में परमात्म तत्व का अनुभव करने लगते हैं तब प्रकृति का अपरोक्ष रूप अधिक स्पष्ट होकर निखरने लगता है और एक सुन्दर स्त्री रूप में उसकी कल्पना मूर्ति सामने आती है उनके प्रकृति वर्णन में अव्यक्त के सौंदर्य की सुन्दर व्यंजना निम्नपंक्तियों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है—

रही आज मन में
वह शोभा जो देखी थी वन में

× ×

लताएँ देती करतल-पल्लव-धरा
भक्त मोर चरणों के नीचे नत तन में ।

पंत जी प्रकृति के कवि हैं । उनको सारी प्रेरणा प्रकृति से मिली है । प्रकृति को उन्होंने सदैव ही सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप में देखा है । पंत जी ने प्रकृति को अपना बनाया है । प्रकृति के एक एक कण में उनकी भावनाएँ मूर्तिमान प्रतीत होती हैं । पंत के प्रकृति सौंदर्य की उज्ज्वल झांकी निम्न अवतरणों में मिलती है—

वाँसों का झुरमुट-
संध्या का झुट पुट
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ
टी–वी–टी–टुट–टुट

× ×

नीरव संध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम प्रान्त

कवियित्री महादेवी जी ने प्रकृति को अपनी सहचरी बनाकर प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण किया है अतएव उनकी साधना में परम तत्व, आत्मा तत्व और प्रकृति तत्व की प्रधानता हो गई है । प्रकृति में उन्हें ब्रह्म के लिए व्याकुलता भी दिखाई देती है वे कहती हैं—

यह कैसा छलना निर्मम, कैसा तेरा निष्ठुर व्यापार ।

महादेवी जी प्रकृति के द्वारा अधिकांश रूप में अपने प्रेम व्यापारों का सौदा करती हैं वे पीड़ा का अन्त नहीं चाहती इसी से कहती हैं कि—

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की पीड़ा ।
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा, तुम में ढूँढूँगी पीड़ा ।

संक्षेप में यहाँ प्रकृति सौन्दर्य विषय जो उदाहरण और विचार व्यक्त किए गये हैं उनका निष्कर्ष यह है कि प्रसाद निराला या पन्त के प्राकृतिक सौन्दर्य में उतनी गहराई नहीं है जितनी महादेवी वर्मा में है । प्रसाद निराकारी भावना और रूपासक्ति के कारण तीव्र अनुभूति जगाने में असमर्थ हैं । अतएव प्रसाद में रहस्यभावना महादेवी के सदृश गहरी नहीं है । पंत की रचनाओं में कल्पना

और कला की वह प्रौढ़ता नहीं है जो महादेवी के रहस्यवादी काव्य का आधार है। निराला जी रहस्यवादी कम और वेदान्तवादी अधिक हैं। प्रेम की गंभीरता जो रहस्यवादी के लिए अपेक्षित है उसका महादेवी जैसा प्रभाव निराला जी में नहीं है। अतएव प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी इन में प्रकृति सौन्दर्य चित्रण में महादेवी जी को ही प्रमुखता देना न्याय संगत और ठीक है।

## प्रश्नोत्तर

**प्रश्न ( ५ ) क:**—निम्नांकित पद्यों की सहृदयता पूर्ण व्याख्या कीजिए:—
अपनी जब करुणा कहानी.............प्राची में प्रातच्चितेरा।
( बी० ए० परीक्षा १९४५ का० वि० वि० )

**उत्तर:**—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ ४११

**( ख ):**—नीचे लिखे काव्य खंडों का अर्थ सरल भाषा में समझाइये। भाव को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक टिप्पणी भी दीजिये।
नभ-तारक सा खंडित पुलकित.........वह रज में अंकुर हो निकला!
( बी० ए० परीक्षा १९४६ का० वि० वि० )

**उत्तर:**—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ ४१६, ४१७

**( ग ):**—नीचे लिखे अवतरणों की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिये तथा उनका भाव सौंदर्य दिखाइये:—
पलकें मनके फिर...........................फिर से ढ़लने दो।
( बी० ए० परीक्षा १९४७ का० वि० वि० )

**उत्तर**—देखिये व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ ४०७

( घ ) नीचे लिखे अवतरणों की व्याख्या कीजिये:—
पंथ होने दो अपरिचित.................विरह में है दुकेला।
( बी० ए० परीक्षा १९५० का वि० वि० )

**( ङ )** प्रसंग निर्देश पूर्वक व्याख्या कीजिये:—४१३, ४१४
नीलम-मरकत के सम्पुट दो.................सपने सपने में सत्य ढला।
( बी० ए० परीक्षा १९५४ [illegible]० वि० )

**उत्तर:**—देखिए व्याख्या तथा विशेष टिप्पणी पृष्ठ ४१७।

( समाप्त )